Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

❀ श्रीहरिः ❀

❀ सभाष्य अथर्ववेदकी विषयसूची ❀

विषय पृष्ठ

❀ तृतीयकाण्ड ❀

प्रथम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । इसका सांग्रामिक अग्निमें भुस वा कणिका सहित ओदनपिण्डको उलूखलसे होमनेमें विनियोग होता है । इस कर्ममें इसी सूक्तसे इक्कीस रेतेके कण छाजमें भर शत्रुसेनाकी ओर उड़ाये जाते हैं । १

द्वितीय सूक्त । इससे पहिले सूक्तमें कहेहुए कर्म करे । १०

तृतीय अचिक्रदत् सूक्त । इससे शत्रुसे निकाले हुए राजा को फिर उसके राज्यमें प्रवेश करानेके लिये शत्रुसेनाकी समान आकार वाले पुरोडाशको कुशों पर फैला कर जल में लेजाय और उसको डुवानेके लिये पुरोडाश पर मट्टीके ढले रक्खे ॥ तथा राजाको अपने राज्यमें प्रवेश करानेके लिये इन सूक्तसे क्षीरौदनका सम्पातन अभिमन्त्रण करके राजाको चटावे ॥ तथा इसका साकमेधपर्वमें पहिले दिन की जानेवाली आग्नेयी इष्टिके प्रधानयागानुमन्त्रणमें विनियोग है १६

चतुर्थ सूक्त । इससे स्वराष्ट्रप्रवेशकर्ममें पहिले सूक्तमें कहे हुए कर्मोंको करे ॥ इसकी सातवीं ऋचाका प्रायणेष्टिके पथ्यास्वस्तियागानुमन्त्रणमें विनियोग होता है । २५

पञ्चम सूक्त । इस सूक्तसे तेज-बल आयु और धन आदि की पुष्टिके लिये पलाश वृक्षकी मणिको वासित और संपा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय पृष्ठ

तित करके बाँधे ।। तथा आंगिरसीमहाशान्तिके पलाशमणि बन्धनमें भी यह सूक्त पढ़ा जाता है । ३४

द्वितीय अनुवाक–

प्रथम सूक्त । अभिचारकर्म में इससे खैरमें उगे पीपलकी मणिका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके बाँधे ।। तथा इङ्गिडालंकृत पाशोंको इससे संपातित और अभिमन्त्रित कर शत्रुके मर्म में वीधें ।। तथा इसी सूक्तसे पूर्ववत् पाशोंको अभिमन्त्रित कर 'तेऽधराञ्चः' इस सातवीं ऋचासे नदीके प्रवाहमें फेंक देवे ।। इसी प्रकार पहिलेकी समान अभिमन्त्रित पाशोंसे आठवीं ऋचासे प्रेरित करे ।। तथा अभिचरित और अभिचर्यमाणके लिये विहित महाशान्तिके मणिबन्धनमें भी यह सूक्त पढ़ा जाता है । खदिर और अश्वत्थका निर्वचन । ४२

द्वितीय सूक्त । इससे क्षेत्रियव्याधिकी चिकित्साके लिये हिरनके सींगकी मणिको बाँधे, और सींगसहित जलको पिलावे, हिरनके चर्मके शंकुछिद्रभागको प्रज्वलित करके जलमें डाले और उस जलसे रोगी पर अभिषेक करे, यवहोम, और अभिमन्त्रित भातका भक्षण करे। तथा कौमारीशान्तिके हरिणविषाणाग्रके मणिबन्धनमें यह सूक्त पढ़ा जाता है । जलके भीतर संपूर्ण औषधि होनेका प्रमाण । ५१

तृतीयसूक्त । इसका उपनयनकर्ममें बालकके नाभिदेश को छूकर अनुमन्त्रण किया जाता है । मेधाजनन और आयुर्वर्धनके कामोंमें इससे होम किया जाता है । विवाहमें इसकी चौथी ऋचासे शुल्कद्रव्यको अलग कर यह द्रव्य तेरा है और यह मेरा कह कर विभाग करे। सांमनस्यकर्म

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय पृष्ठ

में पाँचवीं और छठी ऋचासे सम्पातित घट आदिको ग्राम-
मध्यमें लावे । ५८

चतुर्थ सूक्त । इससे विघ्नशमनकर्म में स्पर्धात्मक विघ्नका
नाश करनेके लिये सोनापाढ़ाकी मणि बाँधे, सर्प, सींग
वाले और डाढ़ वाले प्राणियोंके विघ्नको शान्त करनेके
लिये इससे सम्पातित बाँसके दण्डेको धारण करे । संग्राम
में शत्रुरचित माया आदि विघ्नोंको दूर करनेके लिये संपा-
तित आयुधको धारण करे । सब कामोंके आरंभमें विघ्नों
को शान्त करनेके लिये इस सूक्तको पढ़ गुग्गुलसे धूपन करे।
खृगल शब्दका अर्थ । ६६

पञ्चम सूक्त । इससे पुष्टिके लिये किये जाने वाले अष्ट-
का कर्म में आहुति दी जाती है । अष्टकाशब्दकी व्याख्या ।
सोमयागके सोमक्रयणीयपदहोमानुमन्त्रणमें इसकी छठी
ऋचाका विनियोग होता है । चातुर्मास्यके साकमेधमें पूर्ण-
दर्विहोममें इसकी सातवीं ऋचा पढ़ी जाती है । रात्रिमें राजा
की आरतीके समय रात्रिदेवताका आवाहन करनेमें इसकी
दूसरी ऋचाका विनियोग होता है । और इसकी तीसरी
ऋचाका रात्रिकी पिट्ठीकी प्रतिकृतिको बैठानेमें विनियोग
किया जाता है । तहाँ ही रात्रिके उपस्थानमें इसकी सातवीं
ऋचाका विनियोग होता है । दिनके पाँच भाग । ७४

तृतीय अनुवाक-

प्रथम सूक्त । इसका बालग्रहरोग पर और निरन्तर
स्त्रीसंग करनेसे उत्पन्न हुए यक्ष्मारोग पर तथा सर्वव्याधि
की निवृत्ति पर प्रयोग किया जाता है । यज्ञमें रुग्ण हुए
यजमानकी चिकित्सामें भी इसका विनियोग होता है । ८५

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय — पृष्ठ

द्वितीय सूक्त। वास्तोष्पत्यगणकी सूची। इससे नवशालावास्तुसंस्कारके लिये शालाभूमिको हलसे जोते। चतुर्गणी महाशान्तिके शान्त्युदक आदिमें इस सूक्तका सर्वत्र विनियोग होता है। नवशालाके गर्तोंमें खड़े हुए स्थूणों को इस सूक्तसे अभिमन्त्रित करे। इसकी पहिली दूसरी ऋचाओंसे शालभूमिको दृढ़ करे। छठी ऋचासे घृताक्त बाँसको स्थूणाओं पर स्थापित करे। आठवीं ऋचासे जल पूर्ण कुम्भ वाली पत्नीको घरमें पहिले प्रवेश करावे। १०६

तृतीय सूक्त। अपने देशमें नदीका प्रवाह करनेके लिये नवीन जलप्रवाहसे ग्राम नगर आदिको भयका अवसर आने पर तथा दूर गई हुई नदीको फिर अपने स्थान पर पर बुलानेके लिये इसका प्रयोग किया जाता है। वर्षा करानेके लिये भी इसका प्रयोग होता है। धनके उठानेके समय होने वाले विघ्नोंको शान्त करनेके कर्ममें इससे घृत का होम होता है, तथा सम्पातित अभिमन्त्रित घटजलसे आप्लावन और अभिषेक भी किया जाता है। जलके नदी, अप्, वार, उदक् नामका निर्वचन। अग्निमें आहुति देने से वर्षाका होना। ११६

चतुर्थ सूक्त। इससे गौओंकी पुष्टि चाहने वाला पहिलौन गौके श्लेष्ममिश्रित नवीनदुग्धको संपातित और अभिमन्त्रित करके प्राशन करे। और गौओंकी पुष्टि चाहनेवाला इससे गौको अभिमन्त्रित करके देवे, तथा इससे जलपूर्ण पात्रको अभिमन्त्रित कर गोवाटमें लेजावे। तथा इसीसे बायें हाथसे अन्ने उपलेको उठा दाये हाथसे उसके आधे भागको गोवाटमें फैंके। तथा इसी सूक्तसे सारूपवत्स ओदन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय पृष्ठ

में गोबरके पिण्ड, गूगल और लवणको मिला कर अग्नि में तीन रात्रि तक दबा रक्खे फिर चौथे दिन प्रातःकाल सम्पातित और अभिमन्त्रित करके भक्षण करे, यदि भात बिगड़ गया हो तो न खावे। १२७

पञ्चम सूक्त। इसका वाणिज्यलाभके लिये विनियोग होता है। वज्र, वस्त्र, पूगीफूल, घोड़ा हाथी वा रत्न आदि को इससे सम्पातित और अभिमन्त्रित करके उठावे। व्यवहार करना चाहने वाला इससे इन्द्रकी पूजा वा उपस्थान करे। कृत्याच्छमनकर्म में आठवीं ऋचासे पूर्णाहुति देय। १३४

चतुर्थ अनुवाक–

प्रथम सूक्त। बुद्धिको चाहने वाला सोकर उठने पर इसको पढ़ हाथसे मुख धोवे। इससे दही और मधुका संपातन और अभिमन्त्रण करके ब्राह्मणको प्राशन करावे। क्षत्रियको दही और मधुसे मिश्रित अन्न प्राशन करावे, वैश्य आदिको केवल भात खिलावे। तथा वर्चस्यकर्ममें स्नातक सिंह व्याघ्र आदि सातमेंसे एकके नाभिके रोमोंकी मणि को सुवर्ण और लाखमें मढ़ इस सूक्तसे संपातन और अभिमन्त्रण करके बाँधे तथा वर्चस्काम क्षत्रियादिको स्नातक–आदिके मर्मोंको स्थालीपाकमें डाल इससे सम्पातित और अभिमन्त्रित कर प्राशन करावे तथा वर्चस्काम पुरुपका इस सूक्तसे अभिमन्त्रित और सम्पातित जलसे स्नान और अभिषेक करे। १४४

द्वितीय सूक्त। इसका कृषिनिष्पत्तिकर्म में वृषलाभकर्म में अद्भुत शांतिमें, यज्ञ वास्तुसंस्कारकर्म में और अग्निचयन कर्म में विनियोग होता है। शुनासीरशब्दका अर्थ। १५३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय पृ

तृतीय सूक्त । इसका सौतको जीतनेके कर्ममें प्रयोग होता है । विवादजयकर्ममें इसका जप किया जाता है । १६४

चतुर्थ सूक्त । दूसरेकी सेनाको घबड़ानेके कर्ममें इससे घृतकी आहुति दे कर श्वेत पैर वाली बकरी या भेड़को संपातित और अभिमन्त्रित करके शत्रुसेनाकी ओर छोड़ देय । तथा संग्राममें विजय पानेके लिये इससे घृतहोम सक्तुहोम, धनुषरूपी ईंधनका रखना और बाणरूपी समिधाओं को रखना और राजाको अभिमन्त्रित धनुषका देना आदि करे । अग्निचयनमें इससे ब्रह्मा उन्नीयमान उरूयका अनुमन्त्रण करे । इसकी आठवीं ऋचासे महाव्रत आजिधावन में अवसृष्ट बाणका अनुमन्त्रण करे । १६९

पञ्चम सूक्त । इससे निर्ऋतिकर्ममें धूलिकणमिश्रित धानोंकी आहुति देय तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्ममें इस सूक्तसे घृत आदि तेरह द्रव्योंकी आहुति देय वा इसी कर्ममें इस सूक्तका जप करे । इसकी पहिली ऋचासे अरणियोंमें वा आत्मामें अग्निका समारोप किया जाता है । सवयज्ञमें चौथी ऋचासे अथर्ववेदको जाननेवाले चार ऋषि शिष्योंको बुलाया जाता है । और इसी ऋचासे अग्निचयनमें रखी जाती हुई गार्हपत्येष्टिका अनुमन्त्रण होता है । अग्निचयनमें गूलड़की समिधा रखनेके अनन्तर 'अग्ने अच्छ' आदि तीन ऋचाओंका और 'अर्यमणं बृहस्पतिम्' इन दो ऋचाओंका जप करे । आठवीं ऋचासे वाजप्रसवीयहोमका अनुमन्त्रण कियाजाता है । छः ऊर्वियोंका वर्णन १७९

पञ्चम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । इसकी पहिली सात ऋचाओंसे मांसभक्षी राक्षस आदिसे उपहत घर गोठ और खेत आदिकी शांति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय पृष्ठ

के लिये मणिधारण होम आदि करे जाते हैं। तथा इस सूक्तसे क्रव्याच्छमनके समय सत्तुओंके जलको कबीलेकी दो समिधाओंसे मथ कर उस मन्थका पलाशकी दर्वीसे प्रत्येक मन्त्रसे होम किया जाता है। वशाशमन कर्ममें इस से वशाका अभिमन्त्रण करके वशाका ब्राह्मणको दान दिया जाता है। यदि वपा वा हविको कौआ उल्लू कुत्ता मनुष्य आदि लेकर भाग जावें तो प्रायश्चित्तके लिये इस दश ऋचा वाले सूक्तसे घृतकी आहुति दी जाती है। बृहद्गणका जहाँ विनियोग होता है तहाँ सर्वत्र इसकी सात ऋचाओंका विनियोग किया जाता है तथा सोमस्कन्दनमें ब्रह्मा 'ये अग्नयः' आदि सात ऋचाओंसे आहुति देय। आवसथ्याधानमें क्रव्याच्छमनके अनन्तर घरमें आकर 'ये अग्नयः' आदि सात ऋचाओंसे घृतकी आहुति दी जाती है। तहाँ ही क्रव्यादाग्निके शमनमें हिरण्यपाणिम् आदि अन्तकी तीन ऋचाओंसे क्रव्यादग्निमें सक्तुमन्थका होम किया जाता है। चातुर्मास्यके साकमेधपर्वमें आतिथ्येष्टिके अनन्तर सातवीं ऋचासे अग्निका उपस्थान किया जाता है। अग्निकी विभूतियें। इन्द्रदेव और अग्निदेवका एक रथमें बैठना। लौंदके महीनेका प्रमाण। १९१

द्वितीय सूक्त। तेज चाहने वाला इससे हाथीदाँतको छूकर उपस्थान करे। इससे हस्तिदन्त मणिका संपातन और अभिमन्त्रण करके बाँधे। तथा पुरोहित प्रतिदिन प्रातःकाल में इस सूक्तसे हाथीको अभिमन्त्रित कर राजाको दिया करे। ब्रह्मवर्चसकामके लिये, और वस्त्र शयनके अग्निसे जलने पर की जाने वाली ब्राह्मी महाशान्तिके हाथीदाँतकी मणि के बाँधनेमें भी यह सूक्त पढ़ा जाता है। २०७

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय पृष्ठ

तृतीय सूक्त। इससे पुंसवन कर्म में बाणका अभिमन्त्रण करके स्त्रीके शिर पर रक्खे। तथा इससे घृतकी आहुति दे शरणमणिको संपातित और अभिमन्त्रित करके बाँधे। तथा इससे फालचमसमें सरूपवत्सा गौके दूधको डाल उसमें धान और जौंको डाल घुमा कर अण्डकोषों पर बाँधा जाता है। तथा पलाश और विदारीकन्दको एक स्थानमें पीस कर स्त्रीके दाहिने नथनेमें हुलास दिया जाता है। २१३

चतुर्थ सूक्त। इसका धान्यसमृद्धिकर्म में विनियोग होता है। तथा इसकी पहिली ऋचासे पितृमेधकर्म में शवदाहके अनन्तर स्नान करा जाता है। पाँच वर्णके मनुष्य। २१६

पञ्चम सूक्त। इसका स्त्रीवशीकरणमें प्रयोग किया जाता है। स्त्रीवशीकरण विधि। २२५

छठा अनुवाक–

प्रथम और द्वितीय सूक्त। इन दोनोंसे अपनी सेनाको उत्साहित करनेके लिये प्रत्येक दिशामें प्रत्येक ऋचासे उपस्थान किया जाता है। स्वस्त्यनकर्म में इन दोनोंसे तेरह द्रव्योंकी आहुति दीजाती है। तथा इसी कर्म में इन दोनों से हुतशेषसे प्रत्येक दिशामें बलिहरण और उपस्थान किया जाता है। तथा साँप बीछू आदिके भयको हटाना चाहने वाला घर खेत आदिमें अभिमन्त्रित धूलिकणोंको बखेरे। तथा इन दोनोंसे तृणमालाको सम्पातित करके गृह वा नगर आदिके द्वार पर बाँधा जाता है। तथा इन दोनोंसे गोबरको अभिमन्त्रित करके उसको घरमें डाले, द्वार पर गाढ़ देवे और अग्निमें होमे। तथा इन दोनों सूक्तोंसे चिनचिटेकी मञ्जनी वा गिलोयको अभिमन्त्रित करके पूर्व-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय पृष्ठ

वद्ध घर आदिमें विसर्जन करे। तथा तीस महाशान्तियों की तंत्रभूत शान्तिमें 'येस्याम्' इस ऋचासे प्रत्येक दिशामें होम करे और 'प्राची दिक्' इस ऋचासे प्रत्येक दिशामें उपस्थान करे। २३१

तृतीयसूक्त। गौ, गधैया, घोड़ी और मानुषीके जुड़वाँ सन्तान होनारूप अद्भुत होने पर उसकी शान्तिमें इसका प्रयोग किया जाता है। २४७

चतुर्थ सूक्त। इससे ओदनसवमें पशुके अवयवोंमें पाँच गुलगुले रक्खे जाते हैं और न होमी हुई हविका स्पर्श किया जाता है। दुष्ट वा अदुष्ट प्रतिग्रहके दोषकी शांतिके लिये इसकी सातवीं आठवीं ऋचाओंसे प्रतिग्रहके पदार्थको अभिमन्त्रित करके ग्रहण करे। इसकी आठवीं ऋचासे भूमिदान लिया जाता है। ग्रहयज्ञमें इस सूक्तसे बुधकी हवि और घृतका होम, उपस्थान और समिदाधान होता है। स्वर्गसुखका अर्थ। २५३

पंचम सूक्त। इससे साम्मनस्य कर्म होते हैं तथा उपाकर्मके घृतहोममें भी इसका विनियोग होता है। २६३

छटा सूक्त। आचार्यसे उपनयनके अनन्तर आयुरभिलाषी बालकके शरीरका इससे अभिमन्त्रण कराया जाता है। पितृमेधमें शवदहनके अनन्तर इस सूक्तका ब्रह्मा जप करे। आग्रहायणीकर्ममें इसकी दशवीं ग्यारहवीं दो ऋचाओं को पढ़ कर ब्रह्मा उठता है। तथा सोमक्रयणके अनन्तर दशवीं ऋचाको पढ़ कर ब्रह्मा उठे। २७१

❃ चतुर्थ काण्ड ❃

प्रथम अनुवाक—

प्रथम सूक्त। इसका वेद कल्प आदिके अध्ययनके समय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय	पृष्ठ
विघ्नशमनके लिये तथा शास्त्रवाद आदिमें प्रतिवादियोंका विजय करनेके लिये जप किया जाता है। गोपुष्टि कर्ममें और गौओंके रोगकी शान्ति करनेमें भी इससे लवणका अभिमन्त्रण करके गौओंको पिलाया जाता है। तथा पौ तालाव आदिमें स्थित जलको अभिमन्त्रित कर गौओंको पिलाया जाता है। बृहद्गणका जहाँ २ पाठ होता है तहाँ २ सर्वत्र इसकी प्रथम ऋचाका विनियोग होता है उपाकर्ममें उपाध्याय और चतुर्थिकाकर्ममें वर इस ऋचाको जपे। प्रवर्ग्यकर्ममें निधीयमान महावीरका ब्रह्मजज्ञानम् आदि दो ऋचाओंसे अनुमन्त्रण होता है। अग्निचयनके हिरण्यमय रुक्मका इस प्रथम ऋचासे अनुमंत्रण होता है। ब्राह्मी महाशान्तिमें भी इस सूक्तका विनियोग होता है। तुलापुरुषविधिमें इस सूक्तसे आहुति देय	२८१
द्वितीय सूक्त। इसका वशाशमन कर्ममें और अग्निचयन में अनुयोजन और अनुमन्त्रण होता है। हिरण्यमयपुरुषोपधानमें इसकी सातवीं ऋचाका पाठ होता है।	२९६
तृतीयसूक्त। गौ आदिके व्याघ्र चोर आदिके भयको दूर करनेके लिये खैरके खूँटेका इससे सम्पातन और अभिमन्त्रण करके उससे गोसंचारभूमिको कुरेदता हुआ पीछे २ जावे। तथा इससे जलपूर्ण घटका अभिमन्त्रण करके गोप्रचारदेशमें ले जावे फिर तहाँ धूलका कूट बना कर उसके अर्धभागको दाहिने हाथसे फैंक देय। तथा इससे सारूपवत्स ओदनका इन्द्रदेवके लिये तीन वार होम करे।	३०७
चतुर्थ सूक्त। वीर्यकाम पुरुष इससे वीर्यकरणकर्ममें कपित्थ की मूलको ओषधिकी समान खोद दूधमें औटा अभिमन्त्रण करके प्रत्यञ्चा चढ़े हुए धनुषको गोदीमें रखकर पिये।	३१३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय पृष्ठ

पञ्चमसूक्त । इसका स्त्र्यभिगमनमें प्रयोग किया जाता है । ३२०

छठा सातवाँ सूक्त । इससे तथा अगले सूक्तसे कन्द-विषकी चिकित्साके लिये जलको अभिमन्त्रित कर विषाविष्ट पुरुषको पिलावे और प्रोक्षण करे । तथा सुपारीके वृक्षके टुकड़ेको जल सहित अभिमन्त्रण करके जल पिलावे और छिड़के । जीर्ण हरिणचर्मसे गरम किये हुए वा गिरे हुए बुहारीके टुकड़ोंसे गरम किये हुए जलको इन दोनोंसे अभि-मन्त्रित करके पिलावे और प्रोक्षण करे । जलपूर्ण पात्रका संपातन और अभिमन्त्रण करके उससे स्नान करावे । विषलिप्त ऊर्ध्वफलोंसे सक्तुमन्थको अभिमन्त्रित करके पिलावे । धतूरेके फलोंका प्रत्येक ऋचासे अभिमन्त्रण करके कै होनेके लिये भक्षण करे । तथा विषाक्रांत पुरुषको घी और हल्दी इससे अभिमन्त्रित करके पिलावे । ३२७

तृतीय सूक्त । इससे राज्याभिषेकमें जलपूर्ण कलशसे पुरोहितके द्वारा अभिषेक और जप किया जाता है । तथा इससे सम्पातित स्थालीपाकका प्राशन तथा अभिमन्त्रित घोड़े पर चढ़ा कर अपराजितदिशाकी ओर भेजे । राजसूय में आसन पर बैठते समय वा राजाभिषेकके समय भी यह सूक्त पढ़ा जाता है । ३४०

चतुर्थ सूक्त । इससे उपनयनके अनन्तर आञ्जनमणिका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके आयुष्काम बालकके बाँधे तथा गजक्षय होने पर कीजाने वाला ऐरावती महाशांति के आञ्जनमणि बन्धनमें यह सूक्त आता है । ३४८

पञ्चमसूक्त । इससे उपनयनके अनन्तर आयुष्काम बालक के शङ्खमणि बाँधे और जलभयमें विहित वारुणी महा-शान्तिके शङ्खमणिबन्धनमें भी यह पढ़ा जाता है । ३५६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय पृष्ठ

तृतीय अनुवाक—

प्रथम सूक्त । इसका अनुडुत्सवमें प्रयोग होता है । ३६३

द्वितीय सूक्त । इसका शस्त्र आदिके मारनेसे निकलते हुए रुधिरके प्रवाहको रोकनेके लिये टूटी हुई हड्डीको ठीक करनेके लिये प्रयोग होता है । ३७६

तृतीय सूक्त । इससे उपनयनके अनन्तर आयुष्काम बालकका स्पर्श करके अनुमन्त्रण किया जाता है । जहाँ लघुगण और अंहोलिंगगणका पाठ होता है । तहाँ सर्वत्र इसका प्रयोग होता है । यज्ञमें रुग्णहुए यजमानकी चिकित्सा में भी यह सूक्त पढ़ा जाता है । ३८५

चतुर्थ सूक्त । इसका अजौदनसवमें काम पड़ता है । इस की पाँचवीं ऋचासे सकल सवयज्ञोंमें घृतकी आहुति दी जाती है । इसकी तीसरी ऋचाका वाजपेयमें यूप पर चढ़ कर यजमान जप करता है । वरुणप्रघासपर्वमें अग्निप्रणयन के समय ब्रह्मा इसका जप करता हुआ चले । तथा सोम-यागके उत्तरवेद्यग्निप्रणयनमें भी इसका जप किया जाता है । ३६४

पञ्चम सूक्त । वृष्टि चाहने वाला इससे मन्त्रोक्त देव-ताओंके लिये घृतका होम करे । तथा अभिवर्षण कर्म इस से कियेजाते हैं । उपतारकाद्भुतशांतिमें इससे घृतकी आहुति देय । चातुर्मास्यकी अन्वारम्भणीयेष्टिमें इसकी छठी ऋचा से पर्जन्यचरुयागका अनुमन्त्रण किया जाता है । धूतकेतु-रूप उत्पातदर्शनमें और प्राजापत्या शान्तिमें इसकी ग्यारहवीं ऋचासे घृतहोम होता है । ४०७

चतुर्थ अनुवाक—

प्रथम सूक्त । इससे अभिचारकर्ममें गाली देते हुए शत्रु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय पृष्ठ

से भाषण करे धूमकेतूत्पातशान्तिके वारुणपशुप्रयोगमें इस की तीसरी ऋचाका पाठ होता है। ४२३

द्वितीय तृतीय और चतुर्थ सूक्त। स्त्री, शूद्र, कापालिक आदिके किये हुए अभिचारदोषको हटानेके लिये चिरचिटा सहदेई आदि मन्त्रोक्त औषधियोंको शान्त्युदककलश में डाल कर उसके अनुमन्त्रणमें विनियुक्त इन तीन सूक्तों को पढ़ना चाहिये। ४३३

पञ्चम सूक्त। ब्रह्मग्रह आदिसे उत्पन्न हुए भयको हटाने के लिये इससे त्रिसंध्यामणिका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके बाँधे। ४५३

पञ्चम अनुवाक—

प्रथमसूक्त। दश सूक्तोंका मृगार नाम है। इनका सर्वभैषज्यकर्मके होमसंपात अवसेक आदिमें विनियोग है। इस प्रथम सूक्तसे गौओंके रोगोंकी शांति पुष्टि प्रजनन कर्ममें सलवण वा केवल जलको अभिमन्त्रित कर गौओंको पिलावे। तथा गोपुष्टिकर्ममें गोठमें आती हुई गौओंके सामने इस सूक्तसे उठे। इसकी सातवीं ऋचासे वनकी ओर जाती हुईं गौओंका अनुमन्त्रण करे। तथा इसी कर्ममें इसकी सातवीं आठवीं ऋचाओंसे बछड़ेकी लारसे मिला हुआ नवीन दुग्ध संपातन और अभिमन्त्रण करके भक्षण करे। तथा इन्हीं दो ऋचाओंसे अभिमन्त्रण करके गौओं को देय। जलपूर्ण पात्रको अभिमन्त्रित कर गोठमें लेजावे और सारूपवत्सौदनमें गूगल लवण और गोबरके पिण्डों को डाल अग्निमें तीन रात्रि तक दबा रक्खे और चौथे दिन निकाल इन दो ऋचाओंसे संपातित और अभिमन्त्रित करके खावे। ४६१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय पृष्ठ

द्वितीय सूक्त। इससे संग्रामजयके लिये घृतहोम सक्तुहोम धनुरिध्माधान इषुसमिदाधान और राजाको अभिमंत्रित धनुषका प्रदान किया जाता है। तथा इससे अभिषिक्त राजाका प्रत्येक दिन प्रातःकालमें अभिमन्त्रण करे तथा जलपूर्णपात्रसे प्रोक्षण करे तथा कृत्याच्छमनकर्ममें इससे वृषभका अभिमन्त्रण किया जाता है। ४७१

तृतीय सूक्त। इससे छठे अनुवाकके चतुर्थसूक्त तकका बृहद्गणमें पाठ होनेसे शान्त्युदक आदिमें इनका विनियोग होता है। इनका अंहोलिंगगणमें भी पाठ है। अग्नेर्मन्वे सूक्तसे सामिधेनीका अनुमन्त्रण किया जाता है। ४७६

चतुर्थ सूक्त। यह दश हविष्का मृगारेष्टिमें इन्द्रकी स्तुति करने वाला सूक्त है। ४८६

पञ्चम सूक्त। मृगारेष्टिमें इससे वायु और सविता देवता की स्तुति की जाती है, तथा आँधीके भयसे की जाने वाली वायव्या महाशान्तिमें इसका प्रयोग होता है। ४९७

छठा अनुवाक—

प्रथम सूक्त। सोमयागमें इससे औदुम्बर्याके घृतहोमका अनुमन्त्रण करे। तथा मृगारेष्टिमें द्यावापृथिवीकी इस सूक्तसे स्तुति की जाती है। ५०५

द्वितीय सूक्त। मृगारेष्टिमें इससे मरुतोंकी स्तुति की जाती है। बलकी कामना वालेके लिये की जाने वाली मारुद्गणी शान्तिमें भी इसका पाठ होता है। इसकी सातवीं ऋचासे साकमेधपर्वमें गृहयागका अनुमन्त्रण करे। ५१२

तृतीय सूक्त। मृगारेष्टिमें भव और शर्वदेवताकी इससे स्तुति की जाती है। तथा सर्वभैषज्य कर्ममें कबीलेके सात

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय पृष्ठ

जलपूर्ण दोनोंको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके रोगी पर छिड़के भव और शर्व शब्दकी व्याख्या। ५१६

चतुर्थसूक्त। इससे मृगारेष्टिमें मित्रावरुणकी स्तुति कीजाती है ५२६

पञ्चमसूक्त। जातकर्ममें इससे कौडयाला बूँटी और केवड़ेको पीस कर अभिमन्त्रित करके सुवर्णके टुकड़ेसे प्राशन करावे। तथा मेधाजननके लिये, बच्चेके पहिले बोलने पर माताकी गोदीमें बैठे हुए बालकके तालुमें इस सूक्तसे किये हुए होम (की राख) को लगावे। तथा दही और मधुको संपातित और अभिमन्त्रित करके बालकको चटावे। तथा उपनयनमें दण्ड देनेके अनन्तर इस सूक्तको बालकसे बचवावे। तथा आयुष्काम पुरुष शंखपुष्पप्राशन आदि पाँच कर्म कर उपनयनमें इससे घृतहोम करे। अध्यायोत्सर्जनमें इससे घृतकी आहुति दे रसोंमें संपातलावे ५३४

सप्तम अनुवाक—

प्रथम तथा द्वितीय सूक्त। इनका अपनी और दूसरेकी सेनाओंमें खड़ा होकर जप करे। इनसे भंगके पाश मूँज के पाश वा कच्चे पात्रोंको अभिमन्त्रित कर शत्रुसेनाके घूमनेके स्थानमें फेंक देय। तथा जय और पराजयको जानने के लिये दोनों सेनाओंमें सेंटेके तिनकोंको रख कर इन दोनोंसे अभिमन्त्रित कर उनको आंगिरस अग्निसे भस्म करे। उस समय जिस सेनाकी ओर धूम जावे उसको हारने वाली समझे। तथा इनसे अङ्गारककी हवि और घृत का होम समिदाधान और उपस्थान करे। ५४७

तृतीय सूक्त। इसका शान्त्युदक आदिमें, स्त्रियोंकी पुरुष विषयक रतिको दूर करनेमें पुरुषोंकी स्त्रीविषयक रतिकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तीसरे काण्डमें छः अनुवाक हैं। इनमें पहिले अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं। उनमें "अग्निर्णः शत्रून्" यह प्रथम सूक्त है। इसका भुस वा कणिका मिले हुए ओदनपिण्डको सांग्रामिक अग्निमें उलूखलसे होम करनेमें विनियोग होता है॥

तथा इसी कर्ममें इक्कीस शर्कराओंको (रेतेके कणोंको) छाजमें रख कर शत्रुसेनाकी ओर उड़ावे॥

तथा अप्वाख्यायै देवतायै इस सूक्तसे चरुका होम करे।

इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–"अग्निर्नः शत्रून् [३।१] अग्निर्नो दूतः [३।२] इति मोहनान्यपनोदनेनोपयम्य फलीकरणान् उलूखलेन जुहोत्येवमणून् एकविंशत्या शर्कराभिः प्रतिनिष्पुनात्यप्वां यजते" (कौशिकसूत्र २।५)

तत्र प्रथमा॥

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।

स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः

अग्निः। नः। शत्रून्। प्रति। एतु। विद्वान्। प्रतिऽदहन्। अभिऽशस्तिम्। अरातिम्।

सः। सेनाम्। मोहयतु। परेषाम्। निःऽहस्तान्। च। कृणवत्। जातऽवेदाः॥ १॥

अङ्गति गच्छति सर्वं व्याप्नोतीति अग्निः। ❀ अगिर्गत्यर्थः। अस्माद् अङ्गेर्नलोपश्च [उ० ४.५०] इति निप्रत्ययः। "नेड् वशि कृति" इति इट् प्रतिषेधः। नैरुक्तास्तु अग्निशब्दम् अक्षरसाम्येन बहुधा व्युत्पादयन्ति। तथा हि। अग्निरग्रणीः सर्वदेव-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तानां प्रधानभूतः "अग्निरग्रे प्रथमो देवतानाम्" [तै० ब्रा० २. ४. ३. ३] इति श्रुतेः । देवासुरसंग्रामे देवसेनाया अग्रे नयनाद् वा अग्रणीरग्निः । सेनानीरित्यर्थः । "अग्निर्देवानां सेनानीः" इति हि ब्राह्मणम् । यद्वा अग्रं प्रथमं यज्ञेषु कर्तव्येषु तादर्थ्येन प्रणीयत इत्यग्निः । सर्वत्र अग्रशब्दोपपदान्नयतेः "सत्सूद्विष०" इत्यादिना कर्तरि कर्मणि वा क्विप् । पृषोदरादित्वाद्द रूपसिद्धिः । यद्वा अङ्गं शत्रुसेनारूपं नयति दाहेन आत्मसात् करोति [इति] वा अग्निः । अङ्गशब्दोपपदान्नयतेर्नमतेर्वा रूपसिद्धिः । अथ वा न क्नोपयति स्वसंबद्धपदार्थजातम् अनार्द्रं करोतीति वा अग्निः । क्नूयीशब्दे उन्दे च । अस्मान्नञ्पूर्वाद् रूपम् ॥ अपि वा अयनेन आहवनीयादिस्थानगमनेन अभिव्यक्तः प्रज्वलितः नयति हवींषि देवान् प्रापयतीति । अयनेन हविषः स्वात्मप्राप्तिमात्रेण तद्धविर्दग्धं कुर्वन् देवान् नयतीति वा अग्निः । अस्मिन् पक्षे एतेः अञ्जेर्दहतेर्वा नयतेश्च यथाक्रमम् अकारादींस्त्रीन् वर्णान् उद्धृत्य अग्निशब्दो व्युत्पाद्यः । एतत् सर्वं यास्केनोक्तम् । अग्निः कस्मात् । अग्रणीर्भवति । अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते । अङ्गं नयति संनममानः । अक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविः । न क्नोपयति न स्नेहयति । त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायत इति शाकपूणिः । इतात् अक्ताद् दग्धाद्वा नीतात् । स खल्वेतेः अकारम् आदत्ते गकारम् अनक्तेर्वा दहतेर्वा नीः परः इति [नि. ७. १४] ❀ । स च "इन्द्रो मन्थतु" [कौ० २. ७] इत्यादिसूत्रोक्तप्रकारेण मन्थनादिसंस्कारसंस्कृतः सेनाग्निरत्र विवक्षितः । सोयम् अग्निः विद्वान् जयोपायं जानन् नः अस्माकं शत्रून् शातयितॄन् द्वेष्यान् प्रत्येतु प्रतिमुखं गच्छतु । प्रतिमुखो भवतु इत्यर्थः । किं कुर्वन् । अभिशस्तिम् आभिमुख्येन अभितो वा हिंसकम् । ❀ शसु हिंसायाम् । अस्मात् कर्तरि क्तिच् । छान्दसं पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्तिन्नन्तेन वा बहुव्रीहिः ❀ । अरातिम् रातिर्दानम् तेन च श्रेयोमात्रम् उपलक्ष्यते । अस्मच्छ्रेयोविघातिनं शत्रुं प्रतिदहन् प्रातिकूल्येन प्रत्यङ्गं प्रतिपुरुषं वा भस्मसात् कुर्वन् । यद्वा । ❀ प्रतिदहन् इति "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति हेतौ शतृप्रत्ययः ❀ । प्रतिदहनाद्धेतोः शत्रून् प्रत्येतु इति संबन्धः ॥ अपि च सः अग्निः परेषाम् शत्रूणां सेनाम् इनेन अधिपतिना सह वर्तमानां शत्रुहननाय संभूय गमनयुक्तां वा । यथाहुः । सेना सेश्वरा समानगतिर्वा [नि० २. ११] इति । तां चतुरङ्गबलरूपिणीं मोहयतु व्याकुलचित्तां करोतु । युद्धविषयकार्याकार्यविभागज्ञानशून्यां करोतु इत्यर्थः । ❀ मुह वैचित्त्ये ❀ ॥ किं च जातवेदाः जातानां प्राणिनां वेदिता सर्वज्ञोयम् अग्निः शत्रून् निर्हस्तान् हस्तव्यापारशून्यान् आयुधग्रहणासमर्थान् कृणवत् कुर्यात् । ❀ कृवि हिंसाकरणयोश्च । अस्मात् लिङर्थे लेटि अडागमः । "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः । तत्संनियोगेन अकारोन्तादेशः । तस्य स्थानिवद्भावात् लघूपधगुणाभावः । जातवेदा इति । गतिकारकयोरपि पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च इति [उ० ४. २२६] असुन् पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च ❀ ॥

देवासुरसंग्राममें देवसेनाको आगे लेजानेसे अग्रणी कहलाने वाले मन्थन आदि संस्कारसे संस्कृत संग्रामाग्नि हमारी जयके उपायको जानने वाले हैं अतः यह हमारे श्रेयका नाश करनेवाले हमारे हिंसक द्वेषियोंके अंगोंको और प्रत्येक पुरुषोंको भस्म करते हुए शत्रुओंकी ओर बढ़ें । और वह अग्निदेव सेनापतिके साथ मिल कर शत्रुहननके लिये जानेको उद्यत शत्रुओंकी चतुरंगिनी सेनाके चित्तको व्याकुल करदें और यह उत्पन्न हुए प्रत्येक प्राणीको जाननेवाले अग्निदेव शत्रुओंके हाथोंको आयुध उठानेमें असमर्थ कर दें ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वितीया ॥

यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम् ।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् ॥ २ ॥

यूयम् । उग्राः । मरुतः । ईदृशे । स्थ । अभि । प्र । इत । मृणत । सहध्वम् ।
अमीमृणन् । वसवः । नाथिताः । इमे । अग्निः । हि । एषाम् । दूतः । प्रतिऽएतु । विद्वान् ॥ २ ॥

हे उग्राः उद्गूर्णबलाः हे मरुतः एतन्नामानो गणदेवाः यूयम् ईदृशे अप्रधृष्ये संग्रामलक्षणे कर्मणि स्थ मत्सहायाः सन्तः संनिहिता भवथ । ❀ ईदृशे इति । इदम्शब्दोपपदात् "त्यदादिषु दृशोनालोचने कञ् च" इति कञ् प्रत्ययः । "इदंकिमोरीश् की" इति इदम ईश् आदेशः ❀ ॥ ततः अभि प्रेत आभिमुख्येन शत्रून् प्रहरणाय गच्छत ॥ अनन्तरं मृणतः हिंसतः युध्यमानान् शत्रून् सहध्वम् अभिभवत । ❀ मृण हिंसायाम् । तुदादित्वात् शः ❀ ॥ तथा इमे वसतः वस्वाख्या गणदेवा नाथिताः जयार्थं प्रार्थिताः सन्तः अमीमृणन् शत्रून् अस्माकम् अभिघातयन्तु । ❀ मृणतेर्ण्यन्ताच्छान्दसे लुङि चङि "उर्ऋत्" "नित्यं छन्दसि" इति ऋदादेशः ❀ ॥ हिशब्दः चार्थे । एषाम् वसूनां दूतः दूतवद् अग्रेसरः । प्रधानभूतः "अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात्" [तै० सं० २.१.११ २] इति हि मन्त्रवर्णः । तथाविधः विद्वान् जानन्नग्निश्च प्रत्येतु शत्रून् प्रतिगच्छतु । यद्वा हि यस्माद् एषां वसूनां दूतः अनुचरः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अग्निं दूतं वृणीमहे" [ऋ० १. १२. १] इत्यादिश्रुतेः । अतः सोपि तत्प्रेरितः प्रत्येतु इति ॥

हे भयङ्कर बली मरुद्गण नाम वाले देवताओं! तुम इस अप्रधृष्य संग्राममें मेरी सहायता करते हुए मेरे पास स्थित रहो। फिर शत्रुओंके सामने होकर प्रहार करनेके लिये जाओ, तदनन्तर युद्ध करतेहुए शत्रुओंका तिरस्कार करो। और वसु नामक गणदेवता भी विजयके लिये हमारे प्रार्थना करने पर हमारे शत्रुओंको नष्ट करें। और इन वसुओंमें प्रधान और इन वसुओंके दूत विद्वान् अग्निदेव भी शत्रुओंकी ओर बढ़ें ‡ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अमित्रसेनां मघवन्नस्मान् छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥ ३ ॥

अमित्रऽसेनाम् । मघऽवन् । अस्मान् । शत्रुऽयतीम् । अभि ।
युवम् । तान् । इन्द्र । वृत्रऽहन् । अग्निः । च । दहतम् । प्रति ॥ ३ ॥

हे मघवन् धनवन्निन्द्र अस्मान् त्वत्परिचरणकर्तॄन् निरपराधानपि शत्रूयतीम् शत्रूनिव आचरन्तीम् अमित्रसेनाम् शत्रुसेनाम् अभि । गच्छेति योग्यक्रियाध्याहारः । ❀ शत्रूयतीम् इति । शत्रुशब्दात् "उपमानादाचारे" इति क्यच् । "अकृत्सार्वधातुकयोः०" इति दीर्घः । तदन्तात् शतरि "उगितश्च" इति ङीप् । "अनित्यम् आगमशासनम्" इति नुमभावः । "शतुरनुमः०" इति ङीप् उदा-

‡ तैत्तिरीयसंहिता २ । १ । ११ । २ में कहा है, कि—"अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात्—वसुओंमें पहिले अग्नि हमारी रक्षा करें" और ऋग्वेदसंहिता १ । १२ । १ में कहा है, कि—"अग्निं दूतं वृणीमहे—हम अग्निको दूतरूपमें वरण करते हैं" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

त्त्वम्। ननु शत्रूयतीम् इति शत्रुलक्षणस्य कर्मणः क्यजन्तधात्वर्थेन्तर्भावात् जीवति रोदिति इत्यादिवद् अकर्मकेण भवितव्यम्। सत्यम्। उपमानकर्मणोन्तर्भावेपि उपमेयकर्मणः अनभिधानात् तदपेक्षया सकर्मकत्वाद् अस्मान् इति कर्मणि द्वितीया। तद् उक्तं भगवता पतञ्जलिना "सुप आत्मनः क्यच्" इत्यत्र। "पुत्रीयति माणवकम्" इति प्रस्तुत्य "द्वे ह्यत्र कर्मणी उपमानकर्म च उपमेयकर्म च। उपमानकर्म अन्तर्भूतम्। उपमेयकर्मणा सकर्मको भवति" इति ❀। हे वृत्रहन् वृत्रस्यासुरस्य घातक इन्द्र त्वम् अग्निश्च युवम् युवां ताम् उक्तां शत्रुसेनां प्रति दहतम् प्रातिकूल्येन भस्मीकुरुतम्॥

हे धनवान् इन्द्र! आपकी सेवा करने वाले हम निरपराधियों से भी शत्रुकी समान आचरण करती हुई शत्रुसेनाके सामने आप जाइये। हे वृत्रासुरका संहार करनेवाले इन्द्र! आप और अग्नि देव दोनों ही प्रतिकूल होकर शत्रुसेनाको भस्म करिये॥ ३॥

चतुर्थी॥

प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम्॥ ४॥

प्रऽसूतः। इन्द्र। प्रऽवता। हरिऽभ्याम्। प्र। ते। वज्रः। प्रऽमृणन्। एतु। शत्रून्।
जहि। प्रतीचः। अनूचः। पराचः। विष्वक्। सत्यम्। कृणुहि। चित्तम्। एषाम्॥ ४॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे इन्द्र ते तव रथः प्रवता प्रवणवता मार्गेण । इन्द्रस्थानापेक्षया शत्रुसेनाप्रदेशः प्रवणः । अनेन अध्वनि रथस्य गतिप्रतिबन्धाभाव उक्तः । ❀ "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" इति वतिः । अत्र अर्थग्रहणसामर्थ्यात् वत्यन्तस्यापि अनव्ययत्वम् ❀ । हरिभ्याम् एतन्नामकाभ्याम् अश्वाभ्यां युक्तः सन् सु सुष्ठु प्र एतु शत्रुसेनां प्राप्नोतु ।। ततस्ते त्वदीयो वज्रः प्रमृणन् प्रकर्षेण हिंसन् शत्रून् अस्मदरातीन् प्रैतु प्रगच्छतु ।। त्वं च प्रतीचः प्रतिमुखम् आगच्छतः अनूचः अनु पश्चाद् आगच्छतः पराचः पराङ्मुखं गच्छतश्च शत्रून् जहि विनाशय । ❀ "हन्तेर्जः" इति हौ जादेशः । "असिद्धवद् अत्राभात्" इति तस्यासिद्धत्वात् "अतो हेः" इति हेर्लुगभावः । प्रतीच इत्यादिषु प्रत्याद्युपसर्ग उपपदे "ऋत्विग्०" इत्यादिना अञ्चतेः क्विन् । "अनिदिताम्०" इति नलोपः । शसि "अचः" इत्यकारलोपे "चौ" इति दीर्घत्वम् । प्रतीचः अनूचः इत्यत्र उदात्तनिवृत्तिस्वरेण शस उदात्तत्वम् । "चौ" इति पूर्वपदान्तोदात्तस्य तदपवादत्वेपि व्यत्ययेनात्र न प्रवृत्तिः । पराच इत्यत्र उदात्तनिवृत्तिस्वरापवादत्वेन च चुस्वरे प्राप्ते परत्वाद् "अनिगन्तोऽञ्चतावप्रत्यये" इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । किं च एषाम् शत्रूणां सत्यम् व्यवस्थितं शत्रुहननलक्षणैककार्योद्यतं चित्तम् अन्तःकरणं विष्वक् सर्वतः अञ्चनशीलम् अव्यवस्थितं कार्याकार्यविभागज्ञानशून्यं कृणुहि कुरु । ❀ "उतश्च प्रत्ययाच्छन्दसि वा वचनम्" इति हेर्लुगभावः ❀ ।।

हे इन्द्र ! आपका रथ क्रमशः नीचेको ढलकाव वाले मार्गसे हरिनामक घोड़ोंके साथ शत्रुसेनामें आजावे, तदनन्तर आपका वज्र घोररूपसे संहार करता हुआ शत्रुओंकी ओर बढ़े और आप भी सामनेको मुख करके आतेहुए, पीछेसे आतेहुए और पराङ्मुख होकर जाते हुए शत्रुओंका संहार करिये । और इन शत्रुओंके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शत्रुवधरूप एक ही कार्यमें संलग्न—व्यवस्थित—चित्तको कार्य और अकार्यके समझनेसे शून्य अव्यवस्थित करिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥५॥

इन्द्र । सेनाम् । मोहय । अमित्राणाम् ।
अग्नेः । वातस्य । ध्राज्या । तान् । विषूचः । वि । नाशय ॥

हे इन्द्र अमित्राणाम् शत्रूणां सेनाम् स्वकीयया मायया मोहय मूढां विचित्तां [विगत]कर्तव्यता[चेतसं] कुरु । इन्द्रस्य मायासंबन्धः श्रुत्यन्तरे प्रसिद्धः । "मायाभिरिन्द्र मायिनम्" [ऋ० १. ११. ७] इति ॥ ततः अग्नेः वातस्य वायोश्च मिलितयोस्तयोः [ध्राज्या] ध्राजिः दहनविषये या वेगिता गतिस्तयाविधया वेगगत्या तयोरेव वा गत्या तान् सेनागतान् शत्रून् विषूचः सर्वतः पलायमानान् कृत्वा वि नाशय । ❀ अग्नेर्वाते ध्रज गतौ इत्यस्मात् वसिवपियजिराजिव्रजिध्रजीत्यादिना [उ० ४. १२४] औणादिक इञ् प्रत्ययः ❀ ॥

हे इन्द्र ! आप शत्रुओंकी सेनाको अपनी मायासे मूढ़ कर दीजिये ‡ तदनन्तर अग्नि और वायुके मिलने पर जो वेगवाली दहनगति होती है उनकी समान वेगवाली गति करके आप सेना में उपस्थित शत्रुओंको चारों ओरसे भगाकर नष्ट करिये ॥ ५ ॥

‡ इन्द्रका मायासंबंध अन्य श्रुतिमें प्रसिद्ध है । यथा—"माया-भिरिन्द्र मायिनम्" (ऋग्वेदसंहिता १ । ११ । ७) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

षष्ठी ॥

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।

चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥ ६ ॥

इन्द्रः । सेनाम् । मोहयतु । मरुतः । घ्नन्तु । ओजसा ।

चक्षूंषि । अग्निः । आ । दत्ताम् । पुनः । एतु । पराऽजिता ६

इन्द्रः देवानाम् अधिपतिः सेनाम् शत्रुसंबन्धिनीं मोहयतु ॥ तथा तत्सखिभूता मरुतश्च तां सेनाम् ओजसा बलेन घ्नन्तु । ❀ हन्तेर्लोटि "गमहन०" इत्युपधालोपे "हो हन्तेः०" इति घत्वम् ❀ ॥ अग्निर्देवः चक्षूंषि शत्रूणाम् अक्षीणि आ धत्ताम् स्वयं स्वीकरोतु । अपहरतु इत्यर्थः ॥ एवं मोहनादिना पराजिता पराभूता पुनरेतु प्रतिनिवर्तताम् ॥

[इति] तृतीयकाण्डे प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

देवताओंके अधिपति देवराज इन्द्र शत्रुकी सेनाको मोहमें डाल दें इन्द्रदेवके मित्ररूप मरुद्गण भी उस सेनाका बलपूर्वक संहार करें, अग्निदेव शत्रुओंके नेत्रोंको स्वीकार करलें अर्थात् हर लेवें इस प्रकार मोहन आदिसे पराजित हुई शत्रुसेना लौट जावे ६

तृतीयकाण्डके प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (७२)

"अग्निर्णो दूतः" इति द्वितीयसूक्तेन परसेनामोहनकर्मणि पूर्वसूक्तोक्तानि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रं तु तत्रैवोदाहृतम् ॥

"अग्निर्णो दूतः" इस दूसरे सूक्तसे शत्रुसेनाको मोहमें डालना आदि पूर्वसूक्तमें कहेहुए कर्म करे । सूत्रका उदाहरण देचुके हैं ।

तत्र प्रथमा ॥

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जात-
वेदाः ॥ १ ॥

अग्निः । नः । दूतः । प्रतिऽएतु । विद्वान् । प्रतिऽदहन् ।
अभिऽशस्तिम् । अरातिम् ।
सः । चित्तानि । मोहयतु । परेषाम् । निःऽहस्तान् । च । कृणवत् ।
जातऽवेदाः ॥ १ ॥

अग्निः अङ्गनादिगुणयुक्तो दूतः देवानां दूतवद् अग्रेसरः विद्वान् नः अस्माकम् । शत्रून् इति शेषः । अन्यत् पूर्वसूक्ते व्याख्यातम् । सेनापदस्थाने चित्तानीति विशेषः ॥

अंगनादि गुणयुक्त, देवताओंमें दूतकी समान अग्रणी हमारे शत्रुओंको जानने वाले अग्निदेव हिंसक शत्रुओंको भस्म करते हुए उनकी ओर बढ़ें, शत्रुओंके चित्तोंको मोहमें डालें और प्रत्येक उत्पन्न हुए प्राणीमें विद्यमान अग्नि शत्रुओंके हाथोंको आयुध उठानेमें असमर्थ करें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः ॥ २ ॥

अयम् । अग्निः । अमूमुहत् । यानि । चित्तानि । वः । हृदि ।
वि । वः । धमतु । ओकसः । प्र । वः । धमतु । सर्वतः ॥ २ ॥

हे शत्रवः वः युष्माकं हृदि हृदये यानि चित्तानि अस्मदाक्रमणविषयज्ञानानि सन्ति तानि सर्वाणि अयं हूयमानोऽग्निः अंग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नादिगुणयुक्तः अमूमुहत् मोहयतु । ❀ मुहेर्ण्यन्ताद् लुङि चङि रूपम् ❀ ॥ ततो वः युष्मान् ओकसः स्वस्वनिवासस्थानाद् वि धमतु विशेषेण निःसारयतु । स्थानभ्रष्टान् करोतु इत्यर्थः ॥ अपि च सर्वतः सर्वस्मादपि स्थानाद् वः युष्मान् प्र धमतु प्रकर्षेण गमयतु । स्थानशून्यान् करोतु इत्यर्थः । ❀ ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः । अस्मात् लोटि शपि "पाघ्राध्मा०" इत्यादिना धमादेशः ❀ ॥

हे शत्रुओं ! तुम्हारे हृदयमें हमको दबानेके जो विचार हैं उन सबको यह अग्निदेव मोहग्रस्त करदेवें फिर तुमको तुम्हारे निवासस्थानसे निकाल देवें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङाकूत्या चर ।

अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥३॥

इन्द्र । चित्तानि । मोहयन् । अर्वाङ् । आऽकूत्या । चर ।

अग्नेः । वातस्य । ध्राज्या । तान् । विषूचः । वि । नाशय ॥३॥

हे इन्द्र चित्तानि शत्रूणां मनांसि मोहयन् आकूत्या अस्मच्छत्रुसंहरणबुद्ध्या सहितः सन् अर्वाङ् शत्रुसेनाभिमुखश्चर गच्छ ॥ अन्यद् व्याख्यातम् ॥

हे इन्द्र ! आप शत्रुओंके चित्तोंको मोहमें डालते हुए हमारे शत्रुओंके संहार करनेके भावको मनमें रख शत्रुसेनाके सामने घूमिये तथा अग्नि और वायुके मिलने पर जो उनकी दहनरूपा प्रचण्ड गति होती है, तैसी वेगवती गतिसे शत्रुओंको भगाते हुए नष्ट करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथो यदुद्यैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि ॥ ४ ॥

वि । आऽकूतयः । एषाम् । इत । अथो इति चित्तानि । मुह्यत ।
अथो इति । यत् । अद्य । एषाम् । हृदि । तत् । एषाम् । परि ।
निः । जहि ॥ ४ ॥

हे व्याकूतयः । विरुद्धाः संकल्पाः यूयम् । एषाम् शत्रूणां मनांसि इत माप्नुत ॥ अथो अपि च हे चित्तानि शत्रुसंबन्धीनि मनांसि यूयमपि मुह्यत मौढ्यं माप्नुत । यद्वा हे देवाः यूयम् एषाम् शत्रूणां व्याकूतयः विविधाकूत्युत्पादकाः सन्तः इत तान् गच्छत ॥ अथो अपि च तदीयानि चित्तानि मुह्यत मोहयत । ❀ मुह्यतिरत्र अन्तर्णीतण्यर्थः ❀ ॥ अथो अपि च हे इन्द्र एषाम् संग्रामार्थं प्रवृत्तानां शत्रूणां हृदि हृदये अद्य इदानीं यत् चिकीर्षितं कार्यजातम् अस्ति एषां संबंधि तत् सर्वं परि निर्जहि परितः सर्वतो नाशय ॥

विरुद्ध सङ्कल्पों ! तुम इन शत्रुओंके मनमें जाओ, और हे शत्रुओंके मनों ! तुम मोहमें पड़ जाओ, हे देवताओं ! तुम इन शत्रुओंके मनमें अनेक प्रकारके विरुद्ध सङ्कल्पोंको उपजानेके लिये यहाँसे उनके पास जाओ और उनके चित्तोंको मोहमें डालो और हे इन्द्र ! संग्रामके लिये उद्यत शत्रुओंके चित्तमें जो विचार भर रहे हैं उन सबको आप नष्ट कर दीजिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा
विध्य शत्रून् ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अमीषाम् । चित्तानि । प्रतिऽमोहयन्ती । गृहाण । अङ्गानि । अप्वे । परा । इहि ।
अभि । प्र । इहि । निः । दह । हृत्ऽसु । शोकैः । ग्राह्या । अमित्रान् । तमसा । विध्य । शत्रून् ॥ ५ ॥

हे अप्वे अपवाययति अपगमयति सुखंप्राणांश्चेति अप्वा पापदेवता । ❀ अपपूर्वाद्ध वेतेर्वीयतेर्वा "डोन्यत्रापि दृश्यते" इति डप्रत्यये उपसर्गस्यान्त्यलोपश्छान्दसः । यास्कस्त्वाह । अप्वा यद्ध एनया विद्धोऽपवीयते व्याधिर्वा भयं वा [नि० ६. १२] इति ❀ । हे तथाविधे पापदेवते अमीषाम् अस्मच्छत्रूणां चित्तानि मनांसि प्रतिमोहयन्ती प्रत्येकं मौढ्यं गमयन्ती । ❀ हेतौ शतृप्रत्ययः ❀ । प्रतिमोहनाद्धेतोः [अङ्गानि गृहाण] । ❀ गृहाणेति । प्राप्तकाले लोट् ❀ । हे अप्वे त्वत्कर्तृकस्य शत्रुग्रहणस्यायं प्राप्तः कालः तदर्थं परेहि अस्मत्तः पराङ्मुखी सती शत्रून् गच्छ ॥ गत्वा च अभि प्रेहि अभितः सर्वतः शत्रुशरीरं प्रसर्प । प्रविशेत्यर्थः ॥ प्रविश्य च हृत्सु हृदयेषु स्थिता सती शोकैः रोगभयादिजन्यैर्निर्दह ॥ ततः तमसा तमोरूपया ग्राह्या पिशाच्या शत्रून् शातयितृन् अमित्रान् द्वेष्यान् विध्य ताडय । मारयेत्यर्थः । ❀ व्यध ताडने । "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम् ❀ ॥

हे सुख और प्राणोंको हरने वाली अप्वा नामक पापदेवते ! हमारे शत्रुओंके मनोंको मोहमें डालती हुई तू उनके अंगोंमें व्याप्त हो । हे अप्वे ! तेरा शत्रुओंको ग्रहण करनेका समय आगया है अतः तू हमसे पराङ्मुख होकर शत्रुओंकी ओर जा और जा कर शत्रुओंके शरीरमें घुसजा और शत्रुओंके हृदयमें स्थित हो कर रोग और भय आदिके शोकोंसे उनको भस्म कर फिर तमोरूप पिशाचीके द्वारा शत्रुओंको ताडित कर, मार डाल ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

षष्ठी ॥

असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥

असौ । या । सेना । मरुतः । परेषाम् । अस्मान् । आऽएति । अभि । ओजसा । स्पर्धमाना ।

ताम् । विध्यत । तमसा । अपऽव्रतेन । यथा । एषाम् । अन्यः । अन्यम् । न । जानात् ॥ ६ ॥

हे मरुतः असौ परिदृश्यमाना परेषाम् शत्रूणां या सेना ओजसा स्वकीयेन बलातिशयेन स्पर्धमाना अस्माभिः सह संघर्षं युद्धोद्यमं कुर्वाणा सती अस्मान् अभि ऐति अस्मदभिमुखम् आगच्छति । ❀ स्पर्ध संघर्षे । लटः शानच् । "तास्यनुदात्तेत्०" इति लसार्वधातुकानुदात्तत्वे शपः पित्त्वाद् अनुदात्तत्वे धातुस्वरः ❀ ॥ ताम् तथाविधां शत्रुसेनाम् अपव्रतेन । व्रतम् इति कर्मनाम । अपगतकर्मणा सर्वव्यापारविघातकेन तमसा भवद्भिः प्रेरितेन मायामयेन अन्धकारेण विध्यत ताडयत ॥ तत्प्रकारं दर्शयति । एषाम् शत्रूणां मध्ये अन्यः कश्चित् पुरुषः अन्यम् स्वव्यतिरिक्तं पुरुषं यथा येन प्रकारेण न जानात् न जानीयात् । तथा विध्यतेति संबन्धः । परस्परवार्तानभिज्ञान् कृत्वा विनाशयतेत्यर्थः । ❀ जानात् इति । ज्ञा अवबोधने । लेटि "इतश्च लोपः०" इति इकारलोपः । "ज्ञाजनोर्जा" इति जादेशः ❀ ॥

[इति] तृतीये काण्डे प्रथमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे मरुद्गणों ! जो यह शत्रुओंकी सेना अपने बलके कारण हमारे साथ स्पर्धा करती हुई हमारी ओर आरही है इसको आप अपने प्रेरित सब कामोंके विघातक मायामय अंधकारसे बांध डालिये । (उसकी रीति यह है, कि-) इन शत्रुओंमें कोई भी पुरुष अपनेसे अतिरिक्त दूसरेको न जानसके अर्थात् इनको परस्परकी बातोंसे अनभिज्ञ रख कर मार डालिये ॥ ६ ॥

तृतीयकाण्डके प्रथम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (७२)

"अचिक्रदत्" इति सूक्तेन शत्रूत्सादितस्य राज्ञः पुनः स्वराष्ट्रप्रवेशार्थं शत्रुसेनाकारं पुरोडाशम् उदकेषु दर्भान् संस्तीर्य तत्र निनयेत् । ततो निमज्जनार्थं तं पुरोडाशं लोष्टेन पूरयेत् ॥

तथा अनेन सूक्तेन स्वराष्ट्रप्रवेशार्थं क्षीरौदनं संपात्य अभिमन्त्र्य राजानम् आशयेत् ॥

अत्र सूत्रम् । "अचिक्रदत् [३. ३] आ त्वा गन् [३. ४] इति यस्माद् राष्ट्राद् अवरुद्धस्तस्याशायां सेनाविधं पुरोडाशं दर्भेषूदके निनयति" इत्यादि [कौ० २. ७] ॥

अत्र "अचिक्रदत्" इत्यस्य साकमेधाख्यपर्वणि पूर्वेद्युः क्रियमाणायाम् आग्नेय्याम् इष्ट्यां प्रधानयागानुमन्त्रणे विनियोगः । उक्तं वैताने । "कार्तिक्यां साकमेधाः । पूर्वेद्युरिष्ट्याम् अग्नेरनीकवतोचिक्रदत्" इति [वै० २. ५] ॥

"अचिक्रदत्" सूक्तसे शत्रुसे निकाले हुए राजाको फिर अपने राज्यमें प्रवेश करानेके लिये शत्रुकी सेनाके आकार वाले पुरोडाशको जलमें कुशा फैलाकर उन पर रक्खे, तदनन्तर उसको डुबानेके लिये उस पुरोडाश पर मट्टीके ढले रक्खे ॥

तथा इस सूक्तसे अपने राष्ट्रमें प्रवेशकरानेके लिये क्षीरौदनका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके राजाको प्राशन करावे ॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"अचिक्रदत् (३।३)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आत्वा गन् (३।४) इति यस्माद् राष्ट्रान् अवरुद्धस्तस्याशायां सेनाविधं पुरोडाशं दर्भेषूदके निनयति०" (कौशिकसूत्र २।७)

"अचिक्रदत्" का साकमेध नाम वाले कर्ममें पहिले दिन की जाने वाली आग्नेयी इष्टिके प्रधानयागानुमन्त्रणमें विनियोग है। इस विषयमें वैतानसूत्रका प्रमाण है, कि—"कार्तिक्यां साकमेधाः। पूर्वेद्युरिष्ट्यां अग्नेरनीकवतोचिक्रदत्" (वैतानसूत्र २।५)॥

तत्र प्रथमा ॥

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् ॥ १ ॥

अचिक्रदत्। स्वऽपाः। इह। भुवत्। अग्ने। वि। अचस्व। रोदसी इति। उरूची इति।
युञ्जन्तु। त्वा। मरुतः। विश्वऽवेदसः। आ। अमुम्। नय। नमसा। रातऽहव्यम्॥ १॥

हे अग्ने असौ स्वराष्ट्रात् प्रच्युतो राजा अचिक्रदत् पुनः स्वराष्ट्रप्रवेशाय त्वाम् आह्वयति। प्रार्थयत इत्यर्थः। ❀ कदि क्रदि क्लदि आह्वाने रोदने च। अस्माद् ण्यन्ताद् लुङि चङि रूपम्। "अनित्यम् आगमशासनम्" इति नुमभावः ❀॥ स त्वदनुग्रहात् इह स्वराष्ट्रे स्वपाः स्वकीयानां प्रजानां पालकः सुकर्मा वा भुवत् भवतु। ❀ भवतेर्लेटि अडागमः। छान्दसः शपो लुक्। "भूसुवोस्तिङि" इति गुणप्रतिषेधे उवङ् ❀॥ तद्रक्षणार्थं त्वं च उरूची उरूच्यौ उर्वञ्चने। व्यापनशीले इत्यर्थः। ❀ उरुपूर्वाद् [अञ्चतेः]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE २-८-२६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्" इति ङीप् । उदात्त[निवृत्ति]स्वरेण ङीप उदात्तत्वम् ❀ । ईदृशौ रोदसी रोदस्यौ द्यावापृथिव्यौ व्यचस्व व्याप्नुहि । ❀ व्यचतिर्व्याप्तिकर्मा ❀ ।। अपि च विश्ववेदसः सर्वविषयज्ञानयुक्ता मरुतः एतन्नामान एकोनपञ्चाशत्संख्याका देवाः हे अग्ने त्वा त्वां युञ्जन्तु प्राप्नुवन्तु । त्वत्सहाया भवन्तु इत्यर्थः । ❀ विश्ववेदस इति । विद ज्ञाने इत्यस्माद् भावे असुन् । "बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम्" इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम् ❀ । [नमसा] नमस्कारेण युक्तं रातहव्यम् दत्तहविष्कम् अमुम् उक्तलक्षणं राजानम् आ नय पुनः स्वराष्ट्रं प्रापय ।।

हे अग्ने ! यह अपने राज्यसे च्युत हुआ राजा फिर अपने राज्यमें प्रवेश करनेके लिये आपका आह्वान करता है, आपकी प्रार्थना करता है, यह आपके अनुग्रहसे अपनी प्रजाओंका पालन करने वाला हो, इसकी रक्षा करनेके लिये आप व्यापनशील द्यावापृथिवीमें व्याप्त होजाइये और हे अग्ने सब विषयोंका ज्ञान रखने वाले मरुत्नामक उड़श्वास देवता आपकी सहायता करें । नमस्कार करने वाले और हवि अर्पण कर चुकने वाले इस राजाको आप फिर राज्य पर प्रतिष्ठित करिये ।। १ ।।

द्वितीया ।।

दूरे चित् सन्तमरुषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम् ।

यद् गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः

दूरे । चित् । सन्तम् । अरुषासः । इन्द्रम् । आ । च्यावयन्तु । सख्याय । विप्रम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यत् । गायत्रीम् । बृहतीम् । अर्कम् । अस्मै । सौत्रामण्या । दधृपन्त । देवाः ॥ २ ॥

अरुषासः आरोचमानाः दीप्यमानाः । ❀ अरुष आरोचनाद् इति यास्कः [नि० १२. ७] ❀ । ऋत्विजः दूरे चित् सन्तम् । चित् शब्दः अप्यर्थे । स्वर्गे वसन्तं विद्यमानमपि विप्रम् । मेधाविनामैतत् । मेधाविनम् इन्द्रं सख्याय अस्य राज्ञः सखिकर्मणे साहाय्याचरणाय । ❀ "सख्युर्यः" इति यः ❀ । आ च्यावयन्तु आगमयन्तु ॥ आनेतव्यस्येन्द्रस्य आधिक्यं दर्शयति । यत् यस्मात् कारणाद् देवाः प्रसिद्धाः अस्मा इन्द्राय गायत्रीम् सोमाहरणादिना प्रख्यातवीर्यं गायत्र्याख्यं छन्दः बृहतीम् अस्मान्न्यूनाधिकात्तराणाम् अन्येषां छन्दसां प्रधानभूताम् । बृहत्याः प्राधान्यं च अन्यत्र श्रूयते । "यानि च छन्दांस्यत्यरिच्यन्त यानि च नोदभवन् तानि निर्वीर्याणि हीनान्यमन्यन्त । साब्रवीद् बृहती । मामेव भूत्वा माम् उपसंश्रयतेति" [तै० ब्रा० १. ५. १२. ३] "बृहती छन्दसां स्वाराज्यं परीयाय" इति । अर्कम् अर्चनसाधनभूतं मन्त्रात्मकं बृहदुक्थात्मकं शस्त्रम् सौत्रामण्या । सुष्ठु त्रायत इति सुत्रामा इन्द्रः । तद्देवत्यया क्रियया दधृषन्त अधारयन् । गायत्र्यादिभिरिन्द्रम् अतिशयितवीर्यम् अकुर्वन्नित्यर्थः । यद्वा गायत्र्यादिकम् अस्मा इन्द्राय । प्रायच्छन् इति शेषः ॥ तथा सौत्रामण्या एतन्नामकेन हविर्यज्ञेन देवा दधृषन्त । पूर्वं विस्रस्तावयवम् इन्द्रं पुनः सर्वावयवोपेतम् अकुर्वन्नित्यर्थः । श्रूयते हि । "इन्द्रस्य सुषुवाणस्य दशधेन्द्रियं वीर्यं परापतत् । तद् देवाः सौत्रामण्या समभरन्" [तै० सं० ५. ६. ३. ४] इति । तस्माद् अतिशयितवीर्ययोगात् तमेव आ च्यावयन्तु इति संबन्धः ॥

हे प्रदीप्त ऋत्विजो ! आप दूर अर्थात् स्वर्गमें भी विद्यमान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बुद्धिमान् इन्द्रको इस राजासे मित्रता करनेके लिये अर्थात् इसकी सहायता करनेके लिये लाइये, क्योंकि-देवताओंने इस इन्द्रमें सोम लाना आदिसे प्रसिद्ध वीर्य वाले गायत्रीच्छन्दको और इससे न्यून अक्षरवालोंमें प्रधान बृहती † छन्दको और पूजनके साधन बृहदुक्थ मन्त्ररूप शस्त्रको सौत्रामणिके द्वारा स्थापित किया है अर्थात् गायत्री आदिसे इन्द्रको परमवीर्यवान् कर दिया है। वा गायत्री आदि इसको दी हैं और सौत्रामणि नाम वाले हविर्यज्ञसे पहिले टूटे फूटे अंग वाले इन्द्रको देवताओंने सब अवयवोंसे संयुक्त कर दिया है ‡ इस कारण परमवीर्यवान् इन्द्रको ही लाइये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अ॒द्भ्यस्त्वा॒ राजा॒ वरु॑णो ह्वयतु॒ सोम॑स्त्वा ह्वयतु॒ पर्व॑तेभ्यः ।

† बृहतीछन्दका प्राधान्यत्व अन्यत्र भी प्रसिद्ध है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।१२।३ में कहा है, कि-"यानि च छन्दांस्यत्यरिच्यन्त यानि च नोदभवन् तानि निर्वीर्याणि हीनान्यमन्यन्त। साब्रवीद् बृहती। मामेव भूत्वा मां उपसंश्रयतेति ॥-जो छन्द बढ़े हुए थे और जो उठ नहीं सके थे उन्होंने अपनेको हीन और निर्वीर्य माना। उस समय बृहतीने कहा, कि-मेरा आश्रय लो"। "बृहती छन्दसां स्वाराज्यं परियाय।-बृहतीको छन्दोंका स्वाराज्य प्राप्त हुआ" ॥

‡ तैत्तिरीयसंहिता ५।६।३।४ में कहा है, कि-"इंद्रस्य सुषुवाणस्य दशधेन्द्रियं वीर्यं परापतत्। तद् देवाः सौत्रामण्या समभरन्" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ॥ ३ ॥

अत्ऽभ्यः । त्वा । राजा । वरुणः । ह्वयतु । सोमः । त्वा । ह्वयतु । पर्वतेभ्यः ।

इन्द्रः । त्वा । ह्वयतु । विट्ऽभ्यः । आभ्यः । श्येनः । भूत्वा । विशः । आ । पत । इमाः ॥ ३ ॥

हे परैरवरुद्धराष्ट्र राजन् त्वा त्वां वरुणो राजा अद्भ्यः स्वसंबन्धिनीभ्यः सकाशाद् ह्वयतु आकारयतु । ❀ अद्भ्य इति । "अपो भि" इति तकारः ❀ ॥ तथा सोमः लतारूपेणावस्थितः पर्वतेभ्यः स्वनिवासस्थानेभ्यः त्वां ह्वयतु ॥ इन्द्रश्च विट्पतिः । "स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । वृषेन्द्रः" [ऋ० १०. १५२. २] इति श्रूयते । आभ्यः यासु प्रजासु त्वम् इदानीं निवससि आभ्यो विड्भ्यः प्रजाभ्यः सकाशात् त्वा त्वां ह्वयतु । राज्यभ्रष्टस्य राज्ञः त्रीणि निवासस्थानानि संभावितानि । समुद्रमध्यम् पर्वताः देशान्तरं वा । तेभ्यः सर्वेभ्यः स्वकीयेभ्यो वरुणादयस्त्वाम् आह्वयन्तु । पुनः स्वराज्यप्रवेशायेत्यर्थः ॥ एवं तैर्देवैराहूतस्त्वम् इमाः स्वकीयाः पूर्वं पालिता विशः प्रजाः श्येनो भूत्वा । श्येनः पक्षिविशेषः । स इव शीघ्रगतिः परैरनाधर्षितश्च भूत्वा आ पत आगच्छ । ❀ पत्लृ गतौ । लोटि "अतो हेः" इति हेलुक् ❀ ॥

दूसरोंने जिसका राज्य दवा लिया है, हे ऐसे राजन् ! वरुण तुझको जलसे बुलावें, तथा लतारूपसे स्थित सोम अपने निवासस्थान पर्वतोंसे तेरा आह्वान करें और प्रजाओंके स्वामी इन्द्रदेव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुझको जिन प्रजाओंमें तू आज कल निवास † कर रहा है, उन प्रजाओंसे तुझको बुलावे तात्पर्य यह है, कि–राज्यसे भ्रष्ट हुएके समुद्र पर्वत और देशान्तर ये तीन निवासस्थान होते हैं, उन सब अपने स्थानोंसे वरुण आदि अपने राज्यमें प्रवेश करानेके लिये बुलावें । इस प्रकार उन देवताओंके बुलाने पर तू अपनी पूर्वपालित प्रजाओंमें शत्रुओंसे अप्रधृष्य होकर श्येनकी समान शीघ्र गतिसे आ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं सजाता अभि-
संविशध्वम् ॥ ४ ॥

श्येनः । हव्यम् । नयतु । आ । परस्मात् । अन्यऽक्षेत्रे । अपऽरुद्धम् । चरन्तम् ।
अश्विना । पन्थाम् । कृणुताम् । सुऽगम् । ते । इमम् । सऽजाताः । अभिऽसंविशध्वम् ॥ ४ ॥

श्येनः शंसनीयगतिः द्युस्थानो देवः अन्यक्षेत्रे परराष्ट्रे अवरुद्धम् शत्रुभिर्निरुद्धं चरन्तम् वर्तमानम् अत एव हव्यम् ह्वातव्यम् । ❀ "बहुलं छन्दसि" इति ह्वः संप्रसारणम् ❀ । ईदृशं तं राजानं परस्मात् परराष्ट्राद् आ नयतु स्वदेशं प्रति प्रापयतु ॥

† ऋग्वेदसंहिता १० । १५२ । २ में कहा है, कि–"स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । वृषेन्द्रः ।–इन्द्र स्वस्ति देने वाले, प्रजाओंके पति, वृत्रासुरके संहारक और युद्ध (करने वालों) को वशमें करने वाले तथा वर्षा करने वाले हैं" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा हे राजन् ते तव अश्विना अश्वनौ देवौ । ❀ "सुपां सुलुक्०" इत्याकारः ❀ । पन्थाम् पन्थानम् । ❀ छान्दसम् आत्वं नलोपो वा ❀ । आगमनमार्गं सुगम् सुखेन गन्तुं योग्यं निरोधकशत्रु-शून्यं कृणुताम् कुरुताम् । ❀ सुगम् इति । "सुदुरोरधिकरणे" इति डः ❀ । हे सजाताः समानजन्मानो बन्धवः यूयम् इमम् पुनः स्वराष्ट्रं प्रविष्टं राजानम् अभिसंविशध्वम् अभितः सर्वतः प्रविश्य संविशध्वम् उपविश्य सेवध्वम् । ❀ विशेर्व्यत्ययेन आत्मनेपदम् ❀ ॥

प्रशंसनीय गति वाले स्वर्गनिवासी देव दूसरेके राज्यमें शत्रुओंके रोकनेके कारण पड़े हुए अत एव आह्वान करने योग्य तुझ राजाको दूसरेके राष्ट्रसे अपने देशमें पहुँचावें तथा हे राजन्! अश्विनीकुमार देवता आगमनके मार्गको शत्रुको निरोधसे शून्य अत एव सुखसे गमन करने योग्य करें । हे बांधवो ! तुम अपने फिर आये हुए इस राजासे मिल कर इसका सेवन करो ॥४॥

पञ्चमी ॥

ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रति मित्रा अवृषत ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ॥ ५ ॥

ह्वयन्तु । त्वा । प्रतिऽजनाः । प्रति । मित्राः । अवृषत ।
इन्द्राग्नी इति । विश्वे । देवाः । ते । विशि । क्षेमम् । अदीधरन् ॥५॥

प्रतिजनाः हे राजन् त्वा त्वां वयन्तु सांतत्येन सेवन्ताम् । ❀ वेञ् तन्तुसंताने इत्यस्मात् लोट् । कर्तरि शप् ❀ ॥ तथा प्रतिमित्राः प्रतिकूलानि मित्राणि अवृषत विरोधं परित्यज्य संभ-जन्ताम् । ❀ वृङ् संभक्तौ इत्यस्मात् छान्दसे लुङि "लिङ्सि-चोरात्मनेपदेषु" इति पक्षे इडभावः । "उश्च" इति सिचः कित्वाद् गुणाभावः ❀ ॥ इन्द्राग्नी विश्वे देवाश्च विशि । जातावेकवच-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नम्। विच्नु प्रजासु ते तव क्षेमम् रक्षणम् अदीधरन् धारयन्तु कुर्वन्तु। ❀ धारयतेर्ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् ❀ ॥

हे राजन्! जो तुम्हारे मनुष्य तुमसे प्रतिकूल रहते थे वे सदा तुम्हारी सेवा करें और तुम्हारे मित्र तुमसे प्रतिकूल रहते थे, वे विरोधको त्याग कर तुमसे प्रेम करें। इन्द्र अग्नि और विश्वेदेवता प्रजाओंके रक्षणकी शक्तिको तुझमें स्थापित करें ५

षष्ठी ॥

यस्ते हवं विवदत् सजातो यश्च निष्ट्यः।

अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहाव गमय ॥ ६ ॥

यः। ते। हवम्। विऽवदत्। सऽजातः। यः। च। निष्ट्यः।

अपाञ्चम्। इन्द्र। तम्। कृत्वा। अथ। इमम्। इह। अव। गमय ॥६॥

हे राजन् ते तव हवम् स्वराष्ट्रप्रवेशविषयं पुनराह्वानं यः सजातः समानजन्मा। समबल इत्यर्थः। यश्च निष्ट्यः नीचः। निकृष्टबल इत्यर्थः। ❀ "अव्ययात् त्यप्" इत्यत्र "निसो गते" इति वचनात् त्यप्। हस्वात् तादौ तद्धिते" इति सकारस्य मूर्धन्यः ❀। अनयोरन्यतरः कश्चिद् विवदत् विवदेत् नानुमन्येत। ❀ विपूर्वाद् वदेर्लेटि अडागमः ❀। हे इन्द्र तम् उभयविधं शत्रुम् अपाञ्चम् अपगतं बहिष्कृतं कृत्वा अथ अनन्तरम् इमम् प्रकृतं राजानम् इह अस्मिन् राष्ट्रे अव गमय बोधय राष्ट्रस्य अयमेव राजेति प्रख्यापयेत्यर्थः ॥

इति प्रथमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे राजन्! तेरे राज्य फिर प्रवेश-विषयक आह्वानका जो सम बल वाला वा न्यून बल वाला वा इन दोनोंसे अति-रिक्त और कोई अनुमोदन न करे हे इन्द्र! इन सब प्रकारके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शत्रुओंको बहिष्कृत करके तुम इस वास्तविक राजाको इस राष्ट्रमें (यही राजा है इस प्रकार) प्रसिद्ध करो ॥ ६ ॥

प्रथम अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (७४) ॥

"आ त्वा गन्" इति सूक्तेन स्वराष्ट्रप्रवेशकर्मण्येव पूर्वसूक्तोक्तानि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रं तु तत्रैवोदाहृतम् ॥

अत्र "पथ्या रेवतीः" [७] इत्येषा प्रायणीयेष्ट्यां पथ्यास्वस्तियागानुमन्त्रणे विनियुक्ता । "दीक्षान्ते प्रायणीयायाम्" इति प्रक्रम्य "पथ्या रेवतीः [७] वेदः स्वस्तिः" [७. २६. १] इति हि वैतानं सूत्रम् [३. ३] ॥

'आ त्वा गन्' इस सूक्तसे स्वराष्ट्रप्रवेशकर्ममें ही पूर्वसूक्तमें कहे हुए कर्म करे । सूत्रको पहिले ही लिख चुके हैं ।

इस सूक्तकी 'पथ्या रेवती' नामवाली सातवीं ऋचाका प्रायणेष्टि के पथ्यास्वस्तियागानुमन्त्रणमें विनियोग है । वैतानसूत्र ३ । ३ का इस विषयमें प्रमाण है, कि—"दीक्षान्ते प्रायणीयायाम्" इति प्रक्रम्य "पथ्या रेवतीः (७) वेद स्वस्तिः" (७ । २६ । १) ॥

तत्र प्रथमा ॥

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज ।

सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह

आ । त्वा । गन् । राष्ट्रम् । सह । वर्चसा । उत् । इहि । प्राङ् । विशाम् । पतिः । एकऽराट् । त्वम् । वि । राज ।

सर्वाः । त्वा । राजन् । प्रऽदिशः । ह्वयन्तु । उपऽसद्यः । नमस्यः । भव । इह ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे राजन् त्वा त्वां राष्ट्रम् शत्रुभिराक्रान्तं स्वकीयं राज्यम् आ गन् पुनरागमत् । ❀ गमेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "मो नो धातोः" इति नत्वम् ❀ ॥ ततस्त्वं वर्चसा बलेन सह उदिहि उदितः प्रख्यातो भव । ❀ इणो लोट् ❀ ॥ अनन्तरं प्राक् पूर्वं विशाम् प्रजानां सर्वासां पतिः पालकः सन् एकराट् निःसपत्नो मुख्यो राजा भूत्वा त्वं वि राज विशेषेण दीप्यस्व । ❀ एकराडिति । एकशब्दोपपदाद्ध राजतेः "सत्सूद्विष०" इति क्विप् । "व्रश्च०" इत्यादिना षत्वम् । जश्त्वचर्त्वे ❀ ॥ हे राजन् त्वा त्वां सर्वाः प्रदिशः प्रकृष्टा दिशः प्राच्याद्याः तदभिमानिन्यो देवताः तत्रस्था जना वा ह्वयन्तु स्वामित्वेन अनुजानन्तु ॥ इह अस्मिन् स्वकीये राष्ट्रे उपसद्यः सर्वैरुपसदनीयः सेव्यः । ❀ व्यत्ययेन यत् ❀ । नमस्यः नमस्कार्यश्च भव । ❀ "नमोवरिवश्चित्रङः क्यच्" इति क्यच् । तदन्ताद् "अचो यत्" इति कर्मणि यत् । अतोलोपयलोपौ । "तित् स्वरितः"❀ । यद्वा नमस्यः नमस्कारार्हः । ❀ "छन्दसि च" इति यः । छान्दसम् अन्तस्वरितत्वम् ❀॥

हे राजन् ! शत्रुओं पर दबा हुआ तुम्हारा अपना राज्य तुम्हें फिर प्राप्त होगया है, अतः बलके साथ उदय हो—प्रसिद्ध हो । फिर पहिले तुम प्रजाओंके पालक बनते हुए शत्रुरहित मुख्य राजा बनकर विशेषरूपसे दीप्त हो, हे राजन् ! पूर्व आदि सब श्रेष्ठ दिशाओंके अभिमानी देवता और पूर्व आदि दिशाओंमें रहने वाले मनुष्य तुमको स्वामीरूपमें जानें और अपने राज्यमें तुम सबसे सेवनीय और सबके नमस्कारके पात्र बनो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

त्वां विशो वृणतां राज्या॒य त्वामि॒माः प्र॒दिशः॒ पञ्च दे॒वीः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥ २ ॥

त्वाम् । विशः । वृणताम् । राज्याय । त्वाम् । इमाः । प्रऽदिशः । पञ्च । देवीः ।

वर्ष्मन् । राष्ट्रस्य । ककुदि । श्रयस्व । ततः । नः । उग्रः । वि । भज । वसूनि ॥ २ ॥

हे राजन् त्वां विशः प्रजा राज्याय । ❀ राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम् । "पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्" इत्यत्र पुरोहितादिषु "राजाऽसे" इति पाठाद्ध यक् ❀ । राजभावाय राजकर्मणे वा वृणताम् संभजताम् ॥ तथा इमाः परिदृश्यमानाः प्रदिशः प्राच्याद्याः पञ्च मध्यदिशा सह पञ्चसंख्याका देवीः देव्यो द्योतमानाः । वृणताम् इति संबन्धः ॥ ततः राष्ट्रस्य वर्ष्मन् वर्ष्मणि शरीरे । ❀ सप्तम्या लुक् । "न ङिसंबुद्ध्योः" इति नलोपप्रतिषेधः ❀ । स्वपालनीयभूशरीर इत्यर्थः । तत्रापि ककुदि ककुदीवोन्नते स्थाने प्रशस्ते वा सिंहासने श्रयस्व आस्स्व ॥ ततः उपवेशानन्तरम् उग्रः उद्गूर्णबलः शत्रुभिरनभिभाव्यः सन् वसूनि धनानि नः अस्माकं सेवकानां वि भज यथायोग्यं प्रयच्छ । ❀ "द्व्यचोऽतस्तिङः" इति सांहितिको दीर्घः ❀ ॥

हे राजन् ! प्रजाएँ आपको राजकर्म करनेके लिये वरण करें ये जो मध्यदिशासहित पूर्व आदि दमकती हुई पाँच श्रेष्ठ दिशायें हैं, ये आपकी सेवा करें, तदनन्तर आप राष्ट्रके शरीर (भूशरीर) के ककुद्की समान उन्नत प्रशस्त सिंहासन पर बैठिये। और सिंहासन पर बैठनेके अनन्तर प्रचण्ड बलवाले होकर हम सेवकों को यथायोग्य धन दीजिये ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तृतीया ॥

अच्छ॑ त्वा यन्तु ह॒विनः॑ सजा॒ता अ॒ग्निर्दू॒तो अ॑जि॒रः सं च॑रातै ।
जा॒याः पु॒त्राः सु॒मन॑सो भवन्तु ब॒हुं ब॒लिं प्रति॑ पश्यासा उ॒ग्रः ॥ ३ ॥

अच्छ॑ । त्वा॒ । य॒न्तु॒ । ह॒विनः॑ । स॒ऽजा॒ताः । अ॒ग्निः । दू॒तः । अ॒जि॒रः । सम् । च॒रा॒तै॒ ।
जा॒याः । पु॒त्राः । सु॒ऽमन॑सः । भ॒व॒न्तु॒ । ब॒हुम् । ब॒लिम् । प्रति॑ । प॒श्या॒सै॒ । उ॒ग्रः ॥ ३ ॥

हे राजन् त्वा त्वां सजाताः समानजन्मानः अन्ये राजानो हविनः । हवम् आह्वानम् आज्ञारूपम एषाम् अस्तीति हविनः तादृशाः सन्तः । अच्छ इत्याभिमुख्ये । [यन्तु] अभिगच्छन्तु । सर्वे राजानस्त्वदाज्ञावशवर्तिनो भवन्तु इत्यर्थः॥ [तथा] अजिरः त्वया प्रेरितः गमनशीलो वा दूतस्त्वदीयो भटः अग्निः । लुप्तोपमम् एतत् । अग्निरिव अप्रधृष्यः सं चरातै संचरतु । ❀ संपूर्वाच्चरतेर्लेटि आडागमः । "वैतोन्यत्र" इति ऐकारः । अजिर इति । अज गतिक्षेपणयोः इत्यस्मात् अजिरशिशिरशिथिल० [उ १. ५३] इत्यादिना किरजन्तो निपातितः ❀ ॥ अपि च जायाः भार्याः पुत्राश्च तदुपलक्षिताः सर्वे बान्धवाः सुमनसः पुनःस्वराष्ट्रप्राप्त्या सौमनस्ययुक्ता भवन्तु । ❀ "सोर्मनसी अलोमोषसी" इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ❀ ॥ उग्रः उद्गूर्णबलस्त्वं बहुम् अधिकं बहुविधं वा बलिम् उपायनं करं वा प्रति पश्यासै प्रतिमुखम् आगतं पश्य । ❀ प्रतिपूर्वाद् दृशेर्लेटि व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । अडैत्वे पूर्ववत् ❀ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे राजन् ! आपके सजातीय अन्य राजे आपकी आह्वान रूप आज्ञाको मानते हुए आपके सामने आवें अर्थात् सब राजे आपकी आज्ञामें रहें और आपका प्रेरित दूत अग्निकी समान अप्रधृष्य रूपसे विचरण करे और आपकी स्त्री पुत्र बांधव आदि फिर राज्य मिलनेसे प्रसन्न मन वाले हों और प्रचण्ड बल वाले आप सामने आई हुई भेटोंको देखें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु ।
अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥ ४ ॥

अश्विना । त्वा । अग्रे । मित्रावरुणा । उभा । विश्वे । देवाः । मरुतः । त्वा । ह्वयन्तु ।
अध । मनः । वसुऽदेयाय । कृणुष्व । ततः । नः । उग्रः । वि । भज । वसूनि ॥ ४ ॥

हे राजन् त्वा त्वाम् अग्रे प्रथमम् अश्विना अश्विनौ देवौ उभा उभौ मित्रावरुणा मित्रावरुणौ च । ह्वयन्तु इति संबन्धः ॥ तथा त्वा त्वा विश्वे देवाः मरुतश्च ह्वयन्तु राज्यप्रवेशं कारयन्तु ॥ अध अथ राज्यप्रवेशानन्तरम् । ❀ "निपातस्य च" इति सांहितिको दीर्घः ❀ । हे राजन् मनः त्वदीयं वसुदेयाय अर्थिभ्यो धनप्रदानाय कृणुष्व कुरु । ❀ कृवि हिंसाकरणयोश्च । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । वसुदेयायेति । "अचो यत्" इति भावे यत् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"ईयति" इति ईकारान्तादेशः। "यतोऽनावः" इत्याद्युदात्तत्वम्। समासे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥ ततो न इत्यादि व्याख्यातम्

हे राजन् ! अश्विनीकुमार और मित्रावरुण नामक दोनों देवता आपका राज्यप्रवेश करावें और मरुद्गदेवता भी आपको राज्यप्रवेश करावें, फिर राज्यप्रवेशके अनन्तर आप अपने मनको याचकोंको धन देनेमें लगाइये और प्रचण्डबलसम्पन्न होकर हमको यथायोग्य धन दीजिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ।

तदयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि ५

आ । प्र । द्रव । परमस्याः । पराऽवतः । शिवे इति । ते । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । स्ताम् ।

तत् । अयम् । राजा । वरुणः । तथा । आह । सः । त्वा । अयम् । अह्वत् । सः । उप । इदम् । आ । इहि ॥ ५ ॥

हे दूरदेशस्थित राजन् परावतः। दूरनामैतत्। परमस्याः परावतः अत्यन्तदूरदेशात् आ प्र द्रव स्वराष्ट्राभिमुखं शीघ्रम् आगच्छ। ❀ परमस्या इति । व्यत्ययेन स्याडागमः। [परावतइति।] "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" इति वतिः। अत्र अर्थग्रहणसामर्थ्यात् लिङ्गसंख्यायोगः समर्थितः ❀ ॥ स्वराष्ट्रं प्रविशतः ते तव उभे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ शिवे मङ्गलकारिण्यौ स्ताम् भवताम्। ❀ अस्तेर्लोटि तसस्ताम्। "श्नसोरल्लोपः" इति अकार-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोपः ❀ ॥ तत् तस्मिन् त्वदागमनविषये अयं वरुणो राजा तथा यथा प्रागुक्तं तथा तेनैव प्रकारेण आह ब्रूते। सोयम् उक्तो वरुणस्त्वा त्वाम् आह्वत् आह्वयति। ❀ ह्वयतेश्छान्दसे लुङि "लिपिसिचिह्वश्च" इति अङ्। "आतो लोप इटि च" इति आकारलोपः ❀ ॥ स वरुणेनाहूतस्त्वम् इदम् स्वराष्ट्रम् उपैहि उपागच्छ ॥

हे दूरदेशमें स्थित राजन्! अत्यन्त दूर देशसे अपने राष्ट्रकी ओर शीघ्रतासे आइये अपने राष्ट्रमें प्रवेश करते समय द्यौ और पृथिवी आपका मंगल करनेवाले होवें, यह राजा वरुण भी आपके आगमनके विषयमें जैसे पहिले कहा था, तैसे कहते हैं, यह वरुण देव आपका आह्वान करते हैं, इस प्रकार वरुणदेवके बुलाने पर आप अपने राज्यमें आइये ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

इन्द्रेन्द्र मनुष्या३ः परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः।
स त्वायमह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत स उं
कल्पयाद् विशः ॥ ६ ॥

इन्द्रऽइन्द्र। मनुष्याः। परा। इहि। सम्। हि। अज्ञास्थाः।
वरुणैः सम्ऽविदानः।
सः। त्वा। अयम्। अह्वत्। स्वे। सधऽस्थे। स। देवान्।
यक्षत्। सः ऊं इति। कल्पयात्। विशः ॥ ६ ॥

इन्द्रेन्द्र। आदरार्थं पुनर्वचनम्। हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्त मनुष्याः मनुष्यान् अस्मान्। ❀ शसो नत्वाभावश्छान्दसः ❀। यद्वा मनोरपत्यभूताः प्रजाः प्रति परेहि आगच्छ। हि यस्मात् कार-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

णात् हे इन्द्र त्वं वरुणैः वरुणेन संविदानः ऐकमत्यं प्राप्तः । पूजायां बहुवचनम् । सम् अज्ञास्थाः एतदाहवानविषये समानज्ञानवान् असि तस्माद् आगच्छेति संबन्धः । ❀ ज्ञा अवबोधने । अस्मात् लुङि "संप्रतिभ्याम् अनाध्याने" इत्यात्मनेपदम् ❀ ॥ सोयं वरुणेन ऐकमत्यं प्राप्त इन्द्रः हे राजन् त्वा त्वाम् अह्वत् आह्वयति । ततः स्वराष्ट्रं प्रविशेति शेषः ॥ प्रविश्य च स्वे स्वकीये सधस्थे सहस्थाने स्वराष्ट्रे । ❀ सहशब्दोपपदात् तिष्ठतेरधिकरणे कः । "सधमादस्थयोश्छन्दसि" इति सहस्य सधादेशः ❀ । तत्र वर्तमानः स राजा देवान् इन्द्रादीन् यक्षत् यजतु । ❀ यजेर्लेटि अडागमः । "सिब्बहुलम्०" इति सिप् ❀ ॥ स उ स एव राजा विशः प्रजाः कल्पयात् स्वस्वव्यापारेषु कल्पयतु नियुङ्क्ताम् । ❀ कल्पयतेर्लेटि आडागमः ❀ ॥

हे परमैश्वर्ययुक्त इन्द्रदेव ! मनुकी सन्तानभूत प्रजाओंके पास आप आइये । क्योंकि-आपने वरुणदेवके साथ सम्मति करके इस राजाके आह्वानके विषयकी आज्ञा दी है इस कारण आप आइये । हे राजन् ! वरुणके साथ एकमत हुए ये इन्द्र आपका आह्वान करते हैं अतः अपने राज्यमें प्रवेश करिये ॥ अपने राज्य में प्रवेश करके यह राजा इन्द्र आदि देवताओंका यजन करे और यही राजा प्रजाओंको अपने २ व्यापारमें नियुक्त करे ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

पथ्या॑ रे॒वती॑र्बहु॒धा विरू॑पाः॒ सर्वाः॑ सं॒गत्य॒ वरी॑यस्ते

अक्रन् ।

तास्त्वा॒ सर्वाः॑ संविदा॒ना ह्व॑यन्तु दश॒मीमु॒ग्रः सु॒मना॑

वशेह ॥ ७ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पथ्याः । रेवतीः । बहुऽधा । विऽरूपाः । सर्वाः । सम्ऽगत्य । वरीयः । ते । अक्रन् ।

ताः । त्वा । सर्वाः । सम्ऽविदानाः । ह्वयन्तु । दशमीम् । उग्रः । सुऽमनाः । वश । इह ॥ ७ ॥

रेवतीः रैमत्यः धनवत्यः । ❀ "छन्दसीरः" इति मतुपो वत्वम् । "रयेर्मतौ बहुलम्" इति संप्रसारणम् । पररूपत्वम् । गुणः । "रेशब्दान्मतुप उदात्तत्वं वक्तव्यम्" इति मतुप उदात्तत्वम् । "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । पथ्याः पथोऽनपेताः मार्गहितकारिण्यः एतत्संज्ञा देवताः । ❀ "धर्मपथ्यर्थन्यायाद् अनपेते" इति यत् ❀ । यद्वा पथ्याः पथि साधवः । ❀ छान्दसो यत् ❀ । रेवतीः आपः । तदभिमानिन्यो देवताः । "आपो वै रेवतीः" [तै० ब्रा० ३. २. ८. २] इति श्रुतेः । ता विशेष्यन्ते । बहुधा बहुप्रकारं वर्तमाना विरूपाः विविधाकाराः एवंविधा याः सन्ति ताः सर्वाः संगत्य संभूय हे राजन् ते तव वरीयः उरुतरं श्रेयः अक्रन् कुर्वन्तु । ❀ वरीय इति । उरुशब्दाद् ईयसुनि "प्रियस्थिर०" इत्यादिना वरादेशः । अक्रन्निति । करोतेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् ❀ । हे राजन् ताः सर्वा देवताः संविदानाः ऐकमत्यं प्राप्ताः सत्यः [त्वा] ह्वयन्तु त्वां राष्ट्रप्रवेशार्थम् आह्वयन्तु । ताभिराहूतः इह अस्मिन् राष्ट्रे उग्रः उद्गूर्णबलस्त्वं सुमनाः संतुष्टमनाः सन् दशमीम् नवतिसंवत्सरोर्ध्वभाविनीं वर्षदशकात्मिकां चरमावस्थाम् । ❀ अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ❀ । तावत्पर्यन्तं वस निवस । जरापर्यन्तं स्वकीयं राज्यं निष्कण्टकं भुङ्क्ष्वेत्यर्थः ॥

इति तृतीयकाण्डे प्रथमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

३-८-२६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे राजन् ! धनवान् मार्गमें हित करनेवाले रेवती नामक अनेक प्रकारके जो जलदेवता ‡ हैं वे सब एकत्रित होकर आपका परम कल्याण करें हे राजन् ! ये सब देवता एकमत होकर आपको राष्ट्रप्रवेशके लिये आह्वान करें, उनके आह्वान करने पर आप प्रचंड बल वाले और मनमें संतुष्ट होकर नब्बे वर्षसे आगे आने वाली सौ वर्षकी अवस्था तक राज्यमें रहिये अर्थात् बुढ़ापे तक निष्कण्टक रीतिसे राज्यको भोगिये ॥ ७ ॥

तृतीयकाण्डके प्रथम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (७५) ॥

"आयमगन् पर्णमणिः" इत्यनेन सूक्तेन तेजोबलायुर्धनादिपुष्टये पलाशवृक्षमणिं वासितं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् । तथा च सूत्रम् । "आयमगन् [३. ५] अयं प्रतिसरः [८. ५] अयं मे वरणः [१०. ३.] अरातीयोः [१०. ६] इति मन्त्रोक्तान् वासितान् बध्नाति" इति [कौ० ३. २] ॥ उक्तो वासितशब्दार्थः ॥

तथा "आङ्गिरसीं संपत्कामस्य" इति [न० क० १७] विहितायां महाशान्तौ पलाशमणिबन्धनेपि एतत् सूक्तम् । उक्तं नक्षत्रकल्पे । "आयमगन्निति मन्त्रोक्तम् आङ्गिरस्याम्" इति [न० क० १९] ॥

"आयमगन् पर्णमणिः" इस सूक्तसे तेज बल आयु और धन आदिकी पुष्टिके लिये पलाशवृक्षकी मणिको वासित सम्पातित और अभिमन्त्रित करके बाँधे । इसी बातको सूत्रमें भी कहा है, कि-"आयगमन् (इस प्रथमकांडके पञ्चमसूक्त) अयं प्रतिसरः (इस अष्टमकाण्डके पञ्चमसूक्त) अयं मे वरुणः (इस दशमकांडके तृतीयसूक्त) और अरातीयोः (इस दशमकाण्डके छठे

‡ तैत्तिरीय ब्राह्मण ३ । २ । ८ । २ में कहा है, कि-"आपो वै रेवतीः ।-जल रेवती है" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूक्त) में कथित वासितोंको बाँधे" (कौशिक सूत्र ३।२)॥ वासित शब्दका अर्थ पहिले कहा जा चुका है॥

तथा "आंगिरसीं सम्पत्कामस्य—सम्पत्ति चाहने वालेके लिये आंगिरसी महाशान्तिको करावे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित आंगिरसी महाशान्तिके पलाशमणिबन्धनमें भी यह सूक्त है। इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि—"आयमगन्निति मंत्रोक्त आंगिरस्याम्" (नक्षत्रकल्प १९)॥

तत्र प्रथमा॥

आयमंगन् पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान्। ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्व-प्रयावन्॥ १॥

आ। अयम्। अगन्। पर्णऽमणिः। बली। बलेन। प्रऽमृणन्। सऽपत्नान्।

ओजः। देवानाम्। पयः। ओषधीनाम्। वर्चसा। मा। जिन्वतु। अप्रऽयावन्॥ १॥

अयम् अस्मदादिभिः संपदर्थं ध्रियमाणः पर्णमणिः। पर्णः पलाशवृक्षः सोमपर्णोद्भूतत्वात् "सोयं पर्णः सोमपर्णाद्धि जातः" [तै० ब्रा० १.२.१.६] इति श्रुतेः। आगन् आगच्छतु। किंविधः। बली अतिशयितबलवान्। अभिमतफलं दातुं समर्थ इत्यर्थः। अत एव बलेन स्वकीयेन सामर्थ्यातिशयेन सपत्नान् शत्रून् प्रमृणन् प्रकर्षेण हिंसन्। आगच्छतु इति संबन्धः। पुनस्तमेव विशिनष्टि। देवानाम् इन्द्रादीनाम् ओजः बलरूपः तथा ओषधीनाम् सर्वासां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पयः सारभूतः । ओषधिसारसोमजन्यत्वात् । एवंलक्षणः पर्णमणिः अप्रयावन् अप्रयावा मां विहाय अनपगन्ता सन् [मा] मां वर्चसा तेजसा जिन्वतु प्रीणयतु । तेजस्विनं करोतु इत्यर्थः । ❀ हिवि दिवि धिवि [जिवि] प्रीणनार्थाः । इदित्त्वाद् नुम् । अप्रयावन्निति । यातेर्वनिप् । "सुपां सुलुक्०" इति सोर्लुक् । नलोपाभावश्छान्दसः ❀ । यद्वा हे अप्रयावन् अप्रयातः सर्वदा धार्यमाणः । ❀ "न ङिसंबुद्ध्योः" इति नलोपाभावः ❀ ॥ हे मणे मा मां तेजसा जिन्वतु । ❀ पुरुषव्यत्ययः ❀ । जिन्वेत्यर्थः ॥

अभिमत फल देनेमें समर्थ अत एव अपने बलसे शत्रुओंको मारती हुई यह पलाश†वृक्षकी मणि आवे, इन्द्र आदिकी बलरूप और सब ओषधियोंकी सारभूत यह पर्णमणि मुझे न छोड़ कर मुझे तेजसे तेजस्वी करे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम् ।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ॥ २ ॥

मयि । क्षत्रम् । पर्णऽमणे । मयि । धारयतात् । रयिम् ।
अहम् । राष्ट्रस्य । अभिऽवर्गे । निऽजः । भूयासम् । उत्ऽतमः ॥२॥

हे पर्णमणे पलाशनिर्मितमणे क्षत्रम् । बलनामैतत् । बलं क्षत्रियजातिं वा मयि मणिधारके धारयतात् धारय स्थापय ॥ तथा रयिम् धनं च [मयि] धारयतात् । ❀ धारयतेर्हेस्तातङ् आदेशः ❀ ॥ अहं च त्वद्धारणाद् राष्ट्रस्य राज्यस्य अभीवर्गे आवर्जने स्वाधीनीकरणे निजः अनन्यसहायः उत्तमः उत्कृष्टतमो भूयासम् ।

† तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । २ । १ । ६ में कहा है, कि–"सोऽयं पर्णः सोमपर्णाद्धि जातः ।–यह पलाश सोमपर्णसे उत्पन्न हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वबाहुबलेनैव सर्वं राष्ट्रं वशीकृत्य सर्वश्रेष्ठो भवानीत्यर्थः। ❀ अभीवर्गे इति। अभिपूर्वाद् वृजेर्भावे घञ्। "उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" इति दीर्घः। उत्तम इति। "उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र" इति उञ्छादिषु पाठाद् अन्तोदात्तः ❀ ॥

हे पलाशनिर्मितमणे! बलको और धनको मुझमें स्थापित कर और मैं भी राज्यको स्वाधीन करनेमें दूसरेकी अपेक्षा न करने वाला होऊँ अर्थात् अपने भुजबलसे ही सम्पूर्ण राष्ट्रको वशमें करके सर्वश्रेष्ठ होजाऊँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम्।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ॥ ३ ॥

यम्। नि॒ऽद॒धुः। वन॒स्पतौ। गुह्य॑म्। दे॒वाः। प्रि॒यम्। म॒णिम्।
तम्। अ॒स्मभ्य॑म्। स॒ह। आयु॑षा। दे॒वाः। द॒द॒तु। भर्त॑वे ॥ ३ ॥

देवाः इन्द्राद्या यम् अभीष्टफलदत्वेन प्रसिद्धम् अत एव प्रियम् प्रियंकरं गुह्यम् गोपनीयं मणिं वनस्पतौ पलाशवृक्षे निदधुः निहितवन्तः। ❀ वनानां पतिर्वनस्पतिः। पारस्करादित्वात् सुट्। "उभे वनस्पत्यादिषु युगपत्" इत्युभयपदप्रकृतिस्वरत्वम्। गुह्यम् इति। गुहू संवरणे इत्यस्मात् "शंसिगुहिदुहिभ्यो वेति वक्तव्यम्" इति क्यप् ❀। तम् तथाविधं मणिम् अस्मभ्यं भर्तवे भरणाय। ❀ तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः ❀। आयुषा सह देवाः ददतु प्रयच्छन्तु। ❀डुदाञ् दाने इत्यस्मात् "अदभ्यस्तात्" इति झस्य अदादेशः❀॥

इन्द्र आदि देवताओंने अभीष्ट फलदाता होनेसे प्रसिद्ध अत एव प्रिय गोपनीय मणिको पलाशवृक्षमें रक्खा है देवता उस मणिको हमारा भरण करनेके लिये दें और आयुको भी दें ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चतुर्थी ॥

सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः
तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ४

सोमस्य । पर्णः । सहः । उग्रम् । आ । अगन् । इन्द्रेण । दत्तः ।

वरुणेन । शिष्टः ।

तम् । प्रियासम् । बहु । रोचमानः । दीर्घायुऽत्वाय । शतऽशारदाय ४

सोमस्य द्युलोकस्थायाः सोमलतायाः पर्णः आहरणसमये भूमौ पतितपर्णाद् उद्भूतः । श्रूयते हि "तृतीयस्याम् इतो दिवि सोम आसीत् । तं गायत्र्याहरत् । तस्य पर्णम् अच्छिद्यत । तत् पर्णोभवत् । तत् पर्णस्य पर्णत्वम्" [तै० सं० ३. ५. ७. १] इति । उग्रम् उद्गूर्णं प्रभूतं सहः पराभिभवनत्तमं बलम् उक्तलक्षणबलरूपः एवंलक्षणो मणिः आगन् माम् आगच्छतु । कथंभूतः । इन्द्रेण देवेन दत्तः वरुणेन शिष्टः अनुशिष्टः अनुज्ञातः । तम् उक्तलक्षणं पर्णमणिम् बहु बहुविधं रोचमानः रोचमानम् । ❀ द्वितीयायाः "सुपां सुलुक्०" इति सुः ❀ । मणिं प्रियासम् प्रियासं धारयेयम् । किमर्थम् । शतशारदाय शतसंवत्सरपरिमिताय दीर्घायुत्वाय चिरकालजीवनाय । ❀ दीर्घायुत्वायेति पदम् "दीर्घायुत्वाय बृहते रणाय" [२. ४. १] इत्यत्र व्याख्यातम् । शरदेव शारदम् । प्रज्ञादेराकृतिगणत्वात् स्वार्थिकः अण् । यद्वा शरदः ऋतोः संबन्धी शारदः संवत्सरः । "तस्येदम्" इति अण् । उभयत्र बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥

दूसरेका तिरस्कार करनेमें समर्थ सोमके पर्णकी मणि मुझे प्राप्त हो । इन्द्रदेवकी दी हुई और वरुणदेवकी अनुशिष्ट दमकती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुई पर्णमणिको मैं सौ वर्ष तककी दीर्घायु पानेके लिये धारण करता हूँ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

आ मा॑रुक्षत् पर्णम॒णिर्म॒ह्या अ॑रि॒ष्टता॑तये ।
यथा॒हमु॑त्त॒रोसा॑न्यर्य॒म्ण उ॒त सं॒विदः॑ ॥ ५ ॥

आ । मा॒ । अ॒रु॒क्ष॒त् । प॒र्ण॒ऽम॒णिः । म॒ह्यै । अ॒रि॒ष्ट॒ऽता॑तये ।

यथा॑ । अ॒हम् । उ॒त्त॒रः । असा॑नि । अ॒र्य॒म्णः । उ॒त । स॒म्ऽवि॑दः ५

अयं पर्णमणिः मह्यै महत्यै अरिष्टतातये । रिष्टं हिंसनम् तद-भावः अरिष्टम् । तत्क्रियायै । ❀ "शिवशमरिष्टस्य करे" इति अरिष्टशब्दात् करोत्यर्थे तातिल् प्रत्ययः । "लिति" इति प्रत्य-यात् पूर्वस्य उदात्तत्वम् ❀ । मा माम् आरुक्षत् आरोहतु मयि चिरं वर्तताम् । ❀ रुहेश्छान्दसे लुङि "शल इगुपधाद् अनिटः क्सः" इति क्सप्रत्ययः ❀ । अर्यम्णः । अरीन् यमयतीति अर्यमा अधिकबलः पुरुप्रदाता च । अर्यमा अधिकधनः । "यः खलु वै ददाति सोर्यमा" [तै० सं० २. ३. ४. १] इति श्रुतेः । तस्माद् अधिकात् उत अपि च संविदः समानज्ञानात् । समबलाद् इत्यर्थः । तस्माद् यथा येन प्रकारेण अहम् मणिधारकः उत्तरः उत्कृष्टतरः असानि भवानि । तथा आरुक्षत् इति संबन्धः । ❀ अस्तेर्लोटि "आडुत्तमस्य पिच्च" इति आडागमः । अर्यम्ण इति । "अल्लो-पोऽनः" इत्यकारलोपे उदात्तनिवृत्तिस्वरेण विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀ ॥

यह पर्णमणि मेरा बड़ा भारी कल्याण करनेके लिये मुझमें चिरकाल तक रहे मैं शत्रुओंका दमन करने वाले परम बली बड़े

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भारी दाता अर्यमा ‡ से और समान बल वालेसे भी जिस प्रकार श्रेष्ठ होऊँ तिस प्रकार यह मणि मेरे (हाथ पर) चढ़ी है ॥५॥

षष्ठी ॥

ये धीवा॑नो रथका॒रा॒ः क॒र्मा॒रा ये म॑नी॒षिण॑ः ।
उ॒प॒स्तीन् प॒र्ण म॒ह्यं॒ त्वं सर्वा॑न् कृ॒ण्व॒भितो॑ ज॒नान् ६

ये । धीवा॑नः । र॒थ॒ऽका॒राः । क॒र्मा॑राः । ये । म॒नी॒षिण॑ः ।
उ॒प॒ऽस्तीन् । प॒र्ण । म॒ह्य॑म् । त्वम् । सर्वा॑न् । कृ॒णु । अ॒भितः॑ । ज॒नान् ६

ये धीवानः धीवराः मात्स्यिकाः । ❀ दधातेः क्वनिपि "घुमा-स्था०" इत्यादिना ईत्वम् ❀ । ये च रथकाराः रथनिर्मातारो जातिविशेषाः । उक्तं हि ।

रथकारस्तु महिष्यात् करण्यां यस्य संभवः

इति [अमरः] । वैश्यायां क्षत्रियाद् उत्पन्नो महिष्यः । शूद्रायां वैश्याद् उत्पन्ना करणी । ये कर्माराः अयस्कारप्रभृतयः ये च मनीषिणः मनस ईशितारो बुद्धिविशेषोपजीविनः । हे पर्ण तद्विकार मणे त्वम् । ❀ विकारे प्रकृतिशब्दः ❀ । सर्वान् उक्तो-पलक्षितान् जनान् मह्यम् । ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀ । मम अभितः सर्वतः उपस्तीन् सेवार्थं समीपे विद्यमानान् उपासीनान् वा कृणु कुरु । ❀ उपपूर्वाद् अस्तेः कर्तरि क्तिच् । "छन्दस्युभयथा" इति सार्वधातुकत्वाद् भूभावाभावः । अल्लोपश्च । आसेर्वा । आदि-लोपश्छान्दसः ❀ ॥

जो मच्छीसे आजीविका चलानेवाले धीवर हैं और जो रथको

‡ "यः खलु वै ददाति सोऽर्यमा ॥—जो देता है वह अर्यमा है" (तैत्तिरीयसंहिता २ । ३ । ४ । १) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बनाने वाले रथकार हैं ‡ और जो लुहार आदि कर्मकार हैं और बुद्धिसे आजीविका चलानेवाले मनीषी हैं हे पर्ण (पलाश) से बनी हुई मणे ! इन सब मनुष्योंको तू मेरे चारों ओर सेवाके लिये समीपमें विद्यमान कर ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये ।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ७

ये । राजानः । राजऽकृतः । सूताः । ग्रामण्यः । च । ये ।
उपऽस्तीन् । पर्ण । मह्यम् । त्वम् । सर्वान् । कृणु । अभितः । जनान् ७

ये राजानः अन्यदेशाधिपा राजकृतः राजानं कुर्वन्ति राज्ये अभिषिञ्चन्तीति राजकृतः सचिवाः सूताः । ब्राह्मण्यां क्षत्रियाद् उत्पन्नः सूतः । तज्जातीयाः सारथ्योपजीविनो वा । ये [च] ग्रामण्यः ग्रामस्य नेतारः । ❀ "सत्सूद्विष०" इति क्विप् । "एरनेकाचः०" इति यण् ❀ ॥ उपस्तीन् इत्यादि पूर्ववद् योज्यम् ।

जो दूसरे देशके राजे हैं और जो राज्यमें राजाका अभिषेक करनेवाले राजकृत् मंत्री हैं और जो ब्राह्मणसे क्षत्रियामें उत्पन्न हुए सारथ्यकर्मसे आजीविका चलानेवाले सूत हैं और जो ग्राम के नेता हैं, हे पर्णमणे ! उन सबको तू मेरी सेवा करनेके लिये मेरे चारों ओर विद्यमान कर ॥ ७ ॥

---

‡ रथकार रथ बनाने वालोंकी एक जाति है। जो वैश्य जाति की स्त्रीमें क्षत्रियसे उत्पन्न होता है वह माहिष्य कहलाता है और शूद्रमें वैश्यसे उत्पन्न हुई कन्या करणी कहलाती है, अमरकोशमें कहा है, कि–माहिष्यसे करणीमें जो उत्पन्न होता है वह रथकार होता है । यथा–"रथकारस्तु माहिष्यात् करण्यां यस्य संभवः" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अष्टमी ॥

पर्णो॒ऽसि तनू॒पान॑ः सयो॑निर्वी॒रो वी॒रेण॒ मया॑ ।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तेज॑सा॒ तेन॑ बध्नामि त्वा मणे ॥ ८ ॥

प॒र्णः । अ॒सि॒ । त॒नू॒ऽपान॑ः । स॒ऽयो॑निः । वी॒रः । वी॒रेण॑ । मया॑ ।
स॒म्ऽव॒त्स॒रस्य॑ । तेज॑सा । तेन॑ । ब॒ध्ना॒मि॒ । त्वा॒ । म॒णे॒ ॥ ८ ॥

हे मणे त्वं पर्णोसि अमृतमयस्य सोमस्य पर्णविकारोसि ॥ अत एव तनूपानः तन्वाः शरीरस्य पाता रक्षितासि ॥ वीरः वीरस्त्वं वीरेण वीर्यवता मया सयोनिः वीर्यवत्त्वकारणेन समानजन्मासि ॥ तेन उक्तेन कारणेन संवत्सरस्य एतदुपलक्षितकालभेदनिर्वाहकस्य आदित्यस्य तेजसा युक्तं त्वा त्वां बध्नामि धारयामि त्वदीयतेजोवाप्तये धारयामि ॥

इति तृतीयकाण्डे प्रथमोनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

[इति] प्रथमोनुवाकः ॥

हे मणे ! तू अमृतमय सोमका पर्णविकार है, अत एव शरीरकी रक्षक है, तू वीर है वीर्यवान् होनेसे मेरी समानजन्मा है, इस कारण सूर्यके तेजसे भरी हुई तुझको मैं तेरा तेज प्राप्त करनेके लिये धारण करता हूँ ॥ ८ ॥

तृतीयकाण्डके प्रथम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (७६) ॥

प्रथम अनुवाक समाप्त

द्वितीयेनुवाके पञ्च सूक्तानि । "तत्र पुमान् पुंसः" इति प्रथमं सूक्तम् । तेन अभिचारकर्मणि खदिरोत्थाश्वत्थमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा अनेन सूक्तेन पाशान् इङ्गिडालंकृतान् संपात्य अभिमन्त्र्य शत्रुमर्मणि निखनेत् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथैव अनेन सूक्तेन पूर्ववत् पाशान् अभिमन्त्र्य "तेधराञ्चः [७]" इत्यृचा नदीप्रवाहे प्रक्षिपेत् ॥

एवमेव पूर्ववद् अभिमन्त्रितान् पाशान् "प्रैणान्नुदे" [८] इति ऋचा अश्वत्थशाखया प्रणुदेत् ॥

[सूत्रितं हि । "पुमान् पुंस इति मन्त्रोक्तम् अभिहुतालंकृतं बध्नाति यावन्तः सपत्नास्तावन्तः पाशान् इङ्गिडालंकृतान् संपातवतोऽनूक्तान् ससूत्रांश्चम्रा मर्मणि निखनति नावि 'प्रैणान्' ८ 'नुदस्व काम' ६. २. ४ इति मन्त्रोक्तं शाखया प्रणुदति 'तेधराञ्चः' ७ इति प्रप्लावयति" इति । कौ० ६. २]

तथा "अभिचरतः अभिचर्यमाणस्य च" इति [न० क० १७] विहितायां महाशान्तौ मणिबन्धनेपि एतत् सूक्तम् । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "आङ्गिरस्यां पुमान् पुंस इति मन्त्रोक्तम् अभिचरतोभिचर्यमाणस्य च" इति [न० क० १६] ॥

द्वितीय अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । इनमें 'पुमान पुंसः' यह पहिला सूक्त है । इससे अभिचारकर्ममें खदिरमें उगे हुए अश्वत्थ की मणिका संपातन और अभिमंत्रण करके बाँधे ।

तथा इस सूक्तसे इंगिडालंकृत पाशोंको अभिमंत्रित और सम्पातित कर शत्रुमर्ममें निखनन करे ।

तथा इसी सूक्तसे पहिलेकी समान पाशोंको अभिमन्त्रित करके 'तेधराञ्चः' इस सातवीं ऋचासे नदीमें प्रवाहित कर देय ।

इसी प्रकार पहिलेकी समान अभिमन्त्रित पाशोंको "प्रैणान्नुदे" इस आठवीं ऋचासे अश्वत्थशाखासे प्रेरित करे ॥

सूत्रमें भी कहा है, कि—"पुमान् पुंस इति मन्त्रोक्तं अभिहुतालंकृतं बध्नाति यावन्तः सपत्नास्तावन्तः पाशान् इंगिडालंकृतान् सम्पातवतोऽनूक्तान् ससूत्रांश्चम्रा मर्मणि निखनति नावि "प्रैणान्" ८ 'नुदस्व कामः' ६ । २ । ४ इति मन्त्रोक्तं शाखया प्रणुदति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'तेधराश्वः' ७ इति प्रसावयति ॥-अर्थात् पुमान् पुंसः इस मंत्रमें कहे हुए अभिहुत अलंकृत मणिको बाँधे, जितने शत्रु हों उतने इङ्गिड़ालंकृत सम्पात वाले अनूक्त ससूत्र पाशोंको सेनाके द्वारा शत्रुके मर्ममें बींधे। और 'नुदस्व कामः' इस नवमकाण्डके द्वितीय अनुवाकके चतुर्थसूक्तके मन्त्रमें कही हुई शाखाके द्वारा नावमें (बैठ) 'प्रैणान्' इस आठवीं ऋचासे पाशोंको प्रेरित करे और 'तेधराश्वः' इस सातवें मन्त्रसे बहावे (कौशिकसूत्र ६।२)॥

तथा "अभिचरतोऽभिचर्यमाणस्य-जिसके ऊपर अभिचार हुआ हो उसके लिये और अभिचार करने वालेके लिये" इस नक्षत्रकल्प १७ में विहित महाशान्तिके मणिबन्धनमें भी यह सूक्त है। इसी बातको नक्षत्रकल्प १९ में कहा है, कि-'आंगिरस्यां पुमान् पुंसः इति मन्त्रोक्तं अभिचरतोऽभिचर्यमाणस्य च ॥-अभिचार करने वाले और जिस पर अभिचार किया जाता है उसके लिये भी की जाने वाली आंगिरसी महाशांतिमें पुमान् पुंसः मन्त्रमें कही हुई मणिको बाँधे" ॥

तत्र प्रथमा ॥

पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि ।
स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् १

पुमान् । पुंसः । परिऽजातः । अश्वत्थः । खदिरात् । अधि ।
सः । हन्तु । शत्रून् । मामकान् । यान् । अहम् । द्वेष्मि । ये । च । माम् १

पुमान् पुंस्त्वोपेतो वीर्यातिशययुक्तो वृक्षः पुंसः तादृशाद् वृक्षात् परिजातः प्रादुर्भूतः । एतदेव विशिनष्टि । अश्वत्थः अश्वरूपः सन् अग्निस्तिष्ठत्यत्रेति अश्वत्थः । श्रूयते हि । "अग्निर्देवेभ्यो निरायत । अश्वो रूपं कृत्वा सोऽश्वत्थे संवत्सरम् अतिष्ठत् । तद्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अश्वत्थस्याश्वत्थत्वम्" [तै० ब्रा० १. १. ३.६] इति । अस्मादेव अग्निसंबन्धाद् अश्वत्थस्य शत्रुहननसमर्थत्वेन पुंस्त्वव्यपदेशः । खदिराद् अधि । अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी । खदिरवृक्षाद् उद्भूतः । इतरवृक्षेभ्यः खदिरस्य अतिशयितसारवत्त्वेन पुंस्त्वनिर्देशः । तथात्वं च गायत्रीसारजत्वात् । श्रूयते हि । "वषट्कारो वै गायत्र्यै शिरोच्छिनत् । तस्यै रसः परापतत् । स पृथिवीं प्राविशत् । स खदिरोभवत्" [तै० सं० ३. ५. ७. १] इति । स खदिरोत्पन्नोश्वत्थो मणिरूपेण धार्यमाणः मामकान् मदीयान् शत्रून् शातयितन् हन्तु हिनस्तु । तानेव शत्रून् विशिनष्टि । अहं यान् शत्रून् द्वेष्मि अपकारकारिणो द्वेष्मि ये च शत्रवो माम् । द्विषन्तीति विपरिणामेन संबन्धः । तान् उभयविधान् हन्तु इति संबन्धः ॥

परमवीर्यमय अत एव पुरुषवृक्ष कहलाने वाले अश्वत्थ ‡ और गायत्रीके सारसे उत्पन्न अतः परमबली पुरुष कहलाने वाले खदिर वृक्ष †.से उत्पन्न अर्थात् खदिरवृक्ष (खैर) में उत्पन्न अश्वत्थ (पीपल) मणिरूपसे धारण करने पर—मैं जिनसे द्वेष करता हूँ और जो मुझसे द्वेष करते हैं उन शत्रुओंको नष्ट कर डाले ॥१॥

‡ तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । १ । ३ । ६ में कहा है, कि—"अग्निर्देवेभ्यो निरायत । अश्वो रूपं कृत्वा सोऽश्वत्थे संवत्सरम् अतिष्ठत् । तत् अश्वत्थस्याश्वत्थत्वम् ॥—अग्नि देवताओंसे छुप गए और अश्वका रूप बना कर वर्ष भर तक अश्वत्थमें रहे थे, यही अश्वत्थका अश्वत्थत्व है" ॥

† तैत्तिरीयसंहिता ३ । ५ । ७ । १ में कहा है, कि—"वषट्कारो वै गायत्र्यै शिरोऽच्छिनत् । तस्यै रसः परापतत् । स पृथिवीं प्राविशत् । स खदिरोऽभवत् ॥—वषट्कारने गायत्रीके शिरको काटा उसका रस गिरा और पृथिवीमें प्रविष्ट होगया, वही खदिर होगया" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वितीया ॥

तानश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून् वैबाधदोधतः ।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ॥ २ ॥

तान् । अश्वत्थ । निः । शृणीहि । शत्रून् । वैबाधऽदोधतः ।
इन्द्रेण । वृत्रऽघ्ना । मेदी । मित्रेण । वरुणेन । च ॥ २ ॥

हे वैबाध । विविधं बाधते कण्टकैरिति विबाधः खदिरः । तत्रोत्पन्नो वैबाधः । ❀ "तत्र जातः" इत्यण् ❀ । तादृश अश्वत्थ तद्विकारमणे । ❀ विकारे प्रकृतिशब्दः ❀ । दोधतः भृशं कम्पयितॄन् । ❀ धूञो यङ्लुगन्तात् शतरि अन्त्यलोपश्छान्दसः । "अभ्यस्तानाम् आदिः" इत्याद्युदात्तत्वम् ❀ । ईदृशान् तान् उक्तान् विविधान् शत्रून् निः शृणीहि निःशेषं घातय । ❀ शॄ हिंसायाम् । क्र्यादिः । प्वादित्वात् ह्रस्वत्वम् ❀ ॥ मणेः शत्रुहननसामर्थ्यं दर्शयति इन्द्रेणेत्यादिना । वृत्रघ्ना वृत्राख्यम् असुरं हतवता । ❀ हन्तेः "ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्" इति भूते काले क्विप् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वे अल्लोपे "अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः" इति विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀ । तादृशेन इन्द्रेण मित्रेण वरुणेन च मेदी स्नेही । इन्द्रादिभिः शत्रुहननसामर्थ्यं सारम् आपादितोयम् आश्वत्थो मणिरित्यर्थः । ❀ ञिमिदा स्नेहे । ग्रहादित्वाद् णिनिः । घञन्ताद्द वा मत्वर्थीय इनिः ❀ ॥

कण्टकोंके द्वारा अनेक प्रकारसे बाधा देने वाले वैबाधोपनामक खदिरमें उत्पन्न अश्वत्थसे बनी हुई मणे ! पूर्वोक्त शत्रुओंका तू पूर्णरूपसे संहार कर । (मणिकी शत्रुहननकी शक्ति दिखाते हैं, कि-) वृत्रका संहार करनेवाले इंद्रके और वरुणके साथ हे मणे ! तेरा स्नेह है । तात्पर्य यह है, कि-इन्द्र आदिने शत्रुसंहारकी सार यह आश्वत्थ मणि धारण की थी ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तृतीया ॥

यथांश्वत्थ निरभंनोन्तर्महत्यर्णवे ।
एवा तान्त्सर्वान्निर्भङ्ग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् ३

यथा । अश्वत्थ । निःऽअभनः । अन्तः । महति । अर्णवे ।
एव । तान् । सर्वान् । निः । भङ्ग्धि । यान् । अहम् । द्वेष्मि ।
ये । च । माम् ॥ ३ ॥

हे अश्वत्थ मण्युपादानभूत वृक्ष महति विस्तीर्णे अर्णवे अन्तरिक्षे । "अस्मिन् महत्यर्णवेन्तरिक्षे" [तै० सं० ४. ५. ११. १] इति लिङ्गाद् महार्णवः अन्तरिक्षम् । तत्र अन्तः मध्ये अन्तःखदिरकोटरे यथा येन प्रकारेण निरभिनः निर्भिद्य उत्पन्नोसि । ❀ भिदिर् विदारणे । अस्मात् लङि हल्ङ्यादिना सिपो लोपे "दश्च" इति रुत्वम् ❀ । एव एवं तान् वक्ष्यमाणान् उभयविधान् सर्वान् शत्रून् निर्भिन्द्धि निःशेषेण विदारय । ❀ भिदेर्लोटि "हुझल्भ्यः०" इति हेर्धिरादेशः । "श्नसोरल्लोपः" इत्यकारलोपः । "झरो झरि सवर्णे" इति दकारलोपः ❀ ॥ यान् अहम् इत्यादि गतम् ॥

हे मणिके उपादान अश्वत्थ ! तू अर्णव उपनामवाले † अंतरिक्षमें खदिरकी खखोड़लको भेद कर जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है इसी प्रकार तू जिनसे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं उन सब शत्रुओंको पूर्णरूपसे नष्ट कर ॥ ३ ॥

† तैत्तिरीयसंहिता ४ । ५ । ११ । १ में कहा है, कि-"अस्मिन् महत्यर्णवे अन्तरिक्षे ॥-इस महान् अर्णव अन्तरिक्षमें" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चतुर्थी ॥

यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋषभः ।

तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि ॥४॥

यः । सहमानः । चरसि । ससहानःऽइव । ऋषभः ।

तेन । अश्वत्थ । त्वया । वयम् । सऽपत्नान् । सहिषीमहि ॥४॥

यः अश्वत्थः सहमानः परान् अभिभवन् चरति वर्तते । किमिव । सासहानः स्वकीयेन दर्पेण सजातीयान् अन्यान् अत्यर्थम् अभिभवन् ऋषभ इव । ❀ सहेर्यङ्लुगन्तात् लटः शानच् ❀ । हे अश्वत्थ तेन उक्तलक्षणेन त्वया वयम् त्वद्विकारभूतमणिधारकाः सपत्नान् शत्रून् सहिषीमहि सहामहै । नाशयाम इत्यर्थः । ❀ सहेराशीर्लिङि रूपम् ❀ ॥

अपने दर्पसे अन्य सजातीय वृक्षोंको दबाता हुआ अश्वत्थ जैसे वृषभकी समान बढ़ता है हे अश्वत्थ ! तेरी विकार मणिको धारण करनेवाले हम ऐसे तुझको शत्रुओंका संहार करें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः ।

अश्वत्थ शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ५

सिनातु । एनान् । निःऽऋतिः । मृत्योः । पाशैः । अमोक्यैः ।

अश्वत्थ । शत्रून् । मामकान् । यान् । अहम् । द्वेष्मि । ये । च । माम् ॥ ५ ॥

निर्ऋतिः पापदेवता अमोक्यैः सर्वथा मोक्तुम् अशक्यैः । ❀ "कृत्याश्च" "शकि लिङ् च" इति शक्यार्थे मुचेर्ण्यत् प्रत्ययः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"चजोः कुधिण्ण्यतोः" इति कुत्वम् ❀। तथाविधैर्मृत्योः पाशैः प्राणापहर्तृभिर्दामभिः [एनान् उक्तान् शत्रून्] सिनातु बध्नातु। ❀षिञ् बन्धने। क्र्यादिः❀॥ अश्वत्थ शत्रून् इत्यादि व्याख्यातम्॥

हे अश्वत्थ! मैं जिनसे द्वेष करता हूँ और जो मुझसे द्वेष करते हैं उन मेरे शत्रुओंको पापदेवता निर्ऋति किसी प्रकार भी न छुड़ाये जा सकने वाले मृत्युके पाशोंसे बाँध लेवें॥ ५॥

षष्ठी॥

यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेधरान्।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग् भिन्द्धि सहस्व च॥६॥

यथा। अश्वत्थ। वानस्पत्यान्। आऽरोहन्। कृणुषे। अधरान्।
एव। मे। शत्रोः। मूर्धानम्। विष्वक्। भिन्द्धि। सहस्व। च॥६॥

हे अश्वत्थ [यथा] त्वं वानस्पत्यान्। अत्र वनस्पतिप्ररोहार्हो देशो वनस्पतिशब्देनोच्यते। तत्र भवा वानस्पत्याः। ❀ "दित्यदित्यादित्य०" इति भवार्थे ण्यः। यद्वा समूहार्थे ण्यः ❀। तान् वृक्षान् आरोहन् अधरान् नीचान् कृणुषे करोषि। एव एवं मे मदीयस्य शत्रोर्मूर्धानं शिरो विष्वक् सर्वतो भिन्द्धि विदारय। तथा सहस्व च अभिभव। विनाशयेत्यर्थः॥

हे अश्वत्थ! तुम वनस्पति उत्पन्न होने योग्य देशमें उत्पन्न हुए वनस्पति वृक्षों पर चढ़ते हुए जैसे उन्हें नीचा करते चले जाते हो इसी प्रकार मेरे शत्रुओंके शिरोंको पूर्ण रीतिसे विदीर्ण करो और उनका तिरस्कार करो उनको नष्ट कर डालो॥ ६॥

सप्तमी॥

तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात्।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

न वैबाधप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ ७ ॥

ते । अधराञ्चः । प्र । प्लवन्ताम् । छिन्ना । नौःऽइव । बन्धनात् ।
न । वैबाधऽप्रनुत्तानाम् । पुनः । अस्ति । निऽवर्तनम् ॥ ७ ॥

ते पूर्वोक्ता द्विविधाः शत्रवः अधराञ्चः अधोमुखम् अञ्चन्तो गच्छन्तः प्र प्लवन्ताम् नदीप्रवाहस्य उपर्येव गच्छन्तु । न कदाचित् पारं प्राप्नुवन्तु इत्यर्थः । ❀ अधरशब्दोपपदाद् अञ्चतेः क्विन् । प्लवन्ताम् इति । च्युङ् प्लुङ् गतौ । भ्वादिः ❀ । तत्र दृष्टान्तः । बन्धनात् । बध्यतेस्मिन्निति बन्धनं तीरवृक्षादिकम् बध्नात्यनेन नावम् इति [वा] बन्धनं रज्जुः । ततश्छिन्ना वियुक्ता नौरिव । सा यथा तीरम् अप्राप्ता नदीप्रवाहेण अधो नीयते तद्वत् ॥ अश्वत्थस्य महिमप्रख्यापनार्थं पारप्राप्तिशङ्कां वारयति नेति । वैबाधप्रणुत्तानाम् वैबाधः खदिरोत्पन्नोश्वत्थः तेन प्रणुत्तानां प्रणुन्नानाम् अवाङ्मुखं प्रेरितानां शत्रूणां पुनर्निवर्तनम् पुनरागमनं नास्ति । ❀ "नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योन्यतरस्याम्" इति विकल्पनाद् निष्ठानत्वाभावः ❀ ॥

जिसमें नावें बाँधी जाती हैं उननदीके तटके वृक्षोंसे वा रस्सियों से छिन्न हुई नौका जैसे नदीके प्रवाहसे नीचेकी ओर ही घसीटी जाती हैं, इसी प्रकार दोनों प्रकारके मेरे शत्रु नदीके प्रवाहके ऊपर ही रहें, पार कभी न पहुँच सकें, (क्योंकि-) खदिरमें उत्पन्न हुए अश्वत्थासे प्रेरित शत्रुओंका पुनः आगमन नहीं होसकता ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

प्रैणान् नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा ।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्र । एनान् । नुदे । मनसा । प्र । चित्तेन । उत । ब्रह्मणा ।

प्र । एनान् । वृक्षस्य । शाखया । अश्वत्थस्य । नुदामहे ॥ ८ ॥

एनान् प्रागुक्तान् शत्रून् मनसा शत्रुनिरसनविषयज्ञानवता अन्तःकरणेन प्र णुदे स्थानाद् उच्चाटयामि ॥ चित्तेन मन्त्रार्थचिन्तनपरेण मनोवृत्तिविशेषेण प्र णुदे ॥ उत अपि च ब्रह्मणा मन्त्रेण अभिमन्त्रितया अश्वत्थस्य वृक्षस्य शत्रुवृश्चनसाधनस्य शाखया एनान् शत्रून् प्र णुदामहे । ❀ नुद प्रेरणे । तुदादिः । स्वरितेत्त्वाद् आत्मनेपदम् ❀ ॥

इति तृतीयकाण्डे द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

मैं इन पहिले कहे हुए शत्रुओंको शत्रुका तिरस्कार करनेके भावसे सम्पन्न चित्तके द्वारा स्थानसे उच्चाटन करता हूँ, मन्त्रार्थचिन्तनपर मनोवृत्तिविशेषसे शत्रुका स्थानसे उच्चाटन करता हूँ और मन्त्रसे अभिमन्त्रित शत्रुको काटनेकी साधन अश्वत्थवृक्ष की शाखासे इन शत्रुओंको हम नष्ट करते हैं ॥ ८ ॥

तृतीयकाण्डके द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (७७)॥

"हरिणस्य" इति सूक्तेन क्षेत्रियव्याधिभैषज्ये हरिणशृङ्गमणेर्बन्धनम् तच्छृङ्गसहितोदकपायनम् हरिणचर्मणः शङ्कुच्छिद्रभागं प्रज्वाल्य उदके प्रक्षिप्य तेनोदकेन उषःकाले व्याधितस्यावसेचनम् यवहोमम् अभिमन्त्रितभक्तभक्षणं च कुर्यात् । तद् उक्तं संहिताविधौ । "हरिणस्येति बन्धनपायनाचमनानि शङ्कुधानज्वालेनापनक्षत्रेवसिञ्चति" इत्यादि [कौ० ४. ३] । अपनक्षत्रे उषःकाले इत्यर्थः ॥

"कौमारीं व्याधितस्य बालस्य" इति [न० क० १७] विहितायां कौमार्याख्यायां महाशान्तौ हरिणविषाणाग्रे मणिबन्धनेपि एतत् सूक्तम् । [तद् उक्तं] नक्षत्रकल्पे । "हरिणस्येति विषाणाग्रं कौमार्याम्" इति [न० क० १९] ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'हरिणस्य' सूक्तसे क्षेत्रियव्याधिकी शान्तिके लिये हरिणके सींगकी मणिको बाँधे उसके सींग मिले हुए जलको पिलावे। हिरनके चर्मके शंकुछिद्रभागको प्रज्वलित करके जलमें डाले, उस जलसे प्रातःकालमें रोगी पर अभिषेक करे, जौका होम करे और अभिमन्त्रित भातको खावे। इसी बातको संहिताविधिमें कहा है, कि-"हरिणस्येति बंधनपायनाचमनानि शंकुधानज्वालेनापनक्षत्रेऽवसिञ्चति" इत्यादि (कौशिकसूत्र ४ । ३)॥

"कौमारीं व्याधितस्य बालस्य॥-रोगी बालकके लिये कौमारी महाशांतिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित कौमारी महाशान्तिके हिरनके सींगके अग्रभागकी मणिके बंधनमें भी यह सूक्त पढ़ा जाता है। इसी बातको नक्षत्रकल्प १९ में कहा है, कि-"हरिणस्येति विषाणाग्रं कौमार्याम्" ॥

तत्र प्रथमा ॥

हरिणस्य रघुष्यदोधि शीर्षणि भेषजम् ।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥ १ ॥

हरिणस्य । रघुऽस्यदः । अधि । शीर्षणि । भेषजम् ।
सः । क्षेत्रियम् । विऽसानया । विषूचीनम् । अनीनशत् ॥ १ ॥

रघुष्यदः रघु लघु शीघ्रं स्यन्दते गच्छतीति रघुष्यत् । ❀ स्यन्देः क्विप् । "अनिदिताम्०" इति नलोपः । "वालमूल०" इत्यादिना रघोर्लत्वविकल्पः ❀ । तथाविधस्य हरिणस्य कृष्णमृगस्य अधि शीर्षणि शिरसि। अधिः सप्तम्यर्थानुवादी। ❀ "शीर्षश्छन्दसि" इति सप्तम्यां शीर्षन्नादेशः ❀। भेषजम् रोगनिवर्तकं शृङ्गरूपम् औषधम् अस्ति। सः हरिणः विषाणया स्वशृङ्गेण क्षेत्रियम् परक्षेत्रे चिकित्स्यं मातापितृशरीराद् आगतं क्षयकुष्ठापस्मारा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिकं विषूचीनम् विष्वक् सर्वतः अनीनशत् नाशयतु । ❀ विषुपूर्वाद् अञ्चतेः क्विन् । "अनिदिताम्०" इति नलोपः । "विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियाम्" इति स्वार्थिकः खः । "अचः" इत्यकारलोपे "चौ" इति दीर्घः ❀ ॥

शीघ्रतासे चलनेवाले कृष्णमृगके शिरमें रोगको दूर करनेवाली सींगरूप औषध है वह हरिण अपने सींगसे दूसरेके शरीरमें चिकित्सा करने योग्य माता पिताके शरीरसे आई हुई क्षय कुष्ठ अपस्मार आदि व्याधिको सब ओरसे नष्ट करे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत् ।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥ २ ॥

अनु । त्वा । हरिणः । वृषा । पत्ऽभिः । चतुःऽभिः । अक्रमीत् ।
विऽसाने । वि । स्य । गुष्पितम् । यत् । अस्य । क्षेत्रियम् । हृदि ॥२॥

हे विषाणे क्षेत्रियरोगविनाशनाय मणिरूपेण धृता त्वा त्वाम् अनु वृषा सेचनसमर्थो युवा हरिणः मृगः चतुर्भिः पद्भिः पादैः अक्रमीत् आक्रान्तवान् । क्षेत्रियरोगं पादप्रहारैः पीडितवान् इत्यर्थः ॥ त्वं च अस्य रुग्णस्य हृदि हृदये गुल्फितम् गुल्फवद् ग्रथितं यत् क्षेत्रियम् रोगजातम् अस्ति तद् वि ष्य विनाशय । ❀ षो अन्तकर्मणि । अस्मात् लोटि "ओतः श्यनि" इति ओकारलोपः ❀ ॥

हे विषाणे ! क्षेत्रियरोगके नाश करनेके लिये मणिरूपसे धारणकी हुई तुझको सेचनसमर्थ तरुण हरिण चारों पैरोंसे आक्रान्त करता था अर्थात् तेरे प्रभावसे मृगने क्षेत्रियरोगको

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पैरोंसे खूँद पीड़ित किया था अतः तू भी इस रोगीके हृदयमें जो गुल्फकी समान गुँथा हुआ क्षेत्रियरोग है उसको नष्ट कर॥२॥

तृतीया ॥

अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः ।

तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥ ३ ॥

अदः । यत् । अवऽरोचते । चतुष्पक्षम्ऽइव । छदिः ।

तेन । ते । सर्वम् । क्षेत्रियम् । अङ्गेभ्यः । नाशयामसि ॥ ३ ॥

अदः चन्द्रमण्डलस्थं विप्रकृष्टं यत् हरिणरूपं वस्तु अवरोचते अवभासते । यद्वा अदः परिदृश्यमानं यद् भूमौ आस्तृतं हारिणं चर्म अवरोचते । किमिव । चतुष्पक्षम् चतुष्कोणं छदिरिव । छाद्यते अनेन गृहम् इति छदिस्तृणकटः स इव । ❀ छद अपवारणे इत्यस्माद् ण्यन्तात् अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः [उ० २. १०७] इति इसि प्रत्ययः । "इस्मन्त्रन्क्विषु च" इत्युपधाह्रस्वत्वम् ❀ । तेन चन्द्रमण्डलस्थहरिणात्मकेन पुरोवर्तिना वा चर्मणा हे रुग्ण ते तव सर्वम् क्षयकुष्ठादिरूपेण बहुविधं क्षेत्रियम् रोगम् अङ्गेभ्यः कृत्स्नावयवेभ्यो नाशयामसि नाशयामः ॥

चन्द्रमण्डलमें जो यह हरिणरूप वस्तु प्रकाशित होरही है अथवा यह जो भूमिमें बिछा हुआ हिरनका चर्म चार कोने वाले तृणकट (घर) की समान दिप रहा है हे रोगिन् ! उस चन्द्रमण्डलस्थित हरिणसे वा सामनेके हिरणचर्मसे मैं तेरे क्षय कुष्ठ आदि अनेक प्रकारके क्षेत्रियरोगको नष्ट करता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।

वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अमू इति । ये इति । दिवि । सुभगे इति सुऽभगे । विऽचृतौ । नाम । तारके इति ।

वि । क्षेत्रियस्य । मुञ्चताम् । अधमम् । पाशम् । उत्ऽतमम् ॥४॥

दिवि द्युलोके अमू परिदृश्यमाने सुभगे शोभनभाग्ययुक्ते ये प्रसिद्धे । विचृतौ नाम तारके इत्यादि शिष्टम् "उदगातां भगवती" इत्यत्र [२. ८. १] विस्तरेण व्याख्यातम् ॥

ये जो आकाशमें विचृत नामके (मूलनामके) सौभाग्ययुक्त तारे हैं । ये माता पिताके अंगोंसे शरीरमें आये हुए पुत्र आदि के क्षेत्र (शरीर) में चिकित्सा करने योग्य क्षय कुष्ठ अपस्मार आदि क्षेत्रिय रोगके नीचेके और ऊपरके शरीरमें स्थित पाशकी समान बंधक रोगके बीजको (शरीरसे) अलग करें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

आप इद वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ५

आपः । इत् । वै । ऊं इति । भेषजीः । आपः । अमीवऽचातनीः ।
आपः । विश्वस्य । भेषजीः । ताः । त्वा । मुञ्चन्तु । क्षेत्रियात् ५

आप इद्वै । इदित्यवधारणे । उः पूरणः । आप एव खलु भेषजीः भेषजभूताः अभिषेकपानादिना रोगापनोदनेन सुखहेतवः । ❀ "केवलमामक०" इत्यादिना भेषजशब्दाद् ङीप् । उदात्तनिवृत्तिस्वरेण ङीप उदात्तत्वम् । "वा छन्दसि" इति जसि पूर्वसवर्णदीर्घत्वम् ❀ । तथा आप एव ओषधिरूपेण परिणताः अमीवचातनीः अमीवचातन्यः रोगाणां नाशयित्र्यः । ❀ चात-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यतिर्नाशने इत्युमुक्त ❀ । आप एव विश्वस्य सर्वस्य रोगस्य भेषजीः । औषधान्तरवद्द न कस्यचिदेव रोगस्य भेषजं किं तु सर्वेषामपीत्यर्थः । अपां भेषजरूपत्वम् अन्यत्र स्पष्टम् आम्नातम् "अप्सु मे सोमो अब्रवीद् अन्तर्विश्वानि भेषजा" [ऋ० १. २३. २०] इति । ताः एवम् उक्तसामर्थ्योपेता आपः हे व्याधिगृहीत त्वा त्वां क्षेत्रियात् रोगाद् मुञ्चन्तु वियोजयन्तु ॥

जल ही भेषज हैं अर्थात् अभिषेक पान आदिसे रोगको दूर करनेके कारण सुख देने वाले हैं । तथा जल ही औषधिरूपमें परिणित होकर रोगोंके दूर करने वाले हैं और जल ही सब रोगों की औषध हैं । तात्पर्य यह है, कि-दूसरी औषधियोंकी समान जल किसी एक रोगकी औषध नहीं हैं किंतु सब ही रोगोंकी औषध हैं† ऐसे जल हे रोगिन् ! तुझे क्षेत्रियरोगसे छुड़ावें ॥५॥

षष्ठी ॥

यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥ ६ ॥

यत् । आऽसुतेः । क्रियमाणायाः । क्षेत्रियम् । त्वा । विऽआनशे । वेद । अहम् । तस्य । भेषजम् । क्षेत्रियम् । नाशयामि । त्वत् ६

हे रुग्ण त्वा त्वां क्रियमाणायाः स्वीक्रियमाणाया आसुतेः । आसूयते आसिच्यते इत्यासुतिर्द्रवीभूतम् अन्नम् । [तस्मात् अ] यथोपयुज्यमानाद् अन्नाद् यत् क्षेत्रियं कुष्ठादिरूपे व्यानशे व्याप्नोत् । ❀ अशूव्याप्तौ । लिटि "अश्नोतेश्च" इति दीर्घीभूताद्

† ऋग्वेदसंहिता १ । २३ । २० में कहा है, कि-"अप्सु मे सोमो अब्रवीत् अन्तर्विश्वानि भेषजा ॥-सोमदेवताने मुझसे कहा है, कि-जलके भीतर सम्पूर्ण औषधियें हैं" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अभ्यासाड् उत्तरस्य नुट् ❀ । तस्य उक्तलक्षणस्य रोगस्य भेषजम् निवर्तकम् औषधं यवादिरूपम् अहम् चिकित्सको वेद जानामि । ❀ "विदो लटो वा" इति उत्तमे णलि रूपम् ❀ ॥ अतः त्वत् त्वत्तः सकाशात् क्षेत्रियं नाशयामि । ❀ त्वद्द इति । "पञ्चम्या अत्" ["एकवचनस्य च"] इति युष्मदुत्तरस्य ङसेरदादेशः ❀ ॥

हे रोगिन् ! तेरे उपयोगमें लाये हुए अन्नसे जो कुष्ठ आदि रूप क्षेत्रियरोग तुझमें व्याप्त होगया है उस रोगको हटाने वाली जौ आदि औषधको मैं चिकित्सक जानता हूँ, अत एव तुझमेंसे मैं क्षेत्रियरोगको नष्ट करता हूँ ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ७ ॥

अपऽवासे । नक्षत्राणाम् । अपऽवासे । उषसाम् । उत ।
अप । अस्मत् । सर्वम् । दुःऽभूतम् । अप । क्षेत्रियम् । उच्छतु ७

नक्षत्राणाम् तारकाणाम् । ❀ नक्षत्राणि नक्षतेर्गतिकर्मणः इति हि यास्कः [नि० ३. २०] । अमिनक्षि० [उ० ३. १०५] इत्यादिना नक्षगतौ इत्यस्माड् अत्रन् प्रत्ययः ❀ । तेषाम् अपवासे अपगमनकाले उषसः प्रारम्भे । उतशब्दो विकल्पार्थे । अथ वा उषसाम् । प्रतिदिवसम् आवृत्त्यपेक्षया उषसाम् इति बहुवचननिर्देशः । तासाम् अपवासे अपगमने । प्रभातकाले इत्यर्थः । तस्मिन् क्रियमाणेन अभिषेकादिना सर्वम् निखिलं दुर्भूतम् रोगनिदानभूतं दुष्कृतम् अस्मत् अस्मत्तः अप उच्छत्विति संबन्धः । अपगच्छतु इत्यर्थः । ततः क्षेत्रियम् कुष्ठापस्मारादिरूपम् अप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE ६. ८. २६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उच्छतु अस्मत्तः अपगच्छतु। सकारणं रोगजातं निवर्तताम् इत्यर्थः।

❀ उच्छी विबासे ❀ ॥

[इति] तृतीयकाण्डे द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

नक्षत्रोंके दूर होने पर अर्थात् उषःकालमें अथवा उषःकालके बीतने पर अर्थात् प्रतिदिन प्रभातकालमें किये हुए अभिषेक आदिसे रोगका कारण संपूर्ण पाप हमसे दूर होवे। फिर कुष्ठ अपस्माररूप क्षेत्रियरोग हमसे दूर होजावे अर्थात् कारणसहित रोग हमसे दूर होजावे ॥ ७ ॥

तृतीयकाण्डके द्वितीय अनुवाकमें दूसरा सूक्त समाप्त (७८) ॥

"आ यातु मित्रः" इति सूक्तेन उपनयनकर्मणि माणवकं नाभिदेशे संस्पृश्य अनुमन्त्रयेत। सूत्रितं हि। "दक्षिणेन पाणिना [नाभिदेशे] संस्तभ्य जपति 'अस्मिन् वसु वसवो धारयन्तु' [१. ९] 'विश्वे देवा वसवः' [१. ३०] 'आ यातु मित्रः' [३. ८] 'अमुत्र भूयात्' [७. ५५]" इत्यादि [कौ० ७. ६] ॥

अस्य सूक्तस्य आयुष्यगणे पाठात् "मेधाजननायुष्यैर्जुहुयात्" [कौ० ७, ८] इत्यादिष्वपि विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

एवमेव नक्षत्रकल्पेपि "आयुष्यः शान्तिः स्वस्तिगण ऐरावत्याम्" [न० क० १८] इत्यादिष्वपि अस्य विनियोगः ॥

परिशिष्टेपि।

आयुष्यश्चाभयश्चैव तथा स्वस्त्ययनो गणः [प० ५. ३]

इत्यादिषु च ॥

"इहेदसाथ" [४] इत्यनया विवाहे शुल्कद्रव्यं पृथक्कृत्य इदं द्रव्यं तव इदं ममेति द्वाभ्यां निवर्तयेत्। सूत्रितं हि। "इहेदसाथेत्येतया शुल्कम् अपाकृत्य द्वाभ्यां निवर्तयतीह तव राध्यताम् अत्र ममेति यथा वा मन्यन्ते" इति [कौ० १०. ५] ॥

"सं वो मनांसि" [५, ६] इति द्वाभ्यां सांमनस्यकर्मणि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ग्राममध्ये संपातितोदकुम्भनिनयनम् त्रिवर्षवत्सिकाया गोः पिशितानां प्राशनम् संपातितान्नप्राशनम् संपातितसुरायाः पायनम् तथाविधप्रपोदकपायनं च कुर्यात्। तथा च सूत्रम्। "सं वो मनांसि [५] संज्ञानं नः [७. ५४] इति सांमनस्यान्युदकुलिजं संपातवन्तं ग्रामं परिहृत्य मध्ये निनयत्येवं सुराकुलिजं त्रिहायण्या वत्सतर्याः शुक्लानि पिशितान्याशयति भक्तं सुरां प्रपां संपातवत् करोति" इति [कौ० २. ३]॥

"आ यातु मित्रः" इस सूक्तसे उपनयनकर्ममें बालकके नाभिदेशको छूकर अनुमंत्रण करे। इसी बातको कौशिकसूत्र ७। ६ में कहा है, कि—"दक्षिणेन पाणिना नाभिदेशे संस्तभ्य जपति 'अस्मिन् वसु वसवो धारयन्तु' (१। ६) 'विश्वे देवा वसवः' (१। ३०) 'आ यातु मित्रः' (३। ८) 'अमुत्र भूयात्' (७। ५५)" इत्यादि॥

इस सूक्तका आयुष्यगणमें पाठ है अत एव 'मेधाजननायुष्यैर्जुहुयात्॥—मेधाजनन और आयुष्यगणके मंत्रोंसे होम करे" इस कौशिकसूत्र ७। ८ के अनुसार जहाँ इनका विनियोग हो तहाँ इस सूक्तका भी पाठ होगा।

इसी प्रकार "आयुष्य शांतिः स्वस्तिगण ऐरावत्याम्" इस नक्षत्रकल्प १८ के अनुसार ऐरावती महाशांतिमें भी इसका विनियोग होगा।

'इहेदसाथ' इस चौथी ऋचासे विवाहमें शुल्कद्रव्यको अलग रखकर ये द्रव्य तेरा है ये द्रव्य मेरा है, ये मेरा है इस प्रकार विभाग करे। सूत्रमें भी कहा है, कि—"इहेदसाथेत्येतया शुल्कं अपाकृत्य द्वाभ्यां निवर्तयतीह तव राध्यताम् अत्र ममेति यथा वा मन्यन्ते" इति (कौशिकसूत्र १०। ५)

सं वो मनांसि इन ५ वीं और छठी ऋचासे सांमनस्य कर्ममें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ग्रामके मध्यमें संपातित जलपूर्ण कुम्भको लावे तीन वर्षकी गौके पिशितका प्राशन करे, सम्पातित अन्नका प्राशन करे, संपातित सुराको पिलावे और पौके सम्पातित जलको पिलावे। इसी बात को कौशिकसूत्र २। ३ में कहा है, कि-"सं वो मनांसि (५) संज्ञानं न (७। ५४) इति सांमनस्यान्युदकुलिजं सम्पातवन्तं ग्रामं परिहृत्य मध्ये निनयत्येवं सुरकुलिजं त्रिहायण्या वत्सतर्याः शुक्लानि पिशितान्याशयति भक्तं सुरां प्रपां सम्पातवत् करोति॥

तत्र प्रथमा॥

आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन् पृथिवीमुस्रियाभिः।
अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद् राष्ट्रं संवेश्यं दधातु

आ। यातु। मित्रः। ऋतुऽभिः। कल्पमानः। सम्ऽवेशयन्। पृथिवीम्। उस्रियाभिः।
अथ। अस्मभ्यम्। वरुणः। वायुः। अग्निः। बृहत्। राष्ट्रम्। सम्ऽवेश्यम्। दधातु॥ १॥

मित्रः। मीतेर्मरणात् त्रायते इति मित्रः एतन्नामको देवः। ❀ मित्रः प्रमीतेस्त्रायते इति हि निरुक्तम् [नि० १०. २१] ❀। यद्वा सर्वेषां मित्रवद् उपकारकः। "मित्रं देवाः" इति प्रक्रम्य आम्नातम्। "सर्वस्य वा अहं मित्रम् अस्मि" [तै० सं० ६. ४. ८. १] इति। सः मित्रः आ यातु अस्मद्रक्षणार्थम् आगच्छतु। कीदृशः। ऋतुभिः वसन्ताद्यैः कल्पमानः। ऋतुसांतत्येन दीर्घम् आयुः कर्तुं समर्थो भवन्नित्यर्थः। ❀कृपू सामर्थ्ये। लटः शानच्।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शपि "कृपो रो लः" इति लत्वम् । ०अदुपदेशाल्लसार्वधातुक०" [इति] अनुदात्तत्वे शपः पित्त्वाद् अनुदात्तत्वे च धातुस्वरेण आद्युदात्तत्वम् ❀ । किं कुर्वन् । उस्रियाभिः गोभिः । किरणैरित्यर्थः । पृथिवीम् विस्तीर्णां भूमिं संवेशयन् व्याप्नुवन् ॥ अथ मित्रागमनानन्तरं वरुणः वायुः अग्निश्च अस्मभ्यम् बृहत् महत् राष्ट्रम् राज्यं संवेश्यम् संवेशार्हम् अवस्थानयोग्यं दधातु विदधातु प्रकरोतु । प्रत्येकापेक्षया एकवचनम् । ❀ संपूर्वाद्द विशेः अर्हार्थे यत् प्रत्ययः ❀

मरणसे रक्षा करने वाले वा मित्रकी समान सबका उपकार करने वाले मित्र नामक देवता अपनी किरणोंसे पृथिवीको व्याप्त करते हुए वसन्त आदि ऋतुओंसे हमारी दीर्घायु करनेमें समर्थ होते हुए आवें मित्रदेवताके आगमनके अनन्तर वरुण वायु और अग्निदेवता हमें बड़े भारी राज्य पर बैठने योग्य करें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः ।

हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि

धाता । रातिः । सविता । इदम् । जुषन्ताम् । इन्द्रः । त्वष्टा । प्रति । हर्यन्तु । मे । वचः ।

हुवे । देवीम् । अदितिम् । शूरऽपुत्राम् । सऽजातानाम् । मध्यमेऽस्थाः । यथा । असानि ॥ २ ॥

धाता सर्वस्य विधाता एतन्नामा देवः रातिः दानशीलोर्यमा । "यः खलु वै ददाति सोर्यमा" [तै० सं० २. ३. ४. १.] इति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रुतेः । ❀ रा दाने इत्यस्मात् कर्तरि क्तिच् ❀ । सविता सर्वस्य प्रेरको देवश्च इदम् मदीयं हविः जुषन्ताम् सेवन्ताम् । ❀ जुषी प्रीतिसेवनयोः ❀ ॥ एते धात्रादयः इन्द्रस्त्वष्टा च मे मदीयं वक्ष्यमाणं वचः वाक्यं स्तुतिलक्षणं वा प्रति हर्यन्तु आभिमुख्येन कामयन्ताम् । सादरं शृण्वन्तु इत्यर्थः । ❀ हर्य गतिकान्त्योः ❀ ॥ शूरपुत्रान् शूरा विक्रान्ताः शौर्योपेताः पुत्रा मित्रवरुणादयो यस्याः सा तथोक्ता तां देवीम् दानादिगुणयुक्ताम् अदितिम् अदीनां देवमातरं हुवे आह्वयामि । ❀ ह्वेञो "बहुलं छन्दसि" इति संप्रसारणम् ❀ । किमर्थम् । सजातानाम् समानं जातानां बन्धूनां मध्यमेष्ठाः मध्यमेव मध्यमम् । मध्येवर्तमानो यथा असानि भवानि । समृद्धकामः सन् स्वसमानैः सेव्यो यथा भवानि तथा कुर्वन्तु इत्यर्थः । ❀ मध्यमपूर्वात् तिष्ठतेर्विच् । सुषामादित्वात् षत्वम् । "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इति सप्तम्या अलुक् । असानि । असेर्लोटि "आडुत्तमस्य पिच्च" इत्याडागमः ❀ ॥

सबके विधाता धाता नाम वाले देव और दानशील अर्यमा नामक देव तथा सबके प्रेरक सविता देवता मेरी हविको स्वीकृत करें । और धाता आदि देवता तथा इन्द्र और त्वष्टा देवता भी मेरी स्तुतिरूपवाणीको आदरपूर्वक श्रवण करें । जिसके मित्र वरुण अर्यमा आदि शूर पुत्र हैं उस देवमाता अदितिका मैं आह्वान करता हूँ (आह्वान करनेका कारण यह है, कि-) जिस प्रकार मैं अपने सजातियोंमें मध्यमें बैठने योग्य होऊँ तात्पर्य यह है, कि-मैं पूर्णकाम होकर अपने समान पुरुषोंसे जिस प्रकार सेवनीय बनूँ, तैसा देवता करें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

हुवे सोमं॑ सवि॒तारं॒ नमो॑भि॒र्विश्वा॑नादि॒त्याँ अ॒हमु॑त्त॒रत्वे

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अयमग्निर्दीदायद् दीर्घमेव सजातैरिद्धोप्रतिब्रुवद्भिः

हुवे । सोमम् । सवितारम् । नमःऽभिः । विश्वान् । आदित्यम् । अहम् । उत्तरऽत्वे ।

अयम् । अग्निः । दीदयत् । दीर्घम् । एव । सऽजातैः । इद्धः । अप्रतिब्रुवत्ऽभिः ॥ ३ ॥

सोमं सवितारं विश्वान् सर्वान् आदित्यान् अदितेः पुत्रान् अन्यांश्च नमोभिः नमस्कारोपलक्षितैः स्तावकैर्मन्त्रैः अहं प्रयोक्ता उत्तरत्वे यजमानस्य श्रैष्ठ्यै । ❀ निमित्तसप्तम्येषा ❀ । श्रैष्ठ्यार्थं हुवे आह्वयामि ॥ तथा अयम् आहुत्याधारभूतः अग्निर्दीदयत् दीप्यताम् । ❀ दीदेतिश्छान्दसो दीप्तिकर्मा । अस्मात् लेटि अडागमः ❀ । अप्रतिब्रुद्भिः अप्रतिकूलवादिभिः अनुकूलं वदद्भिः सजातैः समानजन्मभिः पुरुषैः दीर्घमेव चिरकालमेव इद्धः समद्धिः तैरभिवर्धितः । यथाहं असानि इति वाक्यशेषः । तथा दीप्यताम् इति संबन्धः । ❀ इद्ध इति । ञिइन्धी दीप्तौ । अस्माद् निष्ठायाम् इट्प्रतिषेधः । "अनिदिताम्०" इति नलोपः ❀ ॥

मैं प्रयोग करने वाला यजमानको श्रेष्ठता दिलानेके लिये सोमदेवताको सवितादेवताको और अदितिके अन्य भी सब पुत्रों को नमस्कार और स्तुतिके मन्त्रोंसे आह्वान करता हूँ । तथा मैं सजातीय पुरुषोंसे चिरकाल तक बढ़ावा पाता रहूँ, इसलिये यह आहुतिका आधारभूत अग्नि प्रदीप्त होवे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इहेदसाथ न परो गमाथेर्यो गोपाः पुष्टपतिर्व आजत् ।

असमै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु ४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इह । इत् । असाथ । न । पुरः । गमाथ । ईर्यः । गोपाः ।
पुष्टऽपतिः । वः । आ । अजत् ।
अस्मै । कामाय । उप । कामिनीः । विश्वे । वः । देवाः । उपऽसंयन्तु

हे कामिन्यः यूयम् इहेत् । ❀ इत् इत्यवधारणे ❀ । इहैव कन्यासमीपदेश एव असाथ भवत वर्तध्वम् । ❀ अस्तेर्लेटि आडागमः ❀ ।। पुरः पुरस्ताद् न गमाथ । अनेतृकाः सत्यो न गच्छत । ❀ पुर इति । "पूर्वाधरावराणाम् असि पुरधवश्चैषाम्" इति असिप्रत्ययः तत्संनियोगेन पूर्वशब्दस्य पुरादेशश्च । गमाथ । गमेर्लेटि आडागमः । छान्दसः शपो लुक् ❀ ।। ईर्यः मार्गप्रेरको गोपाः गोपायिता पालयिता पुष्टपतिः । पुष्टं पोषः । तस्य पतिः पोषयिता । पूषा देव इत्यर्थः । "पूषापोषयत्" [तै० ब्रा० १. ६. २. २] इति हि श्रुतिः । ईदृशो देवो वः युष्मान् आजत् प्रेरयतु । ❀ अज गतिक्षेपणयोः । ईर्य इति । ईर गतौ । अस्माद् ण्यन्ताद् "अचो यत्" इति व्यत्ययेन कर्तरि यत् । गोपाः । गुपू रक्षणे । "गुपूधूपविच्छि०" इति आयप्रत्ययः । तदन्तात् क्विप् । अतो लोपे "वेरपृक्तलोपाद् वलिलोपो बलीयान्" इति यलोपः❀।। तथा कामाय कामयमानाय । ❀ कामयतेः पचाद्यच् ❀ । अस्मै वराय । यद्वा कामः कामना । ❀ भावे घञ् । अस्मै इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀ । अस्य वरस्य कामाय उप तत्समीपे कामिनीः कामः काम्यमानं फलम् तद् आसु विद्यत इति कामिन्यः स्त्रियो गावः । ❀ मत्वर्थीय इनिः ❀ । यद्वा कामयमानाः । ❀ ग्रहादित्वाद् णिनिः ❀ । ईदृशीः वः युष्मान् विश्वे देवा उपसंयन्तु उपमगयन्तु । ❀ इण् गतौ । अस्मात् लोटि "इणो यण्" इति यण् ❀ ।।

हे कामनियो ! तुम कन्याके समीपके स्थानमें ही रहो, सामनेसे न जाओ अर्थात् नेतारहित होकर न जाओ मार्गप्रेरक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रक्षक पोषण करनेवाले स्वामी पूषा देवता तुम्हें प्रेरणा करें, इस वरकी इच्छाके लिये कामनियोंको विश्वेदेवा आपको पासमें रक्खें४

पञ्चमी ॥

सं वो॒ मनां॑सि॒ सं व्र॒ता समाकू॑तीर्नमामसि ।
अमी ये विव्र॑ता॒ स्थन॒ तान् व॒: सं न॑मयामसि ॥५॥

सम् । व॒: । मनां॑सि । सम् । व्र॒ता । सम् । आऽकू॑तीः । न॒मा॒म॒सि॒ ।
अ॒मी इति॑ । ये । विऽव्र॑ताः । स्थन॑ । तान् । व॒: । सम् । न॒म॒या॒म॒सि॒॥५॥

हे विमनस्का जनाः वः युष्माकं मनांसि परस्परविरुद्धानि सं नमामसि । सम् इति एकीभावे । एकविषयमह्वाणि अविसंवादीनि कुर्मः ॥ तथा व्रता व्रतानि । कर्मनामैतत् । वचनादानादिकर्माणि सं नमयामः ॥ एवम् आकूतीः संकल्पान् सं नमयामः । ❀ नमेर्ण्यन्तात् लटि शपः "छन्दस्युभयथा" इत्यार्धधातुकत्वात् णिलोपः । "इदन्तो मसिः" ❀ । ये अमी यूयं पूर्वं विव्रताः विरुद्धकर्माणः स्तन भवथ । ❀ अस्तेर्लोटि तशब्दस्य "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तनादेशः । "श्नसोरल्लोपः" इत्यकारलोपः ❀ । तान् विमनस्कान् वः युष्मान् सं नमयामसि संनमयामः । ❀ नमेर्ण्यन्तात् लटि "ज्वलह्वलह्मलनमाम् अनुपसर्गाद्वा" इति मित्त्वविकल्पस्य अनुपसर्गविषयत्वात् सोपसर्गस्य तु अमन्तत्वेन प्राप्तं मित्त्वं नित्यम् इति "मितां ह्रस्वः" इति उपधाह्रस्वत्वम् ❀ ॥

हे विरुद्ध मन वाले पुरुषो ! तुम्हारे परस्पर विरुद्ध मनोंको एक विषयसे प्रसन्न होनेवाले विरुद्धतासहित करता हूँ । तुम्हारे वार्तालाप आदि कर्मोंको और तुम्हारे संकल्पोंको मैं विरोधभाव से शून्य अनुकूल करता हूँ । पहिले जो तुम परस्परके विरुद्ध कर्म करते रहते थे उन तुमको अनुकूल करता हूँ ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE ६-८-२६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

षष्ठी ॥

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान
एत ॥ ६ ॥

अहम् । गृभ्णामि । मनसा । मनांसि । मम । चित्तम् । अनु ।
चित्तेभिः । आ । इत ।

मम । वशेषु । हृदयानि । वः । कृणोमि । मम । यातम् । अनुऽ-
वर्त्मानः । आ । इत ॥ ६ ॥

हे विमनस्काः युष्मदीयानि विमतिपन्नानि मनांसि मनसा मदीयेन अहं गृह्णामि स्वाधीनीकरोमि ॥ तथा यूयमपि मम चित्तम् अनुचित्तेभिः अनुसारिभिर्युष्मदीयैश्चित्तैः एत आगच्छत ॥ मम वशेषु वशे इच्छामात्रे । ❀ व्यत्ययेन बहुवचनम् ❀ । यद्वा वशेषु वशीकृतेषु स्वाधीनेष्वर्थेषु । ❀ वश कान्तौ । इत्यस्माद् "वशिरण्योरुपसंख्यानम्" इति भावे कर्मणि वा अप् ❀ । वः युष्मदीयानि हृदयानि कृणोतु भवन्तः कुर्वन्तु । प्रत्येकविवक्षया एकवचनम् ॥ एवं मम यातम् गमनं यूयमपि अनुवर्त्मानः अनुसृतमार्गाः सन्तः ऐत आगच्छत ॥

इति तृतीयकाण्डे द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे विमनस्क पुरुषों ! तुम्हारे प्रतिकूल मनोंको मैं अपने मनसे स्वाधीन करता हूँ तथा तुम भी मेरे चित्तके अनुकूल हुए चित्तों के साथ आओ, मेरे अधीन कामोंमें तुम अपने मनको लगाओ तथा मेरे स्वीकृत मार्ग पर चलनेकी इच्छा रखकर तुम आओ ६

तृतीयकाण्डके द्वितीय अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (७९) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"कर्शफस्य" इति सूक्तेन विघ्नशमनकर्मणि स्पर्धारूपविघ्नविनाशार्थम् अरलुमणिबन्धनम् सर्पशृङ्गिदंष्ट्र्यादिविघ्नशमनार्थं संपातयुक्तवेणुदण्डधारणम् संग्रामे शत्रुकृतमायादिरूपविघ्ननिवारणार्थं संपातयुक्तायुधधारणम् सर्वारम्भविघ्नशमनार्थं फलीकरणैर्धूपनं च कुर्यात् । सूत्रितं हि । "कर्शफस्येति पिशङ्गसूत्रम् अरलुदण्डं यद् आयुधं फलीकरणैर्धूपयति" इति [कौ० ५. ७] ॥

विघ्नशमनकर्म में स्पर्धारूप विघ्नका नाश करनेके लिये 'कर्शफस्य' सूक्तसे अरलु (सोनापाढ़ा) की मणि बाँधे, सर्पके और सींग वाले प्राणियोंके और डाढ़ वाले प्राणियोंके विघ्नको शमन करनेके लिये सम्पातित बाँसके दण्डेको धारण करे और संग्राम में शत्रुकी रचीहुई माया आदि विघ्नोंको दूर करनेके लिये संपातित आयुधको धारण करे और सब कामोंका आरम्भ करते समय विघ्नको शान्त करनेके लिये भुससे धूपन करे । सूत्रमें भी कहा है, कि-"कर्शफस्येति पिशङ्गसूत्रं अरलुदण्डं यद्व आयुधं फलीकरणैर्धूपयति" (कौशिकसूत्र ५ । ७) ॥

तत्र प्रथमा ॥

कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता ।
यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः ॥ १ ॥

कर्शफस्य । विऽशफस्य । द्यौः । पिता । पृथिवी । माता ।
यथा । अभिऽचक्र । देवाः । तथा । अप । कृणुत । पुनः ॥१॥

कर्शफस्य [करशफस्य] कृशशफस्य वा श्वापदस्य व्याघ्रादेः विशफस्य विगतशफस्य स्पर्धमानपुरुषकालसर्पादेः विस्पष्टशफस्य वा क्रूरगोमहिषादेः तस्य उभयविधस्य बहुविधविघ्नकारिणः द्यौः द्युलोकः पिता वृष्ट्यादिद्वारा उत्पादकः । पृथिवी माता स्वावयवा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वष्टम्भेन आधारत्वेन च मातृवज्जनयित्री । अनेन विघ्नहेतूनाम् एतेषां दृढमूलत्वात् तन्निवारणम् अल्पप्रयाससाध्यं न भवतीति सूचितम् । अथ वा पितृमातृभूतद्यावापृथिवीसंकीर्तनेन विघ्नोत्पादनाभावाय तेषां स्तुतिः कृता । एवं विघ्नकारिणां स्तुतिः श्रुत्यन्तरेपि दृश्यते । "द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा" इति [ऋ० १. १९१. ६]। "नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीम् अनु" [तै० सं० ४. २. ८. ३] इति च ॥ तेषां विघ्नहेतूनाम् अपनोदनाय तत्प्रेरका देवाः प्रार्थ्यन्ते यथेत्यादिना । हे देवाः यूयं यथा येन प्रकारेण अभिचक्र उक्तान् विघ्नहेतून् पूर्वम् अस्मदभिमुखान् कृतवन्तः स्थ । ❀ करोतेः परोक्षे लिटि मध्यमबहुवचने रूपम् "यावद्यथाभ्याम्" इति निघातप्रतिषेधः ❀ ॥ तथा तेनैव प्रकारेण पुनः अप कृणुत अस्मत्तः अपगतान् कुरुत । निवर्तयतेत्यर्थः । ❀ कृवि हिंसाकरणयोश्च । "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः ❀ ॥

जिनके हाथमें खुर होता है ऐसे कृश (शफ) खुर वाले व्याघ्र आदिके, शफरहित स्पर्धा करनेवाले पुरुष काल सर्प आदि के और स्पष्ट शफ वाले क्रूर गौ महिष आदिके वृष्टि आदिके द्वारा उत्पादक आकाश पिता हैं और आधार होनेसे माता पृथिवी हैं (इससे सूचित किया है, कि—इन विघ्नहेतुओंके दृढ़मूल होनेसे इनका निवारण थोड़ेसे प्रयत्नसे नहीं होसकता । माता और पितारूप द्यावापृथिवीका संकीर्तन करके विघ्नोत्पादनके अभावके लिये इनकी स्तुति की है) † हे देवताओं ! तुमने इन

† विघ्नकारियोंकी स्तुति दूसरी श्रुतियोंमें भी सुनी जाती है। यथा—"द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ॥ द्यौ तुम्हारे पिता है, पृथिवी तुम्हारी माता हैं, सोम तुम्हारे भ्राता हैं और अदिति तुम्हारी वहिन है" (ऋग्वेदसंहिता १ ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विघ्नहेतुओंको जिस प्रकार हमारे अभिमुख किया है उसी प्रकार तुम हमसे इनको हटाओ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम् ।

कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव ॥ २ ॥

अश्रेष्माणः । अधारयन् । तथा । तत् । मनुना । कृतम् ।

कृणोमि । वध्रि । विऽस्कन्धम् । मुष्कऽआबर्हः । गवाम्ऽइव ॥२॥

अश्लेष्माणः अश्लिष्टाः विघ्नैरभिमतकार्यसंप्राप्तिशून्या जनाः । ❀ श्लिष आलिङ्गने इत्यस्मात् श्लिष श्लेषणे इत्यस्मात् चौरादिकाद् वा औणादिको मनिन् ❀ । यद्वा श्लेष्मोपलक्षितत्रिदोषदूषितशरीररहिताः दिव्यदेहा देवाः अधारयन् । विघ्नशमनाय अरलुवृक्षविकारमणिं दण्डादिकं च धृतवन्तः ॥ तथा तद्वदेव तत् मण्यादिधारणं मनुना मनुष्यस्रष्टेः कर्त्रा स्वायंभुवेन कृतम् अनुष्ठितम् ॥ एवम् अहमपि मण्यादिधारणेन विष्कन्धम् कार्यप्रवृत्तिप्रतिबन्धकं विघ्नजातं वध्रि । शुष्कचर्ममयी रज्जुर्वध्री । [वध्री] वरत्रा स्यात् इत्यभिधानात् [अ० को० २. १०. ३१] । तद्युक्तम् उन्मूलनपाशयुक्तं कृणोमि । पाशेनाकृष्य उन्मूलयामीत्यर्थः । ❀ वध्रीशब्दाद् व्रीह्यादेराकृतिगणत्वाद् मत्वर्थीय इनिः ❀ । यद्वा वध्रः पण्डः ।

निसर्गपण्डो वध्रश्च पक्षपण्डस्तथैव च ।

इत्यादिस्मरणात् । अत्र वध्रशब्दो निर्वीर्यत्वरूपधर्मपरः ।

१६१ । ६) और तैत्तिरीयसंहिता ४ । २ । ८ । ३ में कहा है, कि–"नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीम् अनु ॥–जो पृथिवी पर रहते हैं उन सर्पोंके लिये नमस्कार है" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सोऽस्यास्तीति वध्रि निर्वीर्यं कार्याक्षमं करोमि। यद्वा वध्रि वध्यं विनष्टं करोमि। ❀ अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन् [उ० ४. ६५] इति बाहुलकाद् वधेर्हिंसार्थादपि भवति ❀। तत्र दृष्टान्तः। मुष्काबर्हो गवामिव गवाम् पुंगवानां मुष्काबर्हः। मुष्कम् आवृहति उन्मूलयतीति मुष्काबर्हः। ❀ कर्मण्यण् ❀। यद्वा आबर्हणम् आबर्हः। ❀ भावे घञ् ❀। मुष्कस्याबर्हो मुष्काबर्हः। स यथा तान् निर्वीर्यान् प्रजननाशक्तान् करोति तद्वत्॥

विघ्नोंके द्वारा अभिमत कार्यकी प्राप्तिसे शून्य रह जाने वाले मनुष्योंने और श्लेष्म आदि त्रिदोषसे रहित दूषित शरीर वाले देवताओंने विघ्नशमनके लिये अरल वृक्षकी मणिको और दण्ड आदिको धारण किया है। इसी प्रकार मनुष्यसृष्टिको रचने वाले स्वायंभुव मनुने भी किया है। इसी प्रकार मैं भी मणि आदिको धारण कर कार्यप्रवृत्तिके प्रतिबंधक विघ्नोंको शुष्कचर्मकी रस्सी के पाससे खेंच कर उन्मूलित करता हूँ, निर्वीर्य करता हूँ, जैसे अण्डकोशोंका कुचलना बैलोंको निर्वीर्य (सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ) करता है, इसी प्रकार मैं अरलुकी मणि आदिको धारण कर विघ्नोंको निर्वीर्य करता हूँ॥ २॥

तृतीया॥

पिशङ्गे सूत्रे खृगलं तदा बध्नान्ति वेधसः।
श्रवस्युं शुष्मं काबवं वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः॥ ३॥

पिशङ्गे। सूत्रे। खृगलम्। तत्। आ। बध्नन्ति। वेधसः।
श्रवस्युम्। शुष्मम्। काबवम्। वध्रिम्। कृण्वन्तु। बन्धुरः॥३॥

पिशङ्गे पिशङ्गवर्णे सूत्रे। प्रोतम् इति शेषः। खृगलम् तनुत्राणम्। "खृगलेव विस्रसः पातम् अस्मान्" [ऋ० २. ३९. ४]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इत्यत्र मन्त्रे खृगलं तनुत्राणम् इति भरतस्वामिना व्याख्यातम्। कवचवत् परकृतविघ्नापनोदनेन रक्षकं तत् तम् उक्तगुणम् अरलुमणिं वेधसः विधातारः साधकाः आ बध्नन्ति शरीरे धारयन्ति॥ बन्धुरः। ❀ बन्धेरौणादिक उरच् प्रत्ययः ❀ ॥ अस्माभिरपि बद्धः स मणिः श्रवस्यम्। श्रव इत्यन्ननाम। बालरूपम् अन्नम् अर्हतीति श्रवस्यः। ❀ "छन्दसि च" इति यत् प्रत्ययः ❀। तं शुष्मम् शोषकम्। ❀ शुष शोषणे। अविसिविसिशुषिभ्यः कित् [उ० १, १४१] इति मन् प्रत्ययः ❀। काबवम्। कबुः कर्बुरवर्णः क्रूरः प्राणी। तत्संबन्धी विघ्नः काबवः। ❀ कबृ वर्णे इत्यस्माद् औणादिक उप्रत्ययः। "तस्येदम्" इत्यर्थे अण् ❀। ईदृशं विघ्नजातं वध्रिम् निर्वीर्यं वध्यं वा कृण्वन्तु करोतु। ❀ व्यत्ययेन बहुवचनम् ❀। यद्वा बन्धुरः। ❀ जसः स्थाने "सुपां सुलुक्०" इति सुः ❀। बन्धुराः अस्माभिर्धार्यमाणाः मणिदण्डादयः श्रवस्याद्युक्तलक्षणं विघ्नं वध्रिं कृण्वन्तु ॥

पिंगलवर्णके डोरेमें पुरी हुई खृगल अर्थात् † कवचकी समान दूसरेके किये हुए विघ्नोंको रोक कर रक्षा करने वाली अरलुमणिको साधक धारण करते हैं। हमारी भी धारण की हुई यह मणि श्रवस्य (बालरूप अन्नको लगने वाले), शोषक, कर्बुर वर्णके क्रूर प्राणीरूप विघ्नको निर्वीर्य करे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

येना॑ श्रवस्यव॒श्चर॑थ दे॒वा इ॑वासुरमा॒यया॑ ।
शुनां॑ क॒पिरि॑व दूष॑णो ब॒न्धुरा॑ काबव॒स्य॑ च ॥४॥

† "खृगलेव विस्रसः पातं अस्मान् ॥–(ऋग्वेदसंहिता २। ३९। ४) इस मन्त्रकी व्याख्या करते समय भरतस्वामीने खृगल शब्दका अर्थ कवच किया है ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

येन । अवस्यवः । चरथ । देवाःऽइव । असुरऽमायया ।

शुनाम् । कपिःऽइव । दूषणः । बन्धुरा । काबवस्य । च ॥४॥

हे जनः अवस्यवः । अवः अन्नं यशो वा । तत् शत्रुजयेन आत्मन इच्छन्तः । ❀ "क्याच्छन्दसि" इति उप्रत्ययः ❀ । तादृशा यूयं येन परकृतमायारूपविघ्नेन मोहिताः सन्तश्चरथ संग्रामे वर्तध्वे। तत्र दृष्टान्तः । असुरमायया असुरसंबन्धिन्या मायया मोहिता देवा इव । तथाविधानां भवतां संबन्धिनो मायारूपविघ्नस्य काबवस्य प्रागुक्तलक्षणस्य विघ्नविशेषस्य च बन्धुरा संबद्धा धृता खड्गादिरूपा हेतिः दूषयित्री भवतु । किमिव । शुनां कपिर्यथा दूषणः । उपमानापेक्षया पुंलिंगता । ❀ शुनाम् इति । "श्वयुवमघोनाम् अतद्धिते" इति संप्रसारणम् । "न गोश्वन्त्साववर्ण०" इति विभक्त्युदात्तत्वप्रतिषेधः । दूषणः । दुष वैकृत्ये । इत्यस्मात् "कृत्यल्युटो बहुलम्" इति कर्तरि ल्युट् । "दोषो णौ" इति ऊत्वम् ❀

हे शत्रुको जीत कर अन्न धन चाहने वाले मनुष्यों ! तुम असुरोंकी मायासे मोहित देवताओंकी समान दूसरेकी की हुई मायारूप विघ्नसे मोहित होकर संग्राममें विचर रहे हो, उस मायारूप विघ्नसे और काबवरूप विघ्नसे संयुक्त खड्ग आदि बन्दर जैसे कुत्तोंका दूषण है, तैसे विघ्नोंका दूषक हो ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

दुष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम् ।
उदाशवो रथा इव शपथेभिः सरिष्यथ ॥ ५ ॥

दुष्ट्यै । हि । त्वा । भत्स्यामि । दूषयिष्यामि । काबवम् ।

उत । आशवः । रथाःऽइव । शपथेभिः । सरिष्यथ ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे मणे त्वा त्वां हि यस्मात् दुष्ट्यै परकृतविघ्नदूषणाय भत्स्यामि बध्नामि। ❀ बन्धेर्लृटि "एकाच उपदेशेनुदात्तात्" इति इट्प्रतिषेधः। नलोपश्छान्दसः ❀। यद्वा विघ्नगृहीतः संबोध्यः। हे विघ्नगृहीत सर्वारम्भविघ्ननिवारणाय त्वां भत्स्यामि दीपयामि। फलीकरणैर्धूपयामीत्यर्थः। ❀ भस भर्त्सनदीप्त्योः। छान्दस इडभावः। "सस्यार्धधातुके" इति तत्वम् ❀॥ तस्मात् काबवम् उक्तलक्षणं विघ्नविशेषं दूषयिष्यामि नाशयिष्यामि। "एकशतं विष्कन्धानि" इति वक्ष्यति। तेषु प्रधानत्वात् काबवस्य पुनः पुनरुपादानम्॥ ततश्च उदाशवः। आशुरश्वः। गमनोन्मुखैर्वेगवद्भिः अश्वैर्युक्ता रथा इव हे जना यूयं शपथेभिः शपथैः परकृतैर्विघ्ननिमित्तैराक्रोशैः। वियुक्ताः सन्त इति शेषः। व्यापारेषु अनिरुद्धगतयः चरिष्यथ यथेष्टं सञ्चरत। ❀ शपथेभिरिति। "बहुलं छन्दसि" इति भिस ऐसभावः ❀॥

हे मणे! तुझको मैं दूसरेके किये हुए विघ्नको दूषित करनेके लिये धारण करता हूँ (आगे एक सौ एक विघ्नोंका वर्णन आवेगा उनमें काबव प्रधान है अतः) काबवको मैं दूषित करता हूँ। तदनन्तर हे मनुष्यों! तुम गमनोन्मुख वेगवान् घोड़े वाले रथोंकी समान दूसरेके विघ्न डालने वाले आक्रोशोंसे रहित होकर अपने व्यापारोंको बिना रोकटोकके करो॥ ५॥

षष्ठी॥

एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु।

तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम्॥ ६॥

एकऽशतम्। विऽस्कन्धानि। विऽस्थिता। पृथिवीम्। अनु।

तेषाम्। त्वाम्। अग्रे। उत्। जहरुः। मणिम्। विस्कन्धऽदूषणम् ६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एकशतम् एकं च शतं च एकशतम् । ❀ "संख्या" इति सूत्रेण पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । एकशब्दोपि कन्प्रत्ययान्तत्वेन आद्युदात्तः ❀ । एकोत्तरशतसंख्यानि विष्कन्धानि विघ्नाः पृथिवीम् अनु पृथिव्यां विष्ठिता विष्ठितानि विविधम् अवस्थितानि । ❀ विपूर्वात् तिष्ठतेः कर्तरि निष्ठा । "द्यतिस्यतिमास्थाम् इत् ति किति" [इति] इत्त्वम् । "उपसर्गात् सुनोति०" इत्यादिना षत्वम् । शेर्लोपः । "अनुर्लक्षणे" इत्यनोः कर्मप्रवचनीयत्वात् "कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया" इति पृथिवीम् इति द्वितीया ❀ । तेषां विघ्नानां निवृत्तये हे मणे त्वाम् अग्रे पूर्वम् उज्जहुः देवा उद्धृतवन्तः । अतः विष्कन्धदूषणं मणिम् इमम् अरलुवृत्तविकारं मणिम् । अहमपि धारयामीति वाक्यशेषः ॥

इति तृतीयकाण्डे द्वितीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

एक सौ एक प्रकारके विघ्न पृथिवीमें अनेक प्रकारसे स्थित हैं, हे मणे ! उन विघ्नोंकी शांतिके लिये देवताओंने तेरा उद्धार किया था, अतः विघ्नोंकी दूषक अरलुमणिको मैं भी धारण करता हूँ ॥ ६ ॥

तृतीयकाण्डके द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (८०) ॥

"प्रथमा ह व्युवास" इति सूक्तेन सर्वेण पुष्टयर्थे अष्टकाकर्मणि आज्यमांसस्थालीपाकान् प्रत्येकं त्रिस्त्रिर्जुहोति । नवकृत्वः सूक्तावृत्तिः । माघकृष्णाष्टमी अष्टकेत्युच्यते । यथाहुः । "या माघ्याः पौर्णमास्या उपरिष्टाद् व्यष्टका तस्यां अष्टमी ज्येष्ठया संपद्यते ताम् एकाष्टकेत्याचक्षते" इति [आप० गृ० २१] । तस्यां तत् कर्म कार्यम् । तत्र धानाकरम्भशष्कुलीपुरोडाशोदौदनक्षीरौदनतिलौदनान् अधिश्रयणपर्यग्निकरणादिभिः संस्कृत्य आज्येन संमिश्रय विंशतिसंख्याकान् पिण्डान् कृत्वा पशोर्दक्षिणं बाहुं निर्लोमसचर्मखुरं प्रक्षाल्य निधाय अनेन सूक्तेन दर्व्या प्रत्यृचं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुत्वा अन्ते सदर्वीम् एकविंशीम् आहुतिं जुहुयात् । अयम् अत्र क्रमः । "प्रथमा ह व्युवास" [१-५] इत्याद्याः पञ्च । "आयमगन्त्संवत्सरः" [८, ९] इति द्वे । "इडया जुह्वतो वयम्" [११, १२] इति द्वे । इति नवभिर्नव पिण्डान् हुत्वा "ऋतुभ्यष्ट्वा" [१०] इत्यस्याम् ऋचि ऋतुभ्यष्ट्वा यजे स्वाहा आर्तवेभ्यस्त्वा यजे स्वाहा इत्येवं सानुषङ्गैरष्टधा विभक्तैर्मन्त्रैः अष्टौ पिण्डान् हुत्वा "इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे" [१३] इत्यन्तिमया अष्टादशीं जुहुयात् "अहोरात्राभ्यां त्वा यजे स्वाहा" [कौ० १४. २] इति सौत्रमन्त्रेण एकोनविंशीं हुत्वा "इडायास्पदम्" [६] इत्येका "आ मा पुष्टे च" [७] इत्येकावसाना द्वितीया । एताभ्याम् ऋग्भ्यां पशोर्दक्षिणं बाहुं विंशीं जुहुयात् । तदलाभे आज्यं जुहुयात् । "पूर्णादर्वि" [७] इति अवसानद्वयेन सदर्वीं पिण्डीम् एकविंशीं जुहोति । ततः धानाकरम्भादीनि हविरुच्छिष्टानि आज्यमिश्राणि कृत्वा "प्रथमा ह व्युवास" इति सर्वेण सूक्तेन तिस्र आहुतीर्जुहोति । इति पुष्ट्यर्थे अष्टकाकर्मण्ययं क्रमः । तद् उक्तं संहिताविधौ । "प्रथमा ह व्युवास सेत्यष्टक्याया [वपां] सर्वेण सूक्तेन तिस्र आहुतीर्जुहोति । समवत्तानां स्थालीपाकस्य सहहुतान् आज्यमिश्रान् हुत्वा पश्चाद् अग्नेर्वाग्यतः संविशति । महाभूतानां कीर्तयन् संजिहीते" इति [कौ० ३. २] ॥

नित्येऽष्टकाकर्मणि आद्यन्तयोरुक्तं सूक्तहोमं विहाय ऋग्भिरुक्तप्रकारेण एकविंशतिम् आहुतीर्जुहुयात् । तद् उक्तं कौशिकेन । "अष्टकायाम् अष्टकाहोमान् जुहुयात् । तस्या हवींषि धानाः करम्भः शष्कुल्यः पुरोडाश उदौदनः क्षीरौदनस्तिलौदनो यथोपपादे पशुः । सर्वेषां हविषां समुद्धृत्य दर्व्या जुहुयात् प्रथमा ह व्युवाससेति पञ्चभिः" इत्यादि [कौ० १४. २] ॥

अस्य दर्विहोमत्वात् तन्त्रविकल्पे प्राप्ते नित्यमेव तन्त्रम् इति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इषुफालिमाठरयोर्मतम्। [तथा च कौशिकः] "न दर्विहोमे न हस्तहोमे न पूर्णहोमे तन्त्रं क्रियेतेत्येके अष्टकायां क्रियेतेतीषुफालि-माठरौ" इति [कौ० १४. २] ॥

सोमयागे सोमक्रयणीपदहोमानुमन्त्रणे "इडायास्पदम्" [६] इत्येषा विनियुक्ता । [तद्] उक्तं वैतानसूत्रे । "सोमक्रयणीं प्रपाद्यमानाम्" इति प्रक्रम्य "पदाभिहोमम् इडायास्पदम्" इति [वै० ३.३] ॥ चातुर्मास्येषु साकमेधे पूर्णदर्विहोमे "पूर्णा दर्वि" [७] इत्येषा । तद् उक्तं वैताने । "कार्तिक्यां साकमेधाः" इति प्रक्रम्य "श्वो भूते पूर्णदर्व्यं पूर्णा दर्वे" इति [वै० २. ५] ॥

राज्ञो रात्रौ आरात्रिकविधाने 'यां देवाः प्रतिनन्दन्ति" [२] इत्येषा रात्रिदेवतावाहने विनियुक्ता । "संवत्सरस्य प्रतिमाम्" [३] इत्येषा च पिष्टमय्या रात्रिप्रतिकृतेरुपवेशने विनियुक्ता । तद् उक्तं परिशिष्टे । "अथातः पिष्टरात्र्याः कल्पं व्याख्यास्यामः" इति प्रक्रम्य "यां देवाः प्रतिनन्दन्तीति रात्रिम् आवाहयेत् । संवत्सरस्य प्रतिमाम् इति पिष्टमयीं प्रतिकृतिं कृत्वोदङ्मुखीम् उपवेशयेत्" [प० ६. १] इति ॥

तत्रैव रात्र्युपस्थाने "आ मा पुष्टे च पोषे च" इत्येता विनियुक्ताः । तद् उक्तं तत्रैव । "आ मा पुष्टे च पोषेत्येताभिरुपस्थाय" इति [प० ६. १] ॥

'प्रथमा ह व्युवास' इस सूक्तसे पुष्ट्यर्थ अष्टकाकर्ममें घृत मांस और स्थालीपाक इन तीनोंमेंसे प्रत्येककी तीन २ वार आहुति देय । नौ वार सूक्तको पढ़े। माघकृष्णा अष्टमी अष्टका कहलाती है। इसी बातको आपस्तम्बगृह्यसूत्र २१ में कहा है, कि–"या माघ्याः पौर्णमास्या उपरिष्टाद् व्यष्टका तस्याम् अष्टमी ज्येष्ठया सम्पद्यते ताम् एकाष्टकेत्याचक्षते ॥–माघकी पौर्णमासीसे पहिले जो दो आठें (अष्टमी) होती हैं उनमें जो अष्टमी ज्येष्ठासे संयुक्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होती है उसको एकाष्टका कहते हैं" ॥ उसमें इस कर्मको करना चाहिये। इसमें भुने हुए जौ, दही मिले हुए सत्तू, पूरी, पुरोडाशोदन, क्षीरौदन और तिलौदनोंको अधिश्रयण और पर्यग्निकरण आदिसे संस्कृत कर घृतसे मिलाकर वीस पिण्ड बनावे। फिर पशुकी दाहिनी भुजाको लोमरहित सचर्म खुरको प्रक्षालित कर इस सूक्तसे दर्वीके द्वारा प्रत्येक ऋचा पर होम करके अन्त में दर्वीसहित इक्कीसवीं आहुति होमे। उसका क्रम यह है, कि– 'प्रथम ह व्युवास' इस प्रथम ऋचासे पाँचवीं ऋचा तक (पाँच), आयमगन् संवत्सर" ये ८ वी और नवमी दो ऋचा, "इडया जुह्वतो वयम्" ये ग्यारहवीं बारहवीं दो ऋचाएँ इस प्रकार नौ ऋचाओंसे नौ पिण्डोंकी आहुति देकर 'ऋतुभ्यष्ट्वा' इस दशवीं ऋचाके ऋतुभ्यष्ट्वा यजे स्वाहा आर्तवेभ्यस्त्वा यजे स्वाहा इस प्रकार अनुषङ्ग सहित आठ प्रकार विभक्त मन्त्रोंसे आठ पिण्डों को होमे फिर 'इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे' इस तेरहवीं अंतिम ऋचासे अठारहवीं आहुति देय फिर 'अहोरात्राभ्यां त्वा यजे स्वाहा' (कौशिकसूत्र १४।२) इस सौत्रमन्त्रसे उन्नीसवीं आहुति होम कर 'इडायास्पदम्' इस छठी और 'आ मा पुष्टे च' इस सातवीं–इन दो ऋचाओंसे पशुकी दाहिनी भुजारूप वीसवीं आहुति देय। उसके अभावमें घृतकी आहुति देय। फिर 'पूर्णा दर्वि' इस सातवीं ऋचासे सदर्वी पिण्डीकी इक्कीसवीं आहुति देय। तदनन्तर भुने हुए जौ और दही मिले हुए सत्तू आदि हविरुच्छिष्टोंको घृतसे मिला कर "प्रथमा ह व्युवास" इस पूर्ण सूक्तसे तीन आहुति देय। इस प्रकार पुष्टिके लिये किये जाने वाले अष्टकाकर्ममें यह क्रम है। इसी बातको संहिताविधिमें कहा है, कि–"प्रथमा ह व्युवास सेत्यष्टक्यायाः [वपां] सर्वेण सूक्तेन तिस्र आहुतीर्जुहोति। समवत्तानां स्थालीपाकस्य सहहुतान् आज्य-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मिश्रान् हुत्वा पश्चाद्ध अग्नेर्वाग्यतः संविशति । महाभूतानां कीर्तयन् सञ्जिहीते" इति (कौशिकसूत्र ३ । २) ॥

नित्य-अष्टकाकर्ममें प्रारम्भ और अन्तमें कहे हुए सूक्तहोमके अतिरिक्त ऋचाओंसे पहिले कहे हुएकी समान आहुति देय । इसी बातको कौशिकने कहा है, कि-"अष्टकायां अष्टकाहोमान् जुहुयात् ॥ तस्या हवींषि धाना करंभः शष्कुल्यः पुरोडाश उदौदनः क्षीरौदनस्तिलौदनो यथोपपादे पशुः । सर्वेषां हविषां समुद्धृत्य दर्व्यां जुहुयात् प्रथमा ह व्युवास सेति पञ्चभिः" इत्यादि (कौशिकसूत्र १४ । २) ॥

यह दर्विहोम है अतः तंत्रविकल्पकी प्राप्ति होने पर इषुफालि और माठरका मत है, कि-नित्य ही तंत्र है । इसी बातको कौशिकसूत्र १४ । २ में कहा है, कि-'न दर्विहोमे न हस्तहोमे न पूर्णहोमे तंत्रं क्रियेतेत्येके अष्टकायां क्रियेतेतीषुफामिलाठरौ" इति (कौशिकसूत्र १४ । २ ॥ सोमयागमें सोमक्रमणीयपदहोमानुमन्त्रणमें 'इडायास्पदम्' इस छठी ऋचाका विनियोग होता है । इसी बातको वैतानसूक्तमें कहा है, कि "सोमक्रयणीं प्रपाद्यमानां" इति प्रक्रम्य "पदाभिहोमम् इडायास्पदम्" वैतानसूत्र ३।३) ॥

चातुर्मास्यमें होने वाले साकमेधके पूर्णदर्विहोममें पूर्णा दर्वि' यह सातवीं ऋचा पढ़ी जाती है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"कार्तिक्यां साकमेधाः" इति प्रक्रम्य "श्वोभूते पूर्णदर्व्यं पूर्णादर्वे" इति (वैतानसूत्र २ । ५) ॥

रात्रिके समय राजाकी आरती करते समय 'यां देवा प्रतिनन्दन्ति' यह दूसरी ऋचा रात्रि देवताके आवाहनमें विनियुक्त होती है । और 'सम्वत्सरस्य प्रतिमा' यह तीसरी ऋचा भी रात्रि की पिट्ठीकी प्रतिकृतिको बैठानेमें पढ़ी जाती है । इसी बातको परिशिष्टमें कहा है, कि-"अथातः पिष्टरात्र्याः कल्पं व्याख्या-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्याम" इति प्रक्रम्य "यां देवाः प्रतिनन्दन्तीति रात्रिं आवाहयेत्। सम्वत्सरस्य प्रतिमां इति पिष्टमयीं प्रतिकृतिं कृत्वोदङ्मुखीं उपवेशयेत्" ॥ (परिशिष्ट ६ । १) ॥

तहाँ ही उपस्थानमें " आ मा पुष्टे च पोषे च" इनका विनियोग है। इसी बातको तहाँ ही कहा है कि—"आ मा पुष्टे च पोषेत्येताभिरुपस्थाय" (परिशिष्ट ६ । १) ॥

तत्र प्रथमा ॥

प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद् यमे ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ १ ॥

प्रथमा । ह । वि । उवास । सा । धेनुः । अभवत् । यमे ।
सा । नः । पयस्वती । दुहाम् । उत्तराम्ऽउत्तराम् । समाम् ॥१॥

प्रथमा ह सृष्ट्यादौ उत्पन्ना खल्वेषा एकाष्टकासंबन्धिनी आद्या उषाः व्युवास तमोव्युदसनं कृतवती । ❀ विपूर्वो वसिर्वर्जने वर्तते ❀ । सृष्टेः प्राक् अहोरात्रविभागशून्यं कालं तद्युक्तम् अकरोद् इत्यर्थः । तथा च श्रुत्यन्तरे । "न वा इदं दिवा न नक्तम् आसीद् अव्यावृत्तम् । ते देवा एता व्युष्टीरपश्यन् । ता उपादधत । ततो वा इदं व्यौच्छत्" [तै० सं० ५. ३. ४. ७] इति । यद्वा हशब्दः श्रुत्यन्तरप्रसिद्धौ । तथा हि । "इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छत्" [तै० सं० ४. ३. ११. १] इति प्रक्रम्य "प्रजाम् एकः रक्षत्यूर्जम् एकः" [तै० सं० ४. ३. ११. १] इत्यादिना प्रजारक्षणादिव्यापारपञ्चकविधानेन "ऋतस्य गर्भः प्रथमा व्यूषुषी" [तै० सं० ४. ३. ११. ५.] इति मन्त्रोक्तव्यापारपञ्चकभेदेन वा "पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहाः" [तै० सं० ४. ३. ११. ४] इति पञ्चसंख्यानिर्दिष्टे नन्दादितिथ्यपेक्षया वा पञ्चोषसः प्रतिपादिताः । एतमेव भेदम् अपेक्ष्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"आस्वितरासु चरति प्रविष्टा" [४] इत्यग्रे समाम्नास्यते । तासां मध्ये एकाष्टकासंबन्धिन्युषाः प्रथमा सर्वत्रानुगमनात् प्रधानभूता सा व्युवासेति । सा तादृगुषोयुक्ता एकाष्टका यमे पितृणाम् अधिपतौ विषये धेनुः प्रीणयित्री अभवत् । अत्र एकाष्टकातिथेः पित्र्यकर्मणि अक्षयफलसाधनत्वेन धेनुत्वव्यपदेशः । अत एव अन्यत्राम्नायते । "एकाष्टकां पश्यत दोहमानाम् अन्नं मांसवद् घृतवत् स्वधावत्" इति । सा एकाष्टका धेनुः नः अस्माकं पयस्वती पयउपलक्षितभोग्यवस्तुयुक्ता सती उत्तरामुत्तरां समाम् । ❀ अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ❀ । उपर्युपरिभाविषु सर्वेषु वत्सरेषु दुहाम् अभिमतफलं दुग्धाम् । ❀ उत्तरामुत्तराम् इति । "नित्यवीप्सयोः" इति द्विर्वचनम् । "अनुदात्तं च" इति आम्रेडितानुदात्तत्वम् । दुहाम् इति । दुह प्रपूरणे । स्वरितेत्त्वाद् आत्मनेपदम् । "लोटि लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः ❀ ॥

यह सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न हुई एकाष्टकासंबंधी उषा अंधकारको दूर करती हुई । तात्पर्य यह है, कि—सृष्टिसे पहिले काल दिन और रात्रिके विभागसे शून्य था, उसको उषाने किया था × । ऐसी उषासे युक्त एकाष्टका पितरोंके अधिपतिकी धेनु हुई अर्थात् उनको तृप्त करती है ÷ ॥ वह एकाष्टका धेनु

× इसी बातका दूसरी श्रुतियोंमें प्रतिपादन किया है । "न वा इदं दिवा न नक्तं आसीद् अव्यावृत्तं । ते देवा एता व्युष्टीरपश्यन् । ता उपादधत । ततो वा इदं व्यौच्छत् ॥—पहिले न दिन था न रात्रि थी (दिन और रात्रिरूपसे) न लौटने वाला काल था । फिर देवताओंने उन व्युष्टियोंको देखा, और ग्रहण किया तब यह अंधकार दूर हुआ" (तैत्तिरीयसंहिता ३ ।४ । ७) ॥

÷एकाष्टका तिथि पित्र्यकर्ममें अक्षय फल देने वाली है अत एव उसको धेनु कहा है ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हमारे लिये पयस्वती (हो) उत्तरोत्तर उत्तम फलको देने वाली हो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम् ।

संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली २

याम् । देवाः । प्रतिऽनन्दन्ति । रात्रिम् । धेनुम् । उपऽआयतीम् ।

सम्ऽवत्सरस्य । या । पत्नी । सा । नः । अस्तु । सुऽमङ्गली २

याम् एकाष्टकासंबन्धिनीं रात्रिम् । ❀ "रात्रेश्चाजसौ" इति ङीबभावश्छान्दसः ❀ । धेनुम् उक्तप्रकारेण धेनुरूपाम् उपायतीम् समीपम् आगच्छन्तीं दृष्ट्वा देवाः हविर्भुजः प्रतिनन्दन्ति प्रशंसन्ति । ❀ उपायतीम् इति । उपाङ्पूर्वाद् एतेर्लटः शत्रादेशः । "इणो यण्" इति यण् । "उगितश्च" इति ङीप् । "शतुरनुमो नद्यजादी" इति नद्या उदात्तत्वम् ❀ । या एकाष्टका संवत्सरस्य तदात्मकस्य कालस्य पत्नी जाया । तथा च श्रुत्यन्तरम् । "एषा वै संवत्सरस्य पत्नी यद् एकाष्टका । एतस्यां वा एष एतां रात्रिं वसति" [तै० सं० ७. ४. ८. १] इति । सा एकाष्टका नः अस्मान् उद्दिश्य सुमङ्गली शोभनमङ्गलयुक्ता अस्तु भवतु । ❀ शोभनं मङ्गलं यस्या इति बहुव्रीहौ "नञ्सुभ्याम्" इत्युत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । "०सुमङ्गलभेषजाच्च" इति विहितस्य ङीपः उदात्तनिवृत्तिस्वरेण उदात्तत्वम् ❀ ॥

जिस एकाष्टकासंबंधी धेनुरूप रात्रिको समीपमें आती हुई देख कर हविका भोग लगाने वाले देवता प्रशंसा करते हैं, जो एकाष्टका सम्वत्सररूप कालकी पत्नी है‡ वह एकाष्टका

‡ तैत्तिरीयसंहिता ७ । ४ । ८ । १ में कहा है, कि "एषा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हमारी ओर ध्यान देकर शोभनमङ्गलमय होवे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ३

सम्ऽवत्सरस्य । प्रतिऽमाम् । याम् । त्वा । रात्रि । उपऽआस्महे ।
सा । नः । आयुष्मतीम् । प्रऽजाम् । रायः । पोषेण । सम् । सृज

हे रात्रि संवत्सरस्य प्रतिमाम् प्रतिकृतिरूपाम् प्रतिनिधित्वेन निर्मीयत इति प्रतिमा । ❀ "आतश्चोपसर्गे" इत्यङ् ❀ । यां त्वा त्वाम् उपास्महे सेवामहे । ❀ आस उपवेशने । अदादित्वात् शपो लुक् ❀ । सा त्वम् नः अस्माकं प्रजाम् पुत्रपौत्रादिरूपाम् आयुष्मतीम् चिरकालजीवनवतीं कुर्वती सती रायः धनस्य गवादिलक्षणस्य पोषेण पुष्ट्या सं सृज संयोजय । ❀ "षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इति रायो विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀ ॥

हे रात्रि ! सम्वत्सरकी प्रतिनिधिरूप जिन तुम्हारी हम उपासना करते हैं वह तुम हमारी पुत्र पौत्र आदिरूप प्रजाको चिरकाल तक जीवित रहने वाली करो फिर गौ आदि धनकी पुष्टि से हमैं संयुक्त करो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥ ४ ॥

वै संवत्सरस्य पत्नी यद् एकाष्टका। एतस्यां वा एष एतां रात्रिं वसति ॥ जो अष्टका है वही सम्वत्सरकी पत्नी है०" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इयम् । एव । सा । या । प्रथमा । वि॒ऽऔच्छत् । आसु । इतरासु ।
चरति । प्रऽविष्टा ।

महान्तः । अस्याम् । महिमानः । अन्तः । वधूः । जिगाय ।
नवऽगत् । जनित्री ॥ ४ ॥

इयमेव अद्यतनी एकाष्टकालक्षणा सा प्रथमम् उत्पन्ना उषाः। अनेन तादात्म्यप्रतिपादनेन अस्या अतिशयितमहत्त्वम् उक्तं भवति । तच्छब्दार्थम् आह । या उषाः प्रथमा प्रागुक्तप्रकारेण सृष्ट्यादौ उत्पन्ना सती व्यौच्छत् तमोनिरसनं कृतवती । ❀ उच्छी विवासे ❀ । सेयम् एकाष्टका उषाः आसु परिदृश्यमानासु [इतरासु] अन्यासु उषःसु प्रविष्टा अनुगता सती चरति वर्तते इति । श्रूयते हि । "एका सती बहुधोषो व्युच्छसि" [तै० सं० ४. ३. ११. ५] इति । ❀ प्रपूर्वाद् विशेः कर्तरि निष्ठा । व्यत्ययेन अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । यद्वा प्रविष्टा सूर्येणानुप्रविष्टा । ❀ कर्मणि क्तः । "गतिरनन्तरः" इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥ अस्याम् उक्तलक्षणायाम् उषसि अन्तः मध्ये महान्तः अपरिमिताः महिमानः माहात्म्यविशेषाः । वर्तन्त इति शेषः । यद्वा महिमानः महत्त्वोपेताः महान्तः मुख्याः सूर्यसोमाग्नयः अस्याम् अन्तर्वर्तन्ते । सूर्यादय एतदधीनाः प्रकाशन्त इत्यर्थः । "त्रय एनां महिमानः सचन्ते" [तै० सं० ४. ३. ११. १] इति श्रुतेः ॥ वधूः सूर्यस्य जाया उषाः । "सूर्यपत्नी विचरतः प्रजावती" इति [तै० सं० ४. ३. ११. १] श्रुत्यन्तरात् । नवगत् नवम् अभिनवं प्रतिदिवसम् उद्यन्तं सूर्यं तदविनाभावेन गच्छतीति नवम् अभिनवम् उत्पद्यमानं प्राणिजातं गच्छति व्याप्नोतीति वा नवगत् । यद्वा प्रतिदिनम् उत्पद्यमानमपि नवम् अभिनवम् उत्कृष्टम् एकविधं रूपं गच्छतीति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नवगत् । तथा च मन्त्रवर्णः । "पुनःपुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णम् अभि शुम्भमाना" [ऋ० १. ९२. १०] इति । अथवा नवधा विभक्तान् अहर्भागान् प्रातरादीन् गच्छतीति नवगत् । ते च भागाः प्रातःसंगवमध्याह्नापराह्णसायाह्नाख्याः पञ्च तदन्तरालकालाश्च चत्वारः । श्रूयते हि तैत्तिरीयके प्रातरादीन् प्रस्तुत्य "समानस्यान्हः पञ्च पुण्यानि नक्षत्राणि । चत्वार्यश्लीलानि । तानि नव" [तै० ब्रा० १. ५. ३. ४] इति । स्मर्यते च ।

प्रातरातः संगवश्च रुग्णो मध्याह्नसंतपौ ।
अपराह्णं खनिः सायं नवधा भिद्यते त्वहः ।

इति । ❀ नवपूर्वाद् गमेः क्विप् । "गमः क्वौ" इत्यनुनासिकलोपः । "ह्रस्वस्य पिति कृति०" इति तुक् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । एवंभूता उषाः जनित्री जनानां प्रकाशप्रदानेन साधु जनयित्री सती जिगाय जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । ❀ जयतेर्लिटि "सन्लिटोर्जेः" इत्यभ्यासाद् उत्तरस्य कुत्वम् । जनित्रीति । जनेर्ण्यन्तात् साधुकारिणि तृन् । "बहुलम् अन्यत्रापि" इति णिलोपः ❀ ॥

यह आजकी एकाष्टकालक्षणा प्रथम उत्पन्न हुई उषा है (इस प्रकार इसका परममहत्त्व सूचित होता है) जो पूर्वोक्त प्रकारसे सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न होकर अंधकारको दूर कर चुकी है । वह यह एकाष्टका उषा दीखती हुई दूसरी उषाओंमें प्रविष्ट होकर उदित होती है × ऐसी उषामें बड़े २ माहात्म्य हैं, सूर्य सोम अग्नि आदि बड़े २ देवता इसमें रहते हैं, तात्पर्य यह है, कि-सूर्य

× "एका सती बहुधोषो व्युच्छसि ॥ हे उषे ! तू एक होने पर भी अनेक प्रकारसे अंधकारको दूर करती है (तैत्तिरीयसंहिता ४ । ३ । ११ । ५) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आदि इसके अधीन होकर ही प्रकाश करते हैं † ॥ प्रतिदिन उदय होने वाले सूर्यमें अविना भावसे जाने वाली, प्रतिदिन उत्पन्न होने वाले प्राणियोंमें एकसे रूपसे जाने वाली और प्रतिदिन उत्पन्न होने वाले दिनमें एकसे नवीन रूपमें रहने वाली ‡ अथवा दिनके नौ भागोंमें जाने वाली नवगत् + सूर्यकी वधू उषा प्राणियोंको प्रकाशका दान देकर उनको उत्पन्न करने वाली होती हुई सर्वोत्कृष्टभावसे वर्तमान रहती है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।

एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ५

† तैत्तिरीयसंहिता ४ । ३ । ११ । १ में कहा है, कि–"त्रय एनां महिमानः सचन्ते ॥-तीन महत्व सम्पन्न इसकी सेवा करते हैं"

‡ ऋग्वेदसंहिता १ । ९२ । १० में कहा है, कि–"पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णं अभिशुम्भमाना ॥–यह प्राचीन उषा वारम्वार उत्पन्न होकर भी एकसे वर्णका ही सेवन करती है ॥"

+प्रातः संगव मध्याह्न अपराह्न और सायाह्न ये दिनके पाँच भाग हैं । इनके वीचमें चार भाग और हैं । तैत्तिरीयब्राह्मण १ । ५ । ३ । ४ में कहा है, कि–"समानस्याह्नः पञ्च पुण्यानि नक्षत्राणि । चत्वार्यश्लीलानि तानि नव ॥–समान दिनके पाँच नक्षत्र हैं, चार अश्लील हैं। ये नौ हैं ।" स्मृतिमें भी कहा है, कि–"प्रातरतः संगवश्च रुग्णो मध्याह्नसंतपौ । अपराह्नं खनिः सायं नवधा भिद्यते त्वहः ॥"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वानस्पत्याः । ग्रावाणः । घोषम् । अक्रत । हविः । कृण्वन्तः । परिऽवत्सरीणम् ।

एकऽअष्टके । सुऽप्रजसः । सुऽवीराः । वयम् । स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥ ५ ॥

हे एकाष्टके त्वदर्थं वानस्पत्याः वनस्पतिविकाराः उलूखलमुसलादयः । ❀ "०पत्युत्तरपदाण्ण्यः" ❀ । ग्रावाणः दृषदुपलादयः परिवत्सरीणम् संवत्सरेण निर्वृत्तम् । ❀ "संपरिपूर्वात् ख च" इति निर्वृत्तार्थे खप्रत्ययः ❀ । ईदृशं हविः धानाकरम्भचरुपुरोडाशादिकं कृण्वन्तः अवहननपेषणादिद्वारा उत्पादयन्तः घोषम् प्रीतिकरं शब्दम् अक्रत अकुर्षत । ❀ कृञो लुङि आत्मनेपदे "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् ❀ ॥ हे एकाष्टके एका चासावष्टका एकाष्टका । ❀ "दिक्संख्ये संज्ञायाम्" इति समासः । "अष्टका पितृदेवत्ये" इति इत्वाभावः ❀ । त्वदनुग्रहाद्ध वयं सुप्रजसः शोभनपुत्रपौत्रादियुक्ताः । ❀ "नित्यम् असिच् प्रजामेधयोः" इत्यसिच् समासान्तः ❀ । सुवीराः । ❀ विविधम् ईरयन्ति शत्रून् इति वीरा भृत्याः । वीरो वीरयत्यमित्रान् [नि० १. ७] इति निरुक्तम् । वीर विक्रान्तौ । इत्यस्माद् वा पचाद्यच् । बहुव्रीहौ "वीरवीर्यौ च" इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ❀ । सुभृत्याः सन्तो रयीणाम् धनानां पतयः स्वामिनः स्याम भवेम । ❀ "नाम् अन्यतरस्याम्" इति नाम उदात्तत्वम् ❀ ॥

हे एकाष्टके ! तेरे लिये वनस्पतिके विकार उलूखल मूसल आदि और पत्थर आदिने वर्ष भरमें होने वाले भुने हुए जौं, दही मिश्रित सत्तू और पुरोडाश आदिको अवहनन (कूटना) पेषण (पीसना) आदिके द्वारा उत्पन्न करते हुए प्रीतिकर शब्दको

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किया है। हे एकाष्टके! तेरे प्रसादसे हम शोभन पुत्र पौत्र आदि से संयुक्त होकर और सुभृत्य वाले होकर धनके स्वामी हों ॥५॥

षष्ठी ॥

इडायास्पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु

इडायाः। पदम्। घृतऽवत्। सरीसृपम्। जातऽवेदः। प्रति। हव्या। गृभाय। ये। ग्राम्याः। पशवः। विश्वऽरूपाः। तेषाम्। सप्तानाम्। मयि। रन्तिः। अस्तु ॥ ६ ॥

इलायाः। गोनामैतत्। "इला धेनुः सहवत्सा न आगात्" इत्यादिश्रुतेः। ❀ "इलाया वा" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀। तस्याः पदम् पादः घृतवत् घृतोपेतम्। "सा यत्रयत्र न्यक्रामत् ततो घृतम् अपीड्यत" [तै० सं० २. ६. ७. १] इति श्रुतेः। सरीसृपम् अत्यर्थं सर्पत्। ❀सृपेर्यङ्लुगन्तात् पचाद्यच्। "न धातुलोप आर्धधातुके" इति लघूपधगुणप्रतिषेधः ❀। इडापदात्मना भावितं पशोर्दक्षिणं पादम् हव्या हव्यानि धानाकरम्भादीनि हवींषि च। ❀ शेर्लोपः ❀। हे जातवेदः जातानां वेदितरग्ने प्रति गृभाय प्रतिगृहाण। ❀ "हलः श्नः शानज्झौ" ["छन्दसि शायजपि"] इति श्नः शायजादेशः। "हृग्रहोर्भः०" इति भः ❀॥ गृहीतहविस्तव प्रसादाद्द् ग्राम्याः ग्रामे भवा गोश्वाजाविपुरुषगर्दभोष्ट्राख्या विश्वरूपाः नानाकारा ये पशवः सन्ति तेषाम् उक्तानां सप्तानां पशूनां रन्तिः प्रीतिः मयि चास्तु। ततः समृद्धिर्भवतु इत्यर्थः। ❀ रमेः क्तिनि अनुनासिकलोपाभावश्छान्दसः ❀॥

इलाका घृतोपेत पाद अधिक सर्पता है हे जातवेदः! तुम पशु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के दक्षिणपादको और भुने हुए जौ और करंभ (दहीके सत्तू) आदि हविको ग्रहण करो आपके हविको ग्रहण कर प्रसन्न होने पर गौ घोड़ा बकरी भेड़ पुरुष गधा और ऊँट नाम वाले जो अनेक प्रकारके पशु हैं, इन सात प्रकारके पशुओंकी मुझमें प्रीति हो॥६॥

सप्तमी ॥

आ मां पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम ।
पूर्णा दर्वे परा पत सुपूर्णा पुनरा पत ।
सर्वान् यज्ञान्त्संभुञ्जतीषमूर्जं न आ भर ॥ ७॥

आ । मा । पुष्टे । च । पोषे । च । रात्रि । देवानाम् । सुऽमतौ । स्याम
पूर्णा । दर्वे । परा । पत । सुऽपूर्णा । पुनः । आ । पत ।
सर्वान् । यज्ञान् । सम्ऽभुञ्जती । इषम् । ऊर्जम् । नः । आ । भर ७

हे रात्रि मा मां पुष्टे समृद्धे धने पोषे पुत्रपौत्रादिसमृद्धौ। ❀ परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ। आ [इति] उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ❀। आ स्थापय ॥ त्वत्प्रसादाद्व वयं च देवानाम् इन्द्रादीनां सुमतौ कल्याण्यां बुद्धौ स्याम भवेम ॥ हे दर्वि होमसाधनभूते त्वं पूर्णा हविर्भिः पूरिता सती परा पत परागच्छ। यष्टव्यान् देवा न् प्रति गच्छ ॥ ततः सुपूर्णा अभिमतफलैः परिपूर्णा सती पुनरा पत अस्मान् आगच्छ। ❀ पत्लृ गतौ। पूर्णेति। पॄ पालनपूरणयोः इत्यस्मात् एयन्तात् "वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः" इति इडभावो णिलुक् च निपात्यते। "उदोष्ठ्यपूर्वस्य" इत्युत्वम्। "रदाभ्याम्०" इति नत्वम्। सुपूर्णेति। "गतिरनन्तरः" इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥ सर्वान् यज्ञान् यष्ट-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

न्यान् । ❀ "यजयाच०" इत्यादिना कर्मणि नङ् प्रत्ययः ❀ । संभुञ्जती हविषा सम्यक् पालयन्ती प्रीणयन्ती । ❀ भुजेः पालनार्थाद् आत्मनेपदाभावे शतृप्रत्ययः । "शतुरनुमः०" इति ङीप उदात्तत्वम् ❀ । ईदृशी सती देवेभ्यः सकाशाद् इषम् अन्नम् ऊर्जम् बलं च नः अस्मभ्यम् आ भर आहर ॥ पूर्णा दर्वीति पृथग्ग्रहणात् "ग्रहणम् आ ग्रहणाद्" [कौ० १. ८.] इति न्यायात् विनियोगविषये "आ मा पुष्टे च" इत्येकावसाना ऋक् । पञ्चपटलिकायां तु त्र्यवसाना एकैव ऋग् इत्युक्तम् ॥

हे रात्रि ! मुझको समृद्ध धन आदिमें और पुत्र पौत्र आदि समृद्धिमें स्थापित कर । तेरे प्रसादसे हम देवताओंकी कल्याणी बुद्धिमें रहें अर्थात् देवता हम पर कल्याणमयी बुद्धि रक्खें । हे होमकी साधन भूत दर्वि ! तू हवियोंसे पूरित हमारे पूजनीय देवताओंके पास जा । फिर अभिमत फलोंसे पूर्ण होकर हमारे पास आ । सब पूजनीय देवताओंको हविसे तृप्त करती हुई देवताओंसे हमारे लिये अन्न और बल ला ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

आयमंगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव ।

सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥ ८ ॥

आ । अयम् । अगन् । सम्ऽवत्सरः । पतिः । एकऽअष्टके । तव ।

सा । नः । आयुष्मतीम् । प्रऽजाम् । रायः । पोषेण । सम् । सृज ॥

हे एकाष्टके तव पति अयं संवत्सरः आगन् आगतः । संवत्सरस्य पतित्वं प्राग् उक्तम् ॥ सा त्वं पत्या सहिता नः अस्माकं प्रजाम् पुत्रपौत्रादिलक्षणाम् आयुष्मतीं कुर्वती रायः धनस्य पोषेण सं सृज संयोजय ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे एकाष्टके ! तुम्हारा पति यह सम्वत्सर आगया । अतः तू पतिके साथ रह कर हमारी पुत्र पौत्र आदि प्रजाको आयुष्मती कर हमको धनकी पुष्टिसे संयुक्त कर ॥ ८ ॥

नवमी ॥

ऋतून् यज ऋतुपतींनार्तवानुत हायनान् ।

समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतये यजे ॥९॥

ऋतून् । यजे । ऋतुऽपतीन् । आर्तवान् । उत । हायनान् ।

समाः । सम्ऽवत्सरान् । मासान् । भूतस्य । पतये । यजे ॥९॥

ऋतून् वसन्तादीन् यजे हविषा प्रीणयामि ॥ ऋतुपतीन् तेषाम् ऋतूनाम् अधिष्ठातॄन् अग्न्यादीन् देवांश्च । यजे इति सर्वत्र संबन्धः ॥ आर्तवान् ऋत्ववयववान् अन्यान् अनुक्तान् कलाकाष्ठादीन् कालविशेषान् । ❀ "ऋतोरण्" इति अण् प्रत्ययः ❀ । उत अपि च हायनान् समाः संवत्सरान् । इत्येते शब्दा यद्यपि समानार्थास्तथापि अत्र हायनशब्देन संवत्सरसंबन्धिनः अहोरात्रा लक्ष्यन्ते । ❀ जहति जिहते वा भावान् इति हायनाः । "हश्च व्रीहिकालयोः" इति ल्युट् ❀ । समाशब्देन समप्रविभक्ताश्चतुर्विंशतिसंख्याका अर्धमासाः । तान् संवत्सरान् द्वादशमासात्मकान् मासान् चैत्राद्यान् द्वादशसंख्याकान् यज इति संबन्धः ॥ भूतस्य सद्भावं प्राप्तस्य चराचरात्मकस्य जगतः पतये यः पतिरन्तर्यामी अनवच्छिन्नकालात्मकः तस्मै । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी ❀ । तं भूतपतिं च यजे हविषा प्रीणयामि । यद्वा । ❀ भूतस्य पतय इति तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । भूतपतिप्रीणनाय ऋत्वादीन् यज इति संबन्धः ॥

मैं वसन्त आदि ऋतुओंका हविसे पूजन करता हूँ और ऋतुओं के स्वामी अग्नि आदि देवताओंका भी पूजन करता हूँ और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्वत्सरके दिन रातका हविसे यजन करता हूँ, ऋतुके अवयव कला काष्ठा आदिका हविसे यजन करता हूँ चौबीस पक्षोंका हविसे यजन करता हूँ और सम्वत्सरके चैत्र आदि बारह महीनोंका मैं यजन करता हूँ, सत्ताको प्राप्त हुए चराचरात्मक जगत्के स्वामी अन्तर्यामी अनवच्छिन्न कालके लिये मैं (ऋतु आदिका) पूजन करता हूँ ॥ ९ ॥

दशमी ॥

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ १० ॥

ऋतुऽभ्यः । त्वा । आर्तवेभ्यः । मात्ऽभ्यः । सम्ऽवत्सरेभ्यः । धात्रे । विऽधात्रे । सम्ऽऋधे । भूतस्य । पतये । यजे ॥ १० ॥

हे एकाष्टके त्वा त्वाम् ऋतुभ्यः वसन्तादिभ्यः तत्प्रीत्यर्थम् । यजे इत्यनुषङ्गः । एवम् आर्तवेभ्यः ऋतुसंबन्धिभ्यः अहोरात्रादिभ्यः । त्वा यजे इति सर्वमन्त्रेषु अनुषङ्गः । माद्भ्यः मासेभ्यः । ❀ "पद्दन्नोमास्०" इत्यादिना मासशब्दस्य मास् इत्यादेशः । "स्ववस्स्वतवस्मासुषसा च त इष्यते छन्दसि" इति सकारस्य तत्वम् ❀ । संवसन्त्यस्मिन्निति संवत्सरः । ❀ संपूर्वाद् वसेरौणादिकः सरप्रत्ययः । "सस्यार्धधातुके" इति तत्वम् ❀ । तेभ्यः धात्रे धाता धारयिता एतन्नामको देवः तस्मै विधात्रे सर्वस्य निर्मात्रे देवाय समृधे समर्धयित्रे एतन्नाम्ने देवाय । ❀ ऋधु वृद्धौ । संपूर्वाद् अस्मात् क्विप् ❀ । भूतस्य पतये उक्तलक्षणाय देवाय । ❀ "षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा" इति पतिशब्दस्य घिसंज्ञायां "घेर्ङिति" इति गुणः ❀ । [यजे हविषा प्रीणयामि] ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वसन्त आदि ऋतुओंकी प्रसन्नताके लिये, ऋतुसम्बन्धी दिन रात्रिकी प्रसन्नताके लिये मास और संवत्सरकी प्रसन्नताके लिये, धाता देवताकी, सबके निर्माता विधाता देवताकी, समृद्धि करने वाले समृध् नाम वाले देवताकी और सद्भावको प्राप्त हुए चराचरात्मक जगत्के स्वामी अन्तर्यामी अनवच्छिन्न कालके लिये हे एकाष्टके ! मैं तेरा यजन करता हूँ ॥ १० ॥

एकादशी ॥

इडया जुह्वतो वयं देवान् घृतवता यजे ।

गृहानलुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः ॥ ११ ॥

इडया । जुह्वतः । वयम् । देवान् । घृतऽवता । यजे ।

गृहान् । अलुभ्यतः । वयम् । सम् । विशेम । उप । गोऽमतः ११

इडया । गोनामैतत् । तदुपलक्षितेन मांसादिरूपेण हविषा घृतवता उपस्तरणाभिघारणार्थघृतयुक्तेन जुह्वतः होमं कुर्वन्तः अग्नौ हविः प्रक्षिपन्तः । ❀ "तृतीया च होश्छन्दसि" इति कर्मणि तृतीया ❀ । तथाविधा वयं देवान् यजे । ❀ व्यत्ययेन एकवचनम् ❀ । यजामहे प्रीणयामः । ❀ जुह्वत इति । जुहोतेर्लटः शत्रादेशे "नाभ्यस्ताच्छतुः" इति नुम्प्रतिषेधः । "अभ्यस्तानाम् आदिः" इत्याद्युदात्तत्वम् ❀ ॥ तेषां देवानाम् अनुग्रहाद्ध वयम् अलुभ्यतः गार्ध्यम् अकुर्वाणाः संपूर्णाः सन्तः । ❀ लुभ गार्ध्ये । दिवादित्वात् श्यन् । "अनित्यम् आगमशासनम्" इति नुमभावः ❀ । यद्वा गृहविशेषणम् । अलुभ्यतः गार्ध्यरहितान् । काम्यमानसकलवस्तुसमेतान् इत्यर्थः । गोमतः । ❀ भूम्नि मतुप् ❀ । बहुभिर्गोभिर्युक्तान् गृहान् उप । ❀ क्रियाध्याहारः ❀ । उपेत्य सं विशेम सुखेन निवसेम ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मांस और उपस्तरण तथा अभिघारणके घृतसे युक्त होमको करते हुए हम देवताओंका यजन करते हैं। उन देवताओंके अनुग्रहसे हम सकल कामनाओंसे सम्पन्न और बहुतसी गौओंसे भरे पुरे घरको पाकर सुखसे बसें ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमान-
मिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून् हन्ता दस्यूनामभवच्छची-
पतिः ॥ १२ ॥

एकऽअष्टका । तपसा । तप्यमाना । जजान । गर्भम् । महिमानम् ।
इन्द्रम् ।
तेन । देवाः । वि । असहन्त । शत्रून् । हन्ता । दस्यूनाम् ।
अभवत् । शचीऽपतिः ॥ १२ ॥

एकाष्टका माघकृष्णाष्टमीत्युक्तम् । सा देवतात्वेन स्तूयते । तपसा तप्यमाना । ❀ व्यत्ययेन कर्मणि तृतीया । "तपस्तपःकर्मकस्यैव" इति कर्मवद्भावाद् यगात्मनेपदे । "अदुपदेशाल्लसार्वधातुक०" [इति] अनुदात्तत्वेन यक उदात्तत्वे प्राप्ते व्यत्ययेन धातुस्वरः ❀ । यद्वा । ❀ तप ऐश्वर्ये । दिवादिः आत्मनेपदी । श्यनो नित्वाद् आद्युदात्तत्वम् ❀ । सर्वस्य ईशाना एकाष्टका तपसा संतापकरेण पुत्रार्थेन कर्मणा गर्भम् गर्भभूतं महिमानम् महत्त्वोपेतम् इन्द्रं जजान जनयामास । यद्वा गर्भं गरणीयं स्तुत्यं वन्दनीयम् । ❀ गॄ शब्दे । अर्तिगॄभ्यां भन् [उ० ३. १५२] इति भन् प्रत्ययः ❀ । गर्भस्थवद् अदृश्यं वा । ❀ गॄ निगरणे । अस्माद्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वा भन् ❀। एवंभूतम् इन्द्रम् ईशितारम् आदित्यं जजान जनयामास प्राकाशयत् ॥ तेन उक्तलक्षणेन इन्द्रेण देवाः शत्रून् शातयितॄन् असुरान् व्यसहन्त विशेषेण अभ्यभवन् ॥ स च इन्द्रः शचीपतिः शच्या देव्याः पतिः। यद्वा शचीति कर्म नाम। शचीनां कर्मणां पतिः स्वामी दस्यूनाम् उपक्षयितॄणां हन्ता अभवत् घातको भवतु। ❀ शचीपतिरिति। वनस्पत्यादित्वाद् उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥

सबकी स्वामिनी एकाष्टकाने पुत्रके लिये सन्तापमय तपके अनुष्ठानरूप कर्मसे महत्त्वयुक्त इन्द्रको प्रकाशित किया। उस इन्द्रके द्वारा देवताओंने शत्रु असुरोंको विशेषरूपसे दबाया था। वह शचीपति इन्द्र उपक्षय (विनाश) करने वालोंके घातक हों॥१२॥

त्रयोदशी ॥

इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः।

कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः ॥१३॥

इन्द्रऽपुत्रे। सोमऽपुत्रे। दुहिता। असि। प्रजाऽपतेः।

कामान्। अस्माकम्। पूरय। प्रति। गृह्णाहि। नः। हविः १३

हे इन्द्रपुत्रे उक्तरीत्या इन्द्रः पुत्रो यस्यास्तादृशि हे सोमपुत्रे सोमः पुत्रो यस्यास्तथाविधे। "यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिम्" [२] इति रात्र्येकाष्टकयोरभेदव्यवहाराद् रात्रौ चन्द्रस्य प्रकाशस्य उपलब्धेश्च पुत्रत्वोपचारः। यद्वा गवामयनाख्ये संवत्सरसत्रे एकाष्टकाया सोमस्य क्रयणात् पुत्रत्वोपचारः। श्रूयते हि। गवामयनदीक्षां प्रस्तुत्य "तेषाम् एकाष्टकायां क्रयः संपद्यते" [तै० सं० ७. ४. ८. २] इति। ईदृशि हे एकाष्टके त्वं प्रजापतेः प्रजानां देवानां मनुष्यादीनां स्रष्टुः दुहितासि पुत्री भवसि॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथाविधा त्वम् अस्माकं कामान् काम्यमानान् प्रजापश्वादीन् अर्थान् पूरय समृद्धान् कुरु। तदर्थं नः अस्मदीयं हविः प्रति गृह्णाहि प्रतिगृहाण स्वीकुरु। ❀ ग्रहेर्लोटि सिपो हिरादेशः। "हलः श्नः शानज्झौ" इति शानजादेशो व्यत्ययेन न प्रवर्तते। "वा छन्दसि" इति हेःपित्त्वेन ङित्त्वस्य निवर्तनात् "ई हल्यघोः" इति ईत्वमपि न भवति ❀॥

इति द्वितीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम्॥

द्वितीयोनुवाकः समाप्तः॥

"यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिम्" इस दूसरी ऋचामें एकाष्टका का और रात्रिका अभेदभाव स्वीकार किया है। और रात्रिमें चन्द्रमाका प्रकाश फैलता है अत एव रात्रिको चन्द्रमाकी माता मान कर कहते हैं, कि–हे सोमपुत्रे! हे इन्द्रपुत्रे! एकाष्टके! तू देवता और मनुष्य आदिको रचने वाले प्रजापतिकी पुत्री है। अतः तू प्रजा पशु आदि कामनाओंसे हमें पूरित कर और इसके लिये हमारी हविको स्वीकार कर॥ १३॥

द्वितीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (८१)॥

द्वितीय अनुवाक समाप्त

तृतीयेनुवाके पञ्च सूक्तानि। तत्र "मुञ्चामि त्वा" इति प्रथम सूक्तेन बालग्रहरोगे निरन्तरस्त्रीसंगतिजनितयक्ष्मणि च पूतिगन्ध-मत्स्यसहितम् ओदनम् अभिमंत्र्य भोजनकाले व्याधितम् आशयेत्।

तथा अनेन सूक्तेन अरण्यतिलैःप्रज्वालितोदपात्रेण उषःकाले [अरण्ये] गृहे वा व्याधितम् अवसिञ्चेत् मार्जयेत् आचामयेच्च॥

तथा अरण्यशणारण्यगोमयचित्त्यादिशान्तौषधिभिः प्रत्येकं प्रज्वालितेनोदकेन उषःकाले व्याधितस्य अवसेकमार्जनाचमनानि कुर्यात्॥

तथा सर्वव्याधिनिवृत्तये च अनेन सूक्तेन व्याधितम् उपस्पृश्य अभिमन्त्रयेत्॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूत्रितं हि । "मुञ्चामि त्वेति [ग्राम्ये] पूतिशफरीभिरोदनम् अरण्ये तिलशणगोमयशान्ताज्वालेनावनक्षत्रेवसिञ्चति" [कौ० ४. ३] इति ॥ शान्ता ओषधयश्चित्तिः मायश्चित्तिरित्येवमाद्याः सूत्रकृतोक्ताः [कौ० १. ८] ॥

अस्य सूक्तस्य अंहोलिङ्गगणे पाठात् तस्य गणस्य "ओषधिवनस्पतीनाम् अनुक्तान्यमतिषिद्धासि भैषज्यानाम् अंहोलिङ्गाभिः" [कौ० ४. ८] इत्यादिना यत्रयत्र सूत्रकृता विनियोग उक्तस्तत्र सर्वत्र अस्य विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा क्रतुमध्ये व्याधितस्य यजमानस्य भैषज्येपि एतत् सूक्तम् । तथा च वैताने । "अथ भैषज्याय यजमानम् 'अक्षीभ्यां ते' [२. ३३] 'मुञ्चामि त्वा' [३. ११] 'उत देवाः'" [४. १३] इति [वै० ७. ३] ॥

तीसरे अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें 'मुञ्चामि त्वा' इस प्रथमसूक्तसे बालग्रह रोगमें और निरन्तर स्त्रीसंग करनेसे उत्पन्न हुए यक्ष्मारोगमें पूतिगंध (इमली) और मत्स्यसहित भातको अभिमन्त्रित करके भोजनके समय रोगीको खिलावे ॥

तथा इस सूक्तसे जंगली तिलके ईंधनसे प्रज्वालित जलपूर्णपात्र से उषःकालके समय जंगल वा घरमें रोगी पर अभिषेक मार्जन करे और आचमन भी करावे ॥

तथा जंगली सन, जंगली उपले चित्या आदि शांता औषधियोंमेंसे प्रत्येकसे गरम किये हुए उदकसे प्रातःकालके समय अभिषेक मार्जन और आचमन करे ॥

तथा सकल व्याधियोंकी निवृत्तिके लिये इस सूक्तसे रोगीका स्पर्श करके अभिमन्त्रण करे ॥

सूत्रमें भी कहा है, कि—"मुञ्चामि त्वेति ग्राम्ये पूतिशफरीभिरोदनम् अरण्ये तिलशणगोमयशान्ताज्वालेनावनक्षत्रेव-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सिञ्चति" (कौशिकसूत्र ४ । ३) ॥ कौशिकसूत्र १ । ८ में सूत्रकारने चित्ति प्रायश्चित्ति आदि शान्ता औषधियोंका वर्णन किया है

इस सूक्तका अंहोलिंगगणमें पाठ है और सूत्रकारने 'ओषधिवनस्पतीनाम् अनुक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानाम् अंहोलिंगाभिः' के अनुसार जहाँ २ विनियोग कहा है तहाँ २ सर्वत्र इसका विनियोग करना चाहिये ॥

तथा यज्ञमें रुग्ण हुए यजमानकी चिकित्सामें भी यह सूक्त पढ़ा जाता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"अथ भैषज्याय यजमानम् 'अक्षीभ्यां ते' (२ । ३३) 'मुञ्चामि त्वा' (३ । ११) 'उत देवा' " (४ । १३) इति वैतानसूत्र ७ । ३

तत्र प्रथमा ॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत
राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्

मुञ्चामि । त्वा । हविषा । जीवनाय । कम् । अज्ञातऽयक्ष्मात् ।
उत । राजऽयक्ष्मात् ।
ग्राहिः । जग्राह । यदि । एतत् । एनम् । तस्याः । इन्द्राग्नी इति ।
प्र । मुमुक्तम् । एनम् ॥ १ ॥

हे व्याधिग्रस्त त्वा त्वां हविषा अन्नेन अज्ञातयक्ष्मात् । अयम् एतत्संज्ञक इति अप्रज्ञातः शरीरगतो रोगः अज्ञातयक्ष्मः । यद्वा राजयक्ष्मव्यतिरिक्तः सर्वोपि रोगः अज्ञातयक्ष्मशब्दवाच्यः । तादृशाद्द रोगाद्द मुञ्चामि विश्लेषयामि । ❀ यज पूजायाम् इत्य-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्मात् अर्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभायावापदियक्षिनीभ्यो मन् [उ० १. १३७] इति मन्प्रत्ययान्तो यक्ष्मशब्दः ❀ ॥ उत अपि च राजयक्ष्मात् यक्ष्मात् यक्ष्माणां रोगाणां राजा क्षयरोगो राजयक्ष्मः । ❀ राजदन्तादित्वाद् उपसर्जनस्य परनिपातः ❀ । यद्वा राजा सोमः तं प्रथमं यो यक्ष्मो गृहीतवान् स राजयक्ष्मः । "राजानं यक्ष्म आरद् इति तद् राजयक्ष्मस्य जन्म" [तै० सं० २. ५. ६. ५] इति श्रुतेः । तस्मादपि त्वा मुञ्चामि । किमर्थम् । जीवनाय जीवानार्थम् । इह लोके चिरकालावस्थानार्थम् इत्यर्थः । कम् इति पूरणः ॥ तथा ग्राहिः ग्रहणशीला पिशाची [यदि] एतत् इदानीम् एनम् बालकं जग्राह गृहीतवती तस्याः सकाशात् हे इन्द्राग्नी युवाम् एनं प्र मुमुक्तम् प्रमोचयतम् । ❀ मुचेश्छान्दसो विकरणस्य श्लुः ❀ ॥

मैं तुझे हविके द्वारा अज्ञातरूपसे शरीरमें प्रवेश करनेवाले यक्ष्मारोगसे मुक्त करता हूँ और जिसने राजा सोमको पहिले ग्रहण किया था उस राजयक्ष्मा रोगसे तुझको चिरकाल तक जीवित रहनेके लिये छुड़ाता हूँ और हे इन्द्र और अग्नि देवताओं! ग्रहण करनेके स्वभाव वाली जिस पिशाचीने यदि इस बालकको ग्रहण कर लिया हो तो आप इसको उससे छुड़ाइये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यदि॑ क्षि॒तायु॒र्यदि॑ वा॒ परे॑तो॒ यदि॑ मृ॒त्योर॑न्ति॒कं नीत ए॒व
तमा ह॑रामि॒ निर्ऋ॑तेरु॒पस्था॒दस्पा॑र्शमेनं श॒तशा॑रदाय २

यदि॑ । क्षि॒तऽआ॑युः । यदि॑ । वा॒ । परा॑ऽइतः । यदि॑ । मृ॒त्योः । अ॒न्ति॒कम् । निऽइ॑तः । ए॒व ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तम् । आ । हरामि । निःऽऋतेः । उपस्थात् । अस्पार्शम् । एनम् । शतऽशारदाय ॥ २ ॥

यदि अयं व्याधिग्रस्तः क्षितायुः रोगेण क्षपितायुर्भवेत् । ❀ क्षि क्षये इत्यस्मात् कर्मणि निष्ठा । "निष्ठायाम् अण्यदर्थे" इति पर्युदस्तत्वाद् दीर्घाभावः ❀ । यदि वा परेतः अस्माल्लोकात् परागतो भवेत् । यदि च मृत्योः वैवस्वतस्य अन्तिकं नीतः नितरां प्राप्त एव भवति । ❀ उपायान्तरेण अशक्यानेयत्वम् एवकारेण द्योत्यते । परेतो नीत इत्युभयत्र एतेः कर्मणि निष्ठा । "गतिरनन्तरः" इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् । नीत इति । "स्वरितो वानुदात्ते पदादौ" इत्येकादेशः स्वर्यते ❀ । एवंभूतमपि तम् पुरुषं निर्ऋतेः मृत्योः उपस्थात् उपस्थानात् समीपात् आ हरामि इमं लोकम् आनयामि ॥ आहृत्य च एनं शतशारदाय शतसंवत्सरजीवनार्थम् अस्पार्षम् प्रबलं करोमि । ❀ स्पृ प्रीतिबलनयोः । छान्दसो लुङ् । पादादित्वात् "तिङ्ङतिङः" इति निघाताभावः❀॥

यदि यह व्याधिग्रस्त पुरुष क्षीणायु होगया हो और इस लोकसे जाने वाला हो और यमराजके पास पहुँचा हुआ ही हो तो भी मैं इस पुरुषको मृत्युके समीपसे इस लोकमें लाता हूँ और लाकर इसको सौ वर्ष तक जीवित रहनेके लिये प्रबल करता हूँ २

तृतीया ॥

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ३

सहस्रऽअक्षेण । शतऽवीर्येण । शतऽआयुषा । हविषा । आ । अहार्षम् । एनम् ।

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन्द्रः । यथा । एनम् । शरदः । नयाति । अति । विश्वस्य । दुःऽइतस्य । पारम् ॥ ३ ॥

सहस्राक्षेण । सहस्रम् इति बहुनाम । सहस्रम् अक्षीणि चक्षूंषि दर्शनशक्तयो यस्य हविषः फलत्वेन विद्यन्ते तत् सहस्राक्षम् । ❀ "बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः०" इति षच् समासान्तः ❀ । तेन शतवीर्येण । शतशब्दः अपरिमितवाची । शतसंख्याकानि श्रोत्रादीन्द्रियसंबन्धीनि वीर्याणि श्रवणादिशक्तयः फलत्वेन यस्य सन्ति तादृशेन शतायुषा शतसंवत्सरपरिमितम् आयुर्जीवनं फलभूतं यस्य तादृशेन हविषा अन्नादिना एनम् व्याधिगृहीतं [मृत्योः सकाशाद् आहार्षम् आनैषम् । यथा इन्द्रः एनं पुरुषं] शरदः शतसंख्याकान् संवत्सरान् । ❀ "०अत्यन्तसंयोगे" द्वितीया ❀ । तावत्कालपर्यन्तं विश्वस्य कृत्स्नस्य दुरितस्य आयुर्भङ्गनिमित्तस्य पापस्य पारम् अवसानम् अति नयाति अतिनयेत् अतिक्रामयेत् । तथा तम् इन्द्रं हविषा प्रीणयामि इति शेषः । ❀ नयातीति । नयतेर्लेटि आडागमः ❀ ॥

जिसका फल अनन्त दर्शनशक्ति होजाना है और जिसके फलसे श्रोत्र आदि इन्द्रियोंकी श्रवणशक्तिरूप सैंकड़ों वीर्य प्राप्त होते हैं और जिसके फलसे सौ वर्षकी दीर्घायु प्राप्त होती है ऐसे हविसे मैं इस व्याधिगृहीत पुरुषको मृत्युके पाससे ले आया हूँ, इसका कारण यह है, कि-इन्द्र इस पुरुषको सौ वर्ष तक आयुर्भंगके कारण पापोंके पार पहुँचा देवे, इसी कारण मैं हवि से इन्द्रको प्रसन्न करता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्छतमु वसन्तान् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ४ ॥

शतम् । जीव । शरदः । वर्धमानः । शतम् । हेमन्तान् । शतम् । ऊं इति । वसन्तान् ।

शतम् । ते । इन्द्रः । अग्निः । सविता । बृहस्पतिः । शतऽआयुषा । हविषा । आ । अहार्षम् । एनम् ॥ ४ ॥

हे रोगाद् विमुक्त त्वं वर्धमानः अहरहरभिवृद्धिं प्राप्नुवत् शतं शरदः शतसंख्याकान् शरदृतून् जीव प्राणान् धारय ॥ तथा शतं हेमन्तान् हेमन्तर्तून् । ❀ उशब्दः समुच्चये ❀ । शतं वसन्तांश्च वर्धमानः । जीव इत्युभयत्र अनुषङ्गः । ❀ सर्वत्र "०अत्यन्तसंयोगे" द्वितीया ❀ ॥ यद्यपि शतं शरद इत्यनेनैव शतसंवत्सरपरिमितम् आयुर्लब्धम् तथापि हेमन्तवसन्तयोः पृथगुपादानं शीतोष्णावर्षत्वेन संवत्सरस्य त्रैविध्यप्रदर्शनार्थम् । अनेन आजीवनं तत्तदृतुप्रयुक्तशीतोष्णादिकृतदुःखजातं मा भूद् इत्युक्तं भवति । अत एव वर्धमान इति विशेषितम् ॥ तथा इन्द्रः अग्निः सविता सर्वस्य प्रेरकः बृहस्पतिश्च ते तव शतम् शतसंवत्सरपरिमितम् । आयुः कुर्वन्तु इति शेषः । शतायुषेत्यादि पूर्ववत् ॥

हे रोगमुक्त पुरुष ! मैं सौ वर्षकी आयु देने वाले हविसे इस को मृत्युके पाससे लौटा लाया हूँ तू दिन प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता हुआ सौ शरद् ऋतुओं तक जीवित रह, सौ हेमन्तऋतुओं तक जीवित रह सौ वसन्त ऋतुओं तक जीवित रह (यद्यपि सौ शरद् कहनेसे ही सौ वर्षकी आयु आजाती है फिर हेमन्त और वसंतका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अलग वर्णन शीत उष्ण और वर्षारूपसे सम्वत्सरका त्रैविध्य दिखानेके लिये है इससे यह सूचित किया है, कि--इन ऋतुओंमें होने वाला शीत उष्ण आदिसे उत्पन्न दुःख न हो) इन्द्र अग्नि और सबके प्रेरक सविता देवता तथा बृहस्पति तेरी सौ वर्षकी आयु करें ४

पञ्चमी ॥

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।

व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥ ५ ॥

प्र । विशतम् । प्राणापानौ । अनड्वाहौऽइव । व्रजम् ।

वि । अन्ये । यन्तु । मृत्यवः । यान् । आहुः । इतरान् । शतम् ५

हे प्राणापानौ शरीरधारकौ युवां प्र विशतम् । यक्ष्मगृहीतस्य शरीरम् इति शेषः । मन्त्रसामर्थ्येन निर्गतयोरपि पुनःप्रवेशाभिधानेन अनिर्गतयोस्तयोः कैमुतिकन्यायेन स्थैर्यं प्रार्थितं भवति । तत्र दृष्टान्तः । अनड्वाहौ अनसः शकटस्य वोढारौ बलीवर्दौ व्रजम् स्वनिवासस्थानं गोष्ठमिव । ❀ "अनसि वहेः क्विबनसो डश्च" इति क्विप् । "चतुरनडुहोराम् उदात्तः" इत्यागमस्य आम उदात्तत्वम् । व्रजम् इति । व्रजगतौ इत्यस्माद्ध "गोचरसंचरवहव्रज०" इत्यादिना "हलश्च" इति प्राप्तस्य घञोपवादत्वेन घप्रत्ययान्तो [व्रजशब्दो] निपातितः । "अजिव्रज्योश्च" इति कुत्वाभावः ❀ ॥ अन्ये राजयक्ष्मव्यतिरिक्ता मृत्यवः मृतिहेतवो रोगादयः वि यन्तु विमुखा गच्छन्तु । तानेवाह । यान् इतरान् अन्यान् मृत्यून् शतम् शतसंख्याकान् आहुः कथयन्ति अभिज्ञाः । शतम् इति अपरिमितनाम । तथैव प्राग् आम्नातम् । "मेमम् अन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये" [२. २८. १] इति । शाखान्तरेपि "ये ते सहस्रम् अयुतं पाशा मृत्यो मर्त्याय हन्तवे" [तै० ब्रा० ३. १०.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

८. २] इति । ❀ व्यन्य इति । संहितायाम् "उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोनुदात्तस्य" इति अन्यशब्दस्य अकारः स्वर्यते ❀ ॥

हे शरीरधारक प्राण और अपान ! जैसे गाड़ीको खेंचने वाले बैल अपने निवासस्थान गोठमें प्रवेश करते हैं तैसे तुम यक्ष्मग्रस्त रोगीके शरीरमें प्रवेश करो (मन्त्रसामर्थ्यसे निकले हुए भी प्राण अपानका पुनः प्रवेश कहा है और न निकले हुओंकी स्थिरताकी प्रार्थना की है) जाननेवाले पुरुष जिन और सैंकड़ों मृत्युके हेतु ‡ रोगोंका वर्णन करते हैं वे राजयक्ष्माके अतिरिक्त मृत्युके हेतु रोग विमुख होकर चले जावें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ॥ ६ ॥

इह । एव । स्तम् । प्राणापानौ । मा । अप । गातम् । इतः । युवम् ।
शरीरम् । अस्य । अङ्गानि । जरसे । वहतम् । पुनः ॥ ६ ॥

हे प्राणापानौ युवाम् इहैव अस्मिन्नेव शरीरे [स्तम्] भवतम् । ❀ अस्तेर्लोटि तसस्तम् । "श्नसोरल्लोपः" इत्यकारलोपः❀। इतः अस्माच्छरीरात् जवं शीघ्रम् अकाले माप गातम् मापगच्छ-

‡ अन्य श्रुतिमें भी कहा है, कि—"मेमं अन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये ॥—और जो सैंकड़ों मृत्युएँ हैं, वे इसको न मारें" (अथर्ववेद २ । २८ । १) और तैत्तिरीय ब्राह्मणमें भी कहा है, कि—"ये ते सहस्रं अयुतं पाशा मृत्यो मर्त्याय हन्तवे ॥—हे मृत्यो ! मरणशील मनुष्योंको मारनेके लिये तुम्हारे जो सैंकड़ों पाश हैं" (तैत्तिरीयब्राह्मण ३ । १० । ८ । २) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तम् । ❀ एतेर्माङि लुङि "इणो गा लुङि" इति गादेशः ❀ । पुनःशब्दः त्वर्थे । किं तु अस्य व्याधितस्य शरीरम् अङ्गानि हस्तपादादीनि च जरसे जरार्थम् । जरापर्यन्तम् इत्यर्थः । वहतम् धारयतम् । ❀ जरस इति । "जराया जरस् अन्यतरस्याम्" इति जरसादेशः ❀ ॥

हे प्राण और अपानों ! तुम इस ही शरीरमें रहो, इस शरीर से अकालमें शीघ्रताके साथ न जाओ और इस रोगीके शरीर को तथा इसके हाथ पैर आदि अंगोंको वृद्धावस्था तक धारण करो ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥ ७ ॥

जरायै । त्वा । परि । ददामि । जरायै । नि । धुवामि । त्वा ।
जरा । त्वा । भद्रा । नेष्ट । वि । अन्ये । यन्तु । मृत्यवः । यान् ।
आहुः । इतरान् । शतम् ॥ ७ ॥

हे व्याधिविनिर्मुक्त त्वा त्वां जरायै परि ददामि । रक्षणार्थं दानं परिदानम् । जरा अवसानपर्यन्तं त्वां यथा रक्षति तथा ददामीत्यर्थः । जीर्यन्ति अङ्गानि अस्याम् अवस्थायाम् इति जरा ।❀ जृष् वयोहानौ । "षिद्भिदादिभ्योऽङ्" इति अङ्प्रत्ययः ❀ ॥ तथा त्वा त्वां जरायै नि धुवामि जरापर्यन्तं नितरां प्रेरयामि । तावत्पर्यन्तं रोगादिभ्यः पालयामि इत्यर्थः । ❀ धू विधूनने । तुदादित्वात् शः । तस्य ङित्त्वाद् गुणाभावः ❀ ॥ सा जरा त्वा त्वां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भद्रा भन्दनीयानि कल्याणानि । ❀ शेर्लोपः ❀ । नेष्ट नयतु प्रापयतु । ❀ छान्दसो लुङ् । "बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेपि" इत्यडभावः ❀ ॥ व्यन्य इत्यादि व्याख्यातम् ॥

हे व्याधिमुक्त पुरुष ! मैं तुझे जराको देता हूँ अर्थात् बुढ़ापे तक तेरी जिस प्रकार रक्षा हो तिस प्रकार तुझको देता हूँ और बुढ़ापे तक तेरी रोगोंसे रक्षा करता हूँ वृद्धावस्था तुझे बुढ़ापे तक कल्याण प्राप्त करावे । विद्वान् पुरुष मृत्युके कारण और जिन सैंकड़ों रोगोंका वर्णन करते हैं वे रोग तुझसे दूर रहें ॥७॥

अष्टमी ॥

अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्वा ।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ॥८॥

अभि । त्वा । जरिमा । अहित । गाम् । उक्षणम्ऽइव । रज्वा ।
यः । त्वा । मृत्युः । अभिऽअधत्त । जायमानम् । सुऽपाशया ।
तम् । ते । सत्यस्य । हस्ताभ्याम् । उत् । अमुञ्चत् । बृहस्पतिः ८

हे व्याधिविनिर्मुक्त जरिमा जरा त्वा त्वाम् अभ्यहित बद्धं करोतु । ❀ अभिपूर्वो दधातिर्बन्धने वर्तते । "अश्वाभिदानीम् आदत्ते" [तै० सं० ५. १. २. १] इतिवत् । दधातेर्लुङ् । "स्थाघ्वोरिच्च" इति इत्त्वकित्त्वे ❀ । किमिव । उक्षणम् उक्षाणम् । ❀ "वा षपूर्वस्य निगमे" इति दीर्घाभावः ❀ । सेचनसमर्थं गां रज्ज्वेव । यो मृत्युः त्वा त्वां जायमानम् उत्पद्यमानमेव अकाले सुपाशया शोभनः पाशो यस्याः सा । पाशशब्दो ग्रन्थिविशेषोपेतवलयाकाररज्ज्वग्रे प्रसिद्धः । यद् आह आपस्तम्बः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"मौञ्जेन दाम्नान्यतरतः पाशेन" [आप० सू० २. ५. ४.] इति । तथाविधया रज्ज्वा अभ्यधत्त अबध्नात् ते तव संबन्धिनं तम् मृत्युपाशं सत्यस्य अविनाशिनो ब्रह्मणो हस्ताभ्यां बृहस्पतिः उदमुञ्चत् उन्मोचयतु ॥

इति तृतीयकाण्डे तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे व्याधिमुक्त ! जैसे सेचन करनेमें समर्थ बैलको रस्सीसे बाँध लेते हैं, तैसे ही बुढ़ापा तुझको बाँध लेवे । मृत्युने तुझको उत्पन्न होते ही अकालमें पाशसे बाँध लिया है, तेरे उस मृत्यु पाशको अविनाशी ब्रह्माके हाथसे बृहस्पति छुड़वावें ॥ ८ ॥

तृतीयकाण्डके तृतीय अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (८२) ॥

"इहैव ध्रुवाम्" इति प्रथमं सूक्तं वास्तोष्पत्यगणे पठितम् । सूत्रितं हि । "इहैव ध्रुवाम् [३. १२]एह यातु [६. ७३]यमो मृत्युः [६. ९३] सत्यं बृहत् [१२. १] इत्यनुवाको वास्तोष्पतीयानि" इति [कौ० १. ८] । तेन गणेन नवशालावास्तुसंस्कारार्थं शालाभूमिं हलेन कर्षेत् ॥

तथा यत्रयत्र चतुर्गणी महाशान्तिः शान्त्युदकादौ प्रयुज्यते तत्र सर्वत्र अस्य विनियोगः ॥

तस्यामेव नवशालायां गर्तेषु उच्छ्रीयमाणस्थूणा अनेन सूक्तेन अभिमन्त्रेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि "इहैव ध्रुवाम्" [१, २] इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां शालाभूमिं दृढां घट्टयेत् ॥

"ऋतेन स्थूणाम्" [६] इत्यनया ऋचा उच्छ्रितासु स्थूणासु घृताक्तं वंशम् आरोपयेत् ॥

नवगृहप्रवेशकाले "पूर्णं नारि" [८] इति ऋचा उदकुम्भसहितां पत्नीं गृहं प्रथमं प्रवेशयेत् ॥

तद् उक्तं संहिताविधौ । "वास्तोष्पतीयैः कुलिजकृष्टे दक्षिण-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तोग्नेः संभारम् आहरति । वास्तोष्पत्यादीनि महाशान्तिम् आवपते" इति प्रक्रम्य "इहैव ध्रुवाम् इति नीयमानाम् उच्छ्रीयमाणाम् अनुमन्त्रयते । अभ्यज्य । ऋतेनेति मन्त्रोक्तम् । पूर्णं नारीत्युदकुंभम् अग्निम् आदाय प्रपद्यन्ते । ध्रुवाभ्यां दृंहयति" इति[कौ०५.७]

'इहैव ध्रुवाम्' यह सूक्त वास्तोष्पत्यगणमें पहिले ही कहा है। वास्तोष्पत्यगणकी सूची वाले कौशिकसूत्र १ । ८ में कहा है, कि-"इहैव ध्रुवाम् (यह तीसरे काण्डका बारहवाँ सूक्त) एह यातु (यह छटे काण्डका तिहत्तरवाँ सूक्त) यमो मृत्युः (यह छटे कांडका तिरानवेंवाँ सूक्त) और सत्यं बृहत् (यह बारहवें कांडका प्रथम सूक्त) वास्तोष्पत्यगण है" ॥ इस गणसे नवीन शालाके वास्तुसंस्कारके लिये शाला (गृह)की भूमिको हलसे जोते

तथा शान्त्युदक आदिमें चतुर्गणी शान्तिका जहाँ २ प्रयोग होता है तहाँ २ सर्वत्र ही इसका विनियोग होता है ॥

और इस नवीन शालामें गढ़ोंमें ऊपरको उठे हुए खंभोंको इस सूक्तसे अभिमन्त्रित करे ॥

तथा इसी कर्ममें "इहैव ध्रुवाम्" इन दो ऋचाओंसे शालाभूमिको दृढ़ बनवावे ॥

"ऋतेन स्थूणाम्" इस छठी ऋचासे खड़े किये हुए खम्भोंमें घृतमें सनेहुए वाँसको रक्खे ॥

नवीन घरमें प्रवेश करते समय 'पूर्णा नारि' इस आठवीं ऋचासे जलकुम्भसहित पत्नीको घरमें पहिले प्रवेश करावे ॥

इसी बातको संहिताविधिमें कहा है, कि-'इहैव ध्रुवाम् इति नीयमानां उच्छ्रीयमाणामनुमन्त्रयते । अभज्य । ऋतेनेति मन्त्रोक्तम् । पूर्णं नारीत्युदकुम्भम् अग्निं आदाय प्रपद्यन्ते । ध्रुवाभ्यां दृंहयाति" (कौशिकसूत्र ५ । ७) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तत्र प्रथमा ॥

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा ।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम

इह । एव । ध्रुवाम् । नि । मिनोमि । शालाम् । क्षेमे । तिष्ठाति । घृतम् । उक्षमाणा ।
ताम् । त्वा । शाले । सर्वऽवीराः । सुऽवीराः । अरिष्टऽवीराः । उप । सम् । चरेम ॥ १ ॥

इहैव अस्मिन्नेव प्रदेशे गृहे [शालां] ध्रुवाम् स्थिरां नि मिनोमि प्रक्षिपामि । स्थूणानिखननादिना करोमीत्यर्थः। ❀ डुमिञ् प्रक्षेपणे ❀ । सा निमिता शाला घृतम् एतदुपलक्षितम् अभिमतफलम् उक्षमाणा सिञ्चन्ती प्रयच्छन्ती क्षेमे क्षेमेण । ❀ तृतीयार्थे सप्तमी ❀ । अग्न्यादिबाधराहित्येन तिष्ठाति तिष्ठतु । ❀ लेटि आडागमः ❀ ॥ हे शाले ताम् तादृशीं त्वा त्वां सर्ववीराः अनेकपुत्राद्युपेताः सुवीराः शोभनगुणपुत्राद्युपेताः अरिष्टवीराः न रिष्टा अरिष्टा रोगादिरहिताः तादृशपुत्रादिसमेताः। अत्र बाहुल्यशोभनगुणत्वहिंसाराहित्यलक्षणगुणविशेषसंबन्धाय वीरशब्दस्य त्रिरावृत्तिः । एवंभूताः सन्तो वयम् उप सं चरेम व्यवहरेम ॥ ❀ सर्ववीरा इति । "बहुव्रीहौ प्रकृत्या०" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । "प्रत्ययलक्षणेनाप्ययं स्वर इष्यते" इति वचनात् सर्वशब्दः 'सर्वस्य सुपि" इत्याद्युदात्तः । सुवीरा इति । "वीरवीर्यौ च" इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम् । अरिष्टवीरा इति । "बहुव्रीहौ प्रकृत्या०"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इतिपूर्वप्रकृतिस्वरत्वे अरिष्टशब्दः "अव्यये नञ्कुनिपातानाम्" इति अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरेण आद्युदात्तः ❀ ॥

मैं इसी प्रदेशमें खंभे आदि लगा कर शालाको स्थिर करता हूँ, वह शाला घृत आदि अभिमत फलको देती हुई अग्नि आदि के भयसे रहित होकर क्षेमपूर्वक रहे। हे शाले! ऐसी तुझमें शोभन गुण वाले रोगरहित अरिष्टरहित पुत्रोंसे सम्पन्न होकर हम व्यवहार करें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेश्वावती गोमती सूनृतावती। ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय २

इह । एव । ध्रुवा । प्रति । तिष्ठ । शाले । अश्वऽवती । गोऽमती । सूनृताऽवती ।

ऊर्जस्वती । घृतऽवती । पयस्वती । उत् । श्रयस्व । महते । सौभगाय २

हे शाले इहैव अस्मिन् देशे ध्रुवा स्थिरा सती प्रति तिष्ठ वर्तस्व। कथंभूता। अश्वावती बहुभिरश्वैरुपेता। ❀ "मादुपधाया०" इति मतुपो वत्वम्। "मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रिय०" इत्यादिना अश्वशब्दस्य दीर्घः ❀। गोमती बहुभिर्गोभिर्युक्ता सूनृतावती बहुभिः प्रियसत्यवाग्भिर्बालादीनां वाणीभिर्युक्ता ऊर्जस्वती प्रभूतान्नवती। ❀ ऊर्जस्वतीति। ऊर्ज बलप्राणनयोः इत्यस्माद् असन् ॥ तदन्ताद् मतुप्। "तसौ मत्वर्थे" इति भत्वेन पदत्वाभावाद् रुत्वाद्यभावः ❀। घृतवती बहुघृतयुक्ता पयस्वती बहुक्षीरा। ❀ सर्वत्र "भूमनिन्दाप्रशंसासु०" इति भूम्नि मतुप् ❀। एवं बहुगुणा त्वम् अस्माकं महते प्रभूताय सौभगाय सुभगत्वाय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उच्छ्रयस्व [उद्गता] भव । उत्कृष्टा भवेत्यर्थः । ❀ "सुभग मन्त्रे" इति उद्गात्रादिषु पाठाद् अञ् । "सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते" इति उत्तरपदवृद्ध्यभावः ❀ ॥

हे शाले ! तू इस ही स्थानमें बहुतसे घोड़े गौएँ और बालकों की प्रिय बाणीसे और बहुतसे अन्न घृत तथा दूधसे सम्पन्न होकर स्थिर रह । और इस प्रकार अनेकगुणसम्पन्न तू हमें बहुत सा सौभाग्य देनेके लिये उत्कृष्ट हो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

धरुण्य॑सि शाले बृहच्छ॑न्दाः पूति॑धान्या ।
आ त्वा॑ व॒त्सो ग॑मे॒दा कु॑मा॒र आ धे॒नवः॑ सा॒यमा॑-
स्पन्द॑मानाः ॥ ३ ॥

ध॒रु॒णी । अ॒सि॒ । शा॒ले॒ । बृ॒हत्ऽछ॑न्दाः । पूति॑ऽधान्या ।
आ । त्वा॒ । व॒त्सः । ग॒मे॒त् । आ । कु॒मा॒रः । आ । धे॒नवः॑ ।
सा॒यम् । आ॒ऽस्पन्द॑मानाः ॥ ३ ॥

हे शाले त्वं धरुणी भोगजातस्य धारयित्री असि भवसि । ❀ "धारेर्णिलुक् च" इति उनन् प्रत्ययः । ततो ङीप् ❀ । यद्वा धरुणा धारकाः स्तम्भाः । प्रशस्तैः स्तम्भैरुपेता । ❀ "छन्दसीवनिपौ०" इति मत्वर्थीय ईकारः । छान्दसः शोर्लुक् ❀ ॥ तथा बृहच्छन्दाः प्रभूताच्छादना महद्भिश्छन्दोभिर्वेदैरुपेता वा पूतिधान्या पूतिगन्धोपेतजीर्णधान्ययुक्ता । बहुविधभोगदानादिनापि अक्षयधान्ययुक्ता इत्यर्थः । एवंभूतां त्वा त्वां वत्सः । ❀ जातावेकवचनम् ❀ । आ गमेत् आगच्छतु । ❀ "लिङ्याशिष्यङ्" ❀ । एवं कुमारः पुत्रादिः आ गमेत् । अस्यां शालायां गावः स्त्रियश्च

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वत्सपुत्रादिसमेता भवन्तु इत्यर्थः ॥ तथा धेनवः दोग्ध्र्यो गावः सायम् सायंकाले आस्यन्दमानाः प्रस्नुतं पय आस्रवन्त्यः आगच्छन्तु त्वाम् इति ॥

हे शाले ! तू भोगोंको धारण करनेवाली है, बहुतसे छन्दोंदेवताओंसे सम्पन्न है, पूतिमंधयुक्त जीर्णधान्यसे युक्त अर्थात् अनेक प्रकारका भोग दान आदि करने पर अक्षयधान्यसे युक्त रहने वाली है । ऐसी तुझमें बछड़े और पुत्र आवें अर्थात् इस शालामें गौएँ स्त्रियें बछड़े और पुत्रोंके साथ रहें और दूध देनेवाली गौएँ भी सायंकालके समय दूधको टपकाती हुई आवें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥

इमाम् । शालाम् । सविता । वायुः । इन्द्रः । बृहस्पतिः । निः । मिनोतु । प्रऽजानन् ।
उक्षन्तु । उद्ना । मरुतः । घृतेन । भगः । नः । राजा । नि । कृषिम् । तनोतु ॥ ४ ॥

सविता सर्वस्य प्रेरको देवः प्रजानन् वायुः इन्द्रः बृहस्पतिश्च प्रजानन् । ❀ प्रत्येकविवक्षया एकवचनम् ❀ । शालानिर्माणप्रकारं प्रकर्षेण जानन् इमां शालां नि मिनोतु स्तम्भादिस्थापनेन करोतु । ❀ डुमिञ् प्रक्षेपणे ❀ ॥ मरुतश्च घृतेन क्षरणशीलेन उद्ना उदकेन उक्षन्तु शालाभूमिं सिञ्चन्तु । ❀ "पद्दन्नोमास्०" इत्यादिना उदकशब्दस्य उदन् आदेशः । भसंज्ञायाम् अल्लोपे उदात्तनिवृत्ति-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वरेण विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀ । ततो नः अस्माकं राजा राजमानो भगः एतत्संज्ञो देवः कृषिम् शालाभूमेः कर्षणं नि तनोतु नितरां करोतु । ❀ कृष विलेखने । इगुपधात् कित् [उ० ४. ११९] इति भावे इप्रत्ययः ❀ ॥

विद्वान् सबके प्रेरक सविता देव, विद्वान् वायु इन्द्र और बृहस्पतिदेव शालानिर्माणकी रीतिको पूर्णरीतिसे जानते हुए इस शालाको स्तंभ आदि स्थापन कर बनावें । मरुद्देव भी घृत से और जलसे शालाभूमिको सींचें । तदनन्तर हमारे प्रकाशमान भगदेवता शाला भूमिका कर्षण करें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निर्मितास्यग्रे ।
तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः

मानस्य । पत्नि । शरणा । स्योना । देवी । देवेभिः । निःऽमिता । असि । अग्रे ।
तृणम् । वसाना । सुऽमनाः । असः । त्वम् । अथ । अस्मभ्यम् । सहऽवीरम् । रयिम् । दाः ॥ ५ ॥

हे मानस्य पत्नि । ❀ मान पूजायाम् । कर्मणि घञ् ❀ । माननीयस्य वास्तुपतेः पत्नि जायाभूते शाले । यद्वा मीयमानं धान्यादिकं मानम् तस्य पत्नि पालयित्रि शाले त्वं शरणा रक्षित्री स्योना सुखकरी ईदृशी देवी द्योतमाना अग्रे सृष्ट्यादौ देवेभिः देवैः निर्मितासि प्राण्युपभोगाय सृष्टा भवसि ॥ सा त्वं तृणं वसाना आच्छादयन्ती । ❀ वस आच्छादने इत्यस्मात् लटः शानच् ❀ । सुमनाः शोभनमनस्का असः भव । ❀ अस्तेर्लेटि अडागमः ❀ ॥ अथ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनन्तरम् अस्मभ्यं त्वयि निवसद्भ्यः सहवीरम् वीरैः पुत्रादिभिः सहितम् । ❀ "वोपसर्जनस्य" इति विकल्पनात् सहस्य सत्वाभावः ❀ । तादृशं रयिम् धनं दाः धेहि । ❀ ददातेश्छान्दसो लुङ् ❀ ॥

हे माननीय वास्तुपतिकी पत्नीभूत शाले और धान्य आदि का पालन करने वाली शाले ! देवताओंने सृष्टिके आरम्भमें प्राणियोंको सुख देने वाली प्राणियोंकी रक्षा करने वाली तुझ दमकती हुई शालाको प्राणियोंके उपभोगके लिये रचा है वह तू तिनकोंसे ढकी हुई शोभन मन वाली हो, फिर हम बसने वालोंके लिये पुत्र आदिसहित धन दे ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून् मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥ ६ ॥

ऋतेन । स्थूणाम् । अधि । रोह । वंश । उग्रः । विऽराजन् । अप । वृङ्क्ष्व । शत्रून् ।

मा । ते । रिषन् । उपऽसत्तारः । गृहाणाम् । शाले । शतम् । जीवेम । शरदः । सर्वऽवीराः ॥ ६ ॥

हे वंश त्वम् ऋतेन अबाध्येन रूपेण सह स्थूणाम् शालामध्यस्तम्भम् अधि रोह अधि तिष्ठ । ततः उग्रः उद्गूर्णबलो विराजन् विशेषेण दीप्यमानः सन् शत्रून् अस्मद्द्वेष्यान् अप वृङ्क्ष्व अपवर्जय । ❀ वृजी वर्जने । रुधादिः ❀ ॥ हे शाले ते तव संबन्धिनां गृहाणाम् उपसत्तारः उपसदनकर्तारः । निवसन्त इत्यर्थः । मार्षन्

९-८-२९

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आर्ता हिंसिता मा भूवन्। त्वयि निवसन्तो वयं सर्ववीराः अभिलषितसर्वपुत्रपौत्रादिसमेताः शतं शरदः जीवेम ॥

हे वंश ! (बाँस) तू अबाध्यरूपसे शालाके मध्यस्तंभमें रह। हे शाले ! तेरे घरमें रहने वाले आर्त न हों तुझमें रहने वाले हम अभिलषित पुत्र पौत्र आदिसे सम्पन्न होकर सौ वर्ष तक जीवित रहें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह।

एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥ ७ ॥

आ। इमाम्। कुमारः। तरुणः। आ। वत्सः। जगता। सह।

आ। इमाम्। परिऽस्रुतः। कुम्भः। आ। दध्नः। कलशैः। अगुः ७

इमां शालां तरुणः युवा कुमारः पुत्र आ गच्छतु ॥ तथा जगता गमनशीलेन गवादिना सह। ❀ गमेः क्विपि "द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च" इति द्विर्वचनम् ❀। वत्सः। ❀ जातावेकवचनम् ❀। आ गच्छतु ॥ तथा इमां परिस्रुतः परिस्रवणशीलस्य मधुनः कुम्भाः आगुः आगच्छन्तु ॥ दध्नः कलशीः दधिपूर्णा घटयः आगुः। ❀ एतेश्छान्दसो लुङ् ❀ ॥

इस शालामें तरुण कुमार पुत्र आवे। और गमनशील गौ आदिके साथ वत्स आवे और परिस्रवणशील मधुके कुम्भ आवें और दधिपूर्ण कलश आवें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धारामृतेन संभृताम्।

इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पूर्णम् । नारि । प्र । भर । कुम्भम् । एतम् । घृतस्य । धाराम् । अमृतेन । सम्ऽभृताम् ।

इमाम् । पातॄन् । अमृतेन । सम् । अङ्ग्धि । इष्टापूर्तम् । अभि । रक्षाति । एनाम् ॥ ८ ॥

हे नारि पूर्णम् उदकेन पूरितम् एतं कुम्भं प्र भर प्रहर शालां नय । कथंभूतम् । अमृतेन सुधामयोदकेन संभृताम् संपादितां घृतस्य क्षरणशीलस्य मधुघृतादेः धाराम् । कुर्वन्तम् इति शेषः ॥ इमां पात्रीम् कलशीम् अमृतेन सुधारूपेण उदकेन समिन्धि सम्यगिद्धां संदीप्तां कुरु । ❀ ञिइन्धी दीप्तौ । लोटि व्यत्ययेन परस्मैपदम् । "हुझल्भ्यो हेर्धिः" इति हेर्धित्वे "श्नान्नलोपः" इति नलोपः ❀ ॥ एनाम् प्रविश्यमानां शालाम् इष्टापूर्तम् तत्र क्रियमाणं श्रौतं स्मार्तं च कर्म अभि रक्षाति अभितः चोराग्न्यादिभयाद् रक्षतु ॥

हे नारि ! इस जलसे पूर्ण सुधामय जलसे सम्पादित क्षरण (टपकने) के स्वभाव वाले मधु घृत आदिकी धारा करनेवाले कुम्भको शालामें ला इस कलशीको सुधारूप जलसे भली प्रकार दमका हम जिस शालामें प्रवेश कर रहे हैं उसमें किया हुआ श्रौत और स्मार्त कर्म चोर और अग्निके भयसे रक्षा करे ॥८॥

नवमी ॥

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥ ९ ॥

इमाः । आपः । प्र । भरामि । अयक्ष्माः । यक्ष्मऽनाशनीः ।

गृहान् । उप । प्र । सीदामि । अमृतेन । सह । अग्निना ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इमाः कलशस्था आपः। ❀ शसः स्थाने जस् ❀। प्र भरामि प्रहरामि प्रकर्षेण शालां नयामि। कीदृशीः। अयक्ष्माः यक्ष्मरहिताः यक्ष्मनाशनीः तत्सेवकानां यक्ष्मनाशिनीः॥ अहमपि गृहान् उप प्र सीदामि। कीदृशः सन्। अमृतेन अविनाशिना अग्निना सह सहितः सन्॥

[इति] तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम्॥

स्वयं यक्ष्मरहित और आपके सेवकोंके यक्ष्मारोगको नष्ट करने वाले कलशके जलोंको मैं अविनाशी अग्निके साथ घरमें लाता हूँ ६

तृतीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (८३)॥

"यदद: संप्रयतीः" इति सूक्तं स्त्राभिमतप्रदेशे नदीप्रवाहकरणे विनियुक्तम्। तत्रायं क्रमः। येन मार्गेण प्रवाहं निनीषति तं देशं प्रथमं खात्वा तत्र अनेन सूक्तेन उदकं प्रसिञ्चन् व्रजेत्॥ तथा अनेन सूक्तेन काशशैवालपटेरकवेतसशाखाः प्रत्येकम् अभिमन्त्र्य तत्र खाते निखनेत्। "इदं व आपः" [७] इत्यस्या ऋचः प्रथमेन पादेन हिरण्यं खाते निदध्यात्। "अयं वत्सः" इति द्वितीयपादेन इषीकाञ्जिमण्डूकं नीललोहितवर्णाभ्यां सूत्राभ्यां बद्ध्वा अभिमन्त्र्य खाते निदध्यात्। तस्य मण्डूकस्योपरि "इहेत्थम्" इति तृतीयपादेन अवकाम् अभिमन्त्र्य प्रक्षिपेत्। "यत्रेदम्" इति चतुर्थपादेन मण्डूकस्योपरि उदकं निनयेत्॥

तथा ग्रामनगरादिकस्य नवोदकप्रवहाद् भये संजाते नदीप्रवाहकरणे च कृष्णव्रीहिमयचरुम् कृष्णाया गोः क्षीरम् आज्यं च वैतसेन स्रुवेण वरुणाय त्रिर्जुहुयात्। तथा वैतसचमसे वैतसीभ्याम् उपमन्थनीभ्यां दधिसक्तुमन्थम् उपमथ्य अनेन बलिहरणं कुर्यात्। ततोनेन सूक्तेन वेतसशाखाम् अभिमन्त्र्य तया पाणिना वा मन्त्रितोदकेन नदीप्रवाहं सिञ्चन् व्रजेत्॥

दूरगताया नद्याः पुनर्निवृत्तौ एतत् सूक्तं जपित्वा नदीप्रवेशमार्गे शयीत॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एवम् उक्तानि प्रसेचनकर्म हिरण्यकर्म मण्डूककर्म पाणिकर्म इत्येतानि समुच्चयेन कार्याणीति भाष्यकारस्य दारिलस्य मतम् । विकल्पेनेत्यपरेषाम् ॥

अत्र कौशिकः । "यदद: संप्रयतीरिति येनेच्छेन्नदी प्रतिपद्येतेति प्रसिञ्चन् व्रजति । काशदिविधुवकवेतसान् निमिनोति । इदं व आप इति हिरण्यम् अधिदधाति अयं वत्स इतीषीकाञ्जिमण्डूकं नीललोहिताभ्यां सूत्राभ्यां सकक्षं बद्ध्वा । इहेत्थम् इत्यवकया प्रच्छादयति । यत्रेदम् इति निनयति । मारुतं क्षीरौदनं मारुतं शृतं मारुतैः परिस्तीर्य मारुतेन स्रुवेण मारुतेनाज्येन वरुणाय त्रिर्जुहोति । उक्तम् उपमन्थनं दधिमन्थं बलिं हुत्वा संप्रोक्षणीभ्यां प्रसिञ्चन् व्रजति । पाणिना वेत्रेण वा प्रत्याहत्योपरि निपद्यते" इति [कौ० ५. ४] ॥

तथा अनेनैव सूक्तेन मरुद्भ्यो मान्त्रवर्णिकीभ्यो वा देवताभ्य आज्यहोमम् काशदिविधुवकवेतसाख्यान् ओषधिविशेषान् एकस्मिन् पात्रे प्रक्षिप्य संपात्य अभिमन्त्र्य अप्सु मध्येऽधोमुखं निनयनम् तेषामेव काशादीनां संपातिताभिमन्त्रितानाम् अप्सु विप्लावनम् श्वशिरसो मेषशिरसश्च अभिमन्त्रितस्य अप्सु प्रक्षेपणम् मानुषकेशजरदुपानहां वंशाग्रे प्रबन्धनम् तुषसहितम् आमपात्रम् अभिमन्त्रितोदकेन प्रोक्ष्य त्रिपादे शिक्ये निधाय उदकमध्ये निधानं चेत्येतान्यभिवर्षणकर्माणि वृष्टिकामः कुर्यात् ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्मणि अनेनैव सूक्तेन आज्यहोमं संपातिताभिमन्त्रितघटोदकेन आप्लावनम् अवसेकं च कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि । "अर्थम् उत्थास्यन्नुपदधीत" इति प्रक्रम्य "अम्बयो यन्ति [१. ४] शंभुमयोभू [१. ५. ६] हिरण्यवर्णाः [१. ३३] यदद: [३. १३]" इत्यादिना "अभिवर्षणावसेचनानाम्" इत्यन्तेन [कौ० ५. ५]॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"यदद: सम्प्रयती:" यह सूक्त अपने अभिलषित स्थानमें नदी का प्रवाह करनेके कर्ममें विनियुक्त होता है। उसका क्रम यह है कि-जिस मार्गसे प्रवाहको लेजाना चाहे पहिले उस मार्गको खुदवाकर उसमें इस सूक्तसे जलको छिड़कता हुआ जावे। तथा इस सूक्तसे काश शैवाल पटेर और बाँस इनमेंसे प्रत्येककी शाखा को अभिमन्त्रित कर खातको खोदे। "इदं व आप:" इस सातवीं ऋचाके प्रथम पादसे हिरण्यको खातमें रक्खे। 'अयं वत्स:' इस दूसरे पादसे इषीका (सीक) में मेंडकको नीले और लाल वर्णके डोरोंसे बाँध कर अभिमन्त्रित करके खातमें रक्खे। और उस मण्डूकके ऊपर "इहेत्थम्" इस तीसरे पादसे अवकाको अभिमन्त्रित करके डाले। और 'यत्रेदम्' इस चतुर्थपादसे मण्डूक के ऊपर जल ले जावे ॥

तथा ग्राम नगर आदिको नवीन जलके प्रवाहसे भय होने पर और नदीके प्रवाह करनेमें भी काले धानोंके चरुको तथा गौके दूध और घृतको वेतके स्रुवेसे वरुणके लिये तीन वार आहुति देय। और वेतके चमसमें वेतकी उपमन्थनियोंसे दधिसक्तुमंथको मथ कर बलिहरण करे। फिर इस सूक्तसे वेतकी शाखाको अभिमन्त्रित करके शाखासे वा हाथसे अभिमन्त्रित जलसे नदीके प्रवाहको सींचता हुआ जावे ॥

दूर चली गई नदीको पुनर्निवृत्तिमें इस सूक्तको जप कर नदी प्रवेश मार्गमें शयन करे।

भाष्यकार दारिलका मत है, कि इस प्रकार कहे हुए प्रसेचनकर्म हिरण्यकर्म मण्डूककर्म और पाणिकर्म सबको एक साथ करे। दूसरे आचार्यका मत है, कि-इनको विकल्पसे करे ॥

इसी बातको कौशिकसूत्र ५। ४ में कहा है, कि-"यदद: संप्रयतीरिति येनेच्छन्नदीं प्रतिपद्येतेति प्रसिञ्चन् व्रजति। काश-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिविधुवकवेतसान् निमिनोति । इदं वा आप इति हिरण्यम् अधिदधाति अयं वत्स इतीषीकाञ्जिमण्डूकं नीललोहिताभ्यां सूत्राभ्यां सकदं बद्ध्वा । इहेत्थं इत्यवकया प्रच्छादयति । यत्रेदं इति निनयति । मारुतं क्षीरोदनं मारुतं शृतं मारुतैः परिस्तीर्य मारुतेन स्रुवेण मारुतेनाज्येन वरुणाय त्रिर्जुहोति । उक्तं उपमंथनं (दधिमन्थं) बलिं हृत्वा संप्रोक्षणीभ्यां प्रसिञ्चन् व्रजति । पाणिना वेत्रेण वा प्रत्याहृत्योपरि निपद्यते" ॥

तथा इसी सूक्तसे मन्त्रसे प्रतीत होने वाले मरुत् देवताओंके निमित्त होम करे । और काश दिविधुक और वेतस नाम वाली औषधियोंको एक पात्रमें रख सम्पातन और अभिमन्त्रण करके जलके बीचमें नीचेको मुख करके लेजाय । उन संपातित अभिमंत्रित काश आदिको जलमें फैंक देवे । मनुष्यके बाल और पुराने जूतोंको बाँसमें बाँधे, बहेडे सहित कच्चे पात्रको अभिमंत्रित जलसे प्रोक्षित कर तीन डोरे वाले छींके पर रख कर जलके मध्यमें रक्खे इन सब वृष्टिके कर्मोंको वृष्टिकी कामना वाला करे ॥

तथा धन उठानेमें होने वाले विघ्नोंको शान्त करनेके कर्ममें इस सूक्तसे घृतकी आहुति देय तथा संपातित अभिमन्त्रित घटके जलसे स्नान और अभिषेक करे ॥

सूत्रमें भी कहा है, कि–"अथ उत्थास्यन्धुपदधीत" इति प्रक्रम्य "अम्बयो यन्ति (१ । ४) शंभुमयो भू (१ । ५ । ६) हिरण्यवर्णाः (१ । ३३) यददः (३ । १३) इत्यादिना अभिवर्षणावसेचनानाम्" इत्यन्तेन (कौशिकसूत्र ५ । ५) ॥

तत्र प्रथमा ॥

यद॒दः सं॑प्र॒यती॒रहा॒वन॑दता ह॒ते ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तस्मादा नद्यो३ नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः १

यत् । अदः । सम्ऽप्रयतीः । अहौ । अनदत । हते ।

तस्मात् । आ । नद्यः । नाम । स्थ । ता । वः । नामानि । सिन्धवः ॥१॥

अदः अमुष्मिन् । ❀ "सुपां सुलुक्०" इति सप्तम्या लुक् ❀। अहौ आहन्तव्ये मेघे हते ताडिते हे आपः यूयं यत् यस्मात् संप्रयतीः संभूय इतस्ततश्च प्रयान्त्यः अनदत शब्दं कृतवत्यः स्थ । ❀ नद अव्यक्ते शब्दे । अस्मात् लङि मध्यमबहुवचने रूपम् । "निपातैर्यद्यदिहन्त०" इति निघातप्रतिषेधः । "अन्येषामपि दृश्यते" [इति] सांहितिको दीर्घः । संप्रयतीरिति । संप्रपूर्वाद् एतेः शतरि इणो यणि "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घत्वम् । "शतुरनुमः०" इति नद्या उदात्तत्वम् ❀ । तस्मात् कारणाद् यूयम् आ आभिमुख्येन अव्यवधानेनैव नद्यो नाम [स्थ] भवथ । ❀ अनेन नदनान्नद्य इति निर्वचनं कृतं भवति । पचादिषु नदट् इति पाठात् "टिड्ढाणञ्०" इत्यादिना ङीप् । "यस्येति०" लोपे उदात्तनिवृत्तिस्वरेण ङीप उदात्तत्वम् । "उदात्तस्वरितयोः०" इति विभक्तिः स्वर्यते ❀ । हे सिन्धवः स्यन्दनशीला आपः वः युष्माकं नामानि आपः उदकम् इत्यादीनि । अन्यान्यपि सर्वाणि [ता] तानि तादृशानि । अन्वर्थानीत्यर्थः । ❀ ता इति । "शेश्छन्दसि०" इति शेर्लोपः ❀ ॥

हे जलों ! इस ताड़न करने योग्य मेघके ताड़ित करने पर तुमने इधर उधरको चल कर नदन (शब्द) किया था उसी समयसे तुम्हारा नदी नाम पड़ गया है । हे सरकनेके स्वभाव वाले जलों ! तुम्हारे अप उदक आदि जो नाम है वह भी ऐसे ही हैं अर्थात् नामके अनुकूल अर्थ वाले हैं ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वितीया ॥

यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत ।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु ष्ठन ॥ २ ॥

यत् । प्रऽइषिताः । वरुणेन । आत् । शीभम् । सम्ऽअवल्गत ।
तत् । आप्नोत् । इन्द्रः । वः । यतीः । तस्मात् । आपः । अनु । स्थन

आप इति नाम व्युत्पादयति । यत् यदा वरुणेन राज्ञा आदित्येन वा प्रेषिताः प्रेरिता यूयम् आत् अनन्तरं शीभम् । क्षिप्रनामैतत् । शीघ्रं समवल्गत संभूय नृत्यन्त्य इव वेष्टितवत्यः । ❀ वल्गतिर्गत्यर्थो भौवादिकः । यद्योगेन निघातप्रतिषेधे "तिङि चोदात्तवति" इति गतेरनुदात्तत्वम् ❀ । तत् तदानीं यतीः गच्छन्तीः वः युष्मान् इन्द्रः आप्नोत् । तस्मात् कारणात् अनु अनन्तरं ततःप्रभृति आपः स्तन अप्शब्दवाच्या भवत । यद्वा आप इति नाम अनु ष्टन अनुभवत । ❀ आप्नोतेः कर्मणि क्विपि आप्नोतेर्ह्रस्वश्च [उ० २. ५८] इति ह्रस्वत्वे "अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृ०" इत्यादिना सर्वनामस्थाने दीर्घः । स्तनेति । अस्तेर्लोण्मध्यमबहुवचनस्य तनादेशः । "उपसर्गप्रादुर्भ्याम् अस्तिर्यच्परः" इति षत्वस्याप्रसङ्गात् सुषामादित्वेन षत्वं वेदितव्यम् ❀ ॥

(अब आप नामकी व्युत्पत्ति करते हैं, कि—) जब राजा वरुणके (वा आदित्यके) प्रेरणा करने पर तुम नाचते हुएसे एकत्रित होकर चलने लगे थे उस समय इंद्र तुमको (आप्नोत्) प्राप्त हुआ था, इस कारण उसी दिनसे तुम आप (अप्) कहलाने लगे हो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद् वार्नाम वो हितम् ३

अपऽकामम् । स्यन्दमानाः । अवीवरत । वः । हि । कम् ।

इन्द्रः । वः । शक्तिऽभिः । देवीः । तस्मात् । वाः । नाम । वः । हितम्

वार् इति नाम प्रदर्शयति । अपकामम् विनैव कामेन स्यन्दमानाः सदा स्यन्दनं कुर्वाणाः वः युष्मान् इन्द्रः वः युष्माकं शक्तिभिः हेतुभिः अवीवरत वृतवान् युष्मान् स्वात्मसात् कर्तुम् ऐच्छत् । ❀ वर ईप्सायाम् । चुरादिरदन्तः । व्यत्ययेन सन्वद्भावः । वृणोतेर्वा स्वार्थिको णिच् ❀ । हिकम् इति हिशब्दार्थे । ❀ हिकम् नुकम् इति नवोत्तराणि पदानि [निघ० ३. १२] इति यास्केन परिपठितत्वात् ❀ । हे देवीः देव्यो देवनशीलाः तस्मात् कारणाद् वः युष्माकं वार् इति नाम हिकम् प्रसिद्धम् । ❀ वृणोतेर्ण्यन्तात् कर्मणि क्विप् ❀ ॥

(वार इस नामकी व्युत्पत्ति दिखाते हैं, कि-) इच्छा न होने पर भी सदा सरकने वाले तुमको इन्द्रने अपनी शक्तियोंसे वरण किया अर्थात् अपने अधीन करनेकी इच्छा की, हे देवनशील जलो ! इस कारण तुम्हारा वार यह नाम प्रसिद्ध हुआ है ३

चतुर्थी ॥

एको वो देवोप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् ।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥ ४ ॥

एकः । वः । देवः । अपि । अतिष्ठत् । स्यन्दमानाः । यथाऽवशम् ।

उत् । आनिषुः । महीः । इति । तस्मात् । उदकम् । उच्यते ४

उदकशब्दं निर्वक्ति । एकः असहायो देवः इन्द्रो यथावशम् यथाकामं स्यन्दमानाः इतस्ततश्च स्यन्दनशीला वः युष्मान् अप्य-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तिष्ठत् अध्यतिष्ठत् । अपिशब्दः अध्यर्थे । तेन इन्द्रबहुमानेन आपो वयं महीः महत्यो जाता इति उदानिषुः उच्छ्वसितवत्यः । ❀ अन प्राणने । लुङि रूपम् ❀ । तस्मात् कारणाद्ध उदकम् इति अपां नाम उच्यते निरुच्यते उदननात् । ❀ उदकम् इति । उत्पूर्वाद्ध अनितेरौणादिकः कप्रत्ययो नकारलोपश्च ❀ ॥

(अब उदकशब्दका निर्वचन करते हैं, कि--) असहाय एक देवराज इन्द्र इच्छानुसार सरकते हुए तुम पर आधिपत्य जमाते हुए, इन इन्द्रके बहुमानके कारण जलोंने हम बड़े होगए कहकर उदान किया-उच्छ्वास लिया। इस कारण जल उदक कहलाते हैं ४

पञ्चमी ॥

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत् ताः ।

तीव्रो रसो मधुपृचामरङ्गम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥ ५ ॥

आपः । भद्राः । घृतम् । इत् । आपः । आसन् । अग्नीषोमौ । बिभ्रति । आपः । इत् । ताः ।

तीव्रः । रसः । मधुऽपृचाम् । अरम्ऽगमः । आ । मा । प्राणेन । सह । वर्चसा । गमेत् ॥ ५ ॥

आपः भद्राः भन्दनीयाः । ता एव घृतम् आज्यम् आसन् । तृणादिनिष्पादनेन घृतात्मिका भवन्ति । यद्वा घृतमित् अग्नौ हुतम् आज्यमेव आप आसन् ।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यम् उपतिष्ठते ।

आदित्याज्जायते वृष्टिः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इति [म० स्मृ० ३. ७६] स्मरणात् ॥ किं च ता एव आपः अग्नीषोमौ बिभ्रति धारयन्ति । अन्नादिहविर्निष्पत्त्या अग्निम् रश्मिवृद्ध्या सोमम् । ❀ "ईदग्नेः०" इति ईत्वम् । "अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः" इति षत्वम् । "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वोत्तरपदयोर्युगपत्प्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥ तादृशीनाम् अपां मधुपृचाम् मधुना रसेन संपृक्तानां तीव्रः उद्भूतो रसः अरङ्गमः पर्याप्तगमनः न कदाचिदपि क्षीणः प्राणेन चक्षुरादिना वर्चसा बलेन च सह मा माम् आगन् आगच्छतु । तदधीनत्वात् प्राणादिस्थितेः । ❀ गमेश्छान्दसे लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "मो नो धातोः" इति नत्वम् ❀ ॥

जल कल्याण करनेवाले हैं वही घृत हुए अर्थात् तृण आदिको उत्पन्न कर † घृतरूप होजाते हैं और घृत ही अग्निमें होमने पर जलरूप होजाता है और ये ही जल अग्नि और सोमको धारण करते हैं अर्थात् अन्न आदि हविको बना कर अग्निको और किरणों की वृद्धि कर सोमको धारण करते हैं, ऐसे जलोंका मधुररससे सम्पन्न तीव्र रस कभी भी क्षीण न होनेकी स्थितिमें चक्षु आदि प्राणके साथ और बलके साथ मुझको प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

आदित् पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ् मासाम् ।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः

† "अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिः ॥—अग्निमें होमी हुई आहुति सूर्यके पास पहुँचती है । तब आदित्यसे वृष्टि होती है" ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आत् । इत् । पश्यामि । उत । वा । शृणोमि । आ । मा । घोषः । गच्छति । वाक् । मा । आसाम् ।

मन्ये । भेजानः । अमृतस्य । तर्हि । हिरण्यऽवर्णाः । अतृपम् । यदा । वः ॥ ६ ॥

रसः प्राणेन सह आगच्छतु इत्युक्तम् । तद् इदानीं समर्थयते । आदित् अनन्तरमेव अहं पश्यामि । उत वा अपि च शृणोमि ॥ घोषः शब्दः उच्चार्यमाणश्च मा माम् आ गच्छति ॥ तथा वाक् वागिन्द्रियम् । कर्मेन्द्रियोपलक्षणम् एतत् । तच्च आसाम् अपां युष्माकं रसागमनेन मा माम् । आ गच्छतीत्यनुषङ्गः । ❀ वाग्मेति । संहितायां "यरोनुनासिकेनुनासिको वा" इति विकल्पेन अनुनासिकादेशाभावः ❀ । किं बहुना । तर्हि तदानीम् अमृतस्य भेजानः अमृतमेव भजन् अहं मन्ये तर्कयामि । ❀ पूर्ववत् कर्मणः संप्रदानत्वात् चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । भेजान इति । भजेश्छान्दसे लिटि "तृफलभजत्रपश्च" इत्येत्वाभ्यासलोपौ ❀ । कदा एवं वितर्कयेत इति चेत् । उच्यते । यदा हे हिरण्यवर्णाः हितरमणीयवर्णयुक्ता आपः वः युष्माकं युष्मत्सेवनेन अतृपम् सुहितोभवम् । ❀ तृप तृन्फ तृप्तौ । तौदादिकः । लङि उत्तमैकवचने रूपम् । सुहितार्थयोगेन षष्ठी ❀ ॥

(रसके प्राणके साथ आनेका वर्णन कर अब उसका समर्थन करते हैं, कि–) इसके अनन्तर ही मैं देखता हूँ और सुनता भी हूँ, कि–उच्चारण किया हुआ शब्द मेरे पास आरहा है और वाणीमें भी आरहा है, वह आप जलोंके रसके आगमनसे मुझमें आता है अतः मैं इस समय अमृतकी सेवा करता हुआ सा समझता हूँ । हे हितरमणीय वर्ण वाले जलों ! तुम्हारा सेवन करनेसे मैं तृप्त होगया हूँ ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सप्तमी ॥

इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः ।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ॥ ७ ॥

इदम् । वः । आपः । हृदयम् । अयम् । वत्सः । ऋतऽवरीः ।
इह । इत्थम् । आ । इत । शक्वरीः । यत्र । इदम् । वेशयामि । वः

हे आपः वः युष्माकम् इदम् हिरण्यं खाते प्रक्षिप्यमाणं हृदयं हृदयस्थानीयम् । अपां रेतोरूपत्वात् हिरण्यस्य हृदयरूपता । श्रूयते हि "आपो वरुणस्य पत्नय आसन् । ता अग्निरभ्यध्यायत । ताः समभवत् । तस्य रेतः परापतत् । तद्धिरण्यम् अभवत्" इति [तै० ब्रा० १. १. ३. ८] । यद्वा हृदयम् अन्तःकरणम् । यथा लोके हृदयं विहाय क्षणमपि शरीरं नावतिष्ठते किं तु सहैव वर्तते तथा यूयमपि हृदयरूपं हिरण्यं प्रति [एत] । आगच्छतेत्यर्थः ॥ तथा हे ऋतावरीः ऋतवर्यः । ऋतं सत्यं यज्ञो वा यासां तास्तथोक्ताः । ❀ ऋतशब्दात् "छन्दसीवनिपौ०" इति मत्वर्थीयो वनिप् । "वनो र च" इति ङीब्रेफौ । "अन्येषामपि दृश्यते" इति ऋतशब्दस्य सांहितिको दीर्घः । "वा छन्दसि" इति शसः पूर्वसवर्णदीर्घत्वम् ❀ । सत्योपेताः हे आपः अयम् खाते प्रक्षिप्यमाणो मण्डूकः वत्सः युष्माकं वत्सस्थानीयः । यथा लोके गावो वत्सम् अनुधावन्ति एवं यूयमपि वत्सस्तुतमण्डूकम् अनुधावतेति भावः ॥ हे शक्वरीः शक्वर्यः शक्ताः अभिमतफलप्रदानसमर्था आपः । ❀ शक्लृ शक्तौ इत्यस्माद् "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति वनिप् । पूर्ववद् ङीब्रेफपूर्वसवर्णदीर्घाः ❀ । इह अस्मिन् खातदेशे इत्थम् अनेन प्रकारेण । यथात्र मण्डूकस्योपरि प्रक्षिप्यमाणा अवका रूढमूला भवन्ति तथा एत आगच्छत स्थिरप्रवाहा भवत ॥ यत्र यस्मिन् खातदेशे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इदम् इदानीं वः युष्मान् वेशयामि । प्रवेशयामि निनयामि यद्वा इदम् इति उदकनाम । वः युष्माकम् अंशभूतम् इदम् उदकं यत्र अवकाछन्ने मण्डूके वेशयामि । इहेति पूर्वत्र संबन्धः ॥

इति तृतीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे जलों ! यह जलोंमें डाला जाता हुआ सुवर्ण आपका हृदय है + । अथवा जैसे लोकमें हृदयको छोड़कर शरीर क्षण भर भी नहीं रहता है किंतु साथ ही रहता है । इस प्रकार आप भी हृदयरूप सुवर्णके प्रति आइये । और हे सत्ययुक्त जलों ! यह खातमें डाला हुआ मण्डूक तुम्हारे लिये बछड़ेकी समान है । तात्पर्य यह है, कि–जैसे गौएँ बछड़ेके पासको दौड़ती हैं, इसी प्रकार तुम भी वत्सरूप मण्डूककी ओर दौड़ो। हे अभिमत फल देनेमें समर्थ जलों ! जिस खात देशमें मैं तुम्हारा प्रवेश कराता हूँ उसमें तुम जैसे मण्डूक पर फैंकी हुई अवका दृढ़ जड़ वाली होजाती है इस प्रकार आओ । स्थिर प्रवाह वाले होओ ॥ ७ ॥

तृतीय अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (८५) ॥

"सं वो गोष्ठेन" इति सूक्तेन गोपुष्टिकामः अभिनवं [पयो पृष्टेः श्लेष्ममिश्रितं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नाति ॥

तथा अनेन सूक्तेन गाम् अभिमन्त्र्य ददाति गोपुष्टिकाम एव

एवम् अनेन सूक्तेन उदपात्रम् अभिमन्त्र्य गोवाटे निनयति ॥

अपि च करीषं सव्येन हस्तेन आक्रम्य दक्षिणेन अर्धं विक्षिपति गोवाटे गोपुष्टिकामः ॥

तथैव अनेन सूक्तेन सारूपवत्से ओदने शकृत्पिण्डान् गुग्गुलुलवणे च एकीकृत्य पश्चाद् अग्नेर्निखनति त्रिरात्रं यावत् । चतुर्थ-

+ श्रुतिमें कहा है, कि–"आपो वरुणस्य पत्नय आसन् । ता अग्निरभ्यध्यायत् । ताः समभवत् । तस्य रेतः परापतत् । तद्धिरण्यमभवत् ।" (तैत्तिरीयब्राह्मण १ । १ । ३ । ८)॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हनि प्रातः संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नाति । अविकृतश्चेत् स ओदनः । विकृते तु सति अनशनम् । अनशितेपि च फलं संपन्नम् इति मन्तव्यम्

उक्तं हि कौशिकेन । "सं वो गोष्ठेन ३. १४ प्रजावतीः ७. ७९ प्रजापतिः ६. ७ इति गोष्ठकर्माणि । गृष्टेः पीयूषं श्लेष्ममिश्रम् अश्नाति । गां ददाति । उदपात्रं निनयति । समुह्य सव्येनाधिष्ठायार्धं दक्षिणेन विक्षिपति । सारूपवत्से शकृत्पिण्डान् गुग्गुलुलवणे प्रतिनीय पश्चाद्ध अग्नेर्निखनति] । तिसृणां प्रातरश्नाति" । [कौ० ३. २] इति ॥

'सं वो गोष्ठेन' इस सूक्तसे गौओंकी पुष्टि चाहने वाला पुरुष पहलौन गौके बछड़ेकी लारसे मिश्रित नवीन दूधको सम्पातन और अभिमन्त्रण करके प्राशन करे ॥

तथा गौओंकी पुष्टि चाहने वाला इस सूक्तसे गौको अभिमन्त्रित करके देवे ॥

इसी प्रकार इस सूक्तसे जलपूर्ण पात्रका अभिमन्त्रण कर गोवाटमें ले जावे ॥

और गौओंकी पुष्टि चाहने वाला बायें हाथसे अन्ने उपलेको उठाकर दाहिने हाथसे आधा गौओंके रहनेके स्थानमें फैंक देवे ॥

इसी प्रकार इस सूक्तसे अपने और बछड़ेके एकसे रूप वाली गौके दूधमें बने भातमें गोवरके पिण्ड गूगल और लवणको मिला कर अग्निमें तीन रात तक दवा दे । चौथे दिन प्रातःकालके समय सम्पातन और अभिमन्त्रण करके खावे वह भात अविकृत हो तभी खावे । यदि वह भात विगड़ गया हो तो न खावे और न खाने पर भी फलको मिला हुआ समझे ॥

इसी वातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि-'सं वो गोष्ठेन ३।१४ प्रजावतीः ७ । ७९ प्रजापतिः ६ । ७ इति गोष्ठकर्माणि । गृष्टेः पीयूषं श्लेष्ममिश्रं अश्नाति । गां ददाति । उदपात्रं निनयति ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समुह्य सत्येनाधिष्ठायार्धं दक्षिणेन विक्षिपति । सारूपवत्से शकृत्पिण्डान् गुग्गुलुलवणे प्रतिनीय पश्चाद् अग्नेर्निखनति । तिसृणां प्रातरश्नाति" (कौशिकसूत्र ३ । २) इति ॥

तत्र प्रथमा ॥

सं वो॑ गो॒ष्ठेन॑ सु॒षदा॒ सं र॒य्या सं सुभू॑त्या ।
अह॑र्जातस्य॒ यन्नाम॒ तेना॑ वः॒ सं सृ॑जामसि ॥१॥

सम् । वः॒ । गो॒ऽस्थेन॑ । सु॒ऽसदा॑ । सम् । र॒य्या । सम् । सु॒ऽभू॑त्या ।
अहः॑ऽजातस्य । यत् । नाम॑ । तेन॑ । वः॒ । सम् । सृ॒जा॒म॒सि॒ ॥१॥

हे गावः वः युष्मान् सुषदा । सुखेन सीदन्ति निवसन्ति गावोऽत्रेति सुषत् । ❀ सदेरधिकरणे क्विप् ❀ । सुखनिवासेन गोष्ठेन गोशालया । सं सृजामसि इति व्यवहितक्रियापदेन सर्वत्र संबन्धः । संसृजामः । तथा रय्या आहारादिरूपेण धनेन संसृजामः ॥ सुभूत्या समृद्ध्या च संसृजामः ॥ तथा अहर्जातस्य । अहन्यहनि जायत इत्यहर्जातः प्राणिविशेषः । तस्य यन्नाम अहर्जात इति तेन नाम्ना वः युष्मान् सं सृजामसि संसृजामः । एतन्नामयोगेन गवां पुत्रपौत्रादिरूपेण अहरहरुत्पत्तिरुक्ता ॥

हे गौओं ! तुमको हम सुखसे बैठने योग्य गोठोंसे सम्पन्न करते हैं, चारा आदि धनसे सम्पन्न करते हैं, समृद्धिसे सम्पन्न करते हैं और प्रति दिन होने वाले नाम पुत्र पौत्र आदिसे हे गौओं ! हम तुमको सम्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

सं वः॑ सृजत्वर्य॒मा सं पू॒षा सं बृह॒स्पतिः॑ ।
समिन्द्रो॒ यो ध॑नंज॒यो मयि॑ पुष्यत॒ यद् वसु॑ ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम् । वः । सृजतु । अर्यमा । सम् । पूषा । सम् । बृहस्पतिः ।

सम् । इन्द्रः । यः । धनम्ऽजयः । मयि । पुष्यत । यत् । वसु २

हे गावः अर्यमा एतन्नामको देवः वः युष्मान् सं सृजतु उत्पादयतु । पूषा पोषकः समृद्धिकरो देवः [सं] सृजतु । बृहस्पतिर्देवः सं सृजतु । य इन्द्रः धनंजयः । धनानि शत्रुसंबन्धीनि जयति अपहरतीति धनञ्जयः । ❀ "संज्ञायां भृतृवृजिधारिसहि०" इत्यादिना खच् । "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इति पूर्वपदस्य मुम् आगमः । चित्स्वरेण अन्तोदात्तः ❀ । स इन्द्रः सं सृजतु । एवम् अर्यमादिभिरुत्पाद्य संवर्धिता हे गावः यूयं यद्व वसु क्षीरघृतादिकं धनम् अस्ति तद्व मयि साधके पुष्यत पोषयत । ❀ पुष पुष्टौ । दैवादिकः । "युष्मदस्मदोर्ङसि" "ङयि च" इति अस्मद्व आद्युदात्तत्वम् ❀ ॥

हे गौओं ! अर्यमा नामक देवता तुम्हें उत्पन्न करे । समृद्धि देने वाले पूषा देवता, बृहस्पति देवता और शत्रुओंके धनको हरने वाले इन्द्र देवता तुमको उत्पन्न करें । इस प्रकार इन्द्र आदि के उत्पन्न करने पर तुम्हारे पास जो क्षीर घृत आदि धन है, उसको तुम मुझ साधकमें पुष्ट करो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः ।

बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥ ३ ॥

सम्ऽजग्मानाः । अबिभ्युषीः । अस्मिन् । गोऽस्थे । करीषिणीः ।

बिभ्रतीः । सोम्यम् । मधु । अनमीवाः । उपऽएतन ॥ ३ ॥

अस्मिन् मदीये गोष्ठे संजग्मानाः पुत्रपौत्रादिभिः संगच्छमानाः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

❀ संपूर्वाद् गमेरकर्मकात् छान्दसो लिट्। "समो गम्यृच्छि०" इत्यात्मनेपद विधानात् कानच् ❀। अबिभ्युषीः चोरव्याघ्रादिभ्यः अबिभ्यत्यः। ❀ ञिभी भये इत्यस्मात् छान्दसे लिटि क्वसुः। उगित्त्वाद् ङीप्। "वसो संप्रसारणम्"। छान्दसो जसः पूर्वसवर्णदीर्घः। अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥ तथा करीषिणीः करीषं शकृत्। ❀ भूम्निमत्वर्थीय इनिः ❀। चिरकालजीवनेन प्रभूतकरीषयुक्ता इत्यर्थः। अनमीवाः अमीवो रोगस्तद्रहिताः। सोम्यम् सोममयम्। "सोमः खलु [वै]सांनाय्यम्" [तै० ब्रा० ३. २. ३. ११] इति श्रुतेः। सोमार्हं वा। ❀ "सोमम् अर्हति यः" "मये च" इति सोमशब्दाद् यप्रत्ययः ❀। तथाविधं मधु मधुरसं क्षीरं बिभ्रतीः धारयन्त्यः पीनोध्न्यः सत्यः उपेतन उपेत उपगच्छत। ❀ "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तनादेशः ❀ ॥

हे गौओ! इस मेरे गोष्ठमें तुम पुत्र पौत्र आदिसे सम्पन्न होती हुई, चोर व्याघ्र आदिसे न डरती हुई और चिरकाल तक जीवित रहनेके कारण बहुतसे अन्ने उपलोंसे युक्त होती हुई, रोगरहित रहती हुई सोममय मधुर क्षीरको धारण करनेसे स्थूल स्तन वाली होकर आओ ॥ ३ ॥

चतुर्थी॥

इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत।
इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥ ४ ॥

इह। एव। गावः। आ। इतन। इहो इति। शकाऽइव। पुष्यत।
इह। एव। उत। प्र। जायध्वम्। मयि। सम्ऽज्ञानम्। अस्तु। वः ४.

हे गावः यूयम् इहैव मदीये गोष्ठ एव एतन आगच्छत। इहो इह उ। उशब्दः अवधारणे। इहैव शकेव शका मक्षिका सा यथा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्षणेनैव समृद्धा असंख्याता भवति तथा यूयं पुष्यत भूयस्यो भवत ॥ उत अपि च इहैव गोष्ठे प्र जायध्वम् पुत्रपौत्रादिरूपेण प्रजाता भवत । ❀ "ज्ञाजनोर्जा" इति जादेशः ❀ । मयि साधके वः युष्माकं समृद्धाना संज्ञानम् संप्रीतिरस्तु । मां विहाय न गच्छतेति भावः ॥

हे गौओं ! तुम मेरी ही गोठमें आओ और मक्षिका जैसे क्षणभरमें ही समृद्ध होकर असंख्य होजाती हैं, इसी प्रकार तुम भी मेरे यहाँ ही पुष्ट होओ बहुतसी होओ । और इस गोष्ठमें ही पुत्र पौत्र आदिरूपसे उत्पन्न होओ मुझ साधकमें तुम्हारी प्रीति हो, तुम मुझे छोड़ कर न जाओ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत ।
इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥ ५ ॥

शिवः । वः । गोऽस्थः । भवतु । शारिशाकाऽइव । पुष्यत ।
इह । एव । उत । प्र । जायध्वम् । मया । वः । सम् । सृजामसि ५

हे गावः वः युष्माकं गोष्ठः वासस्थानं शिवः सुखकरो भवतु ॥ यूयं शारिशाकेव । क्षणेन सहस्रशोऽभिवर्धमानाः प्राणिविशेषाः शारिशाकाः । तद्वत् पुष्यत समृद्धा भवत ॥ इहैवोतेति निगदसिद्धोर्थः ॥

हे गौओं ! तुम्हारा गोष्ठ तुम्हें सुख देने वाला होवे तुम क्षण भरमें सहस्रोंकी संख्यामें बढ़ जाने वाले शारिशाक नाम वाले प्राणियोंकी समान समृद्ध होओ । तुम यहाँ ही रहकर पुत्र पौत्र आदिके रूपमें उत्पन्न होओ, हम तुम्हारी रचना करते हैं ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

षष्ठी ॥

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥

मया । गावः । गोऽपतिना । सचध्वम् । अयम् । वः । गोऽस्थः ।
इह । पोषयिष्णुः ।

रायः । पोषेण । बहुलाः । भवन्तीः । जीवाः । जीवन्तीः । उप ।
वः । सदेम ॥ ६ ॥

हे गावः यूयं गोपतिना गोस्वामिना मया सचध्वम् समवेता भवत । ❀ षच समवाये । भौवादिकः । गोपतिना । गवां पतिः गोपतिः । "पत्यावैश्वर्ये" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥ इह मदीये गृहे अयं गोष्ठः वः युष्मान् पोषयिष्णुः पोषकः । ❀ पोषयतेः "णेश्छन्दसि" इति इष्णुच् प्रत्ययः । "न लोकाव्यय०" इति षष्ठीनिषेधाद् व इति द्वितीया ❀ ॥ रायः धनस्य पोषेण । ❀ "षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀ । धनसमृद्ध्या बहुलाः असंख्याता भवन्तीः जीवन्तीः चिरकालजीवनोपेता वः युष्मान् जीवाः चिरजीविनो वयम् उप सदेम उपगच्छेम । ❀ सदेराशीर्लिङि "लिङ्याशिष्यङ्" इति अङ् प्रत्ययः ❀ ॥

इति तृतीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे गौओं ! तुम मुझ गोस्वामीके साथ एकत्रित होओ । मेरे घरमें यह गोठ तुम्हारा पोषण करे । चारे आदि धनकी समृद्धि से असंख्य होती हुई और चिरकाल तक जीवित रहती हुई तुमको हम चिरजीवी प्राप्त हों ॥ ६ ॥

तीसरे अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (८५) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"इन्द्रम् अहं वणिजम्" इति वाणिज्यलाभार्थं [विनियुज्यते। विक्रयार्थं पण्यानि विपणिं नयन् वणिक् कर्म वाणिज्यलाभार्थं कुर्यात्। तद्ध यथा। "इन्द्रम् अहम्" इति सूक्तेन वज्रं वस्त्रं वा पूगीफलं वा अश्वान् वा हस्तिनो वा रत्नादि वा संपात्य अभिमन्त्र्य तत उत्त्थापयति। सूत्रितं हि। "इन्द्रम् अहम् इति पण्यं संपातयद्ध उत्त्थापयति" इति कौ० ७. १]॥

[तथा अनेनैव सूक्तेन पण्यकामः इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा। सूत्रितम्। "इन्द्रम् अहम् इति पण्यकामः" इति कौ० ७. १०]॥

[तथा क्रव्याच्छमने कर्मणि "विश्वाहा ते" ८ इति ऋचा पूर्णाहुतिं जुहोति। सूत्रितं च। "विश्वाहा ते ८ इति पूर्णाहुतिं जुहोति" इति कौ० ६. २]॥

"इन्द्रं अहं वणिजम्" इस सूक्तका वाणिज्यलाभके लिये विनियोग किया जाता है। विक्रीके लिये वेचनेकी वस्तुओंको दूकान में लेजाते समय वाणिज्यमें लाभ पानेके लिये वणिक्कर्म करे। उसकी विधि यह है, कि–'इन्द्रं अहम्' इस सूक्तसे वज्र वस्त्र पूगीफल घोड़ा हाथी वा रत्न आदि इनमेंसे एकको सम्पातित अभिमन्त्रित करके उठावे। कौशिकसूत्र ७। १ में भी कहा है, कि–"इन्द्रम् अहम् इति पण्यं सम्पातवद्ध उत्त्थापयति"॥

तथा दूकानदारी करना चाहने वाला इसी सूक्तसे इन्द्रका यजन वा उपस्थान करे। सूत्रमें भी कहा है, कि–"इन्द्रम् अहम् इति पण्यकामः" (कौशिकसूत्र ७। १०)॥

तथा क्रव्याच्छमन नाम वाले कर्ममें 'विश्वाहा ते' इस आठवीं ऋचासे पूर्णाहुति होमे। इसी वातको कौशिकसूत्र ६। १ में कहा है, कि–'विश्वाहा ते ८ इति पूर्णाहुतिं जुहोति'॥

तत्र प्रथमा॥

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥ १ ॥

इन्द्रम् । अहम् । वणिजम् । चोदयामि । सः । नः । आ । एतु । पुरःऽएता । नः । अस्तु ।

नुदन् । अरातिम् । परिऽपन्थिनम् । मृगम् । सः । ईशानः । धनऽदाः । अस्तु । मह्यम् ॥

अहम् व्यवहर्ता इन्द्रम् परमैश्वर्योपेतं देवं वणिजम् वाणिज्यकर्त्तारं चोदयामि प्रेरयामि प्रवर्तयामि । ❀ णुद प्रेरणे ❀ ॥ सः वणिक्त्वेन प्रेरित इन्द्रो नः अस्मान् ऐतु आगच्छतु । आगत्य च नः अस्माकं पुरएता पुरतो गन्ता अस्तु भवतु । ❀ "पूर्वाधरावराणाम् असि पुरधवश्चैषाम्" इति पूर्वशब्दाद् असिप्रत्ययः तत्संनियोगेन पुरादेशश्च । शत्रन्तेन समासे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । किं कुर्वन् । अरातिम् वाणिज्यविघातकं शत्रुं परिपन्थिनम् पर्यवस्थातारं मार्गनिरोधकं चोरम् । ❀ "छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि" इति इनि प्रत्ययान्तो निपातितः ❀ । मृगम् व्याघ्रादिकं च नुदन् हिंसन् ईशानः ईश्वरो नियन्ता स इन्द्रः मह्यम् वणिजे धनदाः वाणिज्यलाभरूपधनप्रदाता अस्तु भवतु । ❀ ईशान इति । ईश ऐश्वर्ये । अदादित्वात् शपो लुक् । अनुदात्तेत्त्वात् "०लसार्वधातुक०" [इति] अनुदात्तत्वे धातुस्वरः । धनदाः । ददातेः "आतो मनिन्०" इति विच् प्रत्ययः ❀ ॥

मैं व्यवहार करनेवाला पुरुष परमैश्वर्यसम्पन्न वाणिज्यकर्ता इन्द्रदेवको प्रेरित करता हूँ, वणिक्भावसे प्रेरित वह इन्द्र हमारे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पास आवें और आकर वाणिज्यविघातक शत्रुको मार्गनिरोधक चोरको और व्याघ्र आदिको मारते हुए हमारे आगे चलें। नियन्ता इन्द्रदेव मुझे वाणिज्यमें लाभरूप धनके देनेवाले हों १

द्वितीया ॥

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।

ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि ॥ २ ॥

ये । पन्थानः । बहवः । देवऽयानाः । अन्तरा । द्यावापृथिवी इति । समऽचरन्ति ।

ते । मा । जुषन्ताम् । पयसा । घृतेन । यथा । क्रीत्वा । धनम् । आऽहराणि ॥ २ ॥

ते प्रसिद्धा देवयानाः देवा यान्ति येष्विति देवयानाः। ❀ अधिकरणे ल्युट् ❀। देवानुकूल्ययुक्ता इत्यर्थः। यद्वा दीव्यन्ति व्यवहरन्तीति देवा वणिजः। ते यत्र यान्ति ते देवयानाः। महता इत्यर्थः। ईदृशाः बहवः बहुदेशसंबंधिनो ये पन्थानः मार्गाः द्यावापृथिवी अन्तरा द्यावापृथिव्योर्मध्ये संचरन्ति वर्तन्ते। ❀ द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ। "दिवो द्यावा" इति द्यावादेशः। "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः। "नोत्तरपदेनुदात्तादौ०" इति प्रतिषेधस्य "०अपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु" इति पर्युदस्तत्वाद् "देवताद्वन्द्वे च" इत्युभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् "अन्तरान्तरेण युक्ते" इति द्वितीया❀। ते मार्गाः पयसा घृतेन च मा मां जुषन्ताम् सेवन्ताम्। मार्गश्रमनिवर्तकक्षीरघृतोपलक्षितान्नपानोपेता भवन्तु इत्यर्थः। यथा येन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकारेण अहं क्रीत्वा पण्यं विक्रीय धनम् लाभसहितं मूल्यधनम् आहराणि स्वगृहं प्रापयाणि । तथा जुषन्ताम् इति संबन्धः । ❀ हरतेः प्रार्थनायां लोट् ❀ ॥

जिनमें व्यवहार किया जाता है वे अनेक देशोंके जो बहुतसे मार्ग द्यावापृथिवीके मध्यमें हैं । वे मार्ग घृत और क्षीरसे हमारी सेवा करें—मार्गश्रमको दूर करने वाले क्षीर घृत अन्न पान आदि से संयुक्त होवें और जिस प्रकार मैं खरीद बेंच कर लाभसहित मूलधनको घरमें लेआऊँ तिस प्रकार मेरी सेवा करें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इ॒ध्मेना॑ग्न इ॒च्छमा॑नो घृ॒तेन॑ जुहो॒मि ह॒व्यं तर॑से॒ बला॑य ।
याव॒दीशे॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑मान इ॒मां धियं॑ शत॒सेया॑य दे॒वीम् ॥

इ॒ध्मेन॑ । अ॒ग्ने॒ । इ॒च्छमा॑नः । घृ॒तेन॑ । जु॒हो॒मि॒ । ह॒व्यम् । तर॑से । बला॑य ।
याव॑त् । ईशे॑ । ब्रह्म॑णा । बन्द॑मानः । इ॒माम् । धिय॑म् । श॒त॒ऽसे॑याय । दे॒वीम् ॥ ३ ॥

हे अग्ने इच्छमानः वाणिज्यलाभं कामयमानः । ❀ इषु इच्छायाम् । व्यत्ययेन शानच् । "इषुगमियमां छः" इति छादेशः । "०अदुपदेशाल्लसार्वधातुक०" [इति] अनुदात्तत्वे शप्प्रत्ययस्वरः ❀। सोहम् इध्मेन इन्धनसाधनेन समित्समूहेन घृतेन आज्येन च सह हव्यम् हविः जुहोमि । किमर्थम् । तरसे वेगाय शीघ्रगमनाय बलाय शरीरसामर्थ्याय च । ब्रह्मणा मन्त्रेण स्तोत्ररूपेण वन्दमानः त्वां स्तुवन् देवीं द्योतमानां व्यवहारकुशलाम् इमां मदीयां धियम् बुद्धिं शतसेयाय । शतम् इति अपरिमितनाम । असंख्यातधनलाभाय यावद् अहम् ईशे शक्नोमि लब्धुम् । तावज्जुहोमीति संबन्धः । यद्वा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यावद् अहम् ईशे ईश्वरो धनाढ्यो भवामि तावत् स्तोत्रेण स्तुवन् द्योतमानाम् इमां धियम् । धीरिति कर्मनाम । इदम् वाणिज्यलाभ-निमित्तं होमलक्षणं कर्म । करोमीति शेषः । ❀ ईश इति । ईश ऐश्वर्ये । लटि उत्तमैकवचने अनुदात्तेत्वात् "०लसार्वधातुक०" [इति] अनुदात्तत्वे धातुस्वरः । "यावद्यथाभ्याम्" इति निघात-प्रतिषेधः । शतसेयायेति । षणु दाने । व्यत्ययेन यत्प्रत्यये "ये विभाषा" इत्यात्वे "ईद्यति" इति ईत्वे गुणः । "यतोऽनावः" इत्याद्युदात्तत्वे धातुस्वरः । समासे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् । यद्वा धातूनाम् अनेकार्थत्वात् षो अन्तकर्मणीत्यस्मादेव यत् प्रत्ययः ❀ ॥

हे अग्ने ! मैं वाणिज्यमें लाभको चाहता हुआ शीघ्रगमनरूप वेग पानेके लिये और शरीरकी शक्तिरूप बल पानेके लिये स्तोत्र-रूप मंत्रसे आपकी स्तुति करताहुआ प्रकाशवान् बुद्धिसे असंख्य धन पाने तक अथवा जब तक मैं धनाढ्य होऊँ तब तक आपकी स्तुति करता हुआ इस होमकर्मको करता हूँ, ईंधनसे और घृतसे आपके निमित्त हवि होमता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इमाम॑ग्ने श॒रणिं॑ मीमृषो नो॒ यम॑ध्वा॑न॒मगा॑म दू॒रम् ।
शु॒नं नो॑ अस्तु प्र॒प॒णो वि॒क्रय॑श्च प्रति॒प॒णः फ॒लिनं॑ मा कृणोतु ।
इ॒दं ह॒व्यं सं॑विदा॒नौ जु॑षेथां शु॒नं नो॑ अस्तु चरि॒त-मु॒त्थितं च ॥ ४ ॥

इ॒माम् । अ॒ग्ने । श॒रणि॑म् । मी॒मृ॒षः॒ । नः॒ । यम् । अध्वा॑नम् । अगा॑म । दू॒रम् । शु॒नम् । नः॒ । अ॒स्तु॒ । प्र॒ऽप॒णः । वि॒ऽक्र॒यः । च । प्र॒ति॒ऽप॒णः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फलिनम् । मा । कृणोतु ।

इदम् । हव्यम् । सम्ऽविदानौ । जुषेथाम् । शुनम् । नः । अस्तु ।

चरितम् । उत्थितम् । च ॥ ४ ॥

हे अग्ने: नः अस्माकम् इमां शरणिम् प्रवासनिबन्धनां व्रतलोपलक्षणां हिंसां मीमृषः क्षमस्य । ❀ मृष तितिक्षायाम् । स्वार्थिको णिच् । छान्दसो लुङ् ❀ । यम् अध्वानम् मार्ग दूरम् अगाम गतवन्तः स्मः । तदध्वगमनजनिताम् इमां शरणिम् इति पूर्वत्रान्वयः । ❀ इण् गतौ । लुङि "इणो गा लुङि" इति गादेशः ❀ । यद्वा यम् अध्वानं दूरम् अगाम इमां शरणिम् । ❀ वर्णव्यत्ययः ❀ । इमम् अध्वानम् नः अस्मान् मीमृषः मर्षय तितिक्षय । तज्जनितदुःखनिवर्तने सद्यं कुर्वित्यर्थः ॥ प्रपणः व्यवहर्तुं पण्यद्रव्यस्य परिमाणकल्पनम् । विक्रयः तस्यैव सलाभमूल्यस्वीकारेण परेषां प्रदानम् । तद् उभयमपि नः अस्माकं शुनम् सुखं यथा भवति तथा अस्तु भवतु । ❀ विक्रय इति । क्रीणातेः "एरच्" इति अच् प्रत्ययः ❀ ॥ तथा प्रतिपणः । प्रत्यानेतुं परद्रव्यस्य परिमाणकल्पनं प्रतिपण इत्युच्यते । सोपि मा माम् । ❀ प्रपणः । पणव्यवहारे इत्यस्मात् "नित्यं पणः परिमाणे" इति अच् प्रत्ययः ❀ । फलिनम् प्रभूतलाभोपेतं कृणोतु करोतु ॥ इन्द्राग्न्योः प्रकृतत्वात् तावेवात्र प्रयुक्तौ प्रार्थ्येते । हे इन्द्राग्नी युवां संविदानौ संजानानौ ऐकमत्यं गतौ । ❀ संपूर्वाद् वेत्तेरकर्मकात् "समो गम्यृच्छि०" इत्यात्मनेपदम् । अदादित्वात् शपो लुक् ❀ । इदम् मया हूयमानं हव्यम् हविः जुषेथाम् सेवेथाम् ॥ युवयोः प्रसादात् नः अस्माकं चरितम् आचरितं विक्रयादिकम् उत्थितम् तस्माद् व्यवहाराद् उत्पन्नं लाभयुक्तं धनं च शुनम् सुखम् अस्तु ॥ हे देवाः धनेन मूल्यधनेन धनम् वृद्धियुक्तं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धनम् इच्छमानः कामयमानोहं येन धनेन प्रपणम् व्यवहर्तुं परिमाणकल्पनं चरामि करोमि। तदपि शुनम् अस्तु इति पूर्वेण संबंधः॥

हे अग्ने ! मार्ग चल कर दूर आगए हैं अतः हमारी प्रवासके कारण बनी हुई व्रतलोपरूपी हिंसाको आप क्षमा करिये । मैं दूर देशमें आगया हूँ उसमें उत्पन्न होनेवाले दुःखोंको सहनेकी शक्ति दीजिये । व्यवहार करनेके लिये लीजाने वाली वस्तुका परिमाणप्रपण और लाभसहित मूल्य लेकर दूसरोंको देशरूप विक्रय ये दोनों ही हमें सुख देने वाले हों और प्रतिपण भी अर्थात् लौटानेके लिये दूसरेके द्रव्यका परिमाण करना भी मुझे प्रभूत लाभ वाला करे हे इन्द्र और अग्नि देवताओं ! तुम दोनों एकमत होकर मेरी होमी हुई हविको स्वीकार करो । आपके प्रसादसे हमारा किया हुआ विक्रय और उससे मिला हुआ लाभयुक्त धन भी सुखदायक हो । हे देवताओ ! मूल्यधनसे वृद्धियुक्त धनको चाहते हुए हम जिस धनसे व्यवहार करना चाहते हैं, वह भी हमें सुख देने वाला हो ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध ॥ ५ ॥

येन । धनेन । प्रऽपणम् । चरामि । धनेन । देवाः । धनम् । इच्छमानः । तत् । मे । भूयः । भवतु । मा । कनीयः । अग्ने । सातऽघ्नः । देवान् । हविषा । नि । सेध ॥ ५ ॥

हे अग्ने सातघ्नः सातं लाभः । ❀ षणु दाने इत्यस्माद् भावे निष्ठा । "जनसनखनां सन्झलोः" इति आत्वम् ❀।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सातं लाभं घ्नन्तीति सातघ्नः। ❀ "बहुलं छन्दसि" इति हन्तेः क्विप्। शसि "गमहन०" इत्युपधालोपः। "हो हन्तेः०" इति घत्वम् ❀ लाभप्रतिबन्धकान् देवान् हविषा हूयमानेन नि षेध परितोष्य निवारय। ❀ षिधु गत्याम्। भौवादिकः। "उपसर्गात् सुनोति०" इत्यादिना षत्वम् ❀ ॥ येन धनेनेत्यादि पूर्ववत्। हे देवाः युष्मत्प्रसादात् तन्मे मदीयं धनं भूयः वहुतरं भवतु। कनीयः अल्पतरं मा भवतु। ❀ भूय इति। बहुशब्दाद् ईयसुनि "बहोर्लोपो भू च बहोः" इति ईयस आदेर्लोपः बहोर्भूभावश्च। कनीय इति। "युवाल्पयोः कन् अन्यतरस्याम्" इति अल्पशब्दस्य कन् आदेशः ❀ ॥

हे अग्ने! आप लाभके प्रतिबंधक देवताओंको होमी जाती हुई हविसे सन्तुष्ट करके लौटा दीजिये हे देवताओ! धनसे धनको चाहता हुआ मैं जिस धनसे व्यवहार करना चाहता हूँ, आपके प्रसादसे वह मेरा धन बहुत हो थोड़ा न होवे ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः। तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ॥ ६ ॥

येन। धनेन। प्रऽपणम्। चरामि। धनेन। देवाः। धनम्। इच्छमानः। तस्मिन्। मे। इन्द्रः। रुचिम्। आ। दधातु। प्रजाऽपतिः। सविता। सोमः। अग्निः॥ ६ ॥

येनेति यत् प्रकृतं धनं तस्मिन् मे मदीये धने रुचिम् सर्वजन-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रीतिं धनप्रदानेन आदानेच्छाम् इन्द्र आ दधातु स्थापयतु ॥ तथा प्रजापत्यादयश्च रुचिं कुर्वन्तु ॥

मैं धनसे धनको चाहता हुआ जिस धनसे प्रपण करना चाहता हूँ उस धनमें इन्द्र प्रजापति सविता सोम और अग्निदेवता मेरी रुचिको उत्पन्न करें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः ।

स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ॥ ७ ॥

उप । त्वा । नमसा । वयम् । होतः । वैश्वानर । स्तुमः ।

सः । नः । प्रऽजासु । आत्मऽसु । गोषु । प्राणेषु । जागृहि ७

हे होतः देवानाम् आह्वातः वैश्वानर विश्वनरहित अग्ने त्वा त्वां वयं नमसा हविर्लक्षणेन अन्नेन सह उप स्तुमः उपेत्य स्तोत्रं कुर्मः ॥ स स्तुतस्त्वं नः अस्माकं प्रजासु पुत्रपौत्रादिलक्षणासु आत्मसु अस्मासु गोषु अस्मदीयेषु पशुषु प्राणेषु च जागृहि बुध्यस्व । प्रजादिषु दुःखलेशोपि यथा न प्राप्नोति तथा रक्षन् अवहितो वर्तस्वेत्यर्थः ॥

हे देवताओंका आह्वान करने वाले सम्पूर्ण मनुष्योंके हितकारी अग्ने ! हम तुम्हारी हविरूप अन्नके साथ स्तुति करते हैं । स्तुति करने पर आप हमारी पुत्र पौत्र आदि प्रजामें, हममें पशुओंमें और प्राणोंमें सावधान रहिये अर्थात् प्रजा आदिको थोड़ासा भी दुःख न पहुँचे, इस प्रकार रक्षा करते हुए सावधान रहिये ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

विश्वाहा ते सदमिद्भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ ८ ॥

विश्वाहा । ते । सदम् । इत् । भरेम । अश्वायऽइव । तिष्ठते । जातऽवेदः ।

रायः । पोषेण । सम् । इषा । मदन्तः । मा । ते । अग्ने । प्रतिऽवेशाः । रिषाम ॥ ८ ॥

हे जातवेदः जातानां वेदितरग्ने तिष्ठते स्वगृहे नित्यं वर्तमानाय ते तुभ्यं विश्वाहा सर्वाण्यहानि । ❀ "०अत्यन्तसंयोगे" द्वितीया ❀ । सदमित् सदैव भरेम हरेम । हविरिति शेषः। तत्र दृष्टान्तः । अश्वायेव । स्वगृहे वर्तमानाय अश्वाय कालेकाले यथा घासः प्रदीयते तद्वत् ॥ हे अग्ने ते तव प्रतिवेशाः परिचरणादिना प्रत्यासन्ना वयं रायः धनस्य पोषेण समृद्धया इषा इष्यमाणेन अन्नेन च सं मदन्तः संमाद्यन्तो हृष्यन्तः । ❀ व्यत्ययेन शप् ❀ । मा रिषाम विनष्टा मा भूम । ❀ रुष रिष हिंसायाम् । पुषादित्वात् च्लेरङादेशः ❀ ॥

इति तृतीयकाण्डे तृतीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

समाप्तश्च तृतीयोनुवाकः ॥

हे प्रत्येक उत्पन्न हुओंको जानने वाले अग्ने ! अपने घरमें सदा वर्तमान आपके लिये हम जैसे अपने घरमें विद्यमान घोड़े को प्रतिदिन घास दी जाती है इस प्रकार प्रतिदिन हवि देते हैं । हे अग्ने ! आपकी सेवा करनेसे आपके समीपमें रहने वाले हम धनकी वृद्धि और अन्नसे मदमें भरते रहें नष्ट न होवें ॥८॥

तृतीयकाण्डके तृतीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (८६) ॥

तृतीय अनुवाक समाप्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चतुर्थेऽनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "प्रातरग्निम्" इति प्रथमं सूक्तम् । तेन मेधाकामः सुप्त्वोत्थाय मुखप्रक्षालनं हस्तेन कुर्यात् । तद् उक्तं कौशिकेन । "पूर्वस्य मेधाजननानि" इति प्रक्रम्य "प्रातरग्निम् [३. १६] गिरावरगराटेषु [६. ६९] दिवस्पृथिव्याः [६, १] इति संहाय मुखं विमार्ष्टि" इति [कौ० २. १] ॥

तथा अनेन सूक्तेन दधिमधुनी संपात्य अभिमन्त्र्य वर्चस्कामं ब्राह्मणम् आशयेत् । क्षत्रियं तु दधिमधुमिश्रम् अन्नम् आशयेत् । वैश्यादिकं तु केवलभक्तम् आशयेत् । तथा च कौशिकः । "ममाग्ने वर्चः [५. ३] इति वर्चस्यानि" इति प्रक्रम्य "प्रातरग्निम् [३. १६] गिरावरगराटेषु [६. ६९] दिवस्पृथिव्याः [६. १] इति दधिमध्वाशयति कीलालमिश्रं क्षत्रियं कीलालम् इतरान् इति [कौ० २. ३] ॥

तथा वर्चस्यकर्मणि स्नातकसिंहव्याघ्रादीनां सप्तानाम् अन्यतमस्य नाभिलोममणिं लाक्षाहिरण्येन वेष्टयित्वा अनेन सूक्तेन संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा वर्चस्कामानां क्षत्रियादीनां स्नातकादिसप्तमर्माणि प्रच्छिद्य स्थालीपाके प्रक्षिप्य अनेन सूक्तेन संपात्य अभिमन्त्र्य स्थालीपाकेन सह प्राशनम् संपातिताभिमन्त्रितजलेनाप्लावनम् अवसेचनं च वर्चस्कामस्य कार्यम् ॥

सूत्रितं हि । "स्नातकसिंहव्याघ्रबस्तवृष्णिवृषभराज्ञां नाभिलोमानि" इति प्रक्रम्य ["प्रातरग्निम् ३. १६] गिरावरगराटेषु [६. ६९] दिवस्पृथिव्याः "[६. १] इति सप्तमर्माणि स्थालीपाके पृक्तान्यश्नात्यकुशलं यो ब्राह्मणो लोहितम् अश्नीयाद् इति गार्ग्य उक्तो लोममणिः सर्वैराप्लावयत्यवसिञ्चति" इति [कौ० २.४]

चौथे अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें 'प्रातरग्निम्' यह प्रथम सूक्त है । बुद्धिको चाहने वाला पुरुष सोकर उठनेके अनन्तर इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूक्तको पढ़ कर मुखसे हस्तप्रक्षालन करे। इसी बातको कौशिकसूत्र २। १ में कहा है, कि—"पूर्वस्य मेधाजननानि" इति प्रक्रम्य "प्रातरग्निम् (३। १६) गिरावरगराटेषु (६। ६६) दिवस्पृथिव्याः (६। १) इति संहाय मुखं विमार्ष्टि॥"

तथा इस सूक्तसे दही और मधुका संपातन और अभिमंत्रण कर तेज चाहने वाले ब्राह्मणको प्राशन करावे क्षत्रियको दही और मधु मिला हुआ अन्न चटावे। वैश्य आदिको केवल भात ही खवावे। इसी बातको कौशिकसूत्र २। ३ में कहा है, कि—"ममाग्ने वर्चः (५। ३) इति वर्चस्यानि" इति प्रक्रम्य "प्रातरग्निम् (३। १६) गिरावरगराटेषु (६। ६६) दिवस्पृथिव्याः (६। १) इति दधिमध्वाशयति कीलालमिश्रं क्षत्रियं कीलालं इतरान्"॥

तथा वर्चस्यकर्ममें स्नातक सिंह और व्याघ्र आदि सातमेंसे एककी नाभिके लोमोंकी मणिको लाख और सुवर्णमें लपेट कर इस सूक्तसे सम्पातन और अभिमन्त्रण करके बाँधे॥

तथा तेजको चाहने वाले क्षत्रिय आदिके स्नातक आदिके सात मर्मोंको काटकर स्थालीपाकमें डाले फिर इस सूक्तसे संपातन और अभिमन्त्रण करके स्थालीपाकके साथ खावे, संपातित अभिमन्त्रित जलमें गोता लगावे और वर्चस्कामका अभिषेक भी करे सूत्रमें भी कहा है, कि—

स्नातकसिंहव्याघ्रवस्तवृष्णिवृषभराज्ञाम् नाभिलोमानि" इति प्रक्रम्य "प्रातरग्निम् (३। १६) गिरावरगराटेषु (६। ६६) दिवस्पृथिव्याः (६। १) इति सप्तमर्माणि स्थालीपाके पृक्तान्यश्नाति अकुशलं यो ब्राह्मणो लोहितं अश्नीयात् इति गार्ग्य उक्तो लोममणिः सर्वैरासावयत्यवसिञ्चति" इति (कौशिकसूत्र २। ४)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तत्र प्रथमा ॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥

प्रातः । अग्निम् । प्रातः । इन्द्रम् । हवामहे । प्रातः । मित्रावरुणा । प्रातः । अश्विना ।
प्रातः । भगम् । पूषणम् । ब्रह्मणः । पतिम् । प्रातः । सोमम् । उत । रुद्रम् । हवामहे ॥ १ ॥

अग्न्यादयः प्रसिद्धा देवाः। तान् प्रातः प्रातःकाले वर्चसे फलाय मेधाजननफलाय च हवामहे। ❀ क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वात् "स्वरितञितः०" इत्यात्मनेपदम् । "बहुलं छन्दसि" इति ह्वः संप्रसारणम् । मित्रावरुणा । मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ । "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः। "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णदीर्घः। "देवताद्वन्द्वे च" इत्युभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् । पूषणम् । "इन्हन्पूषार्यम्णां शौ" इति नियमात् "सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ" इति अमि प्राप्तस्य दीर्घस्य निवृत्तिः। ब्रह्मणस्पतिम् । "षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀। उतशब्दः अप्यर्थे ॥

हम वर्च (तेज) रूप फल पानेके लिये और बुद्धिरूपी फल पानेके लिये भी प्रातःकालके समय इन्द्र देवताका आह्वान करते हैं, प्रातःकालके समय हम फल पानेके लिये इन्द्र मित्र वरुण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अश्विनीकुमार भगदेवता पूषा ब्रह्मणस्पति सोम और रुद्रदेवताका आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता। आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥

प्रातःऽजितम् । भगम् । उग्रम् । हवामहे । वयम् । पुत्रम् । अदितेः । यः । विऽधर्ता ।

आध्रः । चित् । यम् । मन्यमानः । तुरः । चित् । राजा । चित् । यम् । भगम् । भक्षि । इति । आह ॥ २ ॥

प्रातर्जितम् । प्रातःकाले जयति स्वाभिमतं साधयतीति प्रातर्जित् । ❀ "सत्सूद्विष०" इत्यादिना क्विप् ❀ । उग्रम् उद्गूर्णबलम् अनभिभवनीयम् । अदितेः । अदितिरदीना देवमाता । तस्याः पुत्रं भगं वयं वर्चःप्रभृतिफलकामा हवामहे आह्वयामः । स एव विशेष्यते । य आदित्यो भगः विधर्ता सर्वस्य विधारयिता वृष्ट्यादिप्रदानेन पोषकः आध्रः आधारयितव्यो दरिद्रः । चिच्छब्दः अप्यर्थे । दरिद्रोपि तुरश्चित् त्वरमाणः समृद्धोपि मन्यमानः स्वाभिमतफलसाधनं जानानः यं भगं देवं भक्षि भजेयेत्याह ब्रूते । राजा चित् राजापि यं भगं देवं भजेयेत्याह । सर्व एव यस्य भक्तताम् आशासत इत्यर्थः । तं भगम् इति पूर्वत्रान्वयः । ❀ तुरः । तुर त्वरणे इत्यस्माद् इगुपधलक्षणः कः । भक्षीति । भजेश्छान्दसो लिङर्थे लुङ् । उत्तमैकवचने "बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेपि" इत्यड-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तत्र प्रथमा ॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥

प्रातः । अग्निम् । प्रातः । इन्द्रम् । हवामहे । प्रातः । मित्रावरुणा । प्रातः । अश्विना ।
प्रातः । भगम् । पूषणम् । ब्रह्मणः । पतिम् । प्रातः । सोमम् । उत । रुद्रम् । हवामहे ॥ १ ॥

अग्न्यादयः प्रसिद्धा देवाः । तान् प्रातः प्रातःकाले वर्चसे फलाय मेधाजननफलाय च हवामहे । ❀ क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वात् "स्वरितञितः०" इत्यात्मनेपदम् । "बहुलं छन्दसि" इति ह्वः संप्रसारणम् । मित्रावरुणा । मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ । "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः । "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णदीर्घः । "देवताद्वन्द्वे च" इत्युभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् । पूषणम् । "इन्हन्पूषार्यम्णां शौ" इति नियमात् "सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ" इति अमि प्राप्तस्य दीर्घस्य निवृत्तिः । ब्रह्मणस्पतिम् । "षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀ । उतशब्दः अप्यर्थे ॥

हम वर्च (तेज) रूप फल पानेके लिये और बुद्धिरूपी फल पानेके लिये भी प्रातःकालके समय इन्द्र देवताका आह्वान करते हैं, प्रातःकालके समय हम फल पानेके लिये इन्द्र मित्र वरुण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अश्विनीकुमार भगदेवता पूषा ब्रह्मणस्पति सोम और रुद्रदेवताका आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता । आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा ।चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥

प्रातःऽजितम् । भगम् । उग्रम् । हवामहे । वयम् । पुत्रम् । अदितेः । यः । विऽधर्ता ।

आध्रः । चित् । यम् । मन्यमानः । तुरः । चित् । राजा । चित् । यम् । भगम् । भक्षि । इति । आह ॥ २ ॥

प्रातर्जितम् । प्रातःकाले जयति स्वाभिमतं साधयतीति प्रातर्जित् । ❀ "सत्सूद्विष०" इत्यादिना क्विप् ❀ । उग्रम् उद्गूर्णबलम् अनभिभवनीयम् । अदितेः । अदितिरदीना देवमाता । तस्या पुत्रं भगं वयं वर्चःप्रभृतिफलकामा हवामहे आह्वयामः । स एव विशेष्यते । य आदित्यो भगः विधर्ता सर्वस्य विधारयिता वृष्ट्यादिप्रदानेन पोषकः आध्रः आधारयितव्यो दरिद्रः । चिच्छब्दः अप्यर्थे । दरिद्रोपि तुरश्चित् त्वरमाणः समृद्धोपि मन्यमानः स्वाभिमतफलसाधनं जानानः यं भगं देवं भक्षि भजेयेत्याह ब्रूते । राजा चित् राजापि यं भगं देवं भजेयेत्याह । सर्व एव यस्य भक्तताम् आशासत इत्यर्थः । तं भगम् इति पूर्वत्रान्वयः । ❀ तुरः । तुर त्वरणे इत्यस्माद् इगुपधलक्षणः कः । भक्षीति । भजेश्छान्दसो लिङर्थे लुङ् । उत्तमैकवचने "बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेपि" इत्यड-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भावः । यच्छब्दस्य आहेत्यनेन संबन्धात् भक्षीत्यस्य निघातः ❀ । यद्वा उक्तः सर्वोपि जनः यं भगं देवं मन्यमानः स्तुवन् । मन्यतिः स्तुतिकर्मा । भगम् । धननामैतत् । भगं भजनीयं धनं भक्षि भज विभज प्रयच्छ मह्यम् इति यं देवम् आह इति प्रार्थयते। तम् आह्वयाम इति संबन्धः । ❀ भक्षि । लोटि भजेश्छान्दसः शपो लुक् ह्यादेशाभावश्च ❀ ॥

जो सूर्य सबको धारण करने वाले हैं, वृष्टि आदि कर सबका पोषण करने वाले हैं, दरिद्र पुरुष भी त्वरासे अपनेको समृद्ध समझता हुआ अर्थात् अपने अभिलषित फलका साधन समझता हुआ कहता है, कि–मैं भग (सूर्य) देवताकी सेवा करता हूँ । और राजा भी जिन भग देवताकी सेवा करूँगा–कहता है । अर्थात् सब ही जिनके भक्त बनना चाहते हैं उन प्रातःकालमें अपना साधन करने वाले प्रचण्डबली देवमाता अदितिके पुत्र सूर्यदेवको हम आह्वान करना चाहते हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥

भग । प्रऽनेतः । भग । सत्यऽराधः । भग । इमाम् । धियम् । उत् । अव । ददत् । नः ।
भग । प्र । नः । जनय । गोभिः । अश्वैः । भग । प्र । नृऽभिः । नृऽवन्तः । स्याम ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे भग प्रणेतः प्रकर्षेण सर्वस्य जगतो नेतः। विशेषणान्तरसंबन्धाय पुनः पुनर्भगेत्यामन्त्रणम्। हे सत्यराधः सत्यम् अनश्वरं राधो धनं यस्य स तथोक्तः। ❀ राध इति धननाम। राध्नुवन्त्यनेन इति यास्कः [नि० ४. ४]। "आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवत्" इति भगेत्यामन्त्रितस्य अविद्यमानवत्त्वात् "आमन्त्रितस्य च" इति प्रणेतरित्यस्य षाष्ठिकम् आद्युदात्तत्वम्। न च "नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्" इत्यविद्यमानवत्त्वनिषेधः। भगेत्यस्य विशेषवचनत्वात्। प्रणयनात् प्रणेतेति प्रणेतृत्वस्य साधारणत्वेन तद्वाचिनः सामान्यवचनत्वम् तद्वैशिष्ट्येन भगेत्यस्य विशेषवचनत्वम्। प्रणेतरित्यस्य विधेयविशेषणत्वेन प्रणेतॄन् अस्मान् कुरु इति पृथग्वाक्यत्वेन पर्यवसानात् "समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः" इति वचनात् भग सत्यराध इत्यादेर्वाक्यान्तरत्वेन पूर्वपदापेक्षया निघाताप्रसङ्गः ❀। हे भग इमाम् अस्मदीयां धियम् स्तुतिम् उदव उद्गच्छ सफलां कुरु। ❀ "द्व्यचोऽतस्तिङः" इति सांहितिको दीर्घः ❀। किं कुर्वन्। नः अस्मभ्यं ददत् प्रयच्छन् मेधाजननादिफलम्। ❀ ददातेः शतरि "नाभ्यस्ताच्छतुः" इति नुम्प्रतिषेधः। "अभ्यस्तानाम् आदिः" इत्याद्युदात्तत्वम् ❀। हे भग नः अस्मान् गोभिरश्वैश्च प्र जनय प्रभूतान् कुरु॥ हे भग नृभिः पुत्रपौत्रादिभिर्भृत्यादिभिश्च वयं नृवन्तः तद्युक्ताः प्र स्याम प्रभवेम॥ नृभिर्नृवन्त इति "गवाम् असि गोपतिः" [ऋ० ७. ९८. ६] इतिवत् वृत्त्यवृत्तिभ्यां स्वामित्वं बहुत्वं च विवक्ष्यते। ❀ नृभिरिति। "नृ चान्यतरस्याम्" इति हलादिविभक्तिर्नोदात्ता। नृवन्त इति। छान्दसं मतुपो वत्वम्। "ह्रस्वनुड्भ्याम्०" इति मतुप उदात्तत्वम् ❀॥

हे श्रेष्ठरूपसे सब जगत्के नेता अविनाशी धन वाले सूर्यदेव! हमें मेधाजनन आदि फल देकर हमारी इस स्तुतिको सफल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करिये हे भग ! हमें गौ और अश्वोंसे समृद्ध करिये । हे भग-देवता ! पुत्र पौत्र आदिसे और भृत्य आदिसे युक्त (मनुष्य वाले) हों ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ४

उत । इदानीम् । भगऽवन्तः । स्याम । उत । प्रऽपित्वे । उत । मध्ये । अह्नाम् ।

उत । उत्ऽइतौ । मघऽवन् । सूर्यस्य । वयम् । देवानाम् । सुऽमतौ । स्याम ॥ ४ ॥

उत अपि च इदानीम् अस्मिन् कर्मानुष्ठानसमये वयं भगवन्तः भगेन देवेन युक्ताः तत्स्वामिकाः भगेन धनेन सौभाग्येन वा युक्ताः स्याम भवेम ॥ उत अपि च प्रपित्वे सायाह्ने अह्नां मध्ये मध्याह्ने पि [उत अपि च उदितौ उदयकाले] हे मघवन् । मघम् इति धननाम । वयं सूर्यस्य तथा देवानाम् अग्न्यादीनां सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहात्मिकायां बुद्धौ स्याम भवेम । देवा अपि अस्मान् अनुगृह्णीयुरित्यर्थः ॥

इस कर्मानुष्ठानके समय हम सौभाग्य युक्त हो हम देवताके नेतृत्वमें रहें तथा सायंकाल और मध्याह्नके समय तथा सूर्योदयके समय भी हम हे मघवन् ! सूर्य और अग्नि आदि देवताओं की सुबुद्धिमें रहें अर्थात् देवता हमारे ऊपर अनुग्रह करें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह ५

भगः । एव । भगऽवान् । अस्तु । देवः । तेन । वयम् । भगऽवन्तः । स्याम ।

तम् । त्वा । भग । सर्वः । इत् । जोहवीमि । सः । नः । भग । पुरःऽएता । भव । इह ॥ ५ ॥

भग एव देवो भगवान् धनवान् अस्तु । तेन तदीयेन धनेन वयं भगवन्तः धनवन्तः स्याम भवेम । हे भग तम् तादृशं त्वा त्वां सर्व इत् सर्व एव जनः जोहवीमि जोहवीति पुनःपुनराह्वयति । ❀"तिङां तिङो भवन्ति" इति तिपः स्थाने मिप् ❀ । हे भग स त्वम् इह अस्मिन् व्यापारे नः अस्माकं पुरएता पुरतो गन्ता भव॥

भगदेवता ही धनवान् हों, उनके धनसे हम भी धनी होवें । हे भग ! ऐसे आपको सब ही आह्वान करते हैं । हे भग ! आप हमारे व्यापारमें हमारे आगे चलिये ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥

सम् । अध्वराय । उषसः । नमन्त । दधिक्रावाऽइव । शुचये । पदाय । अर्वाचीनम् । वसुऽविदम् । भगम् । मे । रथम्ऽइव । अश्वाः । वाजिनः । आ । वहन्तु ॥ ६ ॥

उषसः उषोदेवताः अध्वराय यज्ञार्थं सं नमन्त । ❀ लोडर्थे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लङ् ❀। संनमन्ताम्। संगच्छन्ताम् इत्यर्थः॥ दधिक्रावेव । अश्वनामैतत् । दधिः धारयिता सन् क्रामतीति दधिक्रावा अश्वः। दधत् क्रामतीति वा दधत् क्रन्दतीति वा [नि० २. २७]इत्यादि निरुक्तम् । ❀ दधातेः "आदृगमहनजन०" इत्यादिना किप्रत्ययो लिड्वद्भावश्च । तस्मिन्नुपपदे "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति क्रमेः क्वनिप् । "विड्वनोरनुनासिकस्यात्" इति आत्त्वम् ❀ । स यथा शुचये पदाय शुद्धाय गमनाय संनद्धो भवति एवं संनता उषोदेवताः वसुविदम् धनानां लम्भकं भगं देवं मे मम अर्वाचीनम् अभिमुखम् आ वहन्तु आगमयन्तु । तत्र दृष्टान्तः। वाजिनः वेगवन्तः अश्वाः रथमिव ॥

जैसे पुरुषको धारण करने वाला घोड़ा शुद्ध गमनके लिये उद्यत होता है इसी प्रकार उषोदेवता धनकी प्राप्ति कराने वाले भग देवताको यज्ञार्थ मेरे पास लानेके लिये उद्यत हों और घोड़े जैसे रथको ले आते हैं तैसे मेरे पास ले जावें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

अश्वऽवतीः । गोऽमतीः । नः । उषसः । वीरऽवतीः । सदम् । उच्छन्तु । भद्राः ।
घृतम् । दुहानाः । विश्वतः । प्रऽपीताः । यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उषासः उषोदेवताः अश्वावतीः बहुभिरश्वैरुपेताः । ❀ "मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रिय०" इति मतौ परतो दीर्घः ❀ । गोमतीः गोमत्यो वीरवतीः वीरवत्यः पुत्रादिभिरुपेताः । ❀ "वा छन्दसि" इति सर्वत्र पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । भद्राः शिवंकर्यश्च सत्यः नः अस्मभ्यं सदम् सदा सर्वदा उच्छन्तु व्युष्टा भवन्तु ॥ घृतम् उदकं दुहानाः विश्वतः सर्वैर्गुणैः प्रपीताः आप्यायिता यूयम् उषसः स्वस्तिभिः अविनाशैः सदा सर्वदा नः अस्मान् पात रक्षत ॥

[इति] चतुर्थेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

उषोदेवता बहुतसे घोड़े गौएँ और पुत्र आदिसे संयुक्त हो कल्याणकारी होती हुईं सदा हमारे घरमें उदय होवें । जलको देती हुई सब गुणोंसे तृप्त हे उषोदेवताओं ! तुम अविनाशकर कर्मोंसे हमारी सदा रक्षा करो ॥ ७ ॥

चतुर्थ अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (८७)

"सीरा युञ्जन्ति" इति द्वितीयसूक्तेन कृषिनिष्पत्तिकर्मणि क्षेत्रं गत्वा युगलाङ्गलं बध्नाति । अनेनैव सूक्तेन दक्षिणम् अनड्वाहं युगे युनक्ति । ततः कर्ता अनेन सूक्तेन प्राचीनं कृषन् सूक्तसमाप्त्यनन्तरं हालिकाय हलं प्रयच्छेत् । तेन तिसृषु सीतासु कृष्टासु उत्तरसीतान्ते अग्निम् उपसमाधाय अनेन सूक्तेन पुरोडाशेन इन्द्रम् स्थालीपाकेन अश्विनौ च यजन् उत्तरस्यां सीतायां संपातान् आनयेत् ॥

तथा वृषलाभकर्मणि सारूपवत्से ओदने शकृत्पिण्डगुग्गुलुलवणानि प्रक्षिप्य अनेन सूक्तेन संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नाति ॥

"सीते वन्दामहे" [८] इत्यृचा हालिकेन कृष्यमाणास्तिस्रः सीताः कर्ता प्रत्येकम् अनुमन्त्रयते । अत्र "सीरा युञ्जन्तीति युगलाङ्गलं प्रतनोति दक्षिणम् उष्टारं प्रथमं युनक्ति" इत्यादि "अनडुत्सांपदम्" इत्यन्तं कौशिकसूत्रं द्रष्टव्यम् [कौ ३. ३]॥

२० १३. ८. २६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा अद्भुतशान्तौ सीतामध्ये लाङ्गलसंसर्गे पुच्छसंसर्गे वा एतत् सूक्तं शान्त्युदके अनुयोजनीयम् । "अथ यत्रैतल्लाङ्गले संसृजतः" इत्यादि कौशिकसूत्रम् "शुनासीरा एयनुयोजयेत्" इत्यन्तम् [कौ० १३. १४] ॥

यज्ञवास्तुसंस्कारकर्मणि "इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु" [४] इति नवाग्निस्थापनदेशे उल्लेखनं कार्यम् । तत्प्रकारश्च कौशिकेन दर्शितः । "यथा वितानं यज्ञवास्त्वध्यवस्येत्" इति प्रक्रम्य "देवस्य त्वा सवितुः [१९. ५१. २] इतिं विमानकाष्ठं गृह्णाति । [यत्राग्निं निधास्यन् भवति तत्र लक्षणं करोति] । इन्द्रः सीतां निगृह्णात्विति दक्षिणत आरभ्योत्तरत आलिखति" इत्यादिना [कौ० १४. १] ॥

अग्निचयनकर्मणि अग्निक्षेत्रकर्षणाय युज्यमानं सीरं "सीरा युञ्जन्ति" इति ब्रह्मा अनुमन्त्रयते । "लाङ्गलं पवीरवत्" [३] इति कर्षणावस्थस्य लाङ्गलस्यानुमन्त्रणम् । "कृते योनौ" [२] इति तस्मिन् कृष्टक्षेत्रे ओषधीरावपन्तम् अध्वर्युम् अनुमन्त्रयेत । तथा च वैतानं सूत्रम् । "सीरा युञ्जन्तीति सीरं युज्यमानम्" इत्यादि [वै० ५. १] ॥

"सीरा युञ्जन्ति" इस द्वितीय सूक्तसे कृषिनिष्पत्तिकर्ममें क्षेत्र पर जाकर जुए और हलको बाँधे । इसी सूक्तसे दाहिने बैलको जुएमें जोते । तदनन्तर कर्ता इस सूक्तसे प्राचीन स्थानको जोतता हुआ सूक्तकी समाप्ति होने पर हल चलाने वालेको हल दे देय । जब उससे खेतमें तीन रेखायें जुत जावें तब अंतिम रेखाके अन्तमें अग्निको स्थापित कर इस सूक्तके द्वारा पुरोडाशसे इन्द्रको और स्थालीपाकसे अश्विनीकुमारोंकी पूजा करता हुआ अंतिम रेखामें सम्पातोंको लावें ॥

तथा वृषलाभकर्ममें सारूपवत्स (अपने और बछड़के एकसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूप वाली गौके दुग्धके बने) ओदनमें गोबरके पिण्ड गूगल और लवणको डालकर इस सूक्तसे सम्पातन और अभिमन्त्रण करके प्राशन करे ॥

"सीते वन्दामहे" इस आठवीं ऋचासे हल चलाने वालेसे जोती हुई तीन रेखाओंमेंसे प्रत्येक रेखाका कर्ता अनुमन्त्रण करे ॥ इस विषयमें "सीरा युञ्जन्तीति युगलाङ्गलं प्रतनोति दक्षिणं उष्टारं प्रथमं युनक्ति" से "अनुडुत्साम्पदम्" तक कौशिकसूत्र ३ । ३ देखना चाहिये ॥

तथा अद्भुतमहाशान्तिमें हलरेखाके मध्यमें हलका संसर्ग होने पर वा पुच्छका संसर्ग होने पर इस सूक्तका शान्त्युदकमें अनुयोजन करे ॥ इस विषयमें "अथ यत्रैतल्लाङ्गले संसृजतः" से "शुना सीराण्यनुयोजयत्" तक कौशिकसूत्र १३ । १४ देखना चाहिये

यज्ञवास्तुसंस्कार नामक कर्ममें "इन्द्रः सीतां निगृह्णातु" इस चौथी ऋचासे नवीन अग्निको स्थापित करनेके स्थानमें उल्लेखन करे ॥ इसकी रीतिको कौशिकने बताया है, कि—"वितानके अनुसार यज्ञवास्तुको ठीक करे" तदनन्तर कहा है, कि—"देवस्य त्वा सवितुः (इस १६ वें काण्डके इक्यावनवें सूक्तकी दूसरी ऋचासे) विमानकाष्ठको ग्रहण करे ॥ जहाँ पर अग्नि रखनी हो तहाँ लक्षण (अङ्कन) करे । इन्द्रः सीतां निगृह्णातु इस मन्त्र से दक्षिणसे आरंभ कर उत्तरकी ओर कुरेदे (कौशिकसूत्र १४।१)

अग्निचयनकर्ममें अग्निके क्षेत्रको कर्षण करनेके लिये लगाये हुए हलका 'सीरा युञ्जन्ति' सूक्तसे ब्रह्मा अनुमन्त्रण करे । और "कृते योनौ" इस दूसरी ऋचासे उस जुते हुए खेतमें औषधियों को बोते हुए अध्वर्यु का अनुमन्त्रण करे । इस बातको वैतानसूत्र ५।१ में कहा है, कि—"सीरा युञ्जन्तीति सीरं युज्यमानम्" इत्यादि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तत्र प्रथमा ॥

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥ १ ॥

सीरा । युञ्जन्ति । कवयः । युगा । वि । तन्वते । पृथक् ।
धीराः । देवेषु । सुम्नऽयौ ॥ १ ॥

कवयः । मेधाविनामैतत् । मेधाविनो जनाः सीरा सीराणि लाङ्गलानि । ❀ "शेश्छन्दसि०" इति शेर्लोपः ❀ । युञ्जन्ति कर्षणार्थं योजयन्ति । धीराः धीमन्तस्ते युगा युगानि च पृथक् वि तन्वते बलीवर्दानां स्कन्धेषु प्रसारयन्ति । किमर्थम् । देवेषु देवविषये सुम्नयौ सुखकरयज्ञेच्छौ सति । यजमाने इत्यर्थः । "यज्ञो वै सुम्नं धीरा देवेषु यज्ञं तन्वानाः" इति वाजसनेयकम् [श० ब्रा० ७. २. २. ४] । ❀ "छन्दसि परेच्छायाम्" इति सुम्नशब्दात् क्यच् । "न च्छन्दस्यपुत्रस्य" इति ईत्वदीर्घयो-र्निषेधः । "क्याच्छन्दसि" इति उप्रत्ययः ❀ । यद्वा देवविषये सुम्नं सुखकरं हविर्लक्षणम् अन्नं यातः प्रापयत इति सुम्नयौ बलीवर्दौ । तौ च युञ्जन्तीति संबन्धः । ❀ यातेः "आतो मनिन्०" इति विच् ❀ ॥

बुद्धिमान् पुरुष लांगलों (हलों) को जोतनेके लिये लगाते हैं । वे बुद्धिमान् पुरुष देवविषयक सुखदायक हविरूप अन्नको पानेके लिये जुओंको भी अलग २ बैलोंके कन्धों पर धरते हैं १

द्वितीया ॥

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन् ॥ २ ॥

युनक्त । सीरा । वि । युगा । तनोत । कृते । योनौ । वपत । इह । बीजम् ।

विऽराऽजः । श्नुष्टिः । सऽभराः । असत् । नः । नेदीयः । इत् । सृण्यः । पक्वम् । आ । यवन् ॥ २ ॥

हे कृषीवलाः सीरा युनक्त सीराणि लाङ्गलानि युगैः सह योजयत ॥ तथा युगा वि तनोत युगानि बलीवर्दानां स्कन्धेषु प्रसारयत ॥ अपि च योनौ अंकुरोत्पत्तियोग्ये इह अस्मिन् कृते कृष्टक्षेत्रे बीजम् व्रीहियवादिकं वपत ॥ विराजः अन्नस्य व्रीहि-यवादिरूपस्य । "अन्नं वै विराट्" [तै० ब्रा० ३. ८. १०. ४] इति श्रुतेः । श्नुष्टिः आशुभापकः स्तम्बः सभराः फलभारसहितः नः अस्माकम् असत् भवतु । ❀ अस्तेर्लेटि अडागमः ❀ ॥ सफलं व्रीह्यादिकं नेदीय [इत्] अन्तिकतमम् अल्पेनैव कालेन पक्वम् परिणतफलोपेतं सत् सृण्यः । ❀ द्वितीयार्थे षष्ठी ❀ । सृणिम् अंकुशं लवनसाधनं दात्रादिकम् । आ यवम् प्राप्नोतु आयातु । ❀ यौतेश्छान्दसे लङि "तिङां तिङो भवन्ति" इति तिपो मिप् ❀ ॥ "यदा [वा] अन्नं पच्यतेथ तत्सृण्योपचरन्ति" [श० ब्रा० ७. २. २. ५] इति वाजसनेयकम् ॥

हे किसानो ! हलोंको जुओंसे संयुक्त करो और जुओंको बैलों के कन्धों पर रक्खो और अङ्कुरकी उत्पत्तिके योग्य बनाये हुए इस जुते जुताये खेतमें व्रीहि जौ आदिको बोओ । और धान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और जौ आदिरूप † अन्नको शीघ्रतासे प्राप्त करानेवाला फल-भार सहित अन्न हमारे यहाँ होवे। फलसहित धान थोड़े ही समयमें पकेहुए फलवाला होकर काटनेके साधन दरैंती आदिको प्राप्त होवे ‡ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु।

उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम् ॥ ३ ॥

लाङ्गलम्। पवीऽरवत्। सुऽशीमम्। सोमसत्ऽसरु।

उत्। इत्। वपतु। गाम्। अविम्। प्रस्थाऽवत्। रथऽवाहनम्। पीवरीम्। च। प्रऽफर्व्यम् ॥ ३ ॥

पवीरवत् पवीरं पविर्वज्रम्। ❀ स्वार्थिको रप्रत्ययः ❀। यद् वज्रमिव निशितधारं लाङ्गलाग्रे प्रोतं सदयोमयं शल्यं भूमिं विपाटयति तत्सहितम्। ❀ पविशब्दात् "कृदिकाराद् अक्तिनः" इति ङीष् ❀। सुशीमम् कर्षकस्य सुखकरं सोमसत्सरु व्रीह्यादि-संपादनद्वारा सोमयागनिष्पादकः त्सरुः भूमौ प्रच्छन्नगमनम् कर्ष-

---

† तैत्तिरीय ब्राह्मण ३। ८। १०। ४ में कहा है, कि–"अन्नं वै विराट् ॥–अन्न विराट् है" ॥ अत एव मूलके विराट् शब्द का अर्थ अन्न किया है ॥

‡ शतपथब्राह्मण ७। २। २। ५ में कहा है, कि–'यदा वा अन्नं पच्यतेथ तत्सृण्योपचरन्ति ॥–जब अन्न पक जाता है तब उसको काटनेके साधन दरैंती आदि (सृणि) से काटते हैं ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहस्तग्राह्योऽवयवविशेषो वा यस्य तत् तथोक्तम् । ❀ त्सर छद्मगतौ इत्यस्मात् भृमृशीतृचरित्सरीत्यादिना [उ० १. ७] उप्रत्ययः ❀ । एवं गुणविशिष्टं लाङ्गलम् उदिद् वपतु । इत् इत्यवधारणे । उद्धरतु । संपादयतु इत्यर्थः । किं तद् इत्याह । गाम् अविं च प्रस्थावत् प्रस्थानयुक्तं गमनसमर्थम् । ❀ प्रपूर्वात् तिष्ठतेः "आतश्चोपसर्गे" इति भावे अङ् ❀ । रथवाहनम् रथवाहनसमर्थम् अश्वबलीवर्दादिकं पीवरीम् स्थूलां सर्वकामसमर्थां प्रफर्व्यम् । प्रथमवयाः कन्या प्रफर्वी । ताम् । ❀ "वा छन्दसि" इति अमिपूर्वत्वस्य विकल्पनाद् यण् ❀ । कर्षणेन धान्यादिसमृद्धौ सत्याम् एतद्गवादिसमृद्धिर्भवतीति भावः ॥

वज्रकी समान तीक्ष्ण धार वाला हलके अग्रभागमें लगे हुए भूमिको फाड़ने वाले लोहेके शल्य (फाल) से युक्त हल कर्षक को सुख देने वाला है । धान आदिको उत्पन्न करनेके कारण सोमयागको चलाने वाला है । इसका अवयव भूमिमें डुबक कर चलता है । ऐसे गुण वाला हल गौको भेड़ोंको चलनेमें समर्थ रथके वाहन घोड़े और बैलोंको तथा सम्पूर्ण कामोंमें समर्थ प्रथमावस्थाकी कन्याको सम्पादन करे अर्थात् खेतीसे धान्य आदि उत्पन्न होने पर गौ आदिकी समृद्धि होती है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ४ ॥

इन्द्रः । सीताम् । नि । गृह्णातु । ताम् । पूषा । अभि । रक्षतु ।
सा । नः । पयस्वती । दुहाम् । उत्तराम्ऽउत्तराम् । समाम् ॥४॥

हे इन्द्रो देवः सीताम् लाङ्गलपद्धतिं नि गृह्णातु नीचीनां गृह्णातु ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तां पूषा पोषको देवः अभि रक्षतु सर्वतः पालयतु । सा सीता नः अस्मभ्यं पयस्वती । पय इत्युपलक्षितम् अभिमतफलम् । तद्युक्ता सती उत्तरामुत्तरां समाम् उत्तरोत्तरं संवत्सरम् । ❀ "०अत्यन्तसंयोगे" द्वितीया ❀ । सर्वेष्वपि कालेषु इत्यर्थः । दुहाम् दुग्धाम् । अभिमतफलम् इति शेषः । यद्वा पयस्वती उदकवती सती दुहाम् व्रीहियवादिसस्यानि दुग्धाम् उत्तरोत्तरं संवत्सरम् इति द्विकर्मकः । ❀ "अकथितं च" इति कर्मसंज्ञा । दुहाम् इति । "लोपस्त आत्मनेपु" इति तलोपः ❀ ॥

इन्द्रदेवता खेतकी रेखाको ग्रहण करें । पूषा देवता उसकी रक्षा करें । वह रेखा दुग्ध आदि अभिलषित फलसे सम्पन्न होकर प्रतिवर्ष प्रत्येक काममें हमें अभिलषित फलको देवे और जलसे सम्पन्न होतीहुई धान जौ धान्य आदिको प्रतिवर्ष अधिकाधिक देवे ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु
यन्तु वाहान् ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः
कर्तमस्मै ॥ ५ ॥

शुनम् । सुऽफालाः । वि । तुदन्तु । भूमिम् । शुनम् । कीनाशाः । अनु । यन्तु । वाहान् ।
शुनासीरा । हविषा । तोशमाना । सुऽपिप्पलाः । ओषधीः । कर्तम् । अस्मै ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुफालाः शोभनानि लाङ्गलमुखानि अस्माकं शुनम् सुखं यथा भवति तथा भूमिं वि तुदन्तु विकृषन्तु ॥ कीनाशाः कर्षकाः शुनं यथा भवति तथा वाहान् बलीवर्दान् अनु यन्तु अनुगच्छन्तु । ❀ वाह्यन्त इति वाहाः । कर्मणि घञ् । "कर्षात्वतो घञोन्त उदात्तः" इति अन्तोदात्तत्वम् ❀ ॥ शुनासीरा हे शुनासीरौ वाय्वादित्यौ । ❀ शुनो वायुः सीर आदित्यः इति हि यास्कः [नि० ९. ४०] ❀ । यद्वा शुनः सुखकरो देवः । सीरो लाङ्गलाभिमानी देवः । तौ युवां हविषा अस्मदीयेन तोषमाणा तोषमाणौ तुष्यन्तौ अस्मै यजमानाय ओषधीः व्रीहियवाद्याः सुपिप्पलाः शोभनफलोपेताः कर्तम् कुरुतम् ॥

सुन्दर फाल हमैं सुख देनेके लिये भूमिको खोदें । कृषक जिस प्रकार सुख पावें तिस प्रकार बैलोंके पीछे जावें । हे शुनासीरों अर्थात् वायु और आदित्य देवताओ ! † वा सुखदायक देवता और हलके अभिमानी देवता ! तुम हमारी हविसे संतुष्ट होकर धान जौ आदि औषधियोंको शोभन फलोंसे सम्पन्न करो ॥५॥

षष्ठी ॥

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥ ६ ॥

शुनम् । वाहाः । शुनम् । नरः । शुनम् । कृषतु । लाङ्गलम् ।
शुनम् । वरत्राः । बध्यन्ताम् । शुनम् । अष्ट्राम् । उत् । इङ्गय ॥६॥

---

† यास्क मुनिने निरुक्त ९ । ४० में कहा है, कि–'शुनो वायुः सीर आदित्यः ॥–शुनस् वायुका नाम है और सीर सूर्यदेवका नाम है" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाहाः बलीवर्दाः शुनम् सुखं कुर्वन्तु। नरः कर्षकाः शुनम् सुखं कृषन्तु। लाङ्गलम् हलं [शुनं] यथा भवति तथा कृषतु। ❀ कृष विलेखने। तौदादिकः ❀॥ वरत्राः रज्जवः शुनम् सुखं बध्यन्ताम्॥ अष्ट्राम् प्रतोदं शुनम् सुखार्थम् उदिङ्गय प्रेरय। अत्र शुनासीरयोर्मध्ये शुनः संबोध्यः॥

बैल सुख देवें, कृषक मनुष्य सुखपूर्वक जोतें। हल भी सुखदायकरीतिसे जोते। रस्सियें सुखपूर्वक बँधे। हे शुनः देवता! आप कोड़ेको सुखके लिये प्रेरित करिये॥ ६॥

सप्तमी॥

शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम्।

यद् दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम्॥ ७॥

शुनासीरा। इह। स्म। मे। जुषेथाम्।

यत्। दिवि। चक्रथुः। पयः। तेन। इमाम्। उप। सिञ्चतम्॥७॥

शुनासीरा शुनासीरौ देवौ इह स्म इह खलु अस्मिन् क्षेत्रे मे मदीयं हविः जुषेताम् सेवेताम्। यत् तौ देवौ दिवि आकाशे पयः उदकं चक्रतुः कृतवन्तौ तेन वृष्टिजलेन इमाम् कृष्यमाणां भूमिम् उप सिञ्चताम् आर्द्रीकुरुताम्॥

हे शुनासीर देवताओं! इस क्षेत्रमें मेरी हविका सेवन करो। जो देवता आकाशमें जलको करते हैं वे वृष्टिके जलसे इस जुती हुई भूमिको गीली करे॥ ७॥

अष्टमी॥

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।

यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः॥८॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीते । वन्दामहे । त्वा । अर्वाची । सुऽभगे । भव ।

यथा । नः । सुऽमनाः । असः । यथा । नः । सुऽफला । भुवः ॥८॥

हे सीते त्वा त्वां वन्दामहे नमस्कुर्मः । हे सुभगे सुभाग्ये सीताभिमानिदेवते त्वम् अर्वाची अस्मदभिमुखी भव । यथा येन प्रकारेण नः अस्माकं सुमनाः शोभनमनस्का असः स्याः । यथा येन प्रकारेण नः अस्माकं सुफला शोभनफलोपेता भुवः भवेः । तथा अर्वाची भवेति संबन्धः । ❀ अस्तेर्भवतेश्च लेटि अडागमः । शब्लुकि "भूसुवोस्तिङि" इति गुणप्रतिषेधे उवङ् ❀ ॥

हे सीते (हलसे खेतमें खींची हुई रेखा) ! हम तुझको प्रणाम करते हैं । जिस प्रकार तू हमारे लिये शोभन मन वाली हो जिस प्रकार हमारे लिये शोभनफलसे सम्पन्न हो तिसप्रकार हे सीताभिमानिदेवते ! तू हमारे अभिमुख हो ॥ ८ ॥

नवमी ॥

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ॥ ९ ॥

घृतेन । सीता । मधुना । सम्ऽअक्ता । विश्वैः । देवैः । अनुऽमता । मरुत्ऽभिः ।

सा । नः । सीते । पयसा । अभिऽआववृत्स्व । ऊर्जस्वती । घृतऽवत् । पिन्वमाना ॥ ९ ॥

घृतेन उदकेन मधुना मधुररसेन समक्ता सम्यग् अक्ता सिक्ता । ❀ "गतिरनन्तरः" इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । सा सीता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विश्वैर्देवैः मरुद्भिश्च अनुमना अङ्गीकृता । हे सीते सा त्वं पयसा उदकेन नः अस्मान् अभ्याववृत्स्व अभिमुखम् आवर्तस्व । ❀ "बहुलं छन्दसि" इति वृतेः शपः श्लुः ❀ । कथंभूता । ऊर्जस्वती बलोपेता घृतवत् घृतयुक्तम् अन्नं पिन्वमाना सिञ्चन्ती । ❀ पिवि सेचने । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । "०अदुपदेशाल्लसार्वधातुक०" [इति] अनुदात्तत्वे धातुस्वरः ❀ ॥

[इति] चतुर्थेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

मधुर रस वाले जलमें भीगी हुई विश्वेदेवा और मरुद् देवताओंसे अङ्गीकृत बलसम्पन्न घृतयुक्त अन्नका सिंचन करती हुई हे सीतादेवता ! तू जलके साथ हमारी ओर अभिमुख हो ॥९॥

चतुर्थ अनुवाकमें दूसरा सूक्त समाप्त (८८) ॥

"इमां खनामि" इति तृतीयसूक्तेन सपत्नीजयकर्मणि बाणापर्णीपत्रचूर्णं लोहितवर्णाजाया दध्युदकेन संमिश्य अभिमन्त्र्य सपत्नीशयने परिकिरेत् । "अभि तेधाम्" इति पादेन तत्पत्राण्यभिमन्त्र्य शयनस्याधस्तात् प्रक्षिपेत् । "उप तेधाम्" इति पादेन तत्पत्राण्यभिमन्त्र्य शयनस्योपरि प्रक्षिपेत् । तद्ध उक्तं कौशिकेन । "इमां खनामीति बाणापर्णीं लोहिताजाया द्रप्सेन संनीय शयनम् अनु परिकिरति" [कौ० ४. १२] इत्यादि ॥

विवादजयकर्मणि "अहम् अस्मि सहमाना" इत्यादिसूक्तशेषं जपन् ऐशान्या दिशः सभास्थलं व्रजेत् । "अहम् अस्मीत्यपराजितात् परिषदम् आव्रजति" इत्यादि कौशिकसूत्रम् [कौ०५.२] ॥

'इमां खनामि' इस तीसरे सूक्तसे सपत्नीजय (सौतको जीतने) के कर्ममें बाणापर्णीके पत्तोंके चूर्णको लालवर्ण वाली बकरीके दहीको जलमें मिलाकर अभिमन्त्रित करके सौतकी खाट पर बखेर देय । और 'अभि तेधाम्' इस पादसे उसके पत्तों का अभिमन्त्रण करके खाटके नीचे फेंके । 'उप तेधाम्' इस पाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से उसके पत्तोंको अभिमन्त्रित करके खाटके ऊपर फेंके इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–'इमां खनामीति बाणापर्णीं लोहितजाया द्रप्सेन संनीय शयनम् अनुपरिकिरति' (कौशिकसूत्र ४ । १२)॥

विवादजयकर्ममें 'अहमस्मि सहमाना' इस सूक्तशेषका जप करता हुआ ऐशानी (ईशानकोण) की दिशासे सभास्थलमें प्रवेश करे ॥ कौशिकसूत्र ५ । २ में कहा है, कि–"अहमस्मीत्यपराजितात् परिव्रदं आव्रजति" (कौशिकसूत्र ५ । २)

तत्र प्रथमा ॥

इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् ।

यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥ १ ॥

इमाम् । खनामि । ओषधिम् । वीरुधाम् । बलवत्ऽतमाम् ।

यया । सऽपत्नीम् । बाधते । यया । सम्ऽविन्दते । पतिम् ॥१॥

इमाम् पाठाख्याम् ओषधीं वीरुधाम् । विरोहन्तीति वीरुधः लतारूपा ओषधयः । तासां मध्ये बलवत्तमाम् स्वकार्यकरणे अतिशयेन बलवतीं खनामि खननेन संपादयामि । यया ओषध्या सपत्नीम् । समानः एकः पतिर्यस्याः सा सपत्नी । ❀ "नित्यं सपत्न्यादिषु" इति ङीप् नकारान्तादेशश्च ❀ । तादृशीं बाधते हिनस्ति । ❀ "यद्वृत्तान्नित्यम्" इति निघातप्रतिषेधः ❀ । यया च ओषध्या पतिम् भर्तारं संविन्दते सम्यक् असाधारण्येन लभते ताम् इमाम् ओषधीम् इति संबन्धः ॥

जिस औषधिसे सौतोंको बाधा दीजाती है और (स्त्री) जिस औषधिसे पतिको असाधारणरूपमें प्राप्त करती है उस औषधियों में परमबलवती पाठाको मैं खोदनेके द्वारा प्राप्त करता हूँ ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वितीया ॥

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि ॥ २ ॥

उत्तानऽपर्णे । सुऽभगे । देवऽजूते । सहस्वति ।
सऽपत्नीम् । मे । परा । नुद । पतिम् । मे । केवलम् । कृधि ॥२॥

हे उत्तानपर्णे उत्तानानि ऊर्ध्वमुखानि पर्णानि पत्राणि यस्यास्तादृशि हे सुभगे सौभाग्यहेतुभूते हे देवजूते देवेन त्वष्ट्रा प्रेरिते । यद्वा देवेन इन्द्रादिना प्राप्ते । "पाठाम् इन्द्रो व्याश्नाद् असुरेभ्यस्तरीतवे" [२. २७. ४] इति हि निगमः । हे सहस्वति अभिभवनवति ईदृशे हे पाठे मे मम सपत्नीं परा नुद पराङ्मुखीं प्रेरय । पत्युः सकाशाद् दूरं गमयेत्यर्थः । ततश्च मे मम पतिं केवलम् असाधारणं कृधि कुरु । ❀ "श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि" इति हेर्धिरादेशः ❀ ॥

हे ऊर्ध्वमुख पत्ते वाली, सौभाग्यकी कारणभूत त्वष्टासे प्रेरित, इन्द्र आदिसे प्राप्तकी हुई तिरस्कार करनेकी शक्ति वाली पाठा नामक ओषधे ! मेरी सौतको पराङ्मुखी करके भेज अर्थात् पति के पाससे दूर भेज फिर मेरे पतिको (मेरे लिये) असाधारण कर ॥ २ ॥

तृतीया ॥

नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥ ३ ॥

नहि । ते । नाम । जग्राह । नो इति । अस्मिन् । रमसे । पतौ ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पराम् । एव । परा॒ऽवतम् । स॒ऽपत्नीम् । गमयामसि ॥ ३ ॥

हे सपत्नि ते तव नाम नामधेयमपि अहं नहि जग्राह न गृह्णामि। ❀ जग्राहेति । ग्रहेः उत्तमे णलि रूपम् ❀ । अस्मिन् संनिहिते मदीये पतौ पत्यौ नो रमसे नैव रमस्व । ❀ पताविति । "षष्ठी-युक्तश्छन्दसि वा" इति षष्ठीयोगाभावेपि छान्दसी घिसंज्ञा ❀ ॥ अपि च तां सपत्नीं परां परावतमेव । परावत् इति दूरनाम । अतिशयितदूरदेशमेव गमयामसि गमयामः प्रापयामः ॥

हे सौत ! मैं तेरे नामको भी नहीं लूँगी तू मेरे पतिसे रमण न कर, इस सौतको हम बहुत दूर भेजती हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

उत्त॑राहमु॑त्तर उत्त॒रेदु॑त्त॑राभ्यः ।
अधः॑ स॒पत्नी॑ या ममाध॑रा साध॑राभ्यः ॥ ४ ॥

उत्ऽतरा । अहम् । उत्ऽतरे । उत्ऽतरा । इत् । उत्ऽतराभ्यः । अधः । सऽपत्नी । या । मम । अधरा । सा । अधराभ्यः ॥ ४ ॥

हे उत्तरे उत्कृष्टतरे पाठे त्वत्प्रसादाद् अहम् उत्तरा उत्कृष्टतरा भूयासम् ॥ अपि च उत्तराभ्यः लोके या उत्कृष्टतराः सन्ति ताभ्योप्यहम् उत्तरेत् । इच्छब्दः अवधारणे । उत्कृष्टतरैव भवेयम् ॥ अध अनन्तरं मम या सपत्नी विद्यते सा अधराभ्यः निकृष्टाभ्योपि अधरा निकृष्टतरा भवतु ॥

हे श्रेष्ठ पाठे ! तेरे प्रसादसे मैं परम श्रेष्ठ होजाऊँ, संसारमें जो श्रेष्ठ हैं उनसे भी श्रेष्ठ होजाऊँ और मेरी जो सौत है वह नीचोंसे भी नीच होजावे ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अ॒हम॑स्मि॒ सह॑मा॒नाथो॒ त्वम॑सि सास॒हिः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"प्रदानान्तानि" इत्यन्तं कौशिकसूत्रम् [कौ० २. ५] ॥

तथा अग्निचयने उन्नीयमानम् उख्यम् अग्निं "संशितं मे" इति ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । उक्तं वैताने संशितं म इत्युख्यम् उन्नीयमानम्" इति [वै० ५. १] ॥

महाव्रते आजिधावने "अवसृष्टा परा पत" [८] इत्यनया अवसृष्टबाणानुमन्त्रणम् । तथा च वैतानसूत्रे । "अवसृष्टा परा पतेति चतुर्थीम् इषुम् अवसृष्टाम्" [वै० ६. ४] इति ॥

"सं शितं मे" इस चौथे सूक्तसे दूसरेकी सेनाको कँपानेके कर्म में घृतकी आहुति देकर श्वेत पैरोंवाली बकरी वा भेड़को संपातित अभिमन्त्रित करके शत्रुसेनाकी ओर छोड़ देय ।

तथा संग्राममें विजय दिलानेके लिये इस सूक्तसे घृतहोम सक्तुहोम धनुषरूपी ईंधनका आधान और बाणरूपी समिधाका आधान करे और राजाको अभिमन्त्रित धनुष देवे ॥ इस विषयमें 'संशितं म इति सितपदीम् सम्पातवतीम् अवसृजति' से 'प्रदानान्तानि' तकका कौशिकसूत्र २ । ५ देखना चाहिये ।

तथा अग्निचयनमें उन्नीयमान उख्य अग्निको 'संशितं मे' से ब्रह्मा अनुमन्त्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्र ५ । १ में कहा है, कि–"संशितं म इति उख्यम् उन्नीयमानम् ॥"

महाव्रत आजिधावनमें 'अवसृष्टा परापत' इस आठवीं ऋचा से अवसृष्ट बाणका अनुमन्त्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"अव सृष्टा परा पतेति चतुर्थीं इषुम् अवसृष्टाम्" (वैतानसूत्र ६ । ४) ॥

तत्र प्रथमा ॥

संशि॑तं म इ॒दं ब्रह्म॒ संशि॑तं वी॒र्य१॒॑ बल॑म् ।

संशि॑तं क्ष॒त्रम॒जर॑मस्तु जि॒ष्णुर्येषा॒मस्मि॑ पु॒रोहि॑तः

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्ऽशितम् । मे । इदम् । ब्रह्म । सम्ऽशितम् । वीर्यम् । बलम् । सम्ऽशितम् । क्षत्रम् । अजरम् । अस्तु । जिष्णुः । येषाम् । अस्मि । पुरःऽहितः ॥ १ ॥

मे मदीयम् इदं ब्रह्म ब्राह्मणत्वं संशितम् जातिभ्रंशकरदोषपरिहारेण सम्यक् तीक्ष्णीकृतं भवतु । तीक्ष्णीकृते हि ब्राह्मणत्वे स्वेन क्रियमाणं शान्तिकपौष्टिकादि कर्म समृद्धफलं भवतीति आदौ तत्प्रार्थना । यद्वा ब्रह्मशब्दो वेदवाची । प्रयुज्यमानमन्त्रात्मकम् इदं ब्रह्म तीक्ष्णीकृतम् । अमोघफलं भवतु इत्यर्थः । ❀ शो तनूकरणे इत्यस्मात् कर्मणि निष्ठा । "शाच्छोरन्यतरस्याम्" इति इत्वम् । "गतिरनन्तरः" इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । तथा मदीयं वीर्यम् मन्त्रप्रभावजनितं सामर्थ्यं शारीरं बलं च संशितम् सम्यक् तीक्ष्णीकृतम् अस्तु । तथा मदीयं क्षत्रम् क्षत्रियजातिः संशितम् मन्त्रप्रभावेन तीक्ष्णीकृतं सत् अजरम् जरारहितम् । अत्र शरीरावयवानां सेनावयवहस्त्यश्वादीनां च क्षयो जराशब्देन विवक्षितः । तद्रहितं जिष्णु जयशीलम् अस्तु । ❀ अजरम् इति । न विद्यते जरा यस्येति नञो बहुव्रीहौ "नञो जरमरमित्रमृताः" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् । जि जये इत्यस्मात् "ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः" इति ग्स्नुप्रत्ययान्तो जिष्णुशब्दः ❀ । कस्माद् एवम् अन्यगतं फलं प्रार्थ्यत इति तत्राह । येषाम् इति । पूजार्थं बहुवचनम् । यस्य क्षत्रियस्य अहं पुरोहितः ऐहिकामुष्मिकसकलश्रेयोविषये पुरस्ताद् निहितः अस्मि भवामि । यस्माद् एवं पौरोहित्ये वृतोस्मि अतो मदीयस्य राज्ञो जयार्थम् एवं प्रार्थ्यत इत्यर्थः । ❀ दधातेः कर्मणि निष्ठा । "पूर्वाधरावराणाम्०" इति असिप्रत्ययान्तः पुरःशब्दः । तस्य च "पुरोऽव्ययम्" इतिगतित्वाद् "गतिरनन्तरः" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरा यह ब्राह्मणत्व जातिभ्रंशकर दोषके दूर होनेसे भली प्रकार तीक्ष्ण होवे (ब्राह्मणत्वके तीक्ष्ण होने पर ही किया हुआ शांति पौष्टिक आदि कर्म समृद्ध फल वाला होता है । अत एव पहिले उसकी प्रार्थना की है अथवा) यह मन्त्र तीक्ष्ण हो अमोघ फल वाला हो और मन्त्रके प्रभावसे आई हुई शक्ति और शारीरिक बल भी तीक्ष्ण हो और हमारी क्षत्रिय जाति भी मन्त्रके प्रभावसे तीक्ष्ण होकर जरारहित हो अर्थात् उसकी सेनाके अवयव हाथी घोड़े आदिका क्षय न हो और जय पावे । (दूसरेके लिये ऐसी प्रार्थना क्यों करते हो इसका उत्तर यह है, कि-) जिस क्षत्रियका मैं पुरोहित हूँ अर्थात् जिसके इस लोक और परलोक दोनों लोकोंके कल्याणके कामोंमें मैं पहिले किया हुआ जाने वाला पुरोहित हूँ (अतः अपने राजाकी विजय के लिये ऐसी प्रार्थना करता हूँ)॥ १ ॥

द्वितीया ॥

सम॒हमे॑षां रा॒ष्ट्रं स्या॑मि॒ समोजो॑ वी॒र्यं१॒ बल॑म् ।

वृ॒श्चामि॒ शत्रू॑णां बा॒हून॒नेन॑ ह॒विषा॒हम् ॥ २ ॥

सम् । अ॒हम् । ए॒षाम् । रा॒ष्ट्रम् । स्या॒मि॒ । सम् । ओजः॑ । वी॒र्य॑म् । बल॑म् ।

वृ॒श्चामि॑ । शत्रू॑णाम् । बा॒हून् । अ॒नेन॑ । ह॒विषा॑ । अ॒हम् ॥ २ ॥

पूर्वत्र येषाम् इति यच्छब्दनिर्दिष्टोर्थः एषाम् इति इदमा परामृश्यते। येषां राज्ञां देशे अहं निवसामि एषां राष्ट्रम् जनपदं सं श्यामि सम्यक् तीक्ष्णीकरोमि । धनकनकसमृद्धं करोमीत्यर्थः । ❀ शो छेदने । "ओतः श्यनि" इति ओकारलोपः ❀ । ओजः बलनामैतत् । ❀ "उब्जेर्बले बलोपश्च [उ० ४. १९१] इति असुन्प्रत्ययस्मरणात् ❀ । येन बलेन क्षेत्रज्ञस्य शरीरे अवस्थितिर्भवति तद् ओजःशब्दवाच्यम् । उक्तं हि आचार्यैः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्षेत्रज्ञस्य तद् ओजस्तु केवलाश्रय इष्यते ।

यथा स्नेहः प्रदीपस्य यथाभ्रम् अशनित्विषः । इति ॥

तादृशं शरीरदार्ढ्यनिमित्तम् ओजः तज्जनितं वीर्यम् पराभिभवसामर्थ्यम् अन्यदपि हस्त्यश्वादिलक्षणं बलं च । सं श्यामीति सम्बन्धः । मन्त्रसामर्थ्येन दृढीकरोमीत्यर्थः ॥ तथा [अहं] मदीयस्य राज्ञः शत्रूणां बाहून् अनेन हूयमानेन आज्यसक्त्वादिरूपेण हविषः वृश्चामि छिनद्मि । आयुधग्रहणासमर्थान् भ्रष्टवीर्यान् करोमीत्यर्थः । ❀ ओव्रश्चू छेदने । तुदादित्वात् शः । तस्य ङित्वात् "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम् । विकरणस्वरेण मध्योदात्तः । पादादित्वाद् अनिघातः ❀ ॥

जिन राजाके देशमें मैं रहता हूँ उनके राज्यको मैं भली प्रकार तीक्ष्ण करता हूँ—सुवर्ण आदि धनसे समृद्ध करता हूँ । शरीरको दृढ़ रखने वाले ओजको शत्रुओंका तिरस्कार करनेकी शक्तिरूप बलको और हाथी घोड़े आदि सेनाको भी मन्त्रशक्तिसे दृढ़ करता हूँ और मैं इस राजाके शत्रुओंकी भुजाओंको घृत सत्तु आदि हविसे काटता हूँ अर्थात् आयुध उठानेमें असमर्थ वीर्यरहित करता हूँ

तृतीया ॥

नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।

क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥ ३ ॥

नीचैः । पद्यन्ताम् । अधरे । भवन्तु । ये । नः । सूरिम् । मघऽवानम् । पृतन्यान् ।

क्षिणामि । ब्रह्मणा । अमित्रान् । उत् । नयामि । स्वान् । अहम् ३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मदीयाः शत्रवः नीचैः पद्यन्ताम् अवाङ्मुखाः पतन्तु । ततश्च अधरे निकृष्टाः पादाक्रान्ता भवन्तु। कीदृशास्ते शत्रव इति उच्यते। नः अस्मदीयं सूरिम् कार्याकार्यविभागज्ञं मघवानम्। मघम् इति धननाम। प्रभूतधनयुक्तं राजानं जेतुं ये शत्रवः पृतन्यान् पृतयन्ति पृतनां सेनाम् आत्मन इच्छन्ति। ते नीचैः पद्यन्ताम् इति संबन्धः। ❀ पृतनाशब्दात् "सुप आत्मनः क्यच्"। "कव्यध्वरपृतनस्यर्चि-लोपः" इति क्यचि परतोन्त्यलोपः। तदन्तात् लेटि आडागमः ❀॥ उक्तप्रयोजनसिद्ध्ये ब्रह्मणा परिवृढेन अमोघवीर्येण मन्त्रेण अमित्रानं शत्रून् अहं क्षिणोमि हिनस्मि। ❀ रि क्षि हिंसायाम्। स्वादित्वात् श्नुः ❀॥ न केवलं शत्रूणां हिंसनम् अपि तु स्वान् स्वकीयान् राज्ञः उन्नयामि। उत्कृष्टं जयं प्रापयामीत्यर्थः॥

जो हमारे कार्य और अकार्यके विभागको जानने वाले धनी राजाको जीतनेके लिये सेनाको एकत्रित करना चाहते हैं वे हमारे शत्रु उलटे मुख होकर गिर पड़ें फिर पैरोंसे दबें उक्त प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये मैं अमोघ वीर्य वाले मन्त्रसे शत्रुओं को क्षीण करता हूँ और अपने राजाको परमोत्कृष्ट विजय प्राप्त कराता हूँ॥ ३॥

चतुर्थी॥

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ४

तीक्ष्णीयांसः। परशोः। अग्नेः। तीक्ष्णऽतराः। उत।
इन्द्रस्य। वज्रात्। तीक्ष्णीयांसः। येषाम्। अस्मि। पुरःऽहितः

येषां राज्ञाम् अहं पुरोहितः अस्मि ते राजानः परशोः वृक्षच्छेदनसमर्थात् निशितधारात् तीक्ष्णीयांसः अतिशयेन तीक्ष्णाः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शत्रुबलच्छेदनसमर्था भवन्तु ॥ तथा अग्नेः विश्वदहनसमर्थादपि तीक्ष्णतराः अतिशयेन तीक्ष्णाः । क्षणमात्रेण कृत्स्नं शत्रुबलं दग्धुं समर्था भवन्तु इत्यर्थः । उतशब्दः अप्यर्थे । स च भिन्नक्रमो योजितः ॥ तथा इन्द्रस्य वज्रात् । स खलु वृत्रासुरादिहनने शिलोच्चयपक्षच्छेदनादौ च अकुण्ठितशक्तित्वेन प्रसिद्धः । ततोपि तीक्ष्णीयांसः अतिशयेन तीक्ष्णा निशिताः । अप्रतिहतगतयो भवन्तु इत्यर्थः ॥

मैं जिन राजाका पुरोहित हूँ वह राजा शत्रुकी सेनाको काटने के लिये वृक्षको काटने वाले फरसे भी अधिक तीक्ष्ण होजावें और सम्पूर्णसंसारको जलानेमें समर्थ अग्निसे भी अधिक तीक्ष्ण होजावें अर्थात् क्षणमात्रमें ही शत्रुसेनाको भस्म कर सकें और इन्द्रका वज्र वृत्रासुरको मारनेमें और पर्वतोंके परोंको काटनेमें भी अकुण्ठित शक्ति वाला प्रसिद्ध है हमारे राजा उससे भी तीक्ष्ण होजावें, अकुण्ठित गति वाले होजावें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवे३षां चित्तं विश्वेवन्तु देवाः

एषाम् । अहम् । आयुधा । सम् । स्यामि । एषाम् । राष्ट्रम् । सुऽवीरम् । वर्धयामि ।

एषाम् । क्षत्रम् । अजरम् । अस्तु । जिष्णु । एषाम् । चित्तम् । विश्वे । अवन्तु । देवाः ॥ ५ ॥

[अहम्] एषाम् अस्मदीयानां राज्ञाम् आयुधा आयुधानि बाण-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खड्गकुन्तादीनि सं श्यामि सम्यक् तीक्ष्णीकरोमि ॥ एषां राष्ट्रम् राज्यं सुवीरम् शोभनवीरोपेतं वर्धयामि समृद्धं करोमि । ❀ सुवीरम् इति "वीरवीर्यौ च" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ❀ ॥ अपि च एषां राज्ञां क्षत्रं क्षतात् त्रायकं बलं क्षत्रियत्वं वा अजरम् जरारहितं जिष्णु जयशीलं चास्तु ॥ तथा एषां चित्तम् युद्धोन्मुखं मनः विश्वे सर्वे देवाः अवन्तु रक्षन्तु ॥

अपने राजाके बाण कुन्त खड्ग आदि आयुधोंको मैं भली प्रकार तीक्ष्ण करता हूँ, इनके राज्यको मैं वीरोंसे समृद्ध करता हूँ। इन राजाका आपत्तिसे बचाने वाला क्षत्रियत्वरूप बल जरारहित और विजयशील होवे । और इन हमारे राजाके युद्धोन्मुख मनकी सकल देवता रक्षा करें ॥ ५ ॥

उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः ।
पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् ।
देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥ ६ ॥

उत । हर्षन्ताम् । मघऽवन् । वाजिनानि । उत् । वीराणाम् । जयताम् । एतु । घोषः ।
पृथक् । घोषाः । उलुलयः । केतुऽमन्तः । उत् । ईरताम् ।
देवाः । इन्द्रऽज्येष्ठाः । मरुतः । यन्तु । सेनया ॥ ६ ॥

षष्ठी । हे मघवन् धनवन्निन्द्र त्वत्प्रसादाद् वाजिनानि बलानि हस्त्यश्वरथादीनि युद्धविषये उद्धर्षन्ताम् उत्कृष्टहर्षयुक्तानि भवंतु ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा जयताम् जयं प्राप्नुवताम् अस्मदीयानां वीराणां शूराणां जयप्रयुक्तो घोषः सिंहनादाख्यः उदेतु उद्गच्छतु । परश्रोत्राण्यभिभूय वर्तताम् इत्यर्थः । एतदेव विव्रियते पृथग् इति उल्लुलय इति। अनुकरणशब्दोयम् । उल्लुलु इत्येवमात्मकाः केतुमन्तः प्रज्ञानवन्तः सर्वैं प्रज्ञायमाना जयप्रयुक्ता घोषाः पृथक् इतस्ततः उत् ईरताम् उद्गच्छन्तु । ❀ ईर गतौ लोटि अदादित्वात् शपो लुक् ❀ ॥

हे धनवान् इन्द्र ! आपके प्रसादसे हाथी घोड़े रथ आदि युद्धमें हर्ष पावें तथा विजय पावें हमारे शूरवीरोंका विजयका सिंहनाद होवे । उल्ललु आदि सबको सुनाई देनेवाले जयघोष चारों ओर फैलें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

प्रेता जयंता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ७

प्र । इत । जयत । नरः । उग्राः । वः । सन्तु । बाहवः ।
तीक्ष्णऽइषवः । अबलऽधन्वनः । हत । उग्रऽआयुधाः । अबलान् ।
उग्रऽबाहवः ॥ ७ ॥

सप्तमी । इन्द्रज्येष्ठाः इन्द्रो ज्येष्ठः श्रेष्ठः स्वामी येषां तथाविधा मरुतो देवा युद्धेषु अस्माकं साहायकम् आचरितुं [सेनया] स्वस्वसेनया सार्धं यन्तु प्राप्नुवन्तु ॥ हे नरः नेतारः अस्मदीया भटाः प्रेत प्रक्रम्य युद्धभूमिं गच्छत । ततो देवैरनुगृहीताः शत्रून् जयत ॥ वः युष्माकं तीक्ष्णेषवः निशितबाणाद्यायुधोपेता बाहवः उग्राः उद्गूर्णबलाः शत्रुप्रहरणसमर्थाः सन्तु भवन्तु ॥ ततो यूयम् उग्रायुधाः निशितनिस्त्रिंशबाणाद्यायुधोपेताः अत एव उग्रबाहवः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उद्गूर्णहस्ताः सन्तः अबलधन्वनः बलरहितधनुराद्यायुधोपेतान् अत एव अबलान् बलशून्यान् हत हिंस्त। पञ्चत्वं प्रापयतेत्यर्थः। ❀ हन्तेर्लोण्मध्यमबहुवचने अदादित्वात् शपो लुक्। "अनुदात्तोपदेश०" इत्यादिना अनुनासिकलोपः ❀ ॥

इन्द्र जिनमें बड़े हैं वे मरुद्देवता युद्धमें हमारी सहायता करनेके लिये अपनी सेनाके साथ आवें। हे हमारे सैनिको! तुम युद्धभूमिकी ओर झपटो। और देवताओंसे अनुग्रह पाकर शत्रुओंको जीतो। तीक्ष्ण बाण आदि आयुधोंसे सम्पन्न तुम्हारी भुजायें शत्रु पर प्रहार करनेमें समर्थ होवें। तब तुम तीक्ष्ण बाण तलवार आयुधों को धारण कर अतएव प्रचण्ड भुजा वाले होकर बलरहित धनुष वाले अत एव बलशून्य शत्रुओंको मार डालो ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।

जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्येषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ॥ ८ ॥

अवऽसृष्टा । परा । पत । शरव्ये । ब्रह्मऽसंशिते ।

जय । अमित्रान् । प्र । पद्यस्व । जहि । एषाम् । वरम्ऽवरम् ।

मा । अमीषाम् । मोचि । कः । चन ॥ ८ ॥

हे ब्रह्मसंशिते ब्रह्मणा मन्त्रेण तीक्ष्णीकृते [शरव्ये हिंसाकुशले इषो त्वम्] अवसृष्टा अस्माभिर्धनुषो विनिर्मुक्ता परा पत परागच्छ शत्रुसेनाभिमुखं गच्छ। गत्वा च तान् अमित्रान् शत्रून् जय ॥ तत्प्रकारम् आहम् प्र पद्यस्वेत्यादिना। प्रथमं शत्रून् प्र पद्यस्व प्रविश ॥ एषां मध्ये वरंवरम् श्रेष्ठं हस्त्यश्वपदातिलक्षणं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बलं जहि मारय। ❀ "हन्तेर्जः" इति जादेशः। तस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति असिद्धत्वात् हेलुगभावः ❀ ॥ अमीषाम् दूरे दृश्यमानानां शत्रूणां मध्ये कश्चन कोपि वीरो मा मोचि मुक्तो मा भूत्। सर्वोपि त्वया हन्तव्य इत्यर्थः। ❀ मोचीति। मुच्लृ मोक्षणे इत्यस्मात् कर्मणि माङि लुङि रूपम्। अमीषाम् इति। "एत ईद्बहुवचने" इति ईत्वमत्वे ❀ ॥

[इति] तृतीयकाण्डे चतुर्थेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे मन्त्रसे तीक्ष्ण किये हुए हिंसाकुशल बाण! तू हमारे धनुषसे छूट कर शत्रुसेनाकी ओर जा और जाकरशत्रुओंको जीत। (उन की रीति यह है, कि—) शत्रुओंमें प्रवेश कर और उनमें जो श्रेष्ठ श्रेष्ठ हाथी घोड़ा पैदल आदि हो उसका संहार कर। इन दूर दीखते हुए शत्रुओंमेंसे कोई भी वीर न छूटने पावे ॥ ८ ॥

तृतीयकाण्डके चतुर्थ अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (९०) ॥

"अयं ते योनिः" इति सूक्तेन निर्ऋतिकर्मणि शर्करामिश्रान् व्रीहीन् जुहुयात्। "अयं ते योनिरिति [जीर्णकोष्ठाद्] व्रीहीन् शर्करामिश्रान्" [कौ० ३. १] इत्यादि कौशिकसूत्रम् ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्मणि अनेन सूक्तेन आज्यसमिदादिभिस्त्रयोदशभिर्द्रव्यैर्जुहुयात्। तस्मिन्नेव कर्मणि अस्य सूक्तस्य जपं वा कुर्यात् ॥

तथा च कौशिकः। "अयं ते योनिः [३. २०] आ नो भर [५. ७] धीती वा [७. १] इत्यर्थम् उत्थास्यन्नुपदधीत जपति" इति [कौ० ५. ५] ॥

"अयं ते योनिः" इत्यनया अरण्योरात्मनि वा अग्नेः समारोपणं कुर्यात्। सूत्रितं हि। "अयं ते योनिरित्यरण्योरग्निं समारोपयत्यात्मनि वा" इति [कौ० ५. ४] ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सवयज्ञेषु "सोमं राजानम्" [४] इत्यनया भृग्वङ्गिरोविदश्चतुर आर्षेयान् आह्वयेत् ॥

अग्निचयने अनयैव गार्हपत्येष्टकाम् उपधीमानाम् अनुमन्त्रयेत । तथा च वैतानम् । "अयं ते योनिरिति गार्हपत्येष्टकां निधीयमानाम्" इति [वै० ५. १] ॥

अग्निचयने औदुम्बरसमिदाधानानन्तरम् "अग्ने अच्छा वदेह नः" इति तिस्रः "अर्यमणं बृहस्पतिम्" इति द्वे जपेत् । "वाजस्य नु प्रसवे" इत्यनया वाजप्रसवीयहोमानुमन्त्रणम् । तथा च वैतानं सूत्रम् । "उद्व एनम् उत्तरं नय [६. ५] इति समिध आधीयमानाः" [इति प्रक्रम्य] "चत्वारि शृङ्गा [ऋ० ४. ५८. ३] अभ्यर्चत [७. ८७] इति जपति । "अग्ने अच्छ इति तिस्रः [२-४] अर्यमणं बृहस्पतिम् [७. ८] इति द्वे वाजस्य नु प्रसवे [८] इति वाजप्रसवीयहोमान्" इति [वै० ५. २] ॥

'अयं ते योनिः' इस सूक्तसे रेता मिले हुए धानोंका होम करे । इसी बातको कौशिकसूत्र ३ । १ में कहा है, कि—"अयं ते योनिरिति जीर्णकोष्ठाद् व्रीहीन् शर्करामिश्रान्० ॥—अयं ते योनिः सूक्तसे पुराने कोठेमेंसे शर्करा मिले हुए धानोंको निकाल कर होमें" ॥

तथा अर्थोत्त्थापनकर्ममें इस सूक्तसे घृत समिधा आदि तेरह द्रव्योंसे होम करे । वा इसी कर्ममें इस सूक्तका जप करे ॥

इसी बातको कौशिकसूत्र ५ । ५ में कहा है, कि—"अयं ते योनिः (३ । २०) आनो भर (५ । ७) धीती वा (७ । १) इत्यर्थं उत्त्थास्यन्नुपदधीत जपति" ॥

'अयं ते योनिः' इस ऋचासे अरणियोंका अपनेमें वा अग्नि में समारोपण करे । सूत्रमें भी कहा है, कि—"अयं ते योनिरित्यरण्ययोरग्निं समारोपत्यात्मनि वा" (५ । ४) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सब यज्ञोंमें 'सोमं राजानम्' इस चौथी ऋचासे अथर्ववेदको जानने वाले चार ऋषिशिष्योंको बुलावे ।

अग्निचयनके समय रक्खी जाती हुई गार्हपत्यकी ईंटका इसी ऋचासे अनुमंत्रण करे ॥ इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-अयं ते "योनिरिति गार्हपत्येष्टकां उपधीयमानां अनुमन्त्रयेत" ॥

अग्निचयनमें गूलड़की समिधा रखनेके अनन्तर "अग्ने अच्छा वदेह नः" इत्यादि तीन ऋचाओंको और "अर्यमणं बृहस्पतिम्" इन दो ऋचाओंको जपे ॥ "वाजस्य नु प्रसवे" इस ऋचासे वाजप्रसवीयहोमका अनुमंत्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्र ५ । २ में कहा है, कि-"उद्ध एनं उत्तरं नय (६ । ५) इति समिध आधीयमानाः" (इति प्रक्रम्य) "चत्वारि शृंगाः" (ऋ० ४ । ५८ । ३) अभ्यर्चत (७ । ८७) इति जपति । "अग्ने अच्छ इति तिस्रः (२-४) अर्यमणं बृहस्पतिम् (७-८) इति द्वे वाजस्य नु प्रसवे (८) इति वाजप्रसवीयहोमान्" ॥

तत्र प्रथमा ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम् ॥ १ ॥

अयम् । ते । योनिः । ऋत्वियः । यतः । जातः । अरोचथाः ।
तम् । जानन् । अग्ने । आ । रोह । अध । नः । वर्धय । रयिम् ॥ १ ॥

हे अग्ने ते तव अयम् अरणिर्यजमानो वा ऋत्वियः ऋतौ गर्भग्रहणकाले भवो योनिः उत्पत्तिकारणम् । ❀ ऋतुशब्दाद् भवार्थे "छन्दसि घस्" । "सिति च" इति पदसंज्ञया भसंज्ञाया बाधनात् ओर्गुणाभावे यण् ❀ । यतः यस्मात् योनेः जातः उत्पन्नः सन्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अरोचथाः दीप्यसे । ❀ छान्दसो लङ् ❀ । तम् तादृशं योनिं जानन् ममेदम् उत्पत्तौ कारणम् इत्यवगच्छन् आ रोह प्रविश । मा परित्याक्षीः ॥ अथ अनन्तरम् नः अस्माकं रयिम् धनं वर्धय समृद्धं कुरु । ❀ "निपातस्य च" इति अथशब्दस्य सांहितिको दीर्घः । "अन्येषाम् अपि दृश्यते" इति वर्धयेत्यस्य दीर्घः ❀ ॥

हे अग्ने ! यह यजमान वा अरणि तेरी ऋत्विय योनि है अर्थात् गर्भग्रहणके समय होने वाला उत्पत्तिकारण है । क्योंकि इस योनिसे उत्पन्न होकर तुम प्रदीप्त होते हो । ऐसे अपने उत्पत्तिकारणको जान कर तुम इसमें प्रवेश करो इसको त्यागो मत तदनन्तर हमारे धनको बढ़ाओ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ॥२॥

अग्ने । अच्छ । वद । इह । नः । प्रत्यङ् । नः । सुऽमनाः । भव । प्र । नः । यच्छ । विशाम् । पते । धनऽदाः । असि । नः । त्वम् ॥२॥

हे अग्ने इह अस्मिन् फले प्राप्तव्ये नः अस्मान् अच्छ वद । ❀ "निपातस्य च" इति सांहितिको दीर्घः ❀ । आभिमुख्येन प्रियं ब्रूहि ॥ तथा प्रत्यङ् अस्मान् प्रत्यञ्चन् अस्मदभिमुखं गच्छन् नः अस्माकं सुमनाः शोभनमनस्को भव ॥ हे विशां पते सर्वासां प्रजानां वैश्वानरात्मना पालक । ❀ "सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे" इति षष्ठ्यन्तस्य आमन्त्रितानुप्रवेशाद् "आमन्त्रितस्य च" इति षष्ठ्यामन्त्रितसमुदायस्य आष्टमिकम् अनुदात्तत्वम् ❀ । हे तादृश अग्ने नः अस्मभ्यं प्र यच्छ । धनदा इति विशेष्यमाणत्वाद् अर्थात् अत्र धनानीति संबध्यते । अस्मदपेक्षितानि धनानि प्रदेहि इत्यर्थः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यतस्त्वं नः अस्माकं धनदा असि धनानां दाता भवसि । धनानि दातुं समर्थस्त्वमेवासीत्यर्थः ॥

हे अग्ने ! इस हमें प्राप्त होने वाले फलके विषयमें अभिमुख होकर प्रिय भाषण करिये । हे वैश्वानररूपसे सब प्रजाओंका पालन करने वाले अग्ने ! तुम धन देने वाले हो अतः हमें अभिलषित धन दो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

प्र णो॑ यच्छत्वर्य॒मा प्र भग॒: प्र बृह॒स्पति॑: ।
प्र दे॒वीः प्रोत सू॒नृता॑ र॒यिं दे॒वी द॑धातु मे ॥ ३ ॥

प्र । नः॒ । य॒च्छ॒तु॒ । अ॒र्य॒मा । प्र । भग॑: । प्र । बृ॒ह॒स्पति॑: ।

प्र । दे॒वीः । प्र । उ॒त । सू॒नृता॑ । र॒यिम् । दे॒वी । द॒धा॒तु॒ । मे॒ ॥ ३ ॥

नः अस्मभ्यम् अर्यमा देवः प्र यच्छतु यद् दातव्यं धनं तत् सर्वं ददातु । ❀ दाण् दाने । शपि "पाघ्रा०" इत्यादिना यच्छादेशः ❀ । भगश्च बृहस्पतिश्च इमावपि देवौ अस्मभ्यं धनं प्र यच्छताम् । ❀ बृहतां देवानां पतिः बृहस्पतिः । "तद्बृहतोः करपत्योः०" इति पारस्करादिषु पाठात् सुट्तलोपौ । "उभे वनस्पत्यादिषु०" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । देवीः देव्यः इन्द्राणीप्रभृतयः धनम् अस्मभ्यं प्र यच्छन्तु । ❀ जसि "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ ॥ उत अपि च सूनृता प्रियवागात्मिका देवी सरस्वती रयिम् धनं मे मह्यं [प्रदधातु] प्रयच्छतु । ❀ शोभना चासौ ऋता चेति सूनृता । पृषोदरादित्वाद् रूपसिद्धिः ❀ ॥

अर्यमादेवता हमें धन दें, भग और बृहस्पति देवता भी हमें धन दें, इन्द्राणी आदि देवियें हमें धन दें और प्रियवाणीरूप सरस्वती देवी भी हमें धन दें ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चतुर्थी ॥

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।

आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ४ ॥

सोमम् । राजानम् । अवसे । अग्निम् । गीःऽभिः । हवामहे ।

आदित्यम् । विष्णुम् । सूर्यम् । ब्रह्माणम् । च । बृहस्पतिम् ॥४॥

राजानम् राजमानम् । यद्वा ईश्वरम् । "सोमोस्माकं ब्राह्मणानां राजा" [तै० सं० १. ८. १०. २] इति श्रुतेः । तादृशं सोमम् अग्निं च अवसे अभिमतफलप्रदानेन रक्षणाय गीर्भिः स्तुतिरूपाभिर्वाग्भिः हवामहे आह्वयामः । तथा आदित्यम् अदितेः पुत्रम् । "मित्रश्च वरुणश्च" [तै० आ० १. १३. ३] इत्यादिश्रुत्यन्तरप्रसिद्धं देवं विष्णुम् त्रैविक्रमं रूपम् आस्थाय सर्वव्यापिनं देवं सूर्यम् सर्वस्य प्रेरकं मण्डलान्तरवर्तिहिरण्मयपुरुषरूपं देवं ब्रह्माणम् एषां देवानां स्रष्टारं प्रजापतिं बृहस्पतिम् एषां हितकरणे अवस्थितम् एतत्संज्ञं च । तान् एतान् आदित्यादीन् देवान् उक्तप्रयोजनसिद्धये हवामहे इति संबन्धः ॥

हम ब्राह्मणोंके राजा सोमको और अग्निको अभिलषित फल देकर रक्षा करनेके लिये स्तुतिरूप वाणियोंसे आह्वान करते हैं । तथा अदितिके पुत्र तीन पैरोंसे पृथ्वीको नाप लेने वाले व्यापक विष्णुदेवको मण्डलान्तर्वर्ति हिरण्मय पुरुषरूप सर्वप्रेरक सूर्यदेवको और इन देवोंके रचयिता प्रजापति ब्रह्मदेवको और इनका हित करनेमें लगे हुए बृहस्पतिजीको उक्त प्रयोजनकी सिद्धिके लिये आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

त्वं नो॑ देव दात॑वे र॒यिं दाना॑य चोदय ॥ ५ ॥

त्वम् । नः । अग्ने॑ । अ॒ग्नि॑ऽभिः । ब्रह्म॑ । य॒ज्ञम् । च॒ । वर्धय ।

त्वम् । नः । दे॒व । दात॑वे । र॒यिम् । दाना॑य । चो॒द॒य ॥ ५ ॥

हे अग्ने त्वम् अग्निभिः त्वद्विभूतिरूपैरन्यैरग्निभिः सार्धं नः अस्माकं ब्रह्म मन्त्रमयं स्तोत्रं तत्साध्यं यज्ञं च वर्धय फलसमृद्धं कुरु ॥ हे देव त्वं दानवे चरुपुरोडाशादिहवींषि दत्तवते [नः] यजमानाय रयिम् धनं दानाय दानार्थं नोदय प्रेरय ॥

हे अग्ने ! आप अपनी विभूतिरूप अन्य अग्नियोंके साथ हमारे मंत्रमय स्तोत्रको उससे सिद्ध होने वाले यज्ञको भी फल से समृद्ध करिये। हे देव ! आप चरु पुरोडाश आदि हवि अर्पण करने वाले हमारे यजमानको धन देनेके लिये प्रेरित करिये ॥५॥

षष्ठी ॥

इ॒न्द्र॒वा॒यू उ॒भावि॒ह सु॒हवे॒ह ह॑वामहे ।

यथा॑ नः॒ सर्व॒ इज्जन॒ः संग॑त्यां सुमना॒ अस॑द् दान॑-

कामश्च नो॑ भुव॑त् ॥ ६ ॥

इ॒न्द्र॒वा॒यू इति॑ । उ॒भौ । इ॒ह । सु॒ऽहवा॑ । इ॒ह । ह॒वा॒म॒हे॒ ।

यथा॑ । नः॒ । सर्वः॑ । इत् । जनः॑ । सम्ऽग॑त्याम् । सु॒ऽमनाः॑ ।

अस॑त् । दान॑ऽकामः । च॒ । नः॒ । भुव॑त् ॥ ६ ॥

इन्द्रश्च वायुश्च इन्द्रवायू । ❀ “देवताद्वन्द्वे च” इति प्राप्तस्य आनङः “उभयत्र वायोः प्रतिषेधो वक्तव्यः” इति प्रतिषेधः । “देवताद्वन्द्वे च” इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वस्य “नोत्तरपदेनुदा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

त्तादौ०" इति प्रतिषेधः। "समासस्य" इति अन्तोदात्तत्वम् ❀। एतत्संज्ञावुभौ देवौ इह अस्मिन् कर्मणि हवामहे आह्वयामः। एतयोरेवाह्वाने किं निमित्तम् इति तद् आह सुहवेति। इह अस्मिन् फलविषये देवेषु मध्ये एतौ देवौ सुहवा सुहवौ सुह्वानौ सुखेन ह्वातुं शक्यौ। ❀ ह्वयतेः "बहुलं छन्दसि" इति अनैमित्तिके संप्रसारणे कृते सुपूर्वाद् अस्मात् "ईषद्दुःसुषु०" इति खल्। "लिति" इति प्रत्यात्पूर्वस्योदात्तत्वम्। "सुपां सुलुक्०" इति पूर्व-सवर्णदीर्घः ❀। यस्याद्द एवं सुह्वानौ तस्माद् आह्वयाम इत्यर्थः॥ यथा नः अस्माकं सर्व इत् सर्व एव जनः संगत्याम् संगमने प्राप्तौ सुमना असत् शोभनमनस्को भवेत्। न केवलं सौमनस्यमेव प्रार्थ्यते अपि तु सर्वो जनः नः अस्मभ्यं दानकामश्च दानाभिला-षयुक्तश्च यथा भुवत् भवेत्। तथा आह्वयाम इति संबन्धः। ❀ अ-स्तेर्भवतेश्च लेटि अडागमः। "भूसुवोस्तिङि" इति गुणाभावः❀॥

इन्द्र और वायु नाम वाले दोनों देवताओंको हम इस कर्ममें आह्वान करनेके लिये बुलाते हैं (इनके बुलानेका कारण यह है, कि–फलदाता देवताओंमें इन दोनोंको ही सुखसे बुलाया जा सकता है। अतएव) हम इनको बुलाते हैं। जिससे सब मनुष्य हमारी सङ्गति होने पर शोभन मन वाले होवें और सब मनुष्य हमें दान देनेकी इच्छा वाले होवें इसलिये हम आपका आह्वान करते हैं॥ ६॥

सप्तमी॥

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम्॥७॥

अर्यमणम्। बृहस्पतिम्। इन्द्रम्। दानाय। चोदय।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वातम् । विष्णुम् । सरस्वतीम् । सवितारम् । च । वाजिनम् ॥७॥

हे स्तोतः अर्यमादीन् देवान् अस्मभ्यम् [दानाय] अभिमत-फलदानाय चोदय स्तुत्या प्रेरय । यथा ते । तुष्टाः अस्मभ्यं धनं प्रयच्छन्ति तथा स्तुतिवाक्यैस्तोषयेत्यर्थः ॥ तत्र वाचम् इति सरस्वतीविशेषणम् वाग्रूपा या सरस्वतीति । एतच्च नदीरूपायास्तस्या निवृत्त्यर्थम् । वाजिनम् इति सवितृविशेषणम् । वाजः अन्नं वेगो वा तद्वन्तं सवितारम् इति ॥

हे स्तुति करने वाले ! आप अर्यमा बृहस्पति इन्द्र वाग्देवता-सरस्वती व्यापक विष्णुदेव और वेग तथा अन्नसम्पन्न सूर्यदेव को अभिलषित फलका दान देनेके लिये स्तुतिके द्वारा प्रेरित करिये ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ८ ॥

वाजस्य । नु । प्रऽसवे । सम् । बभूविम । इमा । च । विश्वा । भुवनानि । अन्तः ।

उत । अदित्सन्तम् । दापयतु । प्रऽजानन् । रयिम् । च । नः । सर्वऽवीरम् । नि । यच्छ ॥ ८ ॥

वाजस्य अन्नस्य प्रसवे उत्पत्तौ तद्धेतुभूते कर्मणि वा नु क्षिप्रं वयं सं बभूविम संप्राप्ता अभूम । यद्वा वृष्ट्यादिद्वारेण अन्न-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

त्तादौ०" इति प्रतिषेधः। "समासस्य" इति अन्तोदात्तत्वम् ❀। एतत्संज्ञावुभौ देवौ इह अस्मिन् कर्मणि हवामहे आह्वयामः। एतयोरेवाह्वाने किं निमित्तम् इति तद् आह सुहवेति। इह अस्मिन् फलविषये देवेषु मध्ये एतौ देवौ सुहवा सुहवौ सुह्वानौ सुखेन ह्वातुं शक्यौ। ❀ ह्वयतेः "बहुलं छन्दसि" इति अनैमित्तिके संप्रसारणे कृते सुपूर्वाद् अस्मात् "ईषद्दुःसुषु०" इति खल्। "लिति" इति प्रत्यात्पूर्वस्योदात्तत्वम्। "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀। यस्माद् एवं सुह्वानौ तस्माद् आह्वयाम इत्यर्थः॥ यथा नः अस्माकं सर्व इत् सर्व एव जनः संगत्याम् संगमने प्राप्तौ सुमना असत् शोभनमनस्को भवेत्। न केवलं सौमनस्यमेव प्रार्थ्यते अपि तु सर्वो जनः नः अस्मभ्यं दानकामश्च दानाभिलाषयुक्तश्च यथा असत् भवेत्। तथा आह्वयाम इति संबन्धः। ❀ अस्तेर्भवतेश्च लेटि अडागमः। "भूसुवोस्तिङि" इति गुणाभावः❀॥

इन्द्र और वायु नाम वाले दोनों देवताओंको हम इस कर्ममें आह्वान करनेके लिये बुलाते हैं (इनके बुलानेका कारण यह है, कि-फलदाता देवताओंमें इन दोनोंको ही सुखसे बुलाया जा सकता है। अतएव) हम इनको बुलाते हैं। जिससे सब मनुष्य हमारी सङ्गति होने पर शोभन मन वाले होवें और सब मनुष्य हमें दान देनेकी इच्छा वाले होवें इसलिये हम आपका आह्वान करते हैं॥ ६॥

सप्तमी॥

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥७॥

अर्यमणम्। बृहस्पतिम्। इन्द्रम्। दानाय। चोदय।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वातम् । विष्णुम् । सरस्वतीम् । सवितारम् । च । वाजिनम् ॥७॥

हे स्तोतः अर्यमादीन् देवान् अस्मभ्यम् [दानाय] अभिमत-फलदानाय चोदय स्तुत्या प्रेरय । यथा ते । तुष्टाः अस्मभ्यं धनं प्रयच्छन्ति तथा स्तुतिवाक्यैस्तोषयेत्यर्थः ॥ तत्र वाचम् इति सरस्वतीविशेषणम् वाग्रूपा या सरस्वतीति । एतच्च नदीरूपायास्तस्या निवृत्त्यर्थम् । वाजिनम् इति सवितृविशेषणम् । वाजः अन्नं वेगो वा तद्वन्तं सवितारम् इति ॥

हे स्तुति करने वाले ! आप अर्यमा बृहस्पति इन्द्र वाग्देवता—सरस्वती व्यापक विष्णुदेव और वेग तथा अन्नसम्पन्न सूर्यदेव को अभिलषित फलका दान देनेके लिये स्तुतिके द्वारा प्रेरित करिये ।' ७ ॥

अष्टमी ॥

वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं
नि यच्छ ॥ ८ ॥

वाजस्य । नु । प्रऽसवे । सम् । बभूविम । इमा । च । विश्वा । भुवनानि । अन्तः ।

उत । अदित्सन्तम् । दापयतु । प्रऽजानन् । रयिम् । च । नः । सर्वऽवीरम् । नि । यच्छ ॥ ८ ॥

वाजस्य अन्नस्य प्रसवे उत्पत्तौ तद्धेतुभूते कर्मणि वा नु क्षिप्रं वयं सं बभूविम संप्राप्ता अभूम । यद्वा वृष्ट्यादिद्वारेण अन्न-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्योत्पादको देवो वाजस्य प्रसवः । ❀ "सवजवौ छन्दसि वक्तव्यौ" इति अजन्तः सवशब्दः । "थाथ०" इत्यादिना उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् ❀ ॥ तस्य संप्राप्तव्यताम् उपपादयति इमा चेति । इमा इमानि परिदृश्यमानानि विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि अन्तः वाजप्रसवस्य मध्ये वर्तन्ते । "अन्नाद्ध भूतानि जायन्ते । जातान्यन्नेन वर्धन्ते" [तै० आ० ८. २] इत्यादिश्रुतेः ॥ स च वाजप्रसवः उक्तलक्षणः प्रजानन् सर्वप्राणिहृदयगतम् अभिप्रायविशेषं जानन् उत अदित्सन्तम् दातुम् अनिच्छन्तमपि पुरुषं दापयतु बुद्धिप्रेरणेन अस्मभ्यम् दाने प्रवर्तयतु । ❀ अदित्सन्तम् इति । "सनि मीमाघुरभलभ०" इत्यादिना इसादेशः । "सस्यार्धधातुके" इति तत्वम् । "अत्र लोपोभ्यासस्य" इति अभ्यासलोपः । नञ्समासे अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥ तथा नः अस्माकं रयिम् विद्यमानं धनं च सर्ववीरम् । वीर्याज्जायन्ते इति वीराः पुत्रादयः । सर्वैर्वीरपुरुषैरुपेतं नि यच्छात् नियच्छतु नियमयतु सुचिरं स्थापयतु । ❀ यमेर्लेटि आडागमः । "इषुगमियमां छः" इति छत्वम् ❀ ॥

हम अन्नकी उत्पत्तिके कारण कर्मको शीघ्र ही प्राप्त होवें—करें । ये सब दीखते हुए प्राणी वृष्टिके द्वारा अन्नको उत्पन्न करने वाले वाजप्रसव देवके मध्यमें रहते हैं, वह वाजप्रसव देवता सब प्राणियोंके हृदयके अभिप्रायको जानते हैं अतः वह देना न चाहने वालेकी भी बुद्धिको प्रेरित कर हमें दान देनेमें प्रवृत्त करें । तथा हमारे विद्यमान धनको भी वीर्य से उत्पन्न होने वाले सब वीर पुत्र पौत्र आदिमें चिरकालके लिये स्थापित करें ॥८॥

नवमी ॥

दुहां मे पञ्च प्रदिशो दुहामुर्वीर्यथाबलम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥ ६ ॥

दुहाम् । मे । पञ्च । प्रऽदिशः । दुहाम् । उर्वीः । यथाऽबलम् ।

प्र । आपेयम् । सर्वाः । आऽकूतीः । मनसा । हृदयेन । च ॥६॥

[पञ्च] पञ्चसंख्याकाः प्रदिशः प्राच्याद्याश्चतस्रः मध्यं चेति महादिशः मे मह्यं दुहाम् अभिमतफलं दुहताम् । ❀ "बहुलं छन्दसि" इति दुहेः परस्य झादेशस्य अतो रुडागमः । "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तशब्दस्य लोपः ❀ ॥ तथा उर्वीः उर्व्यः षट्संख्याकाः मन्त्रान्तरे प्रसिद्धाः । "षण्मोर्वीरंहसस्पान्तु द्यौश्च पृथिवी चाहश्च रात्रिश्चापश्चौषधयश्च" [आश्व० १. २] इति । ता द्युपृथिव्याद्याः षड् उर्व्यः यथाबलम् यथाशक्ति अस्मदपेक्षितं धनं दुहाम् दुहतां प्रयच्छन्तु । दिशाम् उर्वीणां च स्त्रीत्वाद् धेनुत्वारोपेण दुहेः प्रयोगः ॥ ततश्च अहं सर्वा आकूतीः संकल्पान् प्रापेयम् प्राप्नवानि । ❀ आप्लृ व्याप्तौ इत्यस्मात् आशिषि लिङि "लिङ्याशिष्यङ्" इति अङ् प्रत्ययः ❀ । केन साधनेनेति उच्यते । मनसा संकल्पविकल्पहेतुभूतया अन्तःकरणवृत्त्या हृदयेन हृदयोपलक्षितान्तःकरणेन च । यद्यत् फलजातं संकल्पयामि तत् सर्वं फलं मनोव्यापारमात्रेण प्राप्नुयाम इत्याशासे इत्यर्थः ॥

पूर्व आदि चार और मध्यकी एक इस प्रकार पाँच महा दिशाएँ मुझे अभिलषित फल दें तथा आकाश पृथिवी दिन रात्रि जल और औषधि ये छः उर्वियें अपनी शक्तिके अनुसार हमारा चाहा हुआ धन दें † तब मैं संकल्प विकल्पकी हेतु अन्तःकरण-

† आश्वलायनसूत्र १ । २ में कहा है कि-"षण्मोर्वीरंहसस्पान्तु द्यौश्च पृथिवी चाहश्च रात्रिश्चापश्चौषधयश्च ॥-द्यौ पृथिवी दिन रात जल और औषधि ये छः उर्वियें पापसे मेरी रक्षा करें ॥"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वृत्तिसे और हृदयसे जिन सब संकल्पोंको करूँ उन सब फलों को मैं प्राप्त कर लूँ ॥ ९ ॥

दशमी ॥

गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि ।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥१०॥

गोऽसनिम् । वाचम् । उदेयम् । वर्चसा । मा । अभिऽउदिहि ।
आ । रुन्धाम् । सर्वतः । वायुः । त्वष्टा । पोषम् । दधातु । मे ॥१०॥

गां सनोति प्रयच्छतीति गोसनिः । ❀ "छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् इति इन् प्रत्ययः ❀ । गवोपलक्षितसर्वधनप्रदां वाचम् अहम् उदेयम् उद्यासम् उच्यासम् । ❀ वद व्यक्तायां वाचि । "लिङ्याशिष्यङ्" इति अङ् प्रत्ययः ❀ ॥ हे वाग्देवते । त्वं वर्चसा तेजसा मा माम् अभ्युदिहि अभ्युद्गच्छ । अभिमतफलं दातुं मां प्राप्नुहीत्यर्थः ॥ "सैषानस्तमिता देवता यद्व वायुः" इति श्रुत्यन्तरप्रसिद्धः सूत्रात्मा वायुः सर्वतः सर्वाभ्यो दिग्भ्यः आ रुन्धाम् प्राणात्मना आवृणोतु ॥ त्वष्टा देवः मे मम पोषम् शरीरादेः पुष्टिं दधातु धारयतु । प्रयच्छतु इत्यर्थः ॥

[इति] तृतीयकाण्डे चतुर्थेऽनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

समाप्तश्चतुर्थोऽनुवाकः ॥

गौ आदि सब प्रकारके धनोंको देने वाली वाणीका मैंने उच्चारण किया है अत एव हे वाग्देवते ! तुम तेजसे मुझमें उदित हो अर्थात् अभिलषित फल देनेके लिये आओ । और 'सैषानस्तमिता देवता यद्व वायुः ॥ -कभी अस्त न होने वाला देवता वायु है" इस प्रकार अन्य श्रुतियोंमें प्रसिद्ध सूत्रात्मा वायुदेव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सब दिशाओंसे प्राणात्मारूपमें आकर मुझे रोकें और त्वष्टा देवता मेरे शरीरको पुष्ट करें ॥ १० ॥

तृतीयकाण्डके चतुर्थ अनुवाकमें पंचम सूक्त समाप्त (९१)॥
चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥

पञ्चमेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "ये अग्नयः" इति प्रथमं सूक्तम् । तत्र आद्याभिः सप्तभिः क्रव्यादोपहतगृहगोष्ठक्षेत्रादिशान्त्यर्थं मणिधारणहोमादिकर्माणि कुर्यात् । तानि च संपातितपालाशवृक्षमणिबन्धनम् आज्यहोमः पालाशसमिदाधानम् पालाशेन उदञ्चनेन उदकहोमः पालाश्याम् उदपात्र्यां यवान् प्रक्षिप्य उदकसहितयवहोमः ॥

तथा अनेन दशर्चेन सर्वेण सूक्तेन क्रव्याच्छमने सक्तूदकं कांपीलसमिद्द्वयेन मथित्वा तं मन्थं पालाश्या दर्व्या प्रत्यृचं जुहुयात्॥

तथा वशाशमनकर्मणि अनेन सूक्तेन वशाम् अभिमन्त्र्य ब्राह्मणाय दद्यात् ॥

तथा च कौशिकः । "ये अग्नय इति क्रव्यादोपहते पालाशं बध्नाति । जुहोति । आदधाति । उदञ्चनेन उदपात्र्यां यवान् अद्भिरानीयोल्लोपम् । ये अग्नय इति पालाश्या दर्व्या मन्थम् उपमथ्य काम्पीलीभ्याम् उपमन्थनीभ्याम् । शमनं च ।" [कौ० ५. ७] इति॥

तथा वपां वा हवींषि वा काकोलूकश्वमानुषादयो गृहीत्वा गच्छेयुः तत्प्रायश्चित्तार्थम् अनेन दशर्चेन सूक्तेन आज्यं जुहुयात् । तथा च सूत्रम् । "अथ यत्रैतद्ध वपां [वा] हवींषि वा वयांसि द्विपदचतुष्पदं वाभिमृश्यावगच्छेयुः ये अग्नयः [३. २१] नमो देववधेभ्यः [६. १३]" इत्यादि [कौ० १३. ३१.]॥

तथा बृहद्गणेपि आद्याः सप्तर्चः परिगणिताः । ततस्तस्य गणस्य यत्रयत्र विनियोगस्तत्र सर्वत्र आसां विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा सोमस्कन्दने "ये अग्नयः" इति सप्तभिर्ब्रह्मा जुहुयात् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उक्तं वैताने । "यत्र विजानाति ब्रह्मन् सोमोस्कन्" इति प्रक्रम्य "ये [अग्नयो] अप्स्वन्तरिति सप्तभिरभिजुहोति" [वै० ३. ६] इति ॥

आवसथ्याधाने क्रव्याच्छमनानन्तरं गृहम् आगत्य "ये अग्नयः" इति सप्तभिराज्यं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "अन्तर्धिः [१२. २. ४४] मत्यञ्चम् अर्कम् [१२. २. ५५] ये अग्नयः [३. २१] नमो देवबधेभ्यः" [६, १३] इति [कौ० ६.४] ॥

तत्रैव क्रव्यादाग्नेः शमने "हिरण्यपाणिम्" इत्यादिभिरन्त्याभिस्तिसृभिः क्रव्यादग्नौ सक्तुमन्थं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "व्याकरोमि [१२. २. ३२] इति गार्हपत्यक्रव्यादो समीक्षते" [कौ० ६, २] इति प्रक्रम्य "अन्येभ्यस्त्वा [१२. २. १६] हिरण्यपाणिम् [८-१०] इति शमयति" [कौ० ६. ३] इति ॥

चातुर्मास्ये साकमेधपर्वणि आतिथ्येष्ट्यनन्तरं "दिवं पृथिवीम्" [७] इत्यनया अग्न्युपस्थानं कार्यम् । उक्तं वैताने । "उदस्य केतवः [१३. २] इत्यादित्यम् उपतिष्ठन्ते। दक्षिणाञ्चो दिवं पृथिवीम् इत्यग्नीन्" इति [वै० २. ५] ॥

पाँचवें अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें 'ये अग्नयः' यह प्रथम सूक्त है । इसकी पहिली सात ऋचाओंसे क्रव्याद (राक्षस)से दूषित घर गोठ और क्षेत्रकी शान्तिके लिये मणिधारण और होमधारण आदि कर्म करें । वे कर्म ये हैं—सम्पातित पलाशवृक्षकी मणिका बंधन, घृतहोम, पलाशकी समिधाओंका रखना, पलाशके उदञ्चनसे जलका होम तथा पलाशकी उदपात्रीमें (जलपूर्ण कलशी) में जौंको डाल कर जलसहित जौंका होम ॥

तथा इस दश ऋचा वाले पूर्ण सूक्तसे क्रव्याच्छमन कर्म में सत्तुओंके जलको कबीलेकी दो समिधाओंसे मथकर उस मंथका पलाशकी दर्वीसे प्रत्येक ऋचाके द्वारा होम करे ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसी प्रकार वशाशमनकर्म में इस सूक्तसे वशा (वन्ध्या गौ घोड़ी आदि) का अनुमन्त्रण करके ब्राह्मणको देदेय इसी बात को कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–'ये अग्नय इति क्रव्यादोपहते पालाशं बध्नाति । जुहोति । आदधाति । उदञ्जनेन उदपात्र्यां यवान् अद्भिरानीयोल्लेपम् । ये अग्नय इति पालाश्या दर्व्या मंथं उपमथ्य काम्पीलीभ्याम् उपमन्थनीभ्याम् । शमनं च।" (कौशिकसूत्र ५ । ७) ॥

वपा वा हविको काक उल्लू कुत्ता वा मनुष्य आदि लेकर भागें तो इसका प्रायश्चित करनेके लिये इस दश ऋचा वाले सूक्तसे घृतकी आहुति देय । इसी बातको सूत्रमें कहा है, कि–"अथ यत्रैतद् वपां वा हवींषि वा वयांसि द्विपदचतुष्पदं वाभिमृश्याभिगच्छेयुः ये अग्नयः (३ । २१) नमो देववधेभ्यः (६ । १३) (कौशिकसूत्र १३ । ३१) ॥

तथा बृहद्गणमें भी पहिली सात ऋचाओंकी गिनती है । अतएव इस गणका जहाँ २ विनियोग हो तहाँ २ सर्वत्र इसका विनियोग होगा ॥

तथा सोमस्कन्दनमें 'ये अग्नयः' इन सात ऋचाओंसे ब्रह्मा आहुति देय । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"यत्र विजानाति ब्रह्मन् सोमोस्कन" इति प्रक्रम्य "ये अग्नयो अप्स्वन्तरिति सप्तभिरभिजुहोति" (वैतानसूत्र ३ । ६) ॥

आवसथ्याधानमें क्रव्याच्छमनके अनन्तर घरमें आकर 'ये अग्नयः, इन सात ऋचाओंसे आहुति देय सूत्रमें भी कहा है, कि–'अन्तर्धिः (१२ । २ । ४४) प्रत्यञ्चम् अर्कम् (१२ । २ । ५५) ये अग्नयः (३ । २१) नमो देववधेभ्यः (६ । १३)" (कौशिकसूत्र ६ । ४) ॥

इसी कर्म में क्रव्यादाग्निको शान्त करनेके समय 'हिरण्य-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाणिम्' इत्यादि अन्तकी तीन ऋचाओंसे क्रव्याद अग्निमें सक्तुमन्थका होम करे। सूत्रमें भी कहा है, कि–"व्याकरोमि (१२।२।३२) इति गार्हपत्यक्रव्यादौ समीक्षते" (कौशिकसूत्र ६।२) इति प्रक्रम्य 'अन्येभ्यस्त्वा (१२।२।१६) हिरण्यपाणिम् (८–१०) इति शमयति" (कौशिकसूत्र ६।३)

चातुर्मास्यके साकमेध कर्ममें आतिथ्येष्टिके अनन्तर 'दिवं पृथिवीम्' इस सातवीं ऋचासे अग्निका उपस्थान करे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–'उदस्य केतवः (१३।२) इत्यादित्यं उपतिष्ठते। दक्षिणाश्चो दिवं पृथिवीम् इत्यग्नीन्' (वैतानसूत्र २।५)॥

तत्र प्रथमा॥

ये अ॒ग्नयो॑ अ॒प्स्व॒१न्तर्ये वृ॒त्रे ये पुरु॑षे॒ ये अश्म॑सु।
य आ॑वि॒वेशौष॑धी॒र्यो वन॒स्पती॒ंस्तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत्॥ १॥

ये। अ॒ग्नयः॑। अ॒प्ऽसु। अ॒न्तः। ये। वृ॒त्रे। ये। पुरु॑षे। ये। अश्म॑ऽसु।
यः। आ॒ऽवि॒वेश॑। ओष॑धीः। यः। वन॒स्पती॑न्। तेभ्यः॑। अ॒ग्निऽभ्यः॑। हु॒तम्। अ॒स्तु। ए॒तत्॥ १॥

अप्सु उदकेषु अन्तः मध्ये ये अग्नयः वाडवाद्याः सन्ति ये वा अग्नयो वृत्रे आवरणस्वभावे मेघे वैद्युतादिरूपेण विद्यन्ते। तत् को वृत्रः मेघ इति नैरुक्ताः इति [नि० २. १६] यास्कवचनाद्द वृत्रशब्दो मेघवाची। यद्वा वृत्रे वृत्रासुरशरीरे अन्तरवस्थिता ये अग्नयः सन्ति तथा पुरुषे मानुषशरीरे अशितपीतपरि-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

णामहेतुत्वेन ये अग्नयो वैश्वानरात्मना वर्तन्ते ये वा अग्नयः अश्मसु सूर्यकान्तादिशिलासु अन्तर्वर्तन्ते तथा योग्निः ओषधीः व्रीहियवादिरूपाः फलपरिपाकार्थम् आविवेश यश्च वनस्पतीन् वृत्तान् आविवेश तेभ्यः सर्वजगदनुग्राहकेभ्यः अग्निभ्यः एतत् प्रदीयमानं हविः हुतम् अस्तु दत्तं भवतु ॥ एक एवाग्निः स्वविभूतिरूपैरन्यैरग्निभिः कृत्स्नं जगद् अनुप्रविश्य पोषयतीति तस्य बहुत्वेन स्तुतिः । अत एव अग्नीनां प्रधानभूताग्निशाखात्वं दाशतय्याम् आम्नातम् । "वया इद् अग्ने अग्नेयस्ते अन्ये" [ऋ० १. ५९. १] इति ॥

जलोंमें जो बड़वानल आदि अग्नियें हैं और आवरण (ढकने) के स्वभाव वाले वृत्र ‡ अर्थात् मेघोंमें जो अग्नि विजली आदिके रूपसे रहती हैं और वृत्रासुरके शरीरमें जो अग्नियें हैं तथा मनुष्य के शरीरमें खाये पियेको पकाने वालीं जो अग्नि वैश्वानररूपसे रहती हैं, सूर्यकान्त आदि मणियोंके भीतर जो अग्नि रहता है तथा जौं धान आदि औषधियोंमें फलको पकानेके लिये जो अग्निदेव प्रवेश कर गए हैं और जो अग्नि वृत्तोंमें प्रवेश कर गए हैं उन सब जगत् पर अनुग्रह करने वाले अग्नियोंके लिये दी हुई यह हवि प्राप्त हो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यः सोमे॑ अ॒न्तर्यो गोष्व॒न्तर्य आवि॑ष्टो वयः॑सु॒ यो मृ॒गेषु॑।

---

‡ एक ही अग्निदेव अपनी विभूतिरूप अन्य अग्नियोंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्में प्रवेश कर उनका पोषण करते हैं अतः अनेक रूपसे उनकी स्तुति की है। अत एव ऋग्वेदसंहितामें अग्नियोंको प्रधान अग्निकी शाखा कहा है, कि—"वया इद्ध अग्ने अग्नयस्ते अन्ये" ॥ (ऋग्वेदसंहिता १ । ५९ । १) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

य आ॒वि॒वेश॑ द्वि॒पदो॒ यश्च॒तुष्प॑द॒स्तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑स्त्वे॒तत् ॥ २ ॥

यः । सोमे॑ । अ॒न्तः । यः । गोषु॑ । अ॒न्तः । यः । आऽवि॑ष्टः । वयः॒ऽसु । यः । मृ॒गेषु॑ ।

यः । आ॒ऽवि॒वेश॑ । द्वि॒ऽपदः॑ । यः । च॒तुः॒ऽपदः॑ । तेभ्यः॑ । अ॒ग्निऽभ्यः॑ । हु॒तम् । अ॒स्तु॒ । ए॒तत् ॥ २ ॥

सोमे लतारूपे अमृतमयरसपरिपाकाय योग्निः अन्तराविष्टः प्रविष्टः यश्च गोषु । उपलक्षणम् एतत् । गोमहिषादिषु ग्राम्यपशुषु योग्निः अन्तः प्रविष्टः पक्वं पयः करोति । ❀ गोष्विति । "सावेकाच०" इति प्राप्तस्य विभक्त्युदात्तत्वस्य "न गोश्वन्०" इति प्रतिषेधः ❀ । तथा वयःसु पक्षिषु यः अग्निः अनुप्रविष्टः तथा [यो] मृगेषु हरिणादिषु अनुप्रविष्टः । किं बहुना । योग्निः द्विपदः पादद्वयोपेतान् मनुष्यादीन् [योग्निः] चतुष्पदः पादचतुष्टयोपेतान् अन्यानपि प्राणिनः जाठरात्मना आविवेश । उक्तं हि भगवता ॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहम् आश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।

इति [भ० गी० १५. १४] ॥ ❀ द्विपद इति । द्वौ पादावस्येति विगृह्य समासे "संख्यासुपूर्वस्य" इति पादशब्दान्त्यलोपः समासान्तः । ततः शसि "पादः पत्" इति पद्भावः । "द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । एवं चतुष्पद इत्यत्रापि एवमेव रूपसिद्धिः । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । तेभ्य इत्यादि पूर्ववत् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लतारूप सोममें अमृतमय रसको पकानेके लिये जो अग्नि भीतर घुसे हुए हैं और जो अग्निदेव गौ भैंस आदि ग्राम्य पशुओंमें भीतर प्रविष्ट हुए दुग्धको परिपक्व करते हैं और जो अग्नि पक्षियोंमें हरिण आदिमें अधिक क्या दो पैर वाले मनुष्य आदिमें और चार पैर वाले अन्य सब प्राणियोंमें जाठराग्निके रूपसे प्रविष्ट हैं ‡ यह होमी हुई आहुति उन अग्नियोंके लिये हो॥२

तृतीया ॥

य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुत-
मस्त्वेतत् ॥ ३ ॥

यः । इन्द्रेण । सऽरथम् । याति । देवः । वैश्वानरः । उत ।
विश्वऽदाव्यः ।
यम् । जोहवीमि । पृतनासु । सासहिम् । तेभ्यः । अग्निऽभ्यः ।
हुतम् । अस्तु । एतत् ॥ ३ ॥

यो देवः दानादिगुणयुक्तोग्निः इन्द्रेण सरथम् समानरथम् एकं रथम् आरुह्य याति गच्छति । अनयोः समानरथत्वं च "य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वाम्" इति [ऋ० १.१०८.१] मन्त्रा-

‡ भगवद्गीता १५ । १४ में कहा है, कि–'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः । प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥–मैं वैश्वानररूपसे सब प्राणियोंके शरीरमें स्थित हो प्राण और अपानसे संयुक्त होकर चार प्रकारके अन्नोंको पचाता हूँ ॥"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

न्तरे स्पष्टम् अवगतम् । यश्चाग्निः वैश्वानरः विश्वनरहितः उत अपि च विश्वदाव्यः विश्वदावसंबन्धी विश्वस्य दाहको दावाग्निः तथा पृतनासु संग्रामेषु सासहिम् अत्यर्थम् अभिभवितारं यम् आथर्वणप्रसिद्धं सांग्रामिकम् अग्निं जोहवीमि जयार्थं चोदितैर्हविर्भिः पुनःपुनर्जुहोमि यद्वा युद्धसाहाय्यार्थं पुनःपुनराह्वयामि । ❀ "ह्वः संप्रसारणम्" "अभ्यस्तस्य च" इति ह्वयतेः संप्रसारणम् । "गुणो यङ्लुकोः" इति अभ्यासस्य गुणः । "अनुदात्ते च" इति अभ्यस्ताद्युदात्तत्वम् ❀ । "जेतारम् अग्निं पृतनासु सासहिम्" [तै० सं० ४. १. १०. २] इति मन्त्रान्तरम् । तेभ्य इत्यादि गतम् ॥

दान आदि गुणोंसे सम्पन्न जो अग्निदेव इन्द्रके साथ एक रथ पर चढ़ कर चलते हैं † और जो अग्निदेव सम्पूर्ण मनुष्योंके हितकारी (वैश्वानर) होने पर विश्वदाहक दावाग्नि भी हैं और जिन संग्रामोंमें दवाने वाले अथर्ववेदमें प्रसिद्ध साङ्ग्रामिक अग्निको मैं विजयके लिये दी हुई हवियोंसे बारम्वार पुकारता हूँ उन अग्नियोंके लिये यह आहुति प्राप्त हो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यो दे॒वो वि॒श्वाद्यमु॒ काम॑मा॒हुर्यं दा॒तारं॑ प्रतिगृ॒-
ह्णन्त॑मा॒हुः ।
यो धीर॒ः श॒क्रः प॑रि॒भूरदा॑भ्य॒स्तेभ्यो॑ अ॒ग्निभ्यो॑ हु॒तम॑-
स्त्वे॒तत् ॥ ४ ॥

† इन्द्रदेव और अग्निदेवका एक रथमें बैठना अन्य श्रुतियोंमें भी प्रसिद्ध है, यथा "य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वाम् ॥–हे इन्द्र और अग्निदेवताओं ! तुम्हारा जो विचित्र रथ है" (ऋग्वेद-संहिता १ । १०८ । १) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यः । देवः । विश्वऽअत् । यम् । ऊं इति । कामम् । आहुः ।

यम् । दातारम् । प्रतिऽगृह्णन्तम् । आहुः ।

यः । धीरः । शक्रः । परिऽभूः । अदाभ्यः । तेभ्यः । अग्निऽभ्यः ।

हुतम् । अस्तु । एतत् ॥ ४ ॥

यो देवः दानादिगुणयुक्तः अग्निः विश्वात् विश्वं सर्वम् अत्ति भक्षयतीति विश्वात् । ❀ "अदोनन्ने" इति विट् प्रत्ययः ❀ । यम् उ । उशब्दः अवधारणे । यमेवाग्निं कामम् कामयितारं काम्यमानफलात्मकं वा आहुः कथयन्ति तथा यम् अग्निं दातारम् इष्टफलस्य प्रदातारं प्रतिगृह्णन्तम् प्रतिग्रहीतारं च आहुः कथयन्ति यश्चाग्निः धीरः धीमान् शक्रः सर्वकार्येषु शक्तः । ❀ शक्लृ शक्तौ इत्यस्मात् स्फायितञ्चीत्यादिना [उ० २. १३] रक् ❀ । परिभूः शत्रूणां परिभविता अदाभ्यः केनचिदपि अहिंस्यः । तेभ्य इत्यादि गतम् ॥

जो अग्निदेव सम्पूर्ण विश्वका भक्षण कर लेते हैं और जिन अग्निदेवको अभिलषित फलरूप कहते हैं और जिन अग्निदेव को इष्ट फलको देने वाले और ग्रहण करने वाले भी कहते हैं, जो अग्निदेव बुद्धिमान् और सब कार्योंमें समर्थ हैं, शत्रुओंको दबाने वाले हैं और किसीसे दाब न खाने वाले हैं उन अग्नियों के लिये यह दी हुई आहुति हो ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः

पञ्च मानवाः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ५ ॥

यम् । त्वा । होतारम् । मनसा । अभि । सम्ऽविदुः । त्रयःऽदश । भौवनाः । पञ्च । मानवाः ।

वर्चःऽधसे । यशसे । सूनृताऽवते । तेभ्यः । अग्निऽभ्यः । हुतम् । अस्तु । एतत् ॥ ५ ॥

हे अग्ने यं त्वा त्वां होतारम् देवानाम् आह्वातारं मनसा बुद्ध्या अभि संविदुः आभिमुख्येन संविदन्ति सम्यक् जानन्ति । ❀ "विदो लटो वा" इति झेरुसादेशः ❀ । के पुनस्ते इत्याह । त्रयश्च दश च त्रयोदश । ❀ "त्रेस्त्रयः" इति त्रिशब्दस्य पूर्वपदस्य त्रयस् आदेशः । "संख्या" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । त्रयोदशसंख्याका भौवनाः । भवन्ति सत्तां लभन्ते अस्मिन् भूतजातानीति भुवनः संवत्सरः । ❀ भवतेरौणादिकः क्युन् प्रत्ययः ❀ । तत्संबन्धिनश्चैत्राद्या मासा भौवनाः । ते हि संसर्पांहस्पत्याख्येन अधिमासेन सह त्रयोदश भवन्ति । "अस्ति त्रयोदशो मास इत्याहुः" [तै० सं० ६. ५. ३. ४] इति हि ब्राह्मणम् । तथा मानवाः मनुना सृष्ट्यादौ कल्पिता वसन्ताद्याः पञ्चर्तवः । हेमन्तशिशिरयोः समासाभिप्रायम् एतत् । ❀ पञ्चर्तवः संवत्सरस्येति हि ब्राह्मणम् इति यास्कः [नि० ४. २७] ❀ । यद्वा । "विश्वकर्मन् भौवन मां दिदासिथ" [ऐ० ब्रा० ८. २१] । "विश्वकर्मा भौवनः स्वात्मनि सर्वाणि भूतानि जुहवांचकार" [नि० १०. २६] इत्यादिश्रुत्यन्तरप्रसिद्धा भुवनाख्यस्य महर्षेः पुत्रा विश्वकर्मप्रभृतयस्त्रयोदशसंख्याकाः । पञ्च मानवाः निषादपञ्चमा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्चत्वारो वर्णाः। गन्धर्वाप्सरसो देवा असुरा रक्षांसि इत्येके। एवमात्मकाः सर्वे त्वाम् अभिसंविदुरिति संबन्धः। तस्मै वर्चोधसे। वर्चस्तेजः दधाति धारयति प्रयच्छतीति वा वर्चोधाः। ❀ दधातेरसुन् प्रत्ययः ❀। यशसे यशस्विने। यद्वा व्याप्नुवते। ❀ अशू व्याप्तौ इत्यस्माद् अशेयुट् च [उ० ४. १९०] इति असुन् युडागमश्च ❀। सूनृतावते। प्रियसत्यात्मिका वाक् सूनृता। तद्वते एवंभूताय तुभ्यं तेभ्यः प्रागुक्तेभ्यस्त्वद्विभूतिरूपेभ्यः अग्निभ्यश्च। गतम् अन्यत्॥

हे अग्ने! जिसमें प्राणी सत्ताको प्राप्त होते हैं उस भुवन अर्थात् सम्वत्सरके अवयव तेरह भौवन अर्थात् तेरह महीने †, तथा मनुके द्वारा सृष्टिके आदिमें कल्पना की हुई पाँच ऋतुए‡ भुवन नाम वाले महर्षिके विश्वकर्मा आदि तेरह पुत्र ÷, निषाद जिनमें पाँचवाँ है ऐसे पाँच मानव वर्ण और गन्धर्व अप्सरा देवता और राक्षस और मनुष्य ये पाँच जिन आपको, देवताओं

---

† तैत्तिरीयसंहिता ६।५।३।४ में कहा है, कि–'अस्ति त्रयोदशो मास इत्याहुः॥–तेरहवाँ (लौंद-अधिमास) है ऐसा कहते हैं" ॥

‡ हेमन्त और शिशिरको एक मान कर पाँच ऋतु कही हैं। यास्कमुनि भी निरुक्त ४।२७ में कहते हैं, कि–'पञ्चर्तवः संवत्सरस्येति ब्राह्मणम्॥—पाँच ऋतुएँ है–यह बात ब्राह्मणग्रंथोंमें है" ॥

÷ ऐतरेय ब्राह्मण ८।२१ में कहा है, कि–"विश्वकर्मन् भौवन मां दिदासिथ॥–हे भुवनके पुत्र विश्वकर्मन्! तू मुझे देना चाहता है" ॥ और निरुक्त १०।२६ में कहा है, कि–"विश्वकर्मा भौवनः स्वात्मनि सर्वाणि भूतानि जुहवाञ्चकार॥-भुवनके पुत्र विश्वकर्मने अपनेमें सब भूतोंकी आहुति दी" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को आह्वान करने वाला जानते हैं उन तेजधारी यशस्वी प्रिय सत्य वाणी वाले आपके लिये और पहिले कही हुई आपकी विभूतरूप अग्नियोंके लिये भी दी हुई यह आहुति प्राप्त हो ५

षष्ठी ॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥६॥

उक्षऽअन्नाय । वशाऽअन्नाय । सोमऽपृष्ठाय । वेधसे ।
वैश्वानरऽज्येष्ठेभ्यः । तेभ्यः । अग्निऽभ्यः । हुतम् । अस्तु । एतत् ६

उक्षान्नाय । उक्षाणः सेचनसमर्था वृषभाः । ते हविरात्मना अन्नं यस्य स तथोक्तः । [तस्मै] । [वशान्नाय] । वशा वन्ध्या गावः । ता अन्नं यस्य तस्मै । सोमपृष्ठाय हूयमानः सोमः पृष्ठे उपरिभागे यस्य स सोमपृष्ठः । तस्मै । वेधसे आहुतिद्वारेण सर्वस्य जगतो विधात्रे । ❀ विध विधाने इत्यस्माद् असुन् ❀ । स्मर्यते हि ।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यम् उपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।

इति [म० स्मृ० ३. ७६] । तेभ्यो वैश्वानरज्येष्ठेभ्यः । एक उक्षान्नः । अपरो वशान्नः । अन्यः सोमपृष्ठः । ते सर्वे वैश्वानरज्येष्ठाः । विश्वनरहितो जाठररूपेणावस्थितोऽग्निर्ज्येष्ठः अग्रजो येषाम् । स खलु जीवदवस्थायामपि उक्षादिशरीरम् अनुप्रविश्य भुङ्क्ते । संज्ञपनोत्तरकालम् अन्येषाम् अग्नीनां भोग इति ज्यायस्त्वकनीयस्त्वभावः । तेभ्यः इत्यादि गतम् ॥

सेचनसमर्थ वृषभ हविरूपसे जिनके अन्न हैं और वशा जिनका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अन्न हैं और आहुति दिया हुआ सोम जिनके पृष्ठ अर्थात् ऊपर रहता है उन अग्निदेवके लिये और आहुतिके द्वारा सब जगत्के विधाता † तथा जो उक्षान्न वशान्न और सोमपृष्ठोंमें वैश्वानररूपसे ज्येष्ठ है उस अग्निके लिये (अर्थात् वह जीवित अवस्थामें भी बैल आदिके शरीरमें प्रवेश कर उनका भोग लगाता है और अग्नि संज्ञपनके अनन्तर भोग लगाते हैं अत एव छोटा बड़ापन है) तथा पूर्वोक्त विभूतिरूप अग्नियोंके लियेयह आहुति प्राप्त हो ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति ।
ये दिक्ष्व१न्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ७ ॥

दिवम् । पृथिवीम् । अनु । अन्तरिक्षम् । ये । विऽद्युतम् । अनुऽसंचरन्ति ।

ये । दिक्षु । अन्तः । ये । वाते । अन्तः । तेभ्यः । अग्निऽभ्यः । हुतम् । अस्तु । एतत् ॥ ७ ॥

दिवम् द्युलोकं पृथिवीम् भूलोकम् अन्तरिक्षं अन्तरा क्षान्तं

† मनुस्मृति ३ । ७६ में भी कहा है, कि—"अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥—अग्निमें दी हुई आहुति आदित्यको प्राप्त होती है, तब आदित्य (सूर्य) से वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न होता है तब प्रजाकी उत्पत्ति होती है" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्यावापृथिव्योर्मध्यवर्तिनं लोकं च अनुप्रविश्य ये अग्नयः संचरन्ति । ये च विद्युतम् मेघस्थितां तडितं विद्योतमानं ज्योतिश्चक्रं वा अनुप्रविश्य संचरन्ति । ये चाग्नयः लोकत्रयव्यापिकासु दिक्षु अन्तः मध्ये वर्तन्ते । ये च वाते वायौ सर्वजगदाधारभूते सूत्रात्मनि अन्तः संचरन्ति । तेभ्यः इत्यादि गतम् ॥

द्युलोकमें भूलोकमें और द्युलोक तथा भूलोकके मध्यवर्ती लोक अन्तरिक्षलोकमें प्रवेश करके जो अग्नियें विचरण करती हैं और जो मेघमें स्थित बिजलीमें और दमकने वाले ज्योतिश्चक्र में प्रवेश करके जो अग्नियें विचरण करती हैं और जो अग्नियें तीनों लोकोंमें व्याप्त दिशाओंमें रहती हैं और जो सब जगत्के आधारभूत वायु सूत्रात्मामें प्रवेश करके भीतर विचरती हैं उन अग्नियोंके निमित्त यह आहुति हो ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम्
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम् ॥ ८ ॥

हिरण्यऽपाणिम् । सवितारम् । इन्द्रम् । बृहस्पतिम् । वरुणम् । मित्रम् । अग्निम् ।

विश्वान् । देवान् । अङ्गिरसः । हवामहे । इमम् । क्रव्यऽअदम् । शमयन्तु । अग्निम् ॥ ८ ॥

हिरण्यपाणिम् । स्तोतृभ्यो दातुं हिरण्यं पाणौ यस्यस तथोक्तः हितरमणीयपाणिः हिरण्यपाणिः हिरण्मयहस्तो वा । कुतश्चित् कार-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

णात् छिन्नस्तस्य सवितुः हिरण्मयो हस्तः प्रतिनिहित इत्याख्यायिका । अत एवान्यत्र आम्नातम् । "हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः" [ऋ० १. ३५. १०] इति । ईदृशं सवितारम् सर्वस्य प्रेरकं देवम् इन्द्रादींश्च विश्वान् सर्वान् देवान् अङ्गिरसः एतत्संज्ञकान् महर्षीन् हवामहे आह्वयामः । यद्वा अङ्गिरसः आङ्गिरसगोत्रजा वयम् इति योज्यम् । ते च आहूताः सवित्रादयः इमं क्रव्यादम् । क्रव्यं मांसम् अत्तीति क्रव्यात् दुष्टोग्निः । ❀ "क्रव्ये च" इमि अदेर्विट् प्रत्ययः ❀ । ईदृशम् अग्निं शमयन्तु शान्तं कुर्वन्तु ॥

स्तुति करने वालोंको देनेके लिये जिनके हाथमें सुवर्ण रहता है उन सर्वप्रेरक सूर्यदेवको इन्द्र मित्र वरुण अग्नि इन सब देवताओंको हम अङ्गिरागोत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि बुलाते हैं । वे देवता इस क्रव्याद अग्निको शान्त करें ॥ ८ ॥

नवमी ॥

शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्य१स्तं क्रव्यादमशीशमम् ॥९॥

शान्तः । अग्निः । क्रव्यऽअत् । शान्तः । पुरुषऽरेषणः ।
अथो इति । यः । विश्वऽदाव्यः । तम् । क्रव्यऽअदम् ।
अशीशमम् ॥ ९ ॥

यः क्रव्यात् उक्तविधः अग्निः स सवित्रादीनाम् अनुग्रहात् शान्तः सुखकरो भवतु । यः पुरुषरेषणः पुरुषस्य हिंसकोग्निः सोपि शान्तः सुखकरो भवतु ॥ अथो अपि च योग्निः विश्वदाव्यः सर्वस्य दाहको दावाग्निः तं क्रव्यादम् मांसभक्षकम् अग्निम् अशीशमम् शान्तम् अकार्षम् । ❀ शमेर्ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् ❀॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मांसको खाने वाले क्रव्याद अग्नि सूर्य आदिके अनुग्रहसे शान्त हों अर्थात् सुख देने वाले हों और जो पुरुषके हिंसक अग्नि हैं वह भी शान्त हों और सबको जलाने वाला दावानल है उस मांसभक्षक अग्निको भी मैंने शान्त कर दिया है ॥ ६ ॥

दशमी ॥

ये पर्व॑ताः सोम॑पृष्ठा आप॑ उत्तान॒शीव॑रीः ।

वातः॑ प॒र्जन्य॒ आद॒ग्निस्ते क्र॒व्याद॑मशीशमन् ॥ १० ॥

ये । पर्व॑ताः । सोम॑ऽपृष्ठाः । आप॑ः । उ॒त्ता॒न॒ऽशीव॑रीः ।

वात॑ः । प॒र्जन्य॑ः । आत् । अ॒ग्निः । ते । क्र॒व्य॒ऽअद॑म् । अ॒शी॒श॒म॒न् १०

सोमपृष्ठाः सोमः पृष्ठे उपरिभागे येषां तादृशा ये पर्वताः मुञ्जवत्प्रभृतयो गिरयः सन्ति उत्तानशीवरीः उत्तानशयनस्वभावा या आपः सन्ति । ❀ "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति शीङः क्वनिप् । "वनो र च" इति ङीब्रेफौ । जसि "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । वातादयः प्रसिद्धाः । आत् इति आनन्तर्यवाची । ते सर्वे अनुक्रान्ताः पर्वतादयः क्रव्यादम् मांसभक्षकम् उपद्रवकारिणम् अग्निम् अशीशमन् शान्तम् अकुर्वत । इतः परं नास्माकं भयशङ्का विद्यत इत्यर्थः ॥

[इति] तृतीये काण्डे पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

जिनके ऊपर सोम है उन मुञ्जावन् आदि पर्वतोंने उत्तान शयन करने वाले जलने वायुने तथा मेघने इस उपद्रवकारी मांसभक्षक अग्निको शान्त कर दिया है (अतः अब हमें भयकी शंका नहीं है) ॥ १० ॥

तृतीयकाण्डके पञ्चम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (९२) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"हस्तिवर्चसम्" इति द्वितीयसूक्तेन तेजस्कामो हस्तिदन्तं स्पृष्ट्वा उपतिष्ठते ॥

तथा हस्तिदन्तमणिम् अनेन संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । "ममाग्ने वर्चः [५. ३] इति वर्चस्यानि" [कौ० २. ३] इति प्रक्रम्य "हस्तिवर्चसम् इति हस्तिनं हास्तिदन्तं बध्नाति" इति [कौ० २. ४] ॥

तथा अनेन सूक्तेन पुरोहितो हस्तिनम् अभिमन्त्र्य राज्ञे प्रातः-प्रातः प्रयच्छेत् । तद् उक्तं परिशिष्टे । "अथ पुरोहितकर्माणि" इति प्रक्रम्य "वातरंहाः [६. ९२] इत्यश्वम् हस्तिवर्चसम् [३. २२] इति हस्तिनम्" इति [प० ४. १] ॥

"ब्राह्मीं ब्रह्मवर्चसकामस्य वस्त्रशयनाग्निज्वलने च" इति [न० क० १७] विहितायां ब्राह्मचाख्यायां महाशान्तौ हस्तिदन्तमणिबन्धनेपि एतत् सूक्तम् । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "हस्तिवर्चसम् इति हस्तिदन्तं ब्राह्मचाम्" इति [न० क० १९] ॥

तेज चाहने वाला पुरुष 'हस्तिवर्चसम्' इस दूसरे सूक्तसे हाथीदाँतको छूकर उपस्थान करे ॥

तथा हाथीदाँतकी मणिको इस सूक्तसे सम्पातन और अभिमन्त्रण करके बाँधे ॥

इसी बातको कौशिकने कहा है, कि—"ममाग्ने वर्चः (५।३) इति वर्चस्यानि" (कौशिकसूत्र २ । ३) इति प्रक्रम्य 'हस्तिवर्चसम् (३ । २२) इति हस्तिनो हास्तिदन्तं बध्नाति" (कौशिकसूत्र २ । ४) ॥

तथा पुरोहित प्रतिदिन प्रातःकाल इस सूक्तसे हाथीका अभिमन्त्रण करके राजाको देवे । इसी बातको अथर्वपरिशिष्टमें कहा है, कि—"अथ पुरोहितकर्माणि" इति प्रक्रम्य "वातरंहा (६।९२)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इत्यश्वं हस्तिवर्चसम् (३ । २२) इति हस्तिनम्" इति (परिशिष्ट ४ । १) ॥

"ब्राह्मीं ब्रह्मवर्चसकामस्य वस्त्रशयनाग्निज्वलने च ॥-ब्रह्मतेज चाहने वालेके लिये तथा वस्त्र और शय्याके अग्निसे जलने पर ब्राह्मी महाशांतिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित ब्राह्मी नाम वाली महाशांतिमें हाथी दाँतके मणिबन्धनमें यह सूक्त पढ़ा जाता है। इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि-'हस्तिवर्चसम् इति हस्तिदन्तं ब्राह्मयाम्" (नक्षत्रकल्प १९) ॥

तत्र प्रथमा ॥

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्वः संबभूव ।

तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः १

हस्तिऽवर्चसम् । प्रथताम् । बृहत् । यशः । अदित्याः । यत् । तन्वः । सम्ऽबभूव ।

तत् । सर्वे । सम् । अदुः । मह्यम् । एतत् । विश्वे । देवाः । अदितिः । सऽजोषाः ॥ १ ॥

हस्तिवर्चसम् । हस्तोस्यास्तीति हस्ती गजः । ❀ "हस्ताज्जातौ" इति गजजातावभिधेयायाम् इनिप्रत्ययः ❀ । तस्य यद् वर्चः अप्रधृष्यं तेजः तद् हस्तिवर्चसम् । ❀ "ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः" इति अच् समासान्तः ❀ । तत् प्रथताम् अस्मासु प्रथितं प्रख्यातं भवतु । ❀ प्रथ प्रख्याने इति धातुः ❀ । कीदृशं तत् हस्तिवर्चसम् इति तद् आह अदित्या इति । अदितिः अखण्ड-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नीया अदीना वा देवमाता । तस्याः तन्वः शरीराद् यत् बृहत् महद् अधिकं यशः प्रख्यातं तेजः संबभूव समुत्पन्नम् अभवत् । तत् एतत् यशः विश्वे सर्वे देवाः तैः सजोषाः समानप्रीतिः अदितिश्च सर्वे संभूय मह्यं तेजस्कामाय अदुः ददतु प्रयच्छन्तु । ❀ डुदाञ् दाने । छान्दसे लुङि "गातिस्था०" इति सिचो लुक् ❀ ॥

हाथीमें जो अप्रधृष्य तेज है वह मुझमें प्रसिद्ध हो । अदीना देवमाता अदितिके शरीरसे जो बड़ा भारी प्रसिद्ध तेज उत्पन्न हुआ है उस तेजको सब देवता तथा उनकी ही समान प्रसन्न होकर अदिति भी मुझ तेज चाहने वालेको देवें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेततु ।
देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा ॥ २ ॥

मित्रः । च । वरुणः । च । इन्द्रः । रुद्रः । च । चेततु ।
देवासः । विश्वऽधायसः । ते । मा । अञ्जन्तु । वर्चसा ॥ २ ॥

अहरभिमानी देवो मित्रः । वरुणः रात्र्यभिमानी । इन्द्रः परमैश्वर्ययुक्तः स्वर्गाधिपतिः । रोदयति सर्वम् अन्तकाले इति रुद्रः संहर्ता देवः । ❀ रोदेर्णिलुक् च [उ० २. २२] इति रक् प्रत्ययः णेश्च लुक् ❀ । एते सर्वे प्रत्येकं चेततु । अनुग्राह्योयम् इति मां जानातु । ❀ चिती संज्ञाने ❀ । विश्वधायसः विश्वं सर्वं जगद् दधति पोषयन्तीति विश्वधायसः । ❀ वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि [उ० ४. २२०] इति विश्वशब्दोपपदाद् दधातेरसुन् प्रत्ययः । णिदित्यनुवृत्तेस्तस्य णिद्वद्भावाद् "आतो युक् चिण्कृतोः" इति युक् ❀ । विश्वस्य पोषकाः ते पूर्वोक्ता मित्रादयो देवासः देवाः । ❀ "आज्जसेरसुक्" ❀ । मा वर्चस्कामं मां वर्चसा काम्यमानेन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तेजसा अञ्जन्तु अक्तम् आश्लिष्टं कुर्वन्तु । ❀ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षण [कान्ति] गतिषु । "श्नसोरल्लोपः" इति अकारलोपः । "श्नान्नलोपः" ❀ ॥

दिनके अभिमानी मित्रदेवता, रात्रिके अभिमानी वरुणदेवता, परमैश्वर्यसंपन्न स्वर्गके अधिपति देवराज इन्द्र ये सब मुझको अनुग्रह करने योग्य समझें । विश्वका पोषण करने वाले ये मित्र (सूर्य) आदि देवता मुझ तेज चाहने वालेको अभिलषित तेज से संयुक्त करें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

येन॑ ह॒स्ती वर्च॑सा संब॒भूव॒ येन॒ राजा॑ मनु॒ष्ये॑ष्व॒-
प्स्व१॒न्तः ।
येन॑ दे॒वा दे॒वता॑मग्र॑ आय॒न् तेन॒ माम॒द्य वर्च॒साग्ने॑
वर्च॒स्विनं॑ कृणु ॥ ३ ॥

येन॑ । ह॒स्ती । वर्च॑सा । सम्ऽब॒भूव॑ । येन॑ । राजा॑ । म॒नु॒ष्ये॑षु । अ॒प्ऽसु । अ॒न्तः ।
येन॑ । दे॒वाः । दे॒वता॑म् । अग्रे॑ । आय॑न् । तेन॑ । माम् । अ॒द्य । वर्च॑सा । अग्ने॑ । वर्च॒ऽस्विन॑म् । कृ॒णु ॥ ३ ॥

येन वर्चसा बलकरेण तेजसा हस्ती गजः संबभूव संप्राप्तोभवत् । मनुष्येषु मनोरपत्येषु । ❀ "मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च" इति मनुशब्दाद् यत् प्रत्ययः षुगागमश्च । "तित् स्वरितः" इति अन्तस्वरितत्वम् ❀ । मनुष्यजातीयेषु मध्ये येन वर्चसा राजा नृपतिः वर्चस्वी भवति । तथा अप्सु उदकेषु अन्तः मध्ये येन वर्चसा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्राणिनो वर्चस्विनो भवन्ति । यद्वा । आपः इति अन्तरिक्षनाम । अप्सु अन्तरिक्षलोके अन्तः मध्ये तत्र संचारिणो यक्षगन्धर्वादयः येन वर्चस्विनो भवन्ति । देवाः इन्द्रादयः अग्रे सृष्ट्यादौ देवताम् देवत्वं देवभावं येन वर्चसा आयन् प्राप्नुवन् । हे अग्ने तेन सर्वेण वर्चसा अद्य अस्मिन् काले मां वर्चस्विनम् तेजस्विनं कृणु कुरु । ❀ वर्चस्विनम् इति । तद्धितवृत्त्यन्तर्गतस्यापि वर्चसो वर्चसेति पुनरुपादानं तेनेति विशेषणसंबन्धार्थम् वाचम् अवोचत् इतिवत् ❀ ॥

जिस तेजसे हाथी हाथी होता है और जिस तेजसे राजा मनुष्योंमें तेजस्वी होता है तथा जलोंमें प्राणी जिससे वर्चस्वी होते हैं और अन्तरिक्षलोकमें यक्ष गंधर्व आदि जिससे तेजस्वी होते हैं और इन्द्र आदि देवताओंने सृष्टिके आरम्भमें जिस वर्चसे देवत्व पाया है हे अग्ने! उस सब वर्चसे इस समय मुझे वर्चस्वी करो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः ।
यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिनः ।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ॥४॥

यत् । ते । वर्चः । जातऽवेदः । बृहत् । भवति । आऽहुतेः ।
यावत् । सूर्यस्य । वर्चः । आसुरस्य । च । हस्तिनः ।
तावत् । मे । अश्विना । वर्चः । आ । धत्ताम् । पुष्करऽस्रजा ॥४॥

हे जातवेदः जातानां वेदितः हे आहुते आहुतिभिर्हूयमानाग्ने ते तव बृहत् अधिकं यत् वर्चः तेजो भवति सूर्यस्य सर्वप्रेरकस्य आदित्यस्य यावत् यत्परिमाणं वर्चः तेजोस्ति । ❀ "यत्तदेतेभ्यः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परिमाणे वतुप्" । "आ सर्वनाम्नः" इति आत्वम् । "राजसूय-सूर्य०" इत्यादिना सूर्यशब्दः क्यबन्तो निपातितः ❀ । तथा आसुरस्य असुराणां संबन्धिनो हस्तिनश्च यावद् वर्चोऽस्ति तावत्परिमाणं वर्चः मे मह्यं पुरस्करस्रजा पद्मस्रगलंकृतौ अश्विना अश्विनौ देवौ आ धत्ताम् स्थापयताम् । प्रयच्छताम् इत्यर्थः । ❀ अश्विना पुस्करस्रजा इत्युभयत्र "सुपां सुलुक्०" इति सुप आकारः ❀ ॥

हे उत्पन्न हुओंको जानने वाले और आहुतियोंसे बुलाये जाने वाले अग्ने ! तुममें जो अधिक तेज होता है और सूर्यमें जितना तेज है उसको कमलोंकी मालासे अलंकृत अश्विनी-कुमार मुझमें स्थापित करें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते ।
तावत् समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ॥ ५ ॥

यावत् । चतस्रः । प्रऽदिशः । चक्षुः । यावत् । सम्ऽअश्नुते ।
तावत् । सम्ऽएतु । इन्द्रियम् । मयि । तत् । हस्तिऽवर्चसम् ॥५॥

चतस्रः चतुःसंख्याकाः प्रदिशः प्रकृष्टाः प्राच्याद्याः महादिशः यावत्परिमितं व्याप्नुवन्ति । तथा चक्षुः रूपग्राहकम् इन्द्रियं यावत्पर्यन्तं नक्षत्रमण्डलावधि समश्नुते सम्यग् व्याप्नोति तावत्परिमाणम् इन्द्रियम् इन्द्रस्य परमैश्वर्ययुक्तस्य लिङ्गम् असाधारणं चिह्नं समेतु अस्मान् संप्राप्नोतु ॥ ईदृशं तत् प्रागुक्तं हस्तिवर्चसं मयि भवतु ॥

चार दिशायें जितने स्थानको घेरती हैं, रूपको देखने वाला नेत्र नक्षत्रमण्डल तकके जितने स्थानको व्याप्त करता है उतने परिमाण वाला परमैश्वर्य युक्त इन्द्रदेवका असाधारण चिन्ह हमको प्राप्त हो, पहिले कहा हुआ हस्तिवर्चस् मुझको प्राप्त हो ५

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

षष्ठी ॥

हस्ती मृगाणां सुषदामतिष्ठावान् बभूव हि ।
तस्य भगेन वर्चसाभि सिञ्चामि मामहम् ॥ ६ ॥

हस्ती । मृगाणाम् । सुऽसदाम् । अतिस्थाऽवान् । बभूव । हि ।
तस्य । भगेन । वर्चसा । अभि । सिञ्चामि । माम् । अहम् ॥६॥

सुषदाम् । सुखेन सीदन्ति स्वेच्छया वर्तन्त इति सुषदः । ❀ "सत्सूद्विष०" इति क्विप् । "सदिरप्रतेः" इति षत्वम् ❀ । अरण्ये स्वेच्छया वर्तमानानां मृगाणाम् हरिणादीनां मध्ये हस्ती वनगजः अतिष्ठावान् बलातिशयेनातिक्रम्य अवस्थाता बभूव [हि]। ❀ अतिपूर्वात् तिष्ठतेः "आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च" इति । वनिप् नलोपाभावश्छान्दसः ❀ । यद्वा अतिक्रम्य अवस्थानम् अतिष्ठा तद्वान् । ❀ "आतश्चोपसर्गे" इति भावे अङ् । ततो मतुप् । "उपसर्गात् सुनोति०" इति षत्वम् ❀ । तस्य तथाविधस्य हस्तिनः भगेन भजनीयेन भाग्यरूपेण वा वर्चसा तेजसा बलादिना माम् अहम् अभि षिञ्चामि । एकस्यैव अस्मदर्थस्य शरीराद्युपाधिभेदेन भेदात् कर्मकर्तृभावः ॥

[इति] पञ्चमेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

वनमें स्वेच्छापूर्वक घूमने वाले हरिण आदिमें हाथी बलमें अधिक होनेसे इन सबके ऊपर रहता है, हाथीके उस भाग्यरूप तेजसे मैं अपनेको अभिषिक्त करता हूँ ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (९३) ॥

"येन वेहद् बभूविथ" इति तृतीयसूक्तेन पुंसवनकर्मणि बाणम् अभिमन्त्र्य स्त्रिया मूर्ध्नि विहरेत् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा अनेन सूक्तेन आज्यं हुत्वा शरमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा [फाल] चमसे सरूपवत्सायाः गोर्दुग्धे व्रीहियवौ प्रक्षिप्य आलोड्य अध्यण्डे विधृतेत् ॥

तथा पलाशविदार्यौ एकत्र पिष्ट्वा अनेन सूक्तेन अभिमन्त्र्य दक्षिणेनांगुष्ठेन स्त्रिया दक्षिणस्यां नासिकायां नस्यं कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि । "पुंसवनानि रजउद्वासायाः पुंनक्षत्रे येन वेहद् इति बाणं मूर्ध्नि विधृहति" इत्यादि [कौ० ४. ११] ॥

'येन वेहद् बभूविथ' इस तृतीय सूक्तसे पुंसवनकर्ममें बाणको अभिमंत्रित कर स्त्रीके शिर पर लगावे ॥

इसी प्रकार इस सूक्तसे घृतकी आहुति देकर शरमणिका सम्पातन और अभिमंत्रण करके बाँधे ॥ फालके बने चमसमें सरूपवत्सा गौके दूधको रख उसमें धान और जौको डाल आलोडन करके अण्डों पर बाँधे ।

तथा पलाश और विदारीकन्दको एक स्थान पर पीस कर स्त्रीके दाहिने नथनेमें नस्य (हुलास) देवे ॥

सूत्रमें भी कहा है, कि–"पुंसवनानि रज उद्वासाया पुंनक्षत्रे येन वेहद् इति बाणं मूर्ध्नि विधृहति" इत्यादि (कौशिकसूत्र ४ । ११) ।

तत्र प्रथमा ॥

येन॑ वे॒हद् ब॒भूवि॑थ ना॒शया॑मसि॒ तत् त्वत् ।
इ॒दं तद॒न्यत्र॒ त्वदप॑ दू॒रे नि द॑ध्मसि ॥ १ ॥

येन॑ । वे॒हत् । ब॒भूवि॑थ । ना॒शया॑मसि । तत् । त्वत् ।
इ॒दम् । तत् । अ॒न्यत्र॑ । त्वत् । अप॑ । दू॒रे । नि । द॒ध्मसि॒ ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

येन वन्ध्यात्वापादकेन पापेन तज्जन्यरोगादिना वा हे नारि वेहत् गर्भघातिनी वन्ध्या बभूविथ भवसि । ❀ छान्दसो लिट् ❀ । तत् पापादिकं त्वत् त्वत्तः सकाशाद् नाशयामसि नाशयामः अपहन्मः । इदं तत् नष्टसजातीयं वेहत्त्वापादकं पापरोगादिकं पुनर्यथा त्वयि नोत्पद्यते तथा त्वत् त्वत्तोन्यत्र दूरे दूरदेशे अप नि दध्मसि अपनिदध्मः अपक्षिपामः । ❀ "इदन्तो मसिः" ❀ ॥

हे नारि ! तू जिस वन्ध्यापन देने वाले पापसे वा पापसे उत्पन्न हुए रोगसे गर्भघातिनी बंध्या होरही है । उस पाप आदिको हम तुझसे अलग करते हैं । और यह गर्भको नष्ट करने वाला पापरोग आदि फिर उत्पन्न न हो इस प्रकार इसको दूर फैंकते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरोत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥ २ ॥

आ । ते । योनिम् । गर्भः । एतु । पुमान् । बाणःऽइव । इषुऽधिम् ।
आ । वीरः । अत्र । जायताम् । पुत्रः । ते । दशऽमास्यः ॥ २ ॥

हे स्त्रि ते तव योनिम् प्रजननस्थानं पुमान् पुंस्त्वोपेतो गर्भ ऐतु आगच्छतु । तत्र दृष्टान्तः । बाण इवेति । यथा बाणः इषुधिम् निषङ्गं स्ववासस्थानं स्वभावतः प्राप्नोति तद्वत् । अनिवारितगतिर्गर्भः स्वस्थानं प्रविशतु इत्यर्थः । ❀ इषवोत्र धीयन्ते धार्यन्त इति इषुधिः । "कर्मण्यधिकरणे च" इति किप्रत्ययः । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥ स च ते त्वदीयो गर्भः [पुत्रः पुत्रत्वेन परिणतः] दशमास्यः दश मासान् भृतः तावत्कालभर-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

णेन सर्वावयवसंपूर्णः वीरः वीर्येण बलेन उपेतः सन् अत्र अस्मिन् प्रसूतिकाले आ जायताम् अभिमुखम् उत्पद्यताम् । ❀ दशमास्य इति। "तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी" "मासाद्व वयसि यत्खञौ" इति यत् । "तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च" इति संख्याया उत्तर-पदेन समासः ❀ ॥

हे स्त्री ! जैसे बाण तरकसमें स्वभावतः जाता है, इसी प्रकार तेरे प्रजननस्थानमें पुंस्त्वसे युक्त गर्भ जावे । और वह तेरा गर्भ पुत्ररूपमें परिणत होकर दश मास तकका हो वीर्यसम्पन्न होकर इस प्रसूतिकालमें उत्पन्न होवे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

पुमांस पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ३

पुमांसम् । पुत्रम् । जनय । तम् । पुमान् । अनु । जायताम् ।
भवासि । पुत्राणाम् । माता । जातानाम् । जनयाः । च । यान् ३

हे नारि त्वं पुमांसम् पुंस्त्वोपेतं पुत्रं जनय। अनु तस्योत्पन्नस्य पुत्रस्य अनन्तरं पुमानेव जायताम् पुत्र एवोत्पद्यताम् । ❀ श्यनि "ज्ञाजनोर्जा" इति जादेशः ❀॥ एवम् अविच्छेदेन जातानां पुत्राणां त्वं माता भवासि भव । ❀ भवतेर्लेटि आडागमः ❀ । यांश्च पुत्रान् ततः परं जनया जनये। तेषामपि माता भवेत्यर्थः । ❀ जनया इति । जनेर्ण्यन्तात् लेटि आडागमः ।"जनि जृष्क्न-सुरञ्जोऽमन्ताश्च" इति तदुपधाह्रस्वत्वम् ❀ ॥

हे नारि ! तू पुरुषोंके लक्षणसे सम्पन्न पुत्रको उत्पन्न कर और उस पुत्र होनेके पीछे पुत्र ही उत्पन्न होवे, इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनवच्छिन्न (अटूट) रूपसे उत्पन्न हुए पुत्रोंकी तू माता हो, तदनन्तर जिन पुत्रोंको तू उत्पन्न करे उनकी भी तू माता हो ३

चतुर्थी

यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च ।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ॥ ४ ॥

यानि । भद्राणि । बीजानि । ऋषभाः । जनयन्ति । च ।
तैः । त्वम् । पुत्रम् । विन्दस्व । सा । प्रऽसूः । धेनुका । भव ४

भद्राणि भन्दनीयानि अमोघवीर्याणि यानि बीजानि ऋषभाश्च गोषु जनयन्ति वत्सरूपेणोत्पादयन्ति । तैः तथाविधैरमोघवीर्यैर्बीजैः हे नारि त्वं पुत्रं विन्दस्व लभस्व । ❀ विद्लृ लाभे । स्वरितेत्वाद् आत्मनेपदम् । "शे मुचादीनाम्" इति नुम् ❀ ॥ सा त्वं प्रसूः प्रसूता सती धेनुका भव । धेनुरेव धेनुका । स्वार्थिकः कः । धेनुवत् सपुत्रा वर्धस्व । मृतापत्या मा भूरित्यर्थः ॥

वृषभ जिन अमोघ वीर्योंको गौओंमें बछड़ेके रूपसे उत्पन्न करते हैं, तैसे अमोघ वीर्योंसे हे नारि ! तू पुत्रको प्राप्त कर । इस प्रकार प्रसव करती हुई तू धेनुकी समान पुत्रसहित वृद्धिको प्राप्त हो, मृतवत्सा न हो ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते ।
विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव

कृणोमि । ते । प्राजाऽपत्यम् । आ । योनिम् । गर्भः । एतु । ते ।
विन्दस्व । त्वम् । पुत्रम् । नारि । यः । तुभ्यम् । शम् । असत् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शम् । ऊं इति । तस्मै । त्वम् । भव ॥ ५ ॥

हे नारि ते तव प्राजापत्यम् प्रजापतिना ब्रह्मणा निर्मितं प्रजोत्पत्तिकरं कर्म कृणोमि करोमि । ❀कृवि हिंसाकरणयोश्च । "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः अकारश्चान्तादेशः । तस्य अतो लोपे सति स्थानिवद्भावात् लघूपधगुणाभावः । प्रजापतिशब्दात् पत्युत्तरपदलक्षणो ण्यः ❀ । ते यत्र योनिम् गर्भाशयस्थानं गर्भः ऐतु अभिगच्छतु । ततस्त्वं पुत्रं विन्दस्व लभस्व । कीदृशः स पुत्र इति विशिनष्टि । यः पुत्रः तुभ्यं शम् असत् सुखहेतुर्भवेत् । तस्मै पुत्राय त्वमपि शं सुखहेतुः भव । भवसीत्यर्थः । तं पुत्रम् इति संबंधः

हे नारि ! मैं तेरे अर्थ प्रजापति ब्रह्माजीके निर्मित प्रजोत्पत्तिकर कर्मको करता हूँ तेरे गर्भाशयस्थानमें गर्भ प्राप्त हो । तब जो तुझे सुख दे और तू जिसको सुख दे तैसे पुत्रको प्राप्त कर ५

षष्ठी ॥

यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव

तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ॥ ६ ॥

यासाम् । द्यौः । पिता । पृथिवी । माता । समुद्रः । मूलम् ।

वीरुधाम् । बभूव ।

ताः । त्वा । पुत्रऽविद्याय । दैवीः । प्र । अवन्तु । ओषधयः ६

यासां वीरुधाम् विरोहणस्वभावानाम् ओषधीनां द्यौः द्युलोकः पिता वृष्ट्युदकलक्षणरेतःसेकेन जनयिता [बभूव] भवति । तादृशस्य रेतसो धारणेन पृथिवी [यासां] माता जनयित्री भवति । समुद्रः समुन्दनशीलः जलराशिरेव यासाम् उत्पत्तौ उत्पन्नानां च वृद्धौ मूलम् मूलकारणं भवति । ता देवीः दानादि-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुणयुक्ता देवतारूपा वा ओषधयः पुत्रविद्याय पुत्रलाभाय त्वा त्वां प्रावन्तु प्रकर्षेण रक्षन्तु । ❀ देवीरिति । "वा छन्दसि" इति जसि पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ ॥

[इति] पञ्चमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

जिन ऊपरको चढ़नेके स्वभाव वाली औषधियोंका द्युलोक पिता है अर्थात् वृष्टिजलरूप वीर्यका सेचन करनेसे पिता है। और तैसे वीर्यको धारण करनेसे पृथ्वी जिनकी माता है और जलराशि जिनकी वृद्धिमें वृद्धिका मूलकारण होती है वे देवतारूप औषधियें पुत्रलाभके लिये प्रकृष्टरूपसे तेरी रक्षा करें ॥६॥

पञ्चम अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (९४) ॥

"पयस्वतीः" इत्यस्य धान्यसमृद्धिकर्मसु विनियोगः । "पयस्वतीरिति स्फातिकरणं शान्तफल०" इत्यादि "आ भक्तयातनाद् अनुमन्त्रयते" इत्यन्तं सूत्रं द्रष्टव्यम् [कौ० ३. ४] ॥

"पयस्वतीः" इत्याद्यया पितृमेधकर्मणि शवदाहानन्तरं स्नानं कुर्यात् ॥

"पयस्वतीः" सूक्तका धान्यसमृद्धिकर्ममें विनियोग है। इस विषयमें "पयस्वतीरिति स्फातिकरणं शान्तफल०" से "आ भक्तयातनाद् अनुमन्त्रयते" तकका कौशिकसूत्र ३ । ४ देखना चाहिये ॥

पितृमेधकर्ममें शवदाहके अनन्तर 'पयस्वतीः' इस पहिली ऋचासे स्नान करे ॥

तत्र प्रथमा ॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः ।
अथो पयस्वतीनामा भरेहं सहस्रशः ॥ १ ॥

पयस्वतीः । ओषधयः । पयस्वत् । मामकम् । वचः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथो इति । पयस्वतीनाम् । आ । भरे । अहम् । सहस्रऽशः ॥

ओषधयः व्रीहियवाद्याः पयस्वतीः पयस्वत्यः सारवत्यो भवन्तु । ❀ "तसौ मत्वर्थे" इति भसंज्ञया पदसंज्ञाया बाधनाद् रुत्वाभावः ❀ ॥ तथा मामकम् मदीयं वचः वचनं पयस्वत् सारयुक्तं सर्वैरुपादेयं भवतु । ❀ अस्मच्छब्दात् शैषिके अणि "तवकममकावेकवचने" इति ममकादेशः ❀ ॥ अथो अपि च पयस्वतीनाम् सारवतीनाम् ओषधीनां संबन्धि धान्यं सहस्रशः अनेकप्रकारेण आ भरेयं आहरेयम् । संपादयेयम् इत्यर्थः । ❀ "बह्वल्पार्थाच्छस्कारकाद् अन्यतरस्याम्" इति सहस्रशब्दात् शस् प्रत्ययः ❀ ॥

धान जौं आदि औषधियें सार वाली हों, तथा मेरा वचन भी सारयुक्त हो अर्थात् उसको सब ग्रहण करें और सार वाली औषधियोंके धान्योंको मैं अनेक प्रकारसे प्राप्त करूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

वेदाहं पयस्वन्तं चकार धान्यं बहु ।
संभृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे योयो अयज्वनो गृहे ॥ २ ॥

वेद । अहम् । पयस्वन्तम् । चकार । धान्यम् । बहु ।
समऽभृत्वा । नाम । यः । देवः । तम् । वयम् । हवामहे । यःऽयः ।
अयज्वनः । गृहे ॥ २ ॥

पयस्वन्तम् सारवन्तं देवम् अहं वेद जानामि । स देवः धान्यम् व्रीहियवादिकं बहु चकार अधिकं स्फीतं कृतवान् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा संभृत्वा संभरणशीलः यत्र कुत्रापि सर्वत्र स्थितस्य सारांशस्य मधुकरवत् संभर्ता [नाम] एतत्संज्ञो यो देवस्तं देवं वयं हवामहे स्तुतिभिराह्वयामः । ❀ संभृत्वेति । संपूर्वाद्भृञः "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति क्वनिप् । "ह्रस्वस्य पिति०" इति तुक् ❀ ॥ अधुना संभर्तव्यं निर्दिशति योय इति । अयज्वनः अकृतयागस्य धनाढ्यस्य गृहे योयो व्रीहियवगोहिरण्यादिरूपः पदार्थोस्ति । तं सर्वम् आहृत्य संभृत्वा नाम देवः अस्मभ्यं प्रयच्छतु इत्यर्थः । ❀ अयज्वन इति । "सुयजोर्ङ्वनिप्" । नञ्समासे अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥

सारवाले देवताको मैं जानता हूँ, वह देवता धान जौं आदिको बढ़ाते हैं। वह भौंरेकी समान यत्र तत्र स्थित धान्य आदिको एकत्रित करनेवाले संभृत्वा नामक देवता हैं उनको हम स्तुतियोंसे बुलाते हैं। यज्ञ न करनेवाले धनवान्के घरमें धान जौं गौ सुवर्णरूप जो २ धन हो संभृत्वा नामक देव उस सबको एकत्रित कर मुझको देवें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः ।
वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ॥ ३ ॥

इमाः । याः । पञ्च । प्रऽदिशः । मानवीः । पञ्च । कृष्टयः ।
वृष्टे । शापम् । नदीःऽइव । इह । स्फातिम् । समऽआवहान् ॥३॥

इमाः परिदृश्यमाना याः प्रदिशः प्रकृष्टा दिशः प्राच्याद्याः पञ्च सन्ति तथा मानवीः मानव्यः [मनोः] सकाशाद् उत्पन्नाः पञ्च कृष्टयः । मनुष्यनामैतत् । निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्चविधा मनुष्याः सन्ति ते सर्वे इह अस्मिन् यजमाने स्फातिम् धन-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धान्यसमृद्धिं समावहान् समावहन्तु सम्यक् प्रापयन्तु । तत्र दृष्टान्तः वृष्ट इति । देवे वृष्टे वर्षजलं मुञ्चति सति नदीरिव नद्य इव नदनशीला आपो यथा प्रवाहमध्यस्थं शापम् प्राणिजातं वेगेन देशान्तरं प्रापयन्ति तद्वद् इत्यर्थः । ❀ स्फातिम् इति । स्फायी वृद्धौ । अस्मात् क्तिनि "तितुत्र०" इति इट्प्रतिषेधः । "लोपो व्योर्वलि" इति यकारलोपः । समावहान् इति । उपसर्गद्वययुक्ताद् वहेर्लेटि आडागमः ❀ ॥

ये दीखती हुई पूर्व आदि पाँच श्रेष्ठ दिशायें तथा मनुसे उत्पन्न हुए निषाद जिनमें पाँचवाँ है ऐसे पाँच प्रकारके मनुष्य ये सब इस यजमानमें धन और धान्यकी समृद्धिको भली प्रकार प्राप्त करावें (उसमें यह दृष्टान्त है, कि–) इन्द्रदेवके वर्षा करने पर नदियें प्रवाहके वीचमें पड़े हुए प्राणियोंको जिस प्रकार एक देशसे दूसरे देशमें पहुँचा देती है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

उदुत्सं शतधारं सहस्रधारमक्षितम् ।
एवास्माकेदं धान्यं सहस्रधारमक्षितम् ॥ ४ ॥

उत् । उत्सम् । शतऽधारम् । सहस्रऽधारम् । अक्षितम् ।
एव । अस्माक । इदम् । धान्यम् । सहस्रऽधारम् । अक्षितम् ॥४॥

उत्सम् जलोत्पत्तिस्थानं शतधारम् शतसंख्याकाभिरुदकस्य धाराभिर्युक्तम् तथा सहस्रधारम् अपरिमितधारोपेतं सत् अक्षितम् क्षयरहितम् । उत् इति उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः। उद्भवतीत्यर्थः ॥ एव एवम् [अस्माक] अस्माकम् । ❀ अन्त्यलोपश्छान्दसः ❀ । इदम् परिदृश्यमानं कुसूलादिस्थं धान्यं सहस्रधारम् अपरिमितधाराभिर्युक्तं बहुप्रकारेण उपायेन अभिवृद्धं सत् अक्षितम् क्षयरहितं भवतु ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जलकी उत्पत्तिका स्थान जलकी सैंकड़ों और सहस्रों धाराओं से सम्पन्न होने पर भी क्षयरहित ही उद्भूत होता है । इसी प्रकार यह दीखता हुआ कुठिया आदिमें स्थित धान्य अनेक धारोंसे युक्त होने पर भी क्षयरहित रहे ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर ।

कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥ ५ ॥

शतऽहस्त । सम्ऽआहर । सहस्रऽहस्त । सम् । किर ।

कृतस्य । कार्यस्य । च । इह । स्फातिम् । सम्ऽआवह ॥ ५ ॥

हे शतहस्त शतसंख्याकैर्हस्तैरुपेत देव समाहर । बहुभिस्त्वदीयैर्हस्तैर्धनधान्यं समाहृत्य प्रयच्छेत्यर्थः ॥ हे सहस्रहस्त इदमपि हेतुगर्भविशेषणम् । यतस्त्वं सहस्रसंख्याकैर्हस्तैरुपेतः अतस्तैर्हस्तैः सं किर अस्मासु धनं विक्षिप । ❀ कॄ विक्षेपे । तुदादित्वात् शः । "ऋत इद्धातोः" इति इत्त्वम् ❀ । तथा सति [कृतस्य नि]ष्पन्नस्य कार्यस्य कर्तुम् अर्हस्य च धनधान्यादेः इह अस्मिन् स्थाने स्फातिम् समृद्धिं समावहम् संप्राप्तोस्मि ॥

हे सैंकड़ों हाथों वाले देव ! अपने सैंकड़ों हाथोंसे धन लाकर हमैं दीजिये । हे सहस्रहस्तसम्पन्न देव ! आप सहस्र हाथ वाले हैं अतः उन हाथोंसे धन लाकर हमको दीजिये । किये हुए और किये जाने वाले कार्यकी वृद्धिको मुझे प्राप्त कराइये ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः ।

तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभि मृशामसि ६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तिस्रः । मात्राः । गन्धर्वाणाम् । चतस्रः । गृहऽपत्न्याः ।

तासाम् । या । स्फातिमत्ऽतमा । तया । त्वा । अभि । मृशामसि ६

गन्धर्वाणाम् विश्वावसुप्रभृतीनां संबन्धिन्यः तिस्रो मात्राः समृद्धिहेतवः कलाः सन्ति । तथा गृहपत्न्याः पतिव्रतायाः । यद्वा जातावेकवचनम् । गन्धर्वाणां संबन्धिन्यो या गृहपत्न्यः सन्ति तासाम् अप्सरसां स्वभूता याः चतस्रो मात्राः समृद्धिहेतवः अंशाः । तासां मात्राणां मध्ये या स्फातिमत्तमा अतिशयितसमृद्धियुक्ता तया हे धान्य त्वा त्वाम् अभि मृशामसि अभिमृशामः अभितः संस्पृशामः । अभिमर्शनेन वर्धस्वेत्यर्थः ॥

विश्वावसु आदि गन्धर्वोंकी समृद्धिकी कारण जो तीन कलायें हैं गन्धर्वोंकी पत्नी अप्सराओंकी समृद्धिकी कारण जो चार कलायें हैं उन कलाओंमें जो परमसमृद्धिसंपन्न कला है, हे धान्य! उससे हम तेरा स्पर्श करते हैं अर्थात् उसके स्पर्शसे तू वृद्धिको प्राप्त हो ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते ।

ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितम् ॥ ७ ॥

उपऽऊहः । च । सम्ऽऊहः । च । क्षत्तारौ । ते । प्रजाऽपते ।

तौ । इह । आ । वहताम् । स्फातिम् । बहुम् । भूमानम् । अक्षितम् ७

उप समीपम् ऊहति प्रापयति धान्यादिकं इति उपोहः एतत्संज्ञो देवः । समूहः प्राप्तं धनं समूहयति अभिवर्धयतीति समूहकरणसमर्थो देवः समूहः । परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ । तावुभौ हे प्रजापते ते तव क्षत्तारौ सारथी अभिमतकार्यसंपादकौ ॥ तौ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तादृशौ इह अस्मिन् स्थाने स्फातिम् समृद्धिम् आ वहतम् प्रापयताम्। एतदेव विवृणोति बहुम् इति। बहुम् अनेकप्रकारं भूमानम् धनधान्यविषयं बहुभावम् अक्षितम् क्षयरहितम्। एवमात्मिकां स्फातिम् इति संबन्धः। ❀ भूमानम् इति। बहुशब्दाद् इमनिचि "बहोर्लोपो भू च बहोः" इति इमनिच आदिवर्णलोपो बहोर्भूभावश्च ❀॥

[इति] पञ्चमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम्॥

धान्यको समीपमें पहुँचाने वाले उपोह नाम वाले देवता और प्राप्त होने वाले धनको बढ़ाने वाले समूह नामक देवता, हे प्रजापते! ये दोनों देवता आपके सारथी हैं अर्थात् आपके अभिलषित फलको साधने वाले हैं उन दोनोंको आप अनेक प्रकार के क्षयरहित धन धान्यकी वृद्धि करनेके लिये लाइये॥ ७॥

पञ्चम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (९५)॥

"उत्तुदस्त्वा" इति सूक्तं जपन् स्त्रीवशीकरणकामः अङ्गुल्या स्त्रियं नुदेत्॥ तथा अनेन सूक्तेन एकविंशतिं बदरीकण्टकान् घृताक्तान् आदध्यात्॥

तथा एकविंशतिबदरीप्रान्तानि सूत्रेण वेष्टयित्वा अनेन सूक्तेन सकृज्जुहुयात्॥

एवम् अनेनैव सूक्तेन कुष्ठं नवनीतेन अभ्यज्य त्रिकालम् अग्नौ प्रतपेत्॥

तथा अनेन सूक्तेन खट्वाया अधोमुखपट्टिकां गृहीत्वा त्रिरात्रं स्वप्यात्॥

तथा अनेन सूक्तेन उष्णोदकं त्रिपादे शिक्ये प्रबध्य अङ्गुष्ठाभ्यां मर्दयन् शयीत॥

तथा लिखितां प्रतिकृतिं सूत्रोक्तलक्षणया इष्वा विध्येत्॥

तद् उक्तं कौशिकेन। "उत्तुदस्त्वेत्यङ्गुल्योपनुदति। एकविंशतिं प्राचीनकण्टकान् अलंकृतान् अनूक्तान् आदधाति" इत्यादि "सितालकाण्डया हृदये विध्यति" इत्यन्तम्। [कौ० ४.११]॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्त्रीवशीकरणकी कामना वाला पुरुष 'उत्तुदस्त्वा' इस सूक्तको जपता हुआ अंगुलिसे स्त्रीको प्रेरित करे ॥

इस सूक्तसे घृतमें भीगे बेरके इक्कीस काँटोंको रक्खे ॥

इसी प्रकार इस सूक्तसे कूटको मक्खनमें मिला लेप करके तीन समय अग्निसे तापे ॥

तथा इस सूक्तसे खाटकी नीचेकी मुखकी पट्टीको पकड़ कर तीन रात सोवे ॥

तथा इस सूक्तसे गरम जलको तीन लड़ वाले छीके पर रख कर अंगूठेसे मसलता हुआ शयन करे ॥

तथा लिखी हुई प्रतिकृतिको सूत्रोक्त इषुसे बाँधे ॥

इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—"उत्तुदस्त्वेत्यङ्गुल्यो-पनुदति । एकविंशतिं प्राचीनकण्टकान् अलंकृतान् अनूक्तान् आदधाति" इत्यादि "सितालकाण्डया हृदये विध्यति" इत्यन्तम् (कौशिकसूत्र ४ । ११) ॥

तत्र प्रथमा ॥

उत्तुदस्त्वोत् तुदतु मा धृथाः शयने स्वे ।

इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि १

उत्ऽतुदः । त्वा । उत् । तुदतु । मा । धृथाः । शयने । स्वे ।

इषुः । कामस्य । या । भीमा । तया । विध्यामि । त्वा । हृदि १

उत्तुदति उत्कृष्टम् ऊर्ध्वमुखं वा व्यथयतीति उत्तुदः एतत्संज्ञो देवः त्वा त्वाम् उत् तुदतु उद्व्यथयतु कामार्ता करोतु । ❀ तुद व्यथने इति धातुः ❀ ॥ सूचिभिरिव उत्तुदेन मदनविकारैरुद्-व्यथिता त्वं स्वे स्वकीये शयने । ❀ अधिकरणे ल्युट् ❀ ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शयनस्थाने मा दृथाः शयनविषयम् आदरं मा कार्षीः । ❀ दृङ् आदरे । अस्माद् माङि लुङि "ह्रस्वाद् अङ्गात्" इति सिचो लोपः ❀ ॥ कामस्य पञ्चशरस्य या भीमा भयकारिणी इषुरस्ति तया हृदि हृदये [त्वा] त्वां विध्यामि ताडयामि। ❀ व्यध ताडने । "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम् । भीमेति । बिभेत्यस्या इति भीमा । "भीमादयोपादाने" इति अपादानेर्थे भियः पुग्वा [उ० १. १४५] इति औणादिको मक् प्रत्ययः ❀ ॥

उत्कृष्टरूपसे व्यथित करने वाले उत्तुद नाम वाले देवता तुझको कामार्त करें । सुइयोंकी समान मदनविकारोंसे व्यथित हुई तू पलँग पर शयनमें आदर न कर । कामका जो भय देने वाला बाण है, उससे मैं तेरे हृदयको ताड़ित करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्पकुल्मलाम् ।
तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥२॥

आधीऽपर्णाम् । कामऽशल्याम् । इषुम् । संकल्पऽकुल्मलाम् ।
ताम् । सुऽसंनताम् । कृत्वा । कामः । विध्यतु । त्वा । हृदि ॥२॥

आधीपर्णाम् आधयो मानस्यः पीडाः पर्णानि पत्राणि यस्याः सा तथोक्ता । कामशल्याम् कामः अभिलाषः रिरंसापरपर्यायः। स एव शल्यं बाणाग्रे प्रोतम् आयसं मर्मभेदकम् अङ्गं यस्याः सा कामशल्या । संकल्पकुल्मलाम् । इदं मे स्याद् इदं मे स्याद् इति भोगविषयसंकल्पनं संकल्पः । स एव कुल्मलं दारुशल्ययोः संश्लेषद्रव्यं यस्याः सा तथोक्ता । ईदृशीं ताम् इषुं सुसंनताम् सुष्ठु सम्यङ्नतां कोदण्डारूढां कृत्वा कामः स्मरः तया इष्वा हे कामिनि त्वा त्वां [हृदि] विध्यतु ताडयतु ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मानसी पीड़ाएँ जिसके पर्ण हैं और रमण करनेकी इच्छा ही जिसका मर्मभेदक शल्य है, यह मेरा होजाय यह मेरा हो जाय ऐसा भोगविषयक संकल्प ही जिसका काठ और शल्यको मिलाने वाला मसालारूप है उस बाणको धनुष पर भली प्रकार खेंच कर कामदेव उस बाणसे हे कामिनि तुझे हृदयमें बींधे २

तृतीया ॥

या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता ।
प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥३॥

या । प्लीहानम् । शोषयति । कामस्य । इषुः । सुऽसंनता ।
प्राचीनऽपक्षा । विऽओषा । तया । विध्यामि । त्वा । हृदि ॥३॥

कामस्य स्मरस्य सुसंनता सुष्ठु सम्यङ्नता ऋजुगामिनी या इषुः हृदयं प्रविश्य तत्परिसरवर्तिनं प्लीहानम् एतत्संज्ञं प्राणाश्रयं मांसखण्डं शोषयति दहति । सा पुनर्विशेष्यते । प्राचीनपक्षा प्राचीनाः प्राञ्चना ऋजवः पक्षा यस्याः सा प्राचीनपक्षा व्योषा विविधम् ओषति दहतीति व्योषा । ❀ उष दाहे इत्यस्मात् पचाद्यच् ❀ । तया उदीरितगुणविशिष्टया इष्वा हे कामिनि त्वा त्वां हृदि हृदये विध्यामि ताडयामि ॥

कामदेवका भली प्रकार खेंचा हुआ सरलगामी बाण हृदय में प्रवेश करके प्राणको आश्रय देने वाले प्लीहा नामक मांस-खण्डको शुष्क करे । सरल पर वाले अनेक प्रकारसे जलाने वाले बाणसे हे कामिनि ! मैं तेरे हृदयको बींधता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ॥ ४ ॥

शुचा । विद्धा । विऽओषया । शुष्कऽआस्या । अभि । सर्प । मा ।

मृदुः । निऽमन्युः । केवली । प्रियऽवादिनी । अनुऽव्रता ॥ ४ ॥

व्योषया विदाहयुक्तया शुचा शोचयित्र्या शोकात्मिकया वा इष्वा विद्धा ताडिता सती शुष्कास्या शुष्ककण्ठा उपतापेन तालुशोषणात् स्वमनीषितं प्रकटयितुम् असमर्था मा माम् अभि सर्प अभिगच्छ । मन्निवासस्थानम् आगच्छेत्यर्थः । आगत्य च निमन्युः न्यक्कृतप्रणयकलहा मृदुः मृदुभाषिणी केवली असाधारणा मदेकशरणा प्रियवादिनी अनुकूलभाषणशीला अनुव्रता अनुकूलक्रियाचरण परा भव । ❀ केवलीति । "केवलमामक०" इत्यादिना ङीप् ❀ ॥

हे स्त्रि ! दाह देने वाले शोकात्मक वाणसे ताड़ित होने पर तेरा कण्ठ सूख जाय और उपतापके कारण तू अपने अभिप्राय को प्रकाशित करनेमें असमर्थ होकर मेरे पास आ । और आकर प्रणयके कलहको छोड़ मृदुभाषिणी और केवल मेरी शरण लेती हुई अनुकूल भाषण करने वाली बन कर मेरे अनुकूल कार्य करने वाली हो ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ ५ ॥

आ । अजामि । त्वा । आऽअजन्या । परि । मातुः । अथो इति । पितुः ।

यथा । मम । क्रतौ । असः । मम । चित्तम् । उपऽआयसि ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे कामिनि त्वा त्वाम् आजन्या । अभिमुखम् अजति क्षिपति प्रेरयतीति आजनी कशा । "अश्वाजनीत्यश्वाजनिम् आजाय" इति कशायाम् अजनिशब्दः प्रयुक्तः । तया कशया आजामि आताड्य अभिमुखं प्रेरयामि । परि मातुः [मातुः] पर्यन्तदेशात् अथो अपि च पितुः पर्यन्तात् । उपलक्षणम् एतत् । यस्य कस्यापि समीपे स्थितां त्वाम् आक्षिपामीत्यर्थः । ❀ अज गतिक्षेपणयोरिति धातुः ❀ । यथा येन प्रकारेण मम मदीये क्रतौ कर्मणि सङ्कल्पे वा असः भवसि । मम चित्तम् मदीयां बुद्धिम् उपायसि येन प्रकारेण उपगच्छसि । तथा आजामि सम्बन्धः ॥

हे कामिनी ! अभिमुख प्रेरण करने वाली कशासे ताड़न करके मैं तुझे अभिमुख प्रेरित करता हूँ माताके समीपसे भी और पिताके समीप तकसे मैं तुझे अपने अभिमुख करता हूँ । तू जिस प्रकार मेरे कर्म वा संकल्पके और मेरी बुद्धिके अनुकूल होकर आवे तिस प्रकार मैं तुझे कशासे ताड़ित कर अभिमुख करता हूँ ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् ।
अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ॥ ६ ॥

वि । अस्यै । मित्रावरुणौ । हृदः । चित्तानि । अस्यतम् ।
अथ । एनाम् । अक्रतुम् । कृत्वा । मम । एव । कृणुतम् । वशे ६

हे मित्रावरुणौ अस्यै । ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀ । अस्याः स्त्रिया हृदः हृदयात् हृदयपुण्डरीकात् चित्तानि ज्ञानानि व्यस्यतम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विक्षिप्तम् ॥ अथ अनन्तरम् एनां स्त्रियम् अक्रतुम् कार्याकार्यविभागज्ञानशून्यां कृत्व ममैव वशे कृणुतम् मदधीनामेव कुरुतम् ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

[इति] तृतीये काण्डे पञ्चमोऽनुवाकः ॥

हे मित्र और वरुण देवताओं ! इस स्त्रीके हृदयसे ज्ञानोंको दूर करो तदनन्तर इस स्त्रीको कार्य और अकार्यके विभागके ज्ञानसे शून्य करके मेरे वशमें करिये ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (९६) ॥

पंचम अनुवाक समाप्त ॥

षष्ठेऽनुवाके षट् सूक्तानि । तत्र "येस्यां स्थ" इत्याभ्यां सूक्ताभ्यां स्वसेनायाउत्साहजननकर्मणि प्रत्यृचं प्रतिदिशम् उपस्थान कुर्यात् । सूत्रितं हि । "दिग्युक्ताभ्याम् [३. २६, २७] नमो देववधेभ्यः [६. १३] इत्युपतिष्ठते" इति [कौ० २. ५] ॥

तथा आभ्यां सूक्ताभ्यां स्वस्त्ययनकर्मणि आज्यपलाशादिशान्तसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् । सूत्रितं । "दिग्युक्ताभ्याम् [३. २६, २७] दोषो गाय [६. १] पातं नः इति पञ्च [६. ३-७] अनडुद्भ्यः [६. ५६] यमो मृत्युः [६. ९३] विश्वजित् [६. १०७] शकधूमम् [६. १२८] भवाशर्वौ [११. २] इत्युपदधीत" इति [कौ० ७. १] ॥

तथा आभ्यां सूक्ताभ्याम् अस्मिन्नेव कर्मणि हुतशेषेण प्रतिदिशं बलिहरणं उपस्थानम् च कुर्यात् । सूत्रितं हि । "दिश्यां बलीन् हरति प्रतिष्ठिते उपतिष्ठते मध्ये पञ्चमम्" इति [कौ०७. २]॥

तथा च सर्पवृश्चिकादि भयनिवृत्तिकामः गृहक्षेत्रादिषु सिकता अभिमन्त्र्य परितः प्रकिरेत् ॥

तथा [आभ्यां] सूक्ताभ्यां तृणमालां संपात्य गृहनगरादिद्वारे बध्नीयात् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा आभ्यां गोमयम् अभिमन्त्र्य तस्य गृहे विसर्जनम् द्वारि निखननम् अग्नौ होमं [च] कुर्यात् ॥

तथा अनेन सूक्तद्वयेन अपामार्गमञ्जरीं गुडूचीं वा अभिमन्त्र्य पूर्ववद् गृहादिषु विसर्जनादिकं कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि । "युक्तयोः [२६, २७] मा नो देवाः [६. ५६] यस्ते सर्पः [१२. १. ४६] इति शयनशालोर्वराः परिलिखति" इत्यादि [कौ० ७. १] ॥

तथा त्रिंशन्महाशान्तितन्त्रभूतायां शान्तौ "येस्याम्" इत्यनेन प्रतिदिशं होमः "प्राची दिक्" इत्यनेन प्रतिदिशम् उपस्थानम् । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "येस्यां प्रतिदिशं हुत्वा प्राची दिग् उपतिष्ठते" इति [न० क० २२]

छठे अनुवाकमें छः सूक्त हैं । उनमें 'येस्यां स्थ' इन दो सूक्तों से अपनी सेनाको उत्साहित करनेके कर्ममें प्रत्येक ऋचासे प्रत्येक दिशामें उपस्थान करे ॥ इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण है । यथा- "दिग्युक्ताभ्यां (३ । २६ । २७) नमो देवबधेभ्यः (६ । १३) इत्युपतिष्ठते" इति (कौशिकसूत्र २ । ५) ॥

तथा स्वस्त्ययनकर्ममें इन दो सूक्तोंसे घृत पलाशादि तेरह द्रव्योंकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि– 'दिग्युक्ताभ्याम् (३ । २६ । २७) दोषो गाय (६ । १) पातं न इति पंच (६ । ३–७) अनडुद्भ्यः (६ । ५९) यमो मृत्युः (६ । ९३) विश्वजित् (६ । १०७) शकधूमम् (६ । १२८) भवाशर्वौ (११ । २) इत्युपदधीत' इति (कौशिकसूत्र ७।१) ॥

तथा इसी कर्ममें इन्हीं दो सूक्तोंसे हुतशेषसे प्रत्येक दिशामें बलिहरण और उपस्थान करे इस विषयमें सूत्रका भी प्रमाण है, कि–"दिश्यान् बलीन् हरति प्रतिदिशम् उपतिष्ठते मध्ये पञ्चमम्" (कौशिकसूत्र ७ । २) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा साँप बीछू आदिके भयको दूर करना चाहने वाला घर खेत आदिमें धूलके कणोंको अभिमंत्रित करके फैंके ॥

तथा इन सूक्तोंसे तृणमालाका सम्पातन करके घर वा नगरके द्वार पर बाँध देवे ॥

तथा इन दो सूक्तोंसे गोवरको अभिमंत्रित करके उस घरमें डाले द्वार पर गाढ़े और अग्निमें होम करे ॥

तथा इन दोनों सूक्तोंसे चिरचिटेकी मञ्जरी वा गिलोयका अभिमंत्रण कर पहिलेकी समान गृह आदिमें विसर्जन आदिक करे ॥

इसी विषयको कौशिकसूत्र ७ । १ में कहा है, कि–'युक्तयो (२६ । २७) मानो देवाः (६ । ५६) यस्ते सर्पः (१२।१।४६) इति शयनशालोर्वराः परिलिखति" ॥

तथा तीस महाशान्तिकी तंत्रभूत शांतिमें 'येस्याम्' से प्रत्येक दिशामें होम करे । और 'प्राची दिक्' से प्रत्येक दिशामें उपस्थान करे । इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि–"येस्यां प्रतिदिशं हुत्वाप्राची दिगुपतिष्ठते" (नक्षत्रकल्प २२) ॥

तत्र प्रथमा ॥

ये३स्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः ।

ते नो मृडत ते नोधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा

ये । अस्याम् । स्थ । प्राच्याम् । दिशि । हेतयः । नाम । देवाः । तेषाम् । वः । अग्निः । इषवः ।

ते । नः । मृडत । ते । नः । अधि । ब्रूत । तेभ्यः । वः । नमः । तेभ्यः । वः । स्वाहा ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे देवाः दानादिगुणयुक्ता गन्धर्वाः ये यूयम् अस्यां प्राच्यां दिशि अस्मदावासस्थानात् पूर्वस्यां दिशि हेतयो नाम स्थ। अस्मदुपद्रवकारिणां हन्तारो नाम भवथ। ❀ "ऊतियूति०" इत्यादिना हेतिशब्दः क्तिन्नन्तो निपातितः अन्तोदात्तः। प्राच्याम् इति। प्रपूर्वाद् अञ्चतेः "ऋत्विग्०" इत्यादिना क्विन्। "अनिदिताम्०" इति नलोपः। "अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्" इति ङीप्। "अचः" इति अकारलोपे "चौ" इति पूर्वपदस्य दीर्घत्वम्। "अनिगन्तोऽञ्चतावप्रत्यये" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀। तेषाम् पूर्वदिग्वासिनां वः युष्माकम् अग्निरिषवः अग्नितुल्याः शराः। यद्वा अग्निरेव इषुरूपेण वर्तत इत्यर्थः। अतो रक्षितुं शक्ता स्थेति भावः। ते यूयं नः अस्मान् मृलत सुखयत। तादृशैर्बाणैः शत्रुसर्पवृश्चिकादीन् निहत्य अस्माकं सुखहेतवो भवतेत्यर्थः। तथा ते यूयं नः अस्मान् अधि ब्रूत अस्मदीया एते इति आधिक्येन वदत। अधिवचनं पक्षपातेन वचनम्। "ब्राह्मणायाधिब्रूयात्" [तै० सं० २. ५. ११. ६] "अध्यवोचद् अधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्" [तै० सं० ४. ५. १. २.] इत्यादिश्रुतेः। तेभ्यो वः युष्मभ्यं नमः नमस्कारोस्तु। ❀ "नमःस्वस्ति" इत्यादिना चतुर्थी। "बहुवचनस्य वस्नसौ" इति चतुर्थ्यन्तस्य युष्मदो वसादेशः अनुदात्तः ❀। तेभ्यो वः युष्मभ्यं स्वाहा इदम् आज्यादिकं हविः स्वाहुतम् अस्तु ॥

हे दान आदि गुणोंसे सम्पन्न गंधर्वदेवताओं ! तुम जो हमारे निवासस्थानसे पूर्वदिशामें हेति नामसे रहते हो अर्थात् हमारे उपद्रवकारियोंको मारते रहते हो ऐसे पूर्वदिशानिवासी आपके बाण अग्निकी समान हैं अतः आप हमारी रक्षा करनेमें समर्थ हैं ऐसे आप हमको सुख दीजिये अर्थात् तैसे बाणोंसे शत्रु सर्प और वृश्चिक (बीछू) आदिको मारकर हमको सुख दीजिये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा हमको 'ये हमारे हैं' इस प्रकार पक्षपातपूर्वक कहिये। ऐसे आपके लिये नमस्कार है और आपके लिये यह घृत आदिकी हवि स्वाहुत हो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

ये३स्यां स्थ दक्षिणायां दिश्यविष्यवो नाम देवा-
स्तेषां वः काम इषवः ।
ते नो मृडत ते नोधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा

ये । अस्याम् । स्थ । दक्षिणायाम् । दिशि । अविष्यवः । नाम देवाः । तेषाम् । वः । कामः । इषवः ।
ते । नः । मृडत । ते । नः । अधि । ब्रूत । तेभ्यः । वः । नमः । तेभ्यः । वः । स्वाहा ॥ २ ॥

हे देवाः दानादिगुणयुक्ता गन्धर्वाः ये यूयम् अस्यां दक्षिणायां दिशि । ❀ स्याडभावश्छान्दसः ❀ । अस्मदावासस्थानाद् दक्षिणस्यां दिशि अवस्यवो नाम स्थ अवनेच्छवः एतत्संज्ञा भवथ । ❀ अवतेः असुन्प्रत्ययान्तात् "छन्दसि परेच्छायामपि" इति क्यच् । "क्याच्छन्दसि" इति उप्रत्ययः ❀। तेषां वा युष्माकं कामः इष्टविषयोभिलाष एव इषवः । इषुरूपेण वर्तते इत्यर्थः । कामप्रापका युष्मदीयाः शरा इत्युक्तं भवति । ते नो मृलतेत्यादि गतम् ॥

हे गन्धर्वदेवों ! तुम हमारे निवासस्थानसे दक्षिणदिशामें अवस्यव नाम वाले थे अर्थात् हमारी रक्षा करनेकी इच्छा करते थे ऐसे आपकी अभिलषित विषयकी इच्छा ही बाण हैं अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आपके बाण इच्छाको पूर्ण करने वाले हैं अतः आप हमको सुख दीजिये। तथा हमको 'ये हमारे' हैं इस प्रकार पक्षपातपूर्वक कहिये। आपके लिये नमस्कार है और यह घृत आदिकी हवि आपके लिये स्वाहुत हो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

ये३ स्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां
व आप इषवः ।
ते नो मृडत ते नोधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः
स्वाहा ॥ ३ ॥

ये । अस्याम् । स्थ । प्रतीच्याम् । दिशि । वैराजाः । नाम । देवाः । तेषाम् । वः । आपः । इषवः ।
ते । नः । मृडत । ते । नः । अधि । ब्रूत । तेभ्यः । वः । नमः । तेभ्यः । वः । स्वाहा ॥ ३ ॥

हे देवाः ये यूयम् अस्यां प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम स्थ विराट् अन्नं तस्य प्रदातारः एतत्संज्ञा भवथ । ❀ प्रतीच्याम् इति । प्राच्याम् इत्यत्रोक्तप्रकारेण रूपसिद्धिः । स्वरस्तु "चौ" इति पूर्वप्रतेरन्त उदात्तः ❀ । तेषां वः युष्माकम् आपः वृष्टयुदकानि इषवः इषुस्थानीयाः । ते नो मृळतेत्यादि गतम् ॥

हे देवताओं ! तुम जो पश्चिम दिशामें वैराज नाम वाले हो अर्थात् अन्नको देने वाले हो ऐसे आपके वृष्टिके जल ही बाण हैं, वह आप हमको सुख दीजिये। तथा हमको 'ये हमारे हैं' इस प्रकार स्नेहपूर्वक कहिये। आपके लिये नमस्कार है और यह घृत आदिकी हवि आपके लिये स्वाहुत हो ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चतुर्थी ॥

ये ३ स्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवा-
स्तेषां वो वात इषवः ।
ते नो मृडत ते नोधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः
स्वाहा ॥ ४ ॥

ये । अस्याम् । स्थ । उदीच्याम् । दिशि । प्रऽविध्यन्तः । नाम ।
देवाः । तेषाम् । वः । वातः । इषवः ।
ते । नः । मृडत । ते । नः । अधि । ब्रूत । तेभ्यः । वः । नमः ।
तेभ्यः । वः । स्वाहा ॥ ४ ॥

हे देवाः दानादिगुणयुक्ता गन्धर्वाः ये यूयम् अस्याम् उदीच्याम् उत्तरस्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम स्थ अस्मद्धिंसकान् प्रकर्षेण ताडयन्तः एतत्संज्ञा भवथ । ❀ उदीच्याम् इति । उत्पूर्वाद् अञ्चतेः पूर्ववत् क्विनादि । "उद ईत्" इति धात्वकारस्य ईकारः । "अनिगन्त०" इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । तेषां वः युष्माकं वातः । लुप्तोपमम् । एतत् । वातवद्वेगयुक्ता इषवः । वायुरेव वा इषुत्वेन वर्तत इत्यर्थः ॥ गतम् अन्यत् ॥

हे दानादियुक्त गन्धर्वो ! जो तुम इस उत्तर दिशामें हमारे हिंसकोंको अधिकतासे ताड़न करनेके कारण प्रविध्यन्त नाम वाले हो उन आपके बाण वायुकी समान वेग वाले हैं ऐसे आप हमको सुख दीजिये । और हमारे विषयमें 'ये हमारे हैं' यह बात पक्षपातपूर्वक कहिये आपके लिये नमस्कार है, यह घृत आदिकी हवि आपके लिये स्वाहुत हो ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पञ्चमी ॥

येऽ३स्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां
व ओषधीरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः
स्वाहा ॥ ५ ॥

ये । अस्याम् । स्थ । ध्रुवायाम् । दिशि । निऽलिम्पाः । नाम ।
देवाः । तेषाम् । वः । ओषधीः । इषवः ।
ते । नः । मृडत । ते । नः । अधि । ब्रूत । तेभ्यः । वः । नमः ।
तेभ्यः । वः । स्वाहा ॥ ५ ॥

हे देवाः दानादिगुणयुक्ता ये यूयम् अस्यां ध्रुवायाम् स्थिरायां भूमिरूपायाम् अधस्ताद्व दिशि निलिम्पा नाम स्थ नितरां लिप्ताः आश्रिताः एतत्संज्ञा भवथ । तेषां वः युष्माकम् ओषधीः ओषधयो व्रीहियवतरुगुल्माद्या इषवः बाणाः ॥ गतम् अन्यत् ॥

हे देवताओ ! जो तुम इस नीचेकी दिशामें निरन्तर लिप्त रहने वाले निलिम्पा नामक देवता हो । उन आपके धान जौ पेड़ गुल्म आदि ही बाण हैं । ऐसे आप हमारे विषयमें विशेषता के साथ कहिये, कि-'ये हमारे हैं' और हमको सुख दीजिये, ऐसे आपके लिये नमस्कार है, यह घृत आदिकी हवि आपके लिये स्वाहुत हो ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

येऽ३स्यां स्थोर्ध्वायां दिश्यवस्वन्तो नाम देवास्तेषां
वो बृहस्पतिरिषवः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ६ ॥

ये । अस्याम् । स्थ । ऊर्ध्वायाम् । दिशि । अवस्वन्तः । नाम । देवाः । तेषाम् । वः । बृहस्पतिः । इषवः ।

ते । नः । मृडत । ते । नः । अधि । ब्रूत । तेभ्यः । वः । नमः । तेभ्यः । वः । स्वाहा ॥ ६ ॥

हे देवाः ये यूयम् अस्याम् ऊर्ध्वायां दिशि उपरिष्टाद् दिशि अपस्वन्तो नाम स्थ अवनं रक्षणं तद्वन्तः एतत्संज्ञा भवथ । तेषां वः युष्माकं बृहस्पतिरिषवः बृहतां देवानां मन्त्राणां वा पतिः बृहस्पतिर्देवः । ❀ "तद्बृहतोः करपत्योः०" इति सुट्तलोपौ ❀ । स एव इषुत्वेन वर्तते । तद्वद् अमोघवीर्या युष्मदीयाः शरा इत्यर्थः ॥ गतम् अन्यत् ॥

[इति] तृतीयकाण्डे षष्ठेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे देवताओं ! तुम ऊपरकी दिशामें अवस्वन्त नाम वाले हो अर्थात् रक्षा करने वाले हो, तहाँ बड़े २ देवताओंके और मन्त्रों के पति बृहस्पति आपके बाण हैं अर्थात् आपके बाण बृहस्पतिजी की समान अमोघ वीर्य वाले हैं, ऐसे आप हमको सुख दीजिये हमको पक्षपातके साथ 'ये हमारे हैं' कहिये आपके लिये नमस्कार है यह घृत आदिकी हवि आपके लिये स्वाहुत हो ॥ ६ ॥

तीसरे काण्डके छठे अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (६७) ॥

"प्राची दिक्" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह स्वसेनोत्साहजननकर्मणि स्वस्त्ययनकर्मादौ च विनियोगोभिहितः । सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'प्राची दिक्' सूक्तका पहिले सूक्तके साथ अपनी सेनाको उत्साहित करनेके कर्ममें और स्वस्त्ययन आदिके कर्ममें विनियोग कह दिया है। सूत्र भी तहाँ ही कह दिया है॥

तत्र प्रथमा॥

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो
नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः १

प्राची । दिक् । अग्निः । अधिऽपतिः । असितः । रक्षिता । आदित्याः । इषवः ।

तेभ्यः । नमः । अधिपतिऽभ्यः । नमः । रक्षितृऽभ्यः । नमः । इषुऽभ्यः । नमः । एभ्यः । अस्तु ॥

यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः । तम् । वः । जम्भे । दध्मः ॥ १ ॥

प्राची प्राञ्चना प्रकृष्टा पूर्वा दिक् । अस्मदनुग्रहार्थं वर्तताम् इत्यर्थः। तस्या दिशः अग्निरधिपतिः अधिष्ठाता स्वामी । असितः कृष्णवर्णः सर्पः तस्यां दिशि रक्षिता जगद्रक्षणार्थम् अवस्थितः। आदित्याः अदितेः पुत्रा धात्रर्यमादयः तस्या दिश इषवः आयुधानि । तेभ्यः पूर्वदिग्वर्तिभ्यः अग्न्युपलक्षितेभ्यो नमः नमस्कारोस्तु ॥ तथा तत्रत्येभ्यो रक्षितृभ्यः असितप्रभृतिभ्यो नमोस्तु ॥ तत्रत्येभ्य इषुभ्यः इषुसंस्तुतेभ्य आदित्येभ्यो नमोस्तु ॥एवम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अधिपत्यादीन् पृथक्पृथक् नमस्कृत्य पुनः समुच्चयेन नमस्करोति। एभ्यः उक्तेभ्यः अधिपत्यादिभ्यः सर्वेभ्यो नमोस्तु अस्मदीयो नमस्कारोस्तु। यद्वा अधिपत्यादिभ्यो यो नमस्कारः कृतः स एभ्यः प्रीतिकरो भवतु इत्यर्थः॥ एवं नमस्कारेण परितोष्य इष्ट-फलं प्रार्थयते। यः शत्रुः अस्मान् द्वेष्टि वाधते यं शत्रुं वयं द्विष्मः तं शत्रुम् हे अग्न्यादयः वः युष्माकं जम्भे। खादनहेतुरास्यान्त-र्गतो दन्तविशेषो जम्भः। तत्र दध्मः प्रक्षिपामः। तं खादतेत्यर्थः॥

पूर्व दिशा हमारे अनुग्रहके लिये प्रवृत्त होवे। उस दिशाके अधिपति इन्द्र देव और जगत्की रक्षा करनेके लिये उस दिशा में रहने वाले असितवर्ण वाले सर्प, धाता अर्यमा आदि अदिति के पुत्ररूप बाण। इन पूर्वदिशामें रहने वाले अग्नि आदि अधि-पतियोंके लिये नमस्कार है, तथा तहाँ रहने वाले रक्षक अदिति आदिके लिये नमस्कार है और बाणरूपसे जिनकी स्तुति की है उन अदितिपुत्रोंके लिये नमस्कार हो, इन अधिपति आदि सब के लिये जो नमस्कार किया है, वह इन सबको प्रसन्न करने वाला हो (इस प्रकार नमस्कारसे सन्तुष्ट करके अब इष्टफलकी प्रार्थना करते हैं, कि–) जो शत्रु हमें पीड़ा देता है और हम जिससे द्वेष करते हैंउसको हे अग्नि आदिक! हम (दाँतविशेष) जम्भमें डालते हैं अर्थात् तुम उसको खाजाओ॥ १॥

द्वितीया॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।
तेभ्यो नमोधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ २ ॥

दक्षिणा । दिक् । इन्द्रः । अधिऽपतिः । तिरश्चिऽराजिः । रक्षिता । पितरः । इषवः ।

तेभ्यः । नमः । अधिपतिऽभ्यः । नमः । रक्षितृऽभ्यः । नमः । इषुऽभ्यः । नमः । एभ्यः । अस्तु ।

यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः । तम् । वः । जम्भे । दध्मः ॥ २ ॥

दक्षिणा दक्षिणतोवस्थिता या दिक् । सापि अस्मदनुग्रहार्थं वर्तताम् इत्यर्थः । ❀ "दक्षिणाद् आच्" इति आच्प्रत्ययान्तोत्र दक्षिणाशब्दः ❀ । तस्या दिशः इन्द्रः अधिपतिः अधिष्ठाता । तिरश्च्यः तिर्यग् अवस्थिता राजयः आवलयः यस्य तथाविधः सर्पः रक्षिता दक्षिणस्यां दिशि गोपायिता । पितरः पितृदेवताः तत्रत्या इषवः दुष्टनिग्रहकारीण्यायुधानि ॥ तेभ्यो नमोधिपतिभ्य इत्यादि पूर्ववद् योज्यम् ॥

दक्षिणकी ओर स्थित दिशा हमारे कल्याणके लिये प्रवृत्त हो । उस दिशाके अधिपति इन्द्र देवता, और जिनकी तिरछी अवलियें पड़ी हुई हैं वह दक्षिण दिशाके रक्षक सर्प और उस दक्षिण दिशामें दुष्टोंका निग्रह करने वाले बाणरूप पितृदेवता हैं, उन इन्द्र आदि अधिपतियोंको सर्प आदि रक्षकोंको और बाणरूप पितरोंको नमस्कार हो । इन अधिपति आदि सबके लिये जो नमस्कार किया है वह उनको प्रसन्न करने वाला हो, जो शत्रु हमसे द्वेष करता है और हम जिस शत्रुसे द्वेष करते हैं उसको हम आपके जंभ नामक दाँतमें डालते हैं ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तृतीया ॥

प्रतीची दिग् वरुणोधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः ।
तेभ्यो नमोधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ३ ॥

प्रतीची । दिक् । वरुणः । अधिऽपतिः । पृदाकुः । रक्षिता । अन्नम् । इषवः ।
तेभ्यः । नमः । अधिपतिऽभ्यः । नमः । रक्षितृऽभ्यः । नमः । इषुऽभ्यः । नमः । एभ्यः । अस्तु ।
यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः । तम् । वः । जम्भे । दध्मः ॥ ३ ॥

प्रतीची प्रतिमुखम् अञ्चन्ती पश्चाद्भागस्था दिक् । अस्मदनुग्रहार्थं वर्तताम् इत्यर्थः । तस्या दिशो वरुणः अधिपतिः स्वामी । पृदाकुः कुत्सितशब्दकारी । ❀ पर्द कुत्सिते शब्दे इत्यस्माद् आकुप्रत्ययः । संप्रसारणम् अकारलोपश्च ❀ । एतत्संज्ञः सर्पस्तत्रत्यो रक्षिता पालयिता । अन्नम् व्रीहियवादिलक्षणम् इषवः तत्रत्यदुष्टनिग्रहकारीण्यायुधानि ॥ तेभ्यो नम इत्यादि ॥

पश्चिमकी दिशा हम पर अनुग्रह करनेके लिये प्रवृत्त हो। उस दिशाके अधिपति वरुणदेव हैं । पृदाकु (कुत्सित शब्द करने वाला) नामक सर्प इस दिशाके रक्षक हैं । धान जौ आदिरूप अन्न उस दिशाके बाण हैं अधिपति वरुणदेवके लिये, रक्षक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पृदाकु सर्पके लिये और बाणरूप जौ धान आदिके लिये नमस्कार है। इन अधिपति आदिको जो नमस्कार किया है वह उनको प्रसन्न करने वाला हो, हम जिससे द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है उसको हम आपके जंभ नामक दाँतमें धरते हैं अर्थात् आप उसका भक्षण कर जाइये ॥ ३ ॥

चतुर्थी॥

उदीची दिक् सोमोधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः।
तेभ्यो नमोधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४॥

उदीची। दिक्। सोमः। अधिऽपतिः। स्वजः। रक्षिता। अशनिः। इषवः।
तेभ्यः। नमः। अधिपतिऽभ्यः। नमः। रक्षितृऽभ्यः। नमः। इषुऽभ्यः। नमः। एभ्यः। अस्तु।
यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः। तम्। वः। जम्भे। दध्मः ॥ ४ ॥

उदीची उत्तरा दिक्। अस्मदनुग्रहार्थं वर्तताम् इत्यर्थः। तस्या दिशः सोमः अधिपतिः स्वामी। स्वजः। स्वायत्तजन्मा स्वयमेवोत्पन्नः स्वजनशीलो वा सर्पः स्वजः। रक्षिता गोपायिता। अशनिः दम्भोलिः इषवः तत्रत्यदुष्टनिग्रहार्थान्यायुधानि ॥ तेभ्यो नम इत्यादि गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर दिशा हमारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये प्रवृत्त हो। उस दिशाके अधिपति सोम हैं। स्वज नामक सर्प उसके रक्षक हैं तहाँके दुष्टोंका निग्रह करनेके लिये अशनि ही बाण है अधिपति चन्द्रमाके लिये रक्षक स्वज सर्पके लिये बाणरूप अशनिके लिये नमस्कार हो। इन अधिपति आदि सबके लिये जो नमस्कार किया है वह उनको प्रसन्न करने वाला हो। हम जिस शत्रुसे द्वेष करते हैं और जो शत्रु हमसे द्वेष करता है उसको हम आपके जंभ दाँतमें डालते हैं॥ ४॥

पञ्चमी॥

ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः।

तेभ्यो नमोधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥५॥

ध्रुवा। दिक्। विष्णुः। अधिऽपतिः। कल्माषऽग्रीवः। रक्षिता। वीरुधः। इषवः।

तेभ्यः। नमः। अधिपतिऽभ्यः। नमः। रक्षितृऽभ्यः। नमः। इषुऽभ्यः। नमः। एभ्यः। अस्तु।

यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः। तम्। वः। जम्भे। दध्मः॥ ५॥

ध्रुवा स्थिरा अधोदिक् अस्मान् अनुगृह्णातु। तस्या दिशो विष्णुः अधिपतिः ईश्वरः। कल्माषग्रीवो रक्षिता। कल्माषः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कृष्णवर्णः ग्रीवासु यस्य स कल्माषग्रीवः एतदाख्यः सर्पो रक्षिता गोपायिता रक्षितव्यानाम् । वीरुधः विरोहणशीला ओषधयः इषवः दुष्टनिबर्हणायुधानि ॥ शिष्टं स्पष्टम् ॥

जो ध्रुव स्थिर अधोदिशा पृथिवी है उसके अधिपति विष्णु हैं । और कल्माषग्रीव नामक सर्प रक्षा करने वाले हैं । दुष्टोंको दबानेमें समर्थ औषधियें ही तहाँ बाण हैं । इस दिशाके अधिपति विष्णुके लिये, रक्षक कल्माषग्रीवके लिये और बाणरूप औषधियोंके लिये नमस्कार है । इन अधिपति आदिको जो नमस्कार किया है वह इनको प्रसन्न करने वाला हो । हम जिस से द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, उसको हम आपके जंभ नामक दाँतमें फैंकते हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो
नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ६

ऊर्ध्वा । दिक् । बृहस्पतिः । अधिऽपतिः । श्वित्रः । रक्षिता । वर्षम् । इषवः ।

तेभ्यः । नमः । अधिपतिऽभ्यः । नमः । रक्षितृऽभ्यः । नमः । इषुऽभ्यः । नमः । एभ्यः । अस्तु ।

यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः । तम् । वः । जम्भे । दध्मः ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऊर्ध्वा परिष्टाद् वर्तमाना दिक् मदीयम् अभिलषितं करोतु। तस्या दिशः बृहस्पतिर्देवः अधिपतिः अधिष्ठाता श्वित्रा श्वेतवर्णः। ❀ स्फायितश्चीत्यादिना [उ० २. १३] श्विता वर्णे इत्यस्माद्र रक् प्रत्ययः ❀। एतत्संज्ञः सर्पो रक्षिता शत्रुप्रभृतिभ्यस्त्राता। वर्षम् वर्षजलं मेघनिर्मुक्तम् इषवः दुष्टनिवारणायुधानि ॥ तेभ्यो नम इत्यादि व्याख्यातम् ॥

[इति] षष्ठेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

ऊपर वर्तमान जो दिशा है वह मेरे अभिलषित कार्यको करे। उस दिशाके बृहस्पतिजी अधिपति हैं। और श्वेत वर्ण वाले श्वित्र नामक सर्प उसमें शत्रु आदिसे रक्षा करने वाले हैं। और मेघका छोड़ा हुआ वर्षाका जल उसमें दुष्टोंको निवारण करने का आयुध है। इन अधिपति बृहस्पतिजीके लिये रक्षक श्वित्र-सर्पके लिये और वर्षाके जलरूप बाणके लिये नमस्कार है। इन अधिपति आदिको जो नमस्कार किया है वह इनको प्रसन्न करने वाला हो। जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं, उस शत्रुको हम आपके जंभ नामक दाँतके (नीचे) धरते हैं॥ ६॥

छठे अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (९८)

"एकैकयैषा सृष्ट्या" इत्यनेन गवाश्वागर्दभीमानुषीणां यमल-जनने अद्भुते तच्छान्त्यर्थम् आज्यं हुत्वा मातृपुत्रयोर्मूर्धनि संपा-तम् आनीय उदपात्रे उत्तरसंपातं कृत्वा तेनोदकेन आचमनं प्रोक्षणं च कुर्यात्। सूत्रितं हि। "अथ यत्रैतद्द यमसूर्गौः" इति [कौ० १३. १७] प्रक्रम्य "एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूवेत्यनेन सूक्तेन आज्यं जुह्वन्नमीषां मूर्ध्नि समातृपुत्रयोरित्यनुपूर्वं संपातान् आन-यति" इत्यादि [कौ० १३. १९]॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गौ घोड़ी गधैया और स्त्रीके यमल (जुड़वाँ-दो) सन्तान उत्पन्न होनारूप अद्भुत होने पर उसकी शांतिके लिये "एकैकयैषा सृष्ट्या" इस सूक्तसे घृतकी आहुति देकर माता और पुत्रके मूर्धा पर सम्पातको लाकर जलपूर्णपात्रमें उत्तर सम्पात करे फिर उस जलसे आचमन और प्रोक्षण करे। सूत्रमें भी कहा है, कि-"अथ यत्रैतद्द यमसूर्गौ" इति (कौशिकसूत्र १३ । ७) प्रक्रम्य "एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूवेत्येन न सूक्तेन आज्यं जुह्वन्नमीषां मूर्ध्नि समातृपुत्रयोरित्यनुपूर्वं सम्पातान् आनयति०" (कौशिकसूत्र १३ । १६) ॥

तत्र प्रथमा ॥

एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः ।

यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती ॥ १ ॥

एकऽएकया । एषा । सृष्ट्या । सम् । बभूव । यत्र । गाः । असृजन्तः । भूतऽकृतः । विश्वऽरूपाः ।

यत्र । विऽजायते । यमिनी । अपऽऋतुः । सा । पशून् । क्षिणाति । रिफती । रुशती ॥ १ ॥

एषा विधातृकृता [साधारणी] सृष्टिः एकैकया एकैकव्यक्त्या सृष्ट्या सृज्यमानया सं बभूव संभूता विधात्रा निर्मिता। एकैकव्यक्त्युत्पत्तिरेव न्याय्या यमलजननं तु [न तथेत्यर्थः। यत्र एकैकव्यक्तिविशिष्टायां शुभसृष्ट्यां भूतकृतः पृथिव्यादीनां भूतानां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर्तारः एतत्संज्ञा प्रसिद्धा ऋषयो विश्वरूपाः नानावर्णा गाः गवोपलक्षिता मानुषीवडवाद्या] असृजन्त उत्पादयन् । एषा सा साधारणी सृष्टिरिति पूर्वेण संबन्धः । यत्र यस्याम् औत्पत्तिकसृष्टौ अपतुः अपकृष्टार्तवबीजोपेता सती गौः यमिनी यमलवत्सोपेता विजायते प्रसूते सा यमलसृष्टिः यजमानसंबन्धिनः पशून् गवाद्यान् क्षिणाति क्षयं प्रापयति । ❀ क्षि क्षये इति धातुः ❀ । किं कुर्वती । रिफती । ❀ रिफ रिन्फ हिंसायाम् ❀ । भक्षयन्ती । रुशती चोरव्याघ्रादिभिर्नाशयन्ती । ❀ रुश हिंसायाम् । उभावपि तुदादी ❀ ॥

पृथिवी आदिके भूतोंके रचने वाले भूतकृत् नाम वाले ऋषियों ने एक एक व्यक्तिसे विशिष्ट सृष्टिमें अनेक वर्णकी गौ आदि सृष्टिको उत्पन्न किया थी, यही एक एककी सृष्टि विधाताकी रची हुई है । इस उत्पत्तिके समयसे चली आई हुई सृष्टिमें अपकृष्ट बीज और रजसे युक्त हुई जो गौ जुड़वां सृष्टिको उत्पन्न करती है तो यह यमलसृष्टि यजमानके गौ आदि पशुओंका भक्षण करती हुई और चोर व्याघ्र आदिसे नाश कराती हुई संहार करती है ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

एषा पशून्सं क्षिणाति क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी ।
उतैनां ब्रह्मणे दद्यात् तथा स्योना शिवा स्यात् २

एषा । पशून् । सम् । क्षिणाति । क्रव्यऽअत् । भूत्वा । विऽअद्वरी ।
उत । एनाम् । ब्रह्मणे । दद्यात् । तथा । स्योना । शिवा । स्यात् २

एषा यमसूर्गौः पशून् यजमानगृहे वर्तमानान् गवादीन् सं क्षिणाति संक्षयं विनाशं प्रापयति । ❀ क्षि. क्षये । व्यत्ययेन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रा ❀। कथंभूता। क्रव्याद्भूत्वा क्रव्यं मांसम् अत्तीति क्रव्यात्। ❀ "क्रव्ये च" इति विट् प्रत्ययः ❀। मांसादनशीला भूत्वा। व्यध्वरी व्यध्वो दुःखहेतुर्दुष्टमार्गः तद्वती। ❀ रो मत्वर्थीयः ❀। यद्वा विरुद्धफलदा अध्वरा अभिचारयज्ञा व्यध्वराः। ❀ "छन्दसीवनिपौ" इति मत्वर्थीय ईकारः ❀। उत इति प्रश्ने। एवंविधे दोषे किं कर्तव्यम् इत्यर्थः॥ एनां यमजननीं ब्रह्मणे ब्राह्मणाय दद्यात्। तथा सति सा गौः स्योना सुखकरी। यद्वा पुत्रपश्वादिभिः संतता। ❀ षिवु तन्तुसंताने। औणादिको नप्रत्ययः। ततः ऊठि कृते "असिद्धं बहिरङ्गम्०" इत्यस्य "नाजानान्तर्ये०" इति निषेधाद्यण् ❀। शिवा कल्याणात्मिका च स्यात् भवेत्॥

यह यमसू (दो को उत्पन्न करने वाली) गौ मांसको खाने के स्वभाव वाली होकर और अभिचार आदिके कष्टप्रद फल देने वाली होकर यजमानके घरमें वर्तमान गौ आदिका संहार करती है। ऐसे दोषके प्रसंग पर क्या करना चाहिये ? (उत्तर) ऐसी यमसूको ब्राह्मणको दे देय। ऐसा करने पर वह गौ सुख देने वाली पुत्र पौत्र आदिसे सम्पन्न होकर कल्याणरूप हो जाती है॥ २॥

तृतीया॥

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि॥ ३॥

शिवा। भव। पुरुषेभ्यः। गोभ्यः। अश्वेभ्यः। शिवा।
शिवा। अस्मै। सर्वस्मै। क्षेत्राय। शिवा। नः। इह। एधि३

हे यमलवत्सजननि पुरुषेभ्यः मनुषेभ्यः शिवा सुखकरी भव॥ तथा गोभ्यः अश्वेभ्यश्च शिवा सुखहेतुर्भव॥ अस्मै सर्वस्मै

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[क्षेत्राय] शालिगोधूमादिक्षेत्राय शिवा सुखकरी भव ॥ किं बहुना । इह अस्मिन् देशे नः अस्माकं सर्वविषयेषु शिवा एधि सुखप्रदा भव । ❀ अस्तेर्लोटि "घ्वसोरेद्धौ०" इति एत्वे कृते तस्य "असिद्धवदत्र आ भात्" इति असिद्धत्वात् "हुझल्भ्यो हेर्धिः" इति झलन्तलक्षणं हेर्धित्वं भवति ❀ ॥

हे जुड़वाँ संतानोंको उत्पन्न करने वाली जननि ! तू पुरुषोंके लिये सुखकारिणी हो, अधिक क्या ? इस देशमें हमारे सब कामोंमें सुख देने वाली हो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव ।
पशून् यमिनि पोषय ॥ ४ ॥

इह । पुष्टिः । इह । रसः । इह । सहस्रऽसातमा । भव ।
पशून् । यमिनि । पोषय ॥ ४ ॥

इह अस्मिन् गृहे पुष्टिः गवादिसर्वधनस्य पोषो भवतु । ततश्च इह अस्मिन् यजमानगृहे रसः क्षीराज्यादिरूपः समृद्धो भवतु ॥ हे यमिनि यमलवत्सजननि इह अस्मिन् यजमानगृहे सहस्रसातमा सहस्रसंख्याकं धनं सनोति प्रयच्छतीति सहस्रसाः । ❀ षणु दाने । "जनसनखनक्रमगमो विट्" "विड्वनोरनुनासिकस्यात्" इति आत्त्वम् । तत आतिशायनिकस्तमप् ❀ । अतिशयेन सहस्रधनस्य दात्री भवेत्यर्थः ॥ एवं यजमानसंबन्धिनः पशून् हे यमिनि पोषय समर्धय ॥

इस घरमें गौ आदि सब प्रकारके धनोंकी पुष्टि हो । फिर इस यजमानके घरमें दूध घी आदि रस बढ़े । हे यमलवत्स

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जननि ! इस यजमानके घरमें तू सहस्रों धनोंको देने वाली हो और इस यजमानके पशुओंको बढ़ा ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥ ५ ॥

यत्र । सुऽहार्दः । सुऽकृतः । मदन्ति । विऽहाय । रोगम् । तन्वः । स्वायाः ।

तम् । लोकम् । यमिनी । अभिऽसंबभूव । सा । नः । मा । हिंसीत् । पुरुषान् । पशून् । च ॥ ५ ॥

यत्र यस्मिंश्च लोके सुहार्दः शोभनहृदयाः सुकृतः शोभनकर्माणः पुरुषा मदन्ति हृष्यन्ति । ❀ मदी हर्षे । व्यत्ययेन शप् ❀ । किं कृत्वा । स्वायास्तन्वः स्वकीयात् शरीराद् रोगम् ज्वरादिकं विहाय त्यक्त्वा । हृष्यन्तीत्यर्थः । तम् तादृशं लोकं यमिनी यमलवत्सजननी गौः अभिसंबभूव आभिमुख्येन संप्राप्तवती ॥ अतः सा नः अस्माकं पुरुषान् पशूंश्च मा हिंसीत् मा हिनस्तु ॥

जिस लोकमें शोभन हृदय वाले और शोभन कर्म वाले पुरुष अपने शरीरसे ज्वर आदि रोगको अलग कर प्रसन्न होते हैं, ऐसे लोकमें जुड़वाँ बच्चोंको उत्पन्न करने वाली गौ अभिमुख होकर प्राप्त होगई है, अतः वह हमारे पुरुष और पशुओंकी हिंसा न करे ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥ ६ ॥

यत्र । सुऽहार्दाम् । सुऽकृताम् । अग्निहोत्रऽहुताम् । यत्र । लोकः । तम् । लोकम् । यमिनी । अभिऽसंबभूव । सा । नः । मा । हिंसीत् । पुरुषान् । पशून् । च ॥ ६ ॥

यत्र यस्मिन् लोके सुहार्दाम् शोभनहृदयानां शोभनज्ञानानां सुकृताम् शोभनं कर्म कृतवताम् । ❀ "सुकर्मपाप०" इत्यादिना भूते क्विप् ❀ । तादृशानाम् [अग्निहोत्रहुताम् अग्निहोत्रहोमादिकं जुह्वताम्]अग्निहोत्रहोमादिकं शोभनं कर्म प्रतिष्ठितं भवति । यत्र च स्थाने लोकः लोक्यते अनुभूयत इति लोकः तस्याग्निहोत्रादेः फलम् प्रतिष्ठितं भवति ।तं लोकम् इत्यादि व्याख्यातम् ॥

[इति] षष्ठेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

जिस लोकमें शोभन हृदयवाले, शोभन ज्ञानवाले और शोभन कर्म करने वालोंके अग्निहोत्र होम आदिमें आहुति देनेवाले शोभन कर्म प्रतिष्ठित होते हैं उस लोकमें यह यमलवत्सजननी गौ प्राप्त होगई है अतः वह हमारे पुरुष और पशुओंकी हिंसा न करे ६

छठे अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (९९)॥

"यद् राजानः" इति पञ्चर्चेन ओदनसवे कर्मणि पश्ववयवेषु पञ्चापूपनिधानं निरुप्तहविरभिमर्शनादिकं च कुर्यात् । तथा च सूत्रम् । "अग्नीन् आधास्यमानः सवान् वा दास्यन्" इति [कौ० ८. १] प्रक्रम्य "यद् राजान इत्यवेक्षति पदस्तातस्य पृथक्पादेष्वपूपान् निदधाति नाभ्या पञ्चमम्" इत्यादि [कौ० ८. ५] ॥

"क इदं कस्मै" इति द्वाभ्यां दुष्टादुष्टप्रतिग्रहतद्दोषशान्त्यर्थं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रतिग्राह्यं पदार्थम् अभिमन्त्र्य गृह्णीयात् । सूत्रितं हि । "क इदं कस्मा अदात् [७. ८] कामस्तदग्रे [१९. ५२] यद् अन्नम् [६. ७१] पुनर्मैत्विन्द्रियम् [७. ६६] इति प्रतिगृह्णाति" इति [कौ० ५. ६] ॥

"भूमिष्ट्वा" [८] इत्यनया भूमिं प्रतिगृह्णीयात् ॥

ग्रहयज्ञे "यद् राजानः" इत्यनेन बुधस्य हविराज्ययोर्होमम् समिदाधानम् उपस्थानं च कुर्यात् । तद् उक्तं शान्तिकल्पे । "यद् राजानः [६. २९] इति सोमस्यांशो युधां पते [७. ८६. ३] इति बुधाय" इति [शा० क० १५] ॥

'यद् राजानः' इस पाँच ऋचा वाले सूक्तसे ओदनसव कर्म में पशुके अवयवोंमें पाँच गुलगुले रखना और निरुप्त हविका अभिमर्शन आदि करे इसी बातको सूत्रमें कहा है, कि–'अग्नीन् आधास्यमानः सवान् वा दास्यन्' (कौशिकसूत्र ८ । १) प्रक्रम्य "यद् राजान इत्यवेक्षति पदस्नातस्य पृथक्पादेष्वपूपान् निदधाति नाभ्यो पञ्चमम्"० (कौशिकसूत्र ८ । ५) ॥

'क इदं कस्मै' इन दो ऋचाओंसे दुष्ट वा अदुष्टसे लिये हुए प्रतिग्रहके दोषकी शांतिके लिये दान लेनेके पदार्थको अभिमन्त्रित करके लेवे । सूत्रमें भी कहा है, कि–'क इदं कस्मा अदात् (७।८) कामस्तदग्रे (१९ । ५२) यद् अन्नम् (६ । ७१) पुनर्मैत्विन्द्रियम् (७ । ६६) इति प्रतिगृह्णाति" इति (कौशिकसूत्र ५ । ६)

"भूमिष्ट्वा" इस आठवीं ऋचासे भूमिको ग्रहण करे ॥

ग्रहयज्ञमें 'यद् राजानः' इस सूक्तसे बुधका घृत और हविका होम करे, समिधाओंको रक्खे और उपस्थान भी करे । इसी बातको शान्तिकल्पमें कहा है, कि–'यद् राजानः' (६. २९) इति सोमस्यांशो युधां पते (७ । ८६ । ३) इति बुधाय (शांतिकल्प १५)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तत्र प्रथमा ॥

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः ।

अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वधा ॥१॥

यत् । राजानः । वि॰भजन्ते । इष्टापूर्तस्य । षोडशम् । यमस्य । अमी इति । सभा॰सदः ।

अविः । तस्मात् । प्र । मुञ्चति । दत्तः । शिति॰पात् । स्वधा ॥१॥

यमस्य धर्मराजस्य अमी दक्षिणस्यां दिशि द्युलोके परिदृश्यमानाः सभासदः सभायाम् उपविष्टा दुष्टनिग्रहे शिष्टपरिपालने च नियुक्ता राजानः राजमानाः ईश्वरा वा देवाः इष्टापूर्तस्य । इष्टं श्रुतिविहितं यागादि कर्म । पूर्तं स्मृतिविहितं वापीकूपतटाकादिनिर्वाणलक्षणं कर्म । तस्य उभयविधस्य कर्मणः षोडशम् षोडशसंख्यापूरकं यत् पापं विभजन्ते पुण्यराशेर्विभक्तं कुर्वन्ति । अयम् अर्थः । श्रुतिस्मृतिविहितकर्मसु अनुष्ठीयमानेषु प्रमादालस्यादिना कियानपि पापस्य षोडश्या कलया अंशः समुपजायत एव तद् यमस्य सभ्याः परिशोधयन्तीति । ❀ षोडशम् इति । षोडशसंख्यायाः पूरकः । "तस्य पूरणे डट्" । "षष उत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेः ष्टुत्वं च" इति उत्वष्टुत्वे ❀ । तस्मात् राजभिर्विभज्य गृहीतात् पापात् अस्मिन् सवयज्ञे दत्तः अविः अस्मान् प्र मुञ्चतु । यद्वा इष्टापूर्तस्य साधकं षोडशम् । "षोडशकलो वै पुरुषः" [तै० ब्रा० १. ७. ५. ५] इति श्रुतेः षोडशकलम् आत्मानं यमस्य सभासदः अमी राजानः यत् विभजन्ते पशुशरीराद् विभक्तं कुर्वन्ति अविः अविशरीराभिमानी आत्मा तस्मात् शरीरवियोग-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जनिताद् दुःखात् प्र मुञ्चतु प्रमुक्तो भवतु ॥ शितिपात् श्वेतपात् स दत्तोऽविः स्वधा । अन्ननामैतत् । यमसंबन्धिभ्यः सभासद्भ्यः अन्नं भवतु । यद्वा स्वधेति पितॄणां हविर्दाने । ❀ "स्वधाकारो हि पितॄणाम्" इति [तै० ब्रा० ३. ३. ६, ४] श्रुतेः ❀ । हविष्ट्वेन दत्तो भवतु ॥

दक्षिण दिशाकी ओर द्युलोकमें दीखते हुए धर्मराज यमके (ये) सभासद् दुष्टोंको दण्ड देने वाले और शिष्टों पर अनुग्रह करने वाले हैं । ये श्रुतिविहित याग आदि इष्टकर्मके और स्मृतिविहित बावड़ी कूप तालाब बनवाना आदि पूर्तकर्मके ईश्वर हैं । ये दोनों प्रकारके कर्मोंमें बन जानेवाले सोलहवें भाग पापको पुण्यराशिसे अलग करते हैं । तात्पर्य यह है, कि-श्रुति और स्मृतिसे विहित कर्मोंको करने पर प्रमाद और आलस्यवश कुछ न कुछ पाप बन ही जाता है, वह सोलहवाँ भाग बन जाता है, उसका यमके सभ्य शोधन करते हैं । राजाओं (ईश्वरों) ने विभाग करके जिस पापको ग्रहण करलिया है उस पापसे इस सवयज्ञमें दी हुई अविहमें बचावे । अथवा तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ७ । ५ । ५ में कहा है, कि-'षोडशकलो वै पुरुषः-यह आत्मा सोलह कला वाला है, उस सोलह कला वाले आत्माको यमके सभासद् ये ईश्वर पशुके शरीरसे अलग करते हैं अतः शरीरका अभिमानी आत्मा शरीरके वियोगके दुःखसे छूट जावे । श्वेत पैरवाला यह यह दिया हुआ अवि यमके सभासदोंका अन्न होवे, पितरोंका अन्न हो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

सर्वा॑न् कामा॑न् पूरयत्या॒भव॑न् प्र॒भव॑न् भव॑न् ।
आ॒कू॒ति॒प्रोऽवि॑र्द॒त्तः शि॑ति॒पान्नोप॑ दस्यति ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सर्वान् । कामान् । पूरयति । आऽभवन् । प्रऽभवन् । भवन् ।

आकूतिऽप्रः । अविः । दत्तः । शितिऽपात् । न । उप । दस्यति ॥२॥

आभवन् आ समन्ताद् भवन् व्याप्नुवन् [प्रभवन्] फलदानाय समर्थो भवन् भवन् वर्धिष्णुः सन् क्रियमाणोयं यज्ञः अस्मदीयान् सर्वान् कामान् पुत्रपश्वादिविषयान् पूरयति संपूर्णा[न् करोति । आकूतिप्रः इदं मे स्याद् इदं मे स्याद् इति ये संकल्पास्ता आकूतयः । तान् पूरयतीति आकूतिप्रः शितिपात् श्वेतपाद् दत्तः अस्मिन् यज्ञे प्रार्पितोयम् अविः] नोप दस्यति नोपक्षीयते । अपि तु यथाभिलाषं वर्धत इत्यर्थः । ❀ दसु उपक्षये इति धातुः ❀ ॥

चारों ओरसे फल देनेके लिये समर्थ और वर्धनशील यह किया जाता हुआ यज्ञ हमारी पुत्र पशु आदि सब कामनाओंको पूर्ण करता है। संकल्पोंको पूर्ण करने वाला और श्वेत पाद वाला यह दिया हुआ अवि क्षीण नहीं होता है॥ २ ॥

तृतीया ॥

यो ददाति शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।

स नाकमभ्यारोहति यत्र शुल्को न क्रियते अबलेन बलीयसे ॥ ३ ॥

यः । ददाति । शितिऽपादम् । अविम् । लोकेन । सम्ऽमितम् ।

सः । नाकम् । अभिऽआरोहति । यत्र । शुल्कः । नः । क्रियते ।

अबलेन । बलीयसे ॥ ३ ॥

यो यजमानः शितिपादम् श्वेतपादं लोकेन लोक्यमानेन फलेन संमितम् सम्यक्परिच्छिन्नम् अमोघफलम् । यद्वा अनेन भूलोकेन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संमितम् सदृशम् । भूलोकवत् सर्वफलप्रदम् इत्यर्थः । ईदृशम् अविं ददाति प्रयच्छति स दाता नाकम् । कम् सुखम् तद्विपरीतम् अकं दुःखम् न विद्यतेऽस्मिन् अकम् इति नाकः स्वर्गः । ❀ "नभ्राण्नपात्०" इत्यादिना नञः प्रकृतिभावः ❀ । उक्तं हि ।

दुःखेन यन्न संभिन्नं न च ग्रस्तम् अनन्तरम् ।
अभिलाषोपनीतं च सुखं स्वर्गपदास्पदम् ॥

ईदृशं लोकम् अभ्यारोहति अभिप्राप्नोति । तं लोकं विशिनष्टि । यत्रेति । यत्र यस्मिन् लोके अबलेन अपर्याप्तबलेन पुरुषेण बलीयसे बलवत्तराय । ❀ बलवच्छब्दाद् ईयसुनि "विन्मतोर्लुक्" इति मतोर्लुक् ❀ । तादृशाय शुल्को न क्रियते । शुल्को नाम अधिकबलस्य राज्ञो न्यूनबलेन परिसरवर्तिना अन्येन राज्ञा देयः करविशेषः । स नास्ति यस्मिन् लोके इत्यर्थः ॥

जो यजमान श्वेत पैर वाली और भूलोककी समान सब फल देने वाली भेड़को देता है, वह दाता जिसमें दुःखका नाम नहीं है उस स्वर्गलोकमें चढ़ता है, उस लोकमें अल्प बलवालेको अधिक बलीको कर नहीं देना पड़ता ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
प्रदातोप जीवति पितॄणां लोकेऽक्षितम् ॥ ४ ॥

पञ्चऽअपूपम् । शितिऽपादम् । अविम् । लोकेन । सम्ऽमितम् ।

---

‡ दुःखेन यन्न संभिन्नं न च ग्रस्तं अनन्तरम् ।
अभिलाषोपनीतं च सुखं स्वर्गपदास्पदम् ॥

दुःखसे भिन्न हो जो दुःखसे ग्रस्त न हो और जिसमें पीछे से भी दुःख न मिलता हो और अभिलाषा करते ही जो मिल जाता हो वह सुख स्वर्गका सुख कहलाता है ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रऽदाता । उप । जीवति । पितृणाम् । लोके । अक्षितम् ॥४॥

पञ्चसंख्याका अपूपा यस्य पशोश्चतुर्षु पादेषु नाभ्यां च निहिता वर्तन्ते तं पञ्चापूपं शितिपादम् श्वेतपादं लोकेन पृथिव्यादिकेन संमितम् सदृशम् अवस्थितम् [अविं] प्रदाता प्रकर्षेण ददत् पितृणाम् वस्त्रादिरूपं प्राप्तानां लोके सोमलोकाख्ये स्थाने अक्षितम् क्षयरहितं फलम् उप जीवति उपभुङ्क्ते । ❀ संमितं प्रदातेति । तृन्नन्तत्वात् "न लोकाव्यय०" इति कर्मणि षष्ठ्या निषेधे द्वितीयैव भवति । अक्षितम् इति । क्षिक्षये । भावे निष्ठा । "निष्ठायाम् अण्यदर्थे" इति पर्युदस्तत्वाद् दीर्घाभावात् "क्षियो दीर्घात्" इति दीर्घोपजीविनो नत्वस्यापि अभावः ❀ ॥

जिस पशुके चार पैरों पर और नाभि पर पाँच गुलगुले रक्खे जाते हैं, उस पञ्च अपूप और श्वेत पाद वाले पृथिवी आदि की समान स्थित भेड़को देने वाला वसु आदि पितरोंके सोमलोकमें क्षयरहित फलका उपभोग करता है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
प्रदातोप जीवति सूर्यामासयोरक्षितम् ॥ ५ ॥

पञ्चऽअपूपम् । शितिऽपादम् । अविम् । लोकेन । समऽमितम् ।
प्रऽदाता । उप । जीवति । सूर्यामासयोः । अक्षितम् ॥ ५ ॥

पादत्रयस्य स एवार्थः । मस्यते क्षयवृद्धिभ्यां परिमीयत इति मासः चन्द्रमाः । ❀ मसी परिमाणे इत्यस्मात् कर्मणि घञ् ❀ । सूर्यश्च मासश्च सूर्यामासौ । ❀ "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् ❀ । सूर्याचन्द्रमसोर्लोके अक्षितम् क्षयरहितं फलम् उप-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भुंक्त इत्यर्थः। अनयोश्चतुर्थीपञ्चम्योरीषद्भेदत्वाद् एकत्वाभिप्रायेण पञ्चर्चेनेत्युक्तम् ॥

जिस पशुके चार पैरों पर और नाभि पर पाँच गुलगुले रक्खे जाते हैं, उस पञ्च अपूप और श्वेत पैर वाले पृथिवीलोक आदिकी समान स्थित भेड़को देने वाला सूर्य और चन्द्रमाके लोकमें अक्षयफलको पाता है ॥ ५ ॥ ‡

षष्ठी ॥

इरे॑व॒ नोप॑ दस्यति समु॒द्र इ॑व॒ पयो॑ म॒हत् ।

दे॒वौ स॑वा॒सिना॑विव शिति॒पान्नोप॑ दस्यति ॥ ६ ॥

इरा॑ऽइव । न । उप॑ । द॒स्य॒ति॒ । स॒मु॒द्रःऽइ॑व । पयः॑ । म॒हत् ।

दे॒वौ । स॒वा॒सिनौ॑ऽइव । शि॒ति॒ऽपात् । न । उप॑ । द॒स्य॒ति॒ ॥ ६ ॥

शितिपात् श्वेतपादः सवयज्ञे दत्तः अविः इरेव भूमिरिव नोप दस्यति नोपक्षीयते। समुद्र इव समुद्रो यथा न क्षीयते एवं महत् अधिकं पयः क्षीरम्। तदात्मना परिणतो भवतीत्यर्थः ॥ तथा सवासिनौ समानं निवसन्तौ अश्विनौ देवाविव नोप दस्यति। तौ यथा खलु अश्विनौ देवौ सर्वफलप्रदत्वेन उपजीव्येते तथा अयम् अविरपि सर्वफलप्रदत्वेन नोपक्षीयत इत्यर्थः ॥

सवयज्ञमें प्रदान की हुई श्वेत पैर वाली भेड़ भूमिकी समान क्षीण नहीं होती है, समुद्रका बड़ा जल जिस प्रकार क्षीण नहीं होता है, एक साथ रहने वाले अश्विनीकुमार जैसे क्षीण नहीं होते हैं, तैसे ही यह भी क्षीण नहीं होती है ॥ ६ ॥

‡ चतुर्थी और पाँचवीं ऋचामें थोड़ासा ही भेद है अत एव इनको एक मान कर पाँच ऋचाओंसे कहा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सप्तमी ॥

क इदं कस्मा अदात कामः कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमा विवेश ।
कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत् ते ॥ ७ ॥

कः । इदम् । कस्मै । अदात् । कामः । कामाय । अदात् ।
कामः । दाता । कामः । प्रतिऽग्रहीता । कामः । समुद्रम् । आ । विवेश ।
कामेन । त्वा । प्रति । गृह्णामि । काम । एतत् । ते ॥ ७ ॥

इदम् ईदृग् इति अनिरुक्तरूपः प्रजापतिः कशब्देनोच्यते । अर्थसामान्यात् किंशब्दोपि तस्यैव वाचकः । कशब्दाभिधेयः प्रजापतिः कस्मै प्रजापतये इदम् दक्षिणात्वेन देयं द्रव्यम् अदात् दत्तवान् । दाता च प्रतिग्रहीता च प्रजापतिरेव । एवम् अनुसंदधानस्य प्रतिग्रहदोषो न जायत इत्यर्थः । तथा च तैत्तिरीयकम् । "क इदं कस्मा अदाद् इत्याह । प्रजापतिर्वै कः । स प्रजापतये ददाति" इति [तै० ब्रा० २. २. ५. ५] ॥ तथा कामः फलविषयोभिलाषः । आमुष्मिकफलाभिलाषी दाता । ऐहिकफलाभिलाषी प्रतिग्रहीता । अतः उभावपि कामात्मानौ । तथा च काम एव कामाय अदात् दत्तवान् नाहं प्रतिगृह्णामीति आत्मानं व्यावृत्य प्रतिगृहे कृते तद्दोषो न संस्पृशतीत्यर्थः । तथा च तैत्तिरीयकम् । ❀ "य एवं विद्वान् व्यावृत्य दक्षिणां प्रतिगृह्णाति नैनं दक्षिणा व्लीनाति" इति [तै० ब्रा० २. २. ५. १] ❀ । उक्तम् अर्थम् उपपादयति । कामो दाता कामः प्रतिग्रहीतेति । व्याख्यातप्रायम् एतत् । उक्तो देवतारूपः कामः समुद्रम् समुद्रवन्निरवधिकं रूपम् आ विवेश प्राप्तवान् । "समुद्र इव हि कामः । नैव हि काम-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्यान्तोस्ति" [तै० ब्रा० २. २. ५. ६.] इति हि तैत्तिरीयकम् । तादृशेन कामेन हे दक्षिणाद्रव्य त्वा त्वां प्रति गृह्णामि । नात्मने- त्यर्थः । हे काम एतत् प्रतिगृहीतं द्रव्यं ते तुभ्यं त्वदर्थमेव ॥

प्रजापति प्रजापतिके लिये दक्षिणारूप द्रव्यको देते हैं । दाता और ग्रहण करने वाले प्रजापति ही हैं । तात्पर्य यह है, कि-ऐसा अनुसंधान करने वालेको प्रतिग्रहका दोष नहीं लगता है † । फलकी अभिलाषाविषयक काम, और परलोक के फलको चाहने वाला दाता तथा इस लोकके फलको चाहने वाला प्रतिग्रहीता, ये दोनों कामात्मा हैं, अतः कामने ही काम को दिया है मैं ग्रहण नहीं करता हूँ, इस प्रकार आत्माको अलग कर प्रतिग्रह करने पर दोष नहीं लगता है ‡ (इसी अर्थकी पुष्टि करते हैं) कि-काम ही दाता है, काम ही ग्रहण करनेवाला है । उक्त देवतारूप काम ही समुद्रकी समान अवधिरहित रूपमें प्रवेश कर गया है × । हे दक्षिणाद्रव्य ! ऐसे कामके द्वारा मैं तुझको ग्रहण करता हूँ, कुछ अपने आप ग्रहण नहीं करता हूँ, हे काम ! यह ग्रहण किया हुआ द्रव्य तेरे ही लिये है ॥ ७ ॥

† तैत्तिरीयब्राह्मण २ । २ । ५ । ५ में कहा है, कि-'क इदं कस्मा अदादिति इत्याह ॥-क इसको क के लिये देता हुआ । प्रजापति ही क है वह प्रजापतिके लिये देता है" ।

‡ 'य एवं विद्वान् व्यावृत्य दक्षिणां प्रतिगृह्णाति नैनं दक्षिणा व्लीनाति ॥-जो यह जानता हुआ आत्माभिमानको अलग रख दक्षिणाको ग्रहण करता है उसको दक्षिणा दोषसे लिप्त नहीं करती है" (तैत्तिरीयब्राह्मण २ । २ । ५ । १) ॥

× तैत्तिरीयब्राह्मण २ । २ । ५ । ६ में कहा है, कि- "समुद्र इव हि कामः । नैव हि कामस्यान्तोऽस्ति ॥-काम (इच्छा) समुद्रकी समान है, उसका अन्त नहीं है ॥"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अष्टमी ॥

भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत् ।
माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ॥ ८ ॥

भूमिः । त्वा । प्रति । गृह्णातु । अन्तरिक्षम् । इदम् । महत् ।
मा । अहम् । प्राणेन । मा । आत्मना । मा । प्रऽजया । प्रतिऽगृह्य । वि । राधिषि ॥ ८ ॥

हे देय द्रव्य त्वा त्वां भूमिः भूदेवता प्रति गृह्णातु । तथा महत् अधिकं विस्तीर्णम् इदम् अन्तरिक्षं च त्वा त्वां प्रति गृह्णातु । अतः अहं प्रतिगृह्य प्रतिग्रहं कृत्वा तज्जनितदोषात् प्राणेन मुख-नासिकाभ्यां संचरता जीवावस्थितिलिङ्गेन मा वि राधिषि राद्धो वर्जितो मा भूवम् । तथा आत्मना जीवेन तद्विशिष्टशरीरेण वा मा वि राधिषि । तथा प्रजया पुत्रपौत्रादिलक्षणया मा वि राधिषि । ❀ माङि लुङि उत्तमैकवचने रूपम् ❀ ॥

[इति] षष्ठेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे देय द्रव्य ! भूमिदेवता तुझको ग्रहण करे । और यह परम-विस्तृत अन्तरिक्ष भी तुझको ग्रहण करे । अत एव मैं प्रतिग्रहको करके उससे होने वाले दोषके कारण प्राणसे वियुक्त न होऊँ अर्थात् मुख और नासिकासे चलते हुए जीवकी स्थितिके चिन्ह और जीवसे सम्पन्न शरीरसे अलग न होऊँ तथा पुत्र पौत्र आदिसे वियुक्त न होऊँ ॥ ८ ॥

छठे अनुवाकमें चौथा सूक्त समाप्त (१००) ॥

"सहृदयं सांमनस्यम्" इति सूक्तेन सामनस्यकर्मणि ग्राम-मध्ये संपातितोदकुम्भनिनयनम् तद्वत् सुराकुम्भनिनयनम् त्रिवर्ष-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वत्सिकाया गोः पिशितानां प्राशनम् संपातितान्नप्राशनम् संपातितसुरायाः पायनम् तथाविधप्रपोदकपायनं च कुर्यात् । सूत्रितं हि ।"सहृदयम् [३. ३०] तदू षु ते [५. १. ५] सं जानीध्वम्" [६. ६४] इति प्रक्रम्य "सांमनस्यान्युदकुलिजं संपातवन्तं ग्रामं परिहृत्य मध्ये निनयति" इत्यादि [कौ० २. ३]॥

तथा उपाकर्मण्यपि आज्यहोमे अस्य सूक्तस्य विनियोगः। सूत्रितं हि । "अभिजिति शिष्यान् उपनीय श्वोभूते संभारान् संभरति" इति प्रक्रम्य "गणाकर्मभिर्विश्वकर्मभिरायुष्यैः स्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात्" इति [कौ० १४. ३]। अत्र गणाकर्मशब्देन "सहृदयम्" "तदू षु ते" इत्यादिगणो विवक्षितः ॥

"सहृदयं सांमनुष्यम्" इस सूक्तसे सांमनस्य कर्ममें ग्राममें सम्पातित जलपूर्ण कलशको लावे और सुराके कुम्भको लावे। तथा त्रिवर्षा गौके पिशितका भक्षण, सम्पातित अन्नका प्राशन, संपातित सुराका पान तथा ऐसी ही पौके जलका पान भी करे। सूत्रमें भी कहा है, कि–"स हृदयम्" (३ । ३०) तदू षु ते (५ । १ । ५) सं जानीध्वम् (६ । ६४) इति प्रक्रम्य "सांमनस्यान्युदकुलिजं संपातवन्तं ग्रामं परिहृत्य मध्ये निनयति" (कौशिकसूत्र २ । ३) ॥

तथा उपाकर्मके घृतहोममें भी इसका विनियोग होता है। सूत्र में भी कहा है, कि–"अभिजिति शिष्यानुपनीय श्वोभूते संभारान् संभरति ।।–अभिजित् मुहूर्तमें शिष्योंका उपनयन करा कर दूसरा दिन आने पर संभारोंको लावे" इसका आरम्भ करके कहा है, कि–"गणाकर्मभिर्विश्वकर्मभिरायुष्यैः स्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात् ।।–गणाकर्म–विश्वकर्म–आयुष्य और स्वस्त्ययनगणके मन्त्रों से घृतकी आहुति देय।" (कौशिकसूत्र १४। ३) ॥ वहाँ गणाकर्म शब्दसे "सहृदयम्" "तदू षु ते" इत्यादि गण लिया जाता है ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तत्र प्रथमा ॥

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१॥

सऽहृदयम् । साम्ऽमनस्यम् । अविऽद्वेषम् । कृणोमि । वः ।
अन्यः । अन्यम् । अभि । हर्यत । वत्सम् । जातम्ऽइव । अघ्न्या १

हे विवदमाना जनाः वः युष्माकम् अविद्वेषम् विद्वेषाभावोपलक्षितं सांमनस्यं कर्म कृणोमि करोमि । कीदृशं तत् सांमनस्यम् । सहृदयम् समानैर्हृदयैरुपेतम् । समानचित्तवृत्तियुक्तम् इत्यर्थः । सांमनुष्यम् । मिथः संप्रीतियुक्ता मनुष्याः संमनुष्याः तैर्निर्वर्तितं सांमनुष्यम् । ईदृशं समानज्ञानहेतुभूतं सख्यं करोमीत्यर्थः ॥ ततो यूयमपि जातं वत्सम् अघ्न्याः गोनामैतत् । अहन्तव्या गाव इव अन्योन्यं परस्परम् अभि हर्यत आभिमुख्येन कामयध्वम् । ❀ हर्य गतिकान्त्योः ❀ ॥

हे विवाद करने वाले मनुष्यों ! मैं तुम्हारे अर्थ विद्वेषभावको हटाने वाला, समान हृदय करने वाला प्रीतिमय सांमनस्य कर्म करता हूँ, अतः तुम गौएँ जैसे उत्पन्न हुए बछड़ेसे स्नेह करती हैं तिस प्रकार अभिमुख होकर वर्ताव करो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥ २ ॥

अनुऽव्रतः । पितुः । पुत्रः । मात्रा । भवतु । सम्ऽमनाः ।
जाया । पत्ये । मधुऽमतीम् । वाचम् । वदतु । शन्तिऽवाम् ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुत्रः तनयः पितुरनुव्रतः । व्रतम् इति कर्मनाम । अनुकूलकर्मा भवतु । यत् पिता कामयते तत्कर्मकारी भवतु ॥ माता च संमनाः पुत्रादिभिः समानमनस्का भवतु ॥ पत्ये भर्त्रे जाया भार्या मधुमतीम् माधुर्यवतीं शन्तिवाम् सुखयुक्तां वाचं वदतु ब्रवीतु । समानमनस्का भवतु इत्यर्थः । ❀ पत्ये । "पतिः समास एव" इति घिसंज्ञाया नियमात् केवलस्य अभावात् तत्कार्याभावे यण् । शन्तिवाम् इति । "कंशंभ्याम्०" इति शम्शब्दात् तिप्रत्ययः । ततो मत्वर्थीयो वः ❀ ॥

पुत्र पिताके अनुकूल कर्म करने वाला हो, माता पुत्र आदिके साथ एकसे मन वाली हो, भार्या पतिसे मधुरताभरी सुखदायिनी वाणी बोले ॥ २ ॥

तृतीया ॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ ३ ॥

मा । भ्राता । भ्रातरम् । द्विक्षत् । मा । स्वसारम् । उत । स्वसा ।
सम्यञ्चः । सऽव्रतः । भूत्वा । वाचम् । वदत । भद्रया ॥ ३ ॥

भ्राता सोदरः भ्रातरं मा द्विष्यात् दायभागादिनिमित्तेन भ्रातृविषयम् अप्रियं मा कुर्यात् ॥ उत अपि च स्वसारम् भगिनीं स्वसा मा द्विष्यात् । ❀ "ऋन्नेभ्यः०" इति प्राप्तस्य ङीपः "न षट्स्वस्रादिभ्यः" इति प्रतिषेधः ❀ ॥ ते सर्वे भ्रात्रादयः सम्यञ्चः समञ्चनाः समानगतयः सव्रताः समानकर्माणो भूत्वा भद्रया कल्याण्या वाचा वागिन्द्रियेण वाचं वदतु वदन्तु । ❀ व्यत्ययेन एकवचनम् । सम्यञ्च इति । संपूर्वाद् अञ्चतेः "ऋत्विग्०" इत्यादिना क्विन् । "समः समि" इति सम्यादेशः ❀ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सहोदर भ्राता दायविभागके निमित्त भ्राताका अप्रिय न करे बहिन भाईसे द्वेष न करे। ये सब भ्राता आदि समान गति और समान कर्म वाले होकर कल्याणकारी वार्तालाप करें ॥ ३ ॥

चतुर्थी॥

येन॑ दे॒वा न वि॒यन्ति॒ नो च॑ विद्वि॒षते॑ मि॒थः।
तत् कृ॑ण्मो॒ ब्रह्म॑ वो गृ॒हे सं॒ज्ञान॒ं पुरु॑षेभ्यः ॥ ४ ॥

येन॑। दे॒वाः। न। वि॒ऽयन्ति॑। नो इति॑। च॒। वि॒ऽद्वि॒षते॑। मि॒थः।
तत्। कृ॒ण्मः॒। ब्रह्म॑। वः॒। गृ॒हे। स॒म्ऽज्ञान॑म्। पुरु॑षेभ्यः ॥४॥

येन ब्रह्मणा देवा इन्द्रादयः न वियन्ति विमतिं न प्राप्नुवन्ति। नो च नैव च मिथः परस्परं विद्विषते विद्वेषं न कुर्वते। ❀ द्विष अप्रीतौ। अदादित्वात् शपो लुक् ❀। तत् संज्ञानम् समानज्ञाननिमित्तम् ऐकमत्यापादकं ब्रह्म मन्त्रात्मकं सांमनस्यं वः युष्माकं गृहे पुरुषेभ्यः। तादर्थ्ये चतुर्थी। तदर्थं कृण्मः कुर्मः। ❀ कृवि हिंसाकरणयोश्च। "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः। "लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः" इति उकारलोपः ❀ ॥

जिस मन्त्रके प्रभाववश देवता भिन्न मति वाले नहीं होते हैं और परस्पर द्वेष भी नहीं करते हैं। उस समान ज्ञानके कारण अर्थात् एकमतिका सम्पादन करने वाले मन्त्रात्मक सांमनस्यको हम तुम्हारे घरके पुरुषोंके लिये करते हैं॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

ज्याय॑स्वन्तश्चि॒त्तिनो॒ मा वि यौ॑ष्ट संरा॒धय॑न्तः॒ सधु॑रा॒श्चर॑न्तः।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥ ५ ॥

ज्यायस्वन्तः । चित्तिनः । मा । वि । यौष्ट । सम्ऽराधयन्तः । सऽधुराः । चरन्तः ।

अन्यः । अन्यस्मै । वल्गु । वदन्तः । आ । इत । सध्रीचीनान् । वः । सम्ऽमनसः । कृणोमि ॥ ५ ॥

ज्यायस्वन्तः ज्यायस्त्वगुणोपेताः । ज्येष्ठकनिष्ठभावेन परस्परम् अनुसरन्त इत्यर्थः । चित्तिनः समानचित्तयुक्ताः संराधयन्तः समानसंसिद्धिकाः । समानकार्या इत्यर्थः । सधुराः समानकार्योद्वहनाः । ❀ "ऋक्पूरब्धूःपथाम्०" इति अकारः समासान्तः ❀ । इत्थं चरन्तः वर्तमाना यूयं मा वि यौष्ट मा पृथग् भूत । वियुक्ता मा भवतेत्यर्थः । ❀ यु मिश्रणामिश्रणयोरित्यस्मात् माङि लुङि मध्यमबहुवचने रूपम् । इडभावश्छान्दसः ❀ । अन्योन्यस्मै परस्परं वल्गु शोभनं प्रियवाक्यं वदन्तः भाषमाणा यूयम् एत आगच्छत ॥ अहमपि हे जनाः वः युष्मान् सध्रीचीनान् सहाञ्चतः कार्येषु सह प्रवृत्तान् संमनसः समानमनस्कान् कृणोमि करोमि । ❀ सध्रीचीनान् इति । सह अञ्चन्तीति विगृह्य अञ्चतेः "ऋत्विग्०" इत्यादिना क्विन् । "सहस्य सध्रिः" इति सध्र्यादेशः । "विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्" इति स्वार्थिकः खः । ततो भसंज्ञायाम् "अचः" इति अकारलोपे "चौ" इति दीर्घत्वम् ॥

तुम छोटे बड़ेका ध्यान कर वर्ताव करते हुए, समान चित्त रखते हुए, समान कार्य करते हुए अलग न होओ तुम परस्पर शोभन प्रिय बाणी बोलते हुए आओ । हे मनुष्यों ! मैं भी तुमको एकसे कार्योंमें प्रवृत्त होने वाले करता हूँ ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

षष्ठी ॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ ६ ॥

समानी । प्रऽपा । सह । वः । अन्नऽभागः । समाने । योक्त्रे । सह । वः । युनज्मि ।
सम्यञ्चः । अग्निम् । सपर्यत । अराः । नाभिम्ऽइव । अभितः ६

हे सांमनस्यकामाः वः युष्माकं समानी एका प्रपा पानीयशाला भवतु । अन्नभागश्च सहैव भवतु । परस्परानुरागवशेन एकत्रावस्थितम् अन्नपानादिकं युष्माभिरुपभुज्यताम् इत्यर्थः । तदर्थम् अहं वः युष्मान् समाने योक्त्रे एकस्मिन् बन्धने स्नेहपाशे सह युनज्मि बध्नामि ॥ अपि च सम्यञ्चः सङ्गताः एकफलार्थिनो भूत्वा समानज्ञानाः सन्तः अग्निं सपर्यत पूजयत । ❀ सपर पूजायाम् कण्ड्वादित्वाद् यक् ❀ । कथमिव स्थिता इति तत्राह । अरा नाभिमिव अभितः । रथचक्रस्य मध्यच्छिद्रं नाभिः । तस्या अभितो वर्तमाना अराः चक्रावयवाः कीलका नियतस्थानाः परिवेष्ट्य वर्तते । एवम् एकम् अग्निम् अभितो वर्तमानाः परिचरतेत्यर्थः । ❀ "अभितः परितः समया०" इति स्मरणात् तद्योगाद् नाभिम् इति द्वितीया ❀ ॥

हे सांमनस्यकी इच्छा करने वालों ! तुम्हारी एक ही पौ हो और अन्नभाग भी समान ही हो अर्थात् परस्पर अनुरागके कारण तुम एक जगह ही अन्न पान आदिका उपभोग करो इस लिये मैं तुमको एक स्नेहपाशमें साथ २ बाँधता हूँ जैसे अरे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नाभिका आश्रय करके रहते हैं तैसे ही तुम एक ही फलको चाहने वाले बन कर अग्निकी पूजा करो ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु

सध्रीचीनान् । वः । सम्ऽमनसः । कृणोमि । एकऽश्नुष्टीन् ।
सम्ऽवननेन । सर्वान् ।
देवाःऽइव । अमृतम् । रक्षमाणाः । सायम्ऽप्रातः । सौमनसः ।
वः । अस्तु ॥ ७ ॥

सध्रीचीनान् सह प्रवर्तमानान् एककार्यकरणे सहोद्युक्तान् संमनसः समानमनस्कान् वः युष्मान् कृणोमि करोमि ॥ तथा युष्माकम् एकश्नुष्टिम् एकविधं व्यापनम् एकविधस्यान्नस्य भुक्तिं वा करोमि । संवननेन वशीकरणेन अनेन सांमनस्यकर्मणा युष्मान् सर्वान् । वशीकरोमीत्यर्थः ॥ अमृतम् द्युलोकस्थम् अजरामरत्वप्रापकं पीयूषं रक्षमाणाः ऐकमत्येन पालयन्तः देवा [इव] इन्द्रादयो यथा सौमनस्ययुक्ता भवन्ति एवं वः युष्माकं सायंप्रातः एतदुपलक्षिते सर्वस्मिन् काले सौमनसः सौमनस्यं शोभनमनस्कत्वम् [अस्तु] भवतु

इति पञ्चमं सूक्तम्

मैं तुमको एकसा कार्य करनेमें प्रवृत्त और समान मन वाले करता हूँ और तुमको एक प्रकारका अन्न खाने वाला करता हूँ, इसी वशीकरण कर्मके द्वारा तुम सबको मैं वशमें करता हूँ, स्वर्गमें स्थित अजर- अमर करने वाले अमृतकी एक मतसे रक्षा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने वाले इंद्र आदि देवता जैसे शोभन मन वाले रहते हैं, इसी प्रकार सायं प्रातःकाल आदि सब समय तुम्हारा मन शोभन रहे७

पञ्चम सूक्त समाप्त (१०१)॥

"वि देवा जरसा" इति सूक्तेन उपनयनानन्तरम् आयुष्कामस्य माणवकस्य शरीरम् आचार्यः अभिमन्त्रयेत्। तथा च कौशिक सूत्रम्। "वि देवा जरसा [३. ३१] उत देवाः" [४, १३] इत्यादि "विषासहिम् [१७. १] इत्यभिमन्त्रयते ब्राह्मणोक्तम्" इत्यन्तम् [कौ० ७. ६]॥

तथा पितृमेधे दहनानन्तरम् उदकसमीपे एतत् सूक्तं ब्रह्मा जपेत्

तथा आग्रहायणीकर्मणि "उदायुषा" [१०, ११] इति द्वाभ्याम् उत्तिष्ठेत्। सूत्रितं हि। "आग्रहायण्यां पश्चाद् अग्नेर्दर्भेषु" इति प्रक्रम्य "उदायुषेत्यभ्युपोत्तिष्ठति" इति [कौ० ३. ७]॥

तथा सोमक्रयणानन्तरम् "उदायुषा" [१०] इति ब्रह्मा उत्तिष्ठेत्। तथा च वैतानम्। "क्रीते कुरीरं निमृष्णाति। उदायुषेत्युपोत्तिष्ठति" इति [वै० ३. ३]॥

'वि देवा जरसा' इस सूक्तसे उपनयनके अनन्तर ,आयु चाहने वाले बालकके शरीरका आचार्य अभिमंत्रण करे। इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–'वि देवा जरसा (३।३१) उत देवाः (४।१३) इत्यादि "विषासहिम् (१७।१) इत्यभिमन्त्रयते ब्राह्मणोक्तम्" इत्यन्तं (कौशिकसूत्र (७।६)"

तथा पितृमेधमें दहनके अनन्तर जलके समीपमें ब्रह्मा इस सूक्तका जप करे॥

तथा आग्रहायणीकर्ममें "उदायुषा" इन दशवीं और ग्यारहवीं ऋचाओंसे उठे। इसी बातको कौशिकसूत्र ३।७ में कहा है, कि–"आग्रहायण्यां पश्चात् अग्नेर्दर्भेषु" इति प्रक्रम्य "उदायुषेत्यभ्युपोत्तिष्ठति"॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा सोमक्रयणके पीछे 'उदायुषा' इस दशवीं ऋचाको पढ़कर ब्रह्मा उठे । इसी बातको वैतानसूत्र ३ । ३ में कहा है, कि- "क्रीते कुरीरं निमुष्णाति । उदायुषेत्युपेत्तिष्ठति" ॥

तत्र प्रथमा ॥

वि दे॒वा ज॒रसा॑वृत॒न् वि त्वम॑ग्ने॒ अरा॑त्या ।
व्य१॒॑हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥ १ ॥

वि । दे॒वाः । ज॒रसा॑ । अ॒वृ॒त॒न् । वि । त्वम् । अ॒ग्ने॒ । अरा॑त्या ।
वि । अ॒हम् । सर्वे॑ण । पा॒प्मना॑ । वि । यक्ष्मे॑ण । सम् । आयु॑षा १

हे देवा देवौ अश्विनौ इमम् उपनीतं जरसा जरया वयोहान्या व्यवृतम् वियोजयतम् । जॄष् वयोहानौ इत्यस्मात् "षिद्भिदादिभ्योऽङ्" इति अङ् । "जराया जरस् अन्यतरस्याम्" इति जरस् आदेशः ❀ ॥ हे अग्ने त्वमपि अरात्या अदानेन अमित्रेण वा वि योजय ॥ अहं च सर्वेण पाप्मना रोगादिदुःखजनकेन पापेन इमं वि योजयामि । यक्ष्मेण च वि योजयामि । आयुषा चिरकालजीवनेन सं योजयामि ॥

हे अश्विनीकुमार नामक देवताओं ! तुम इस उपनीत बालक को अवस्थाहानिरूप बुढ़ापेसे अलग रखिये । हे अग्ने ! आप भी इसको दानरहितपनेसे और अमित्रोंसे अलग रखिये । और मैं इसको दुःखदायक पापसे अलग करता हूँ यक्ष्मारोगसे मुक्त करता हूँ और दीर्घायुसे संयुक्त करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

व्या॒र्त्या पव॑मानो॒ वि श॒क्रः पा॑पकृ॒त्यया॑ ।
व्य१॒॑हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वि । आर्त्या । पवमानः । वि । शक्रः । पापऽकृत्यया ।

वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा २

पवमानः सर्वत्र संचरन् वायुः आर्त्या रोगादिजनितपीडया वि योजयतु ॥ शक्रः सर्वकार्येषु शक्त इन्द्रः पापकृत्यया । पापस्य कृत्या करणं पापकृत्या । ❀ "कृञः श च" इति भावे क्यप् ❀ । तया ब्रह्मचारिणं वि योजयतु ॥

सर्वत्र विचरण करने वाले वायुदेव इसको रोगजनित पीड़ासे मुक्त करें और सब कार्योंमें समर्थ इन्द्रदेव इस ब्रह्मचारीको पापके करनेसे अलग रक्खें और मैं इसको रोग आदि दुःखको देने वाले पापसे अलग रखता हूँ, राजयक्ष्मारोगसे अलग रखता हूँ और दीर्घायुसे संयुक्त करता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

वि ग्राम्याः पशव आरण्यैर्व्याऽऽपस्तृष्णयासरन् ।
व्यऽहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ३

वि । ग्राम्याः । पशवः । आरण्यैः । वि । आपः । तृष्णया । असरन् ।

वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा

ग्राम्याःग्रामे भवा गोमहिषाद्याः पशवः आरण्यैः अरण्योत्पन्नैः श्वापदादिभिर्दुष्टमृगैः स्वभावतो विगता यथा भवन्ति । यथा च आपः तृष्णया पिपासया व्यसरन् विगता भवन्ति । जलव्यतिरिक्तस्य हि प्राणिजातस्य पिपासा । एवम् अहं सर्वेण पाप्मना ब्रह्मचारिणं विगमयामीत्यर्थः । गतम् अन्यत् ॥

ग्राममें रहने वाले गौ भैंस आदि पशु जैसे जंगलमें रहने वाले मांसभक्षी सिंह आदिसे स्वभावतः अलग रहते हैं और जल-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहित पिलासे प्राणीकी पियाससे जल जैसे अलग होते हैं। इसी प्रकार मैं भी सब पापोंसे ब्रह्मचारीको अलग रखता हूँ यक्ष्मा-रोगसे ब्रह्मचारीको अलग रखता हूँ और दीर्घायुसे सम्पन्न करता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

वी३मे द्यावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशंदिशम् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥४॥

वि । इमे इति । द्यावापृथिवी इति । इतः । वि । पन्थानः । दिशम्ऽदिशम् ।
वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ॥ ४ ॥

इमे परिदृश्यमाने द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ वीतः विगच्छतः स्वभावतो वियुक्ते एव भवतः । दिशंदिशम् एकस्माद् ग्रामात् प्रतिदिशं गच्छन्तः पन्थानः मार्गाः वि यन्ति स्वभावतो विगताः पृथगवस्थाना भवन्ति । यथैवं तथा इमं माणवकं सर्वेण पाप्मना स्वभावतो वियुक्तं करोमि । गतम् अन्यत् ॥

ये द्यावापृथिवी स्वभावतः अलग २ होते हैं, एक ग्रामसे दूसरी दिशाओंको जाने वाले मार्ग भी स्वभावतः अलग अलग ही स्थित होते हैं, इसी प्रकार मैं इस बालकको पापोंसे स्वभावतः अलग करता हूँ, यक्ष्मारोगसे अलग करता हूँ और दीर्घायुसे सम्पन्न करता हूँ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

त्वष्टा । दुहित्रे । वहतुम् । युनक्ति । इति । इदम् । विश्वम् । भुवनम् । वि । याति ।

वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ॥ ५ ॥

त्वष्टा देवो दुहित्रे विवाहकाले स्वदुहितृप्रीत्यर्थं वहतुम् । पुरुषैरुह्यते जामातृगृहं प्राप्यत इति वहतुः । दुहित्रा सह प्रीत्या प्रस्थापनीयं वस्त्रालंकारादि द्रव्यं वहतुशब्देन विवक्षितम् । "मा हिंसिषुर्वहतुम् उह्यमानम्" [१४. २. ६] इत्यादिमन्त्रान्तरप्रसिद्धम् । तद् युनक्ति प्रस्थापयति इति बुद्ध्या तस्य अवकाशं दातुम् इदं विश्वं भुवनम् पृथिव्यन्तरिक्षादिरूपं वि याति परस्परं विगतं भवति । एवम् अहम् इमं माणवकं पाप्मना वियोजयामीत्यर्थः । गतम् अन्यत् ॥

त्वष्टा देवताने अपनी पुत्रीके विवाहके समय दहेज भेजा था (उसको देख कर) उसको जानेके लिये स्थान देनेके लिये यह सारा पृथिवी और अन्तरिक्ष परस्पर अलग होगया था । इसी प्रकार मैं इस बालकको पापसे मुक्त करता हूँ यक्ष्मारोगसे मुक्त करता हूँ और दीर्घायुसे संयुक्त करता हूँ ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ६ ॥

अग्निः । प्राणान् । सम् । दधाति । चन्द्रः । प्राणेन । सम्ऽहितः ।

वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अग्निः अशितपीतपरिणामहेतुः अन्तरवस्थितो जाठररूपः प्राणान् चक्षुरादीन्द्रियाणि अन्नरसप्रापणेन सं दधाति संहितान् संश्लिष्टान् स्वस्वकार्यसमर्थान् करोति। तथा चन्द्रः सोमः प्राणेन प्राणवायुना तदाधारभूतेन मनसा वा संहितः सन् अमृतमयेन रसेन कृत्स्नम् आत्मानं पोषयतीत्यर्थः। "एतावद् वा इदम् अन्नं चैवान्नादश्च सोम एवान्नम् अग्निरन्नादः" इत्यादिश्रुतेः अग्नीषोमात्मकत्वाद् विश्वस्य अत्र तयोरुपादानम्। गतम् अन्यत्॥

खाये पियेको पचाने वाला शरीरके भीतर स्थित जाठराग्नि चक्षु आदि प्राणोंको अन्नका रस प्राप्त करा कर अपने २ कार्य को करनेमें समर्थ करता है, इसी प्रकार चन्द्रमा प्राणवायुसे वा आधारभूतमनसे संहित होकर अमृतमय रससे आत्माका पोषण करता है। मैं इस बालकको सब प्रकारके पापोंसे मुक्त करता हूँ, यक्ष्मारोगसे मुक्त करता हूँ और आयुसे सम्पन्न करता हूँ ६

सप्तमी॥

प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन्।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा॥ ७॥

प्राणेन। विश्वतःऽवीर्यम्। देवाः। सूर्यम्। सम्। ऐरयन्।
वि। अहम्। सर्वेण। पाप्मना। वि। यक्ष्मेण। सम्। आयुषा॥ ७॥

विश्वतः सर्वतो वीर्यम् वीर्यभूतं सूर्यम् सर्वस्य प्राणिजातस्य प्रेरकम् आदित्यं प्राणेन जगत्प्राणरूपेण देवाः समैरयन् सर्वत्र प्रावर्तयन्। "योसौ तपन्नुदेति। स सर्वेषां भूतानां प्राणान् आदायोदेति" [तै० आ० १. १४. १] इत्यादिश्रुतेः। अतस्तादृशं प्राणात्मकं सूर्यं माणवके आयुषोभिवृद्धये संस्थापयामीत्यर्थः॥

सब ओरसे वीर्यरूप सब प्राणियोंके प्रेरक सूर्यदेवको जगत्के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्राणरूपसे देवताओंने प्रवृत्त किया था †। अतः ऐसे प्राणात्मक सूर्यदेवको मैं बालकमें आयुर्वृद्धिके लिये स्थापित करता हूँ, इस बालकको मैं रोगोत्पत्तिके कारण सब पापोंसे अलग करता हूँ, यक्ष्मारोगसे दूर रखता हूँ और दीर्घायुसे सम्पन्न करता हूँ ७ अष्टमी ॥

आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ८॥

आयुष्मताम्। आयुःऽकृताम्। प्राणेन। जीव। मा। मृथाः। वि। अहम्। सर्वेण। पाप्मना। वि। यक्ष्मेण। सम्। आयुषा॥८

आयुष्मताम् प्रशस्तेन दीर्घेण आयुषा तद्वताम् आयुष्कृताम् तादृशस्य आयुषः कर्तृणां देवानां संबन्धिना प्राणेन दृढतरेण चिरकालावस्थायिना प्राणवायुना हे माणवक जीव प्राणान् धारय चिरकालं वर्तस्व। मा मृथाः प्राणान् मा त्याक्षीः। ❀ "म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च" इति आत्मनेपदम्। "ह्रस्वाद् अङ्गात्" इति सिज्लोपः ❀ ॥

आयु वालोंकी प्रशस्त दीर्घायुसे और आयु करने वाले देवताओंके चिरकाल तक स्थिर रहने वाले परम दृढ़ प्राणवायुसे हे बालक! तू प्राणोंको चिरकाल तक धारण कर, प्राणोंको मत त्याग, मैं तुझको सब पापोंसे छुड़ाता हूँ, यक्ष्मारोगसे छुड़ाता हूँ और दीर्घायुसे सम्पन्न करता हूँ ॥ ८ ॥

† तैत्तिरीय आरण्यक १।१४।१ में कहा है, कि—"योऽसौ तपन्नुदेति। स सर्वेषां भूतानां प्राणान् आदायोदेति ॥—यह जो ताप देते हुए सूर्य उदय होते हैं। यह प्राणियोंके प्राणोंको साथ लेते हुए उदित होते हैं" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नवमी ॥

प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ९ ॥

प्राणेन । प्राणताम् । प्र । अन । इह । एव । भव । मा । मृथाः ।
वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा ९

प्राणताम् प्राणनव्यापारं कुर्वतां श्वसतां प्राणिनां सर्वेषां संबन्धिना प्राणेन प्राणवायुना हे माणवक प्राण प्राणनव्यापारं कुरु । ततश्च इहैव अस्मिन्नेव लोके भव वर्तस्व । मा मृथाः मा प्राणांस्त्याक्षीः । यद्वा हे प्राण इहैव माणवके भवेति योज्यम् ॥

प्राणन व्यापार करने वाले सब प्राणियोंके श्वाससे हे बालक ! तू प्राणनका अर्थात् श्वास लेनेका व्यापार कर । इसी लोकमें रह व्यर्थ ही मत मर, मैं तुझे सब पापोंसे छुक्त करता हूँ, यक्ष्मारोगसे छुड़ाता हूँ तथा दीर्घायुसे सम्पन्न करता हूँ॥९॥

दशमी ॥

उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१०॥

उत् । आयुषा । सम् । आयुषा । उत् । ओषधीनाम् । रसेन ।
वि । अहम् । सर्वेण । पाप्मना । वि । यक्ष्मेण । सम् । आयुषा १०

अस्थामेति उपरि वक्ष्यमाणा क्रिया अत्रापि उपसर्गेण संबध्यते । आयुषा जीवनेन चिरकालावस्थानेन वयम् उत् अस्थाम उत्थिता मृत्योरुत्तीर्णा भवाम ॥ तथा तादृशेन आयुषा सम् अस्थाम अस्मिन् लोके सम्यक् स्थिता भवाम । ओषधीनाम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्रीहियवादीनां रसेन आयुष्करेण सारेण उत् अस्थाम उत्थिताः प्रवृद्धा अभूम ॥ स्पष्टम् अन्यत् ॥

हम आयुके प्रभावसे मृत्यसे उत्तीर्ण होते हैं तथा आयके द्वारा हम इस लोकमें स्थित होते हैं और जौ धान आदि औषधियोंके आयुःप्रद रससे हम बढ़ते हैं। मैं सब रोगोंके कारण पापसे तुझको अलग करता हूँ, यक्ष्मारोगसे अलग रखता हूँ और दीर्घायुसे सम्पन्न करता हूँ ॥ १० ॥

एकादशी ॥

आ प॒र्जन्य॑स्य वृ॒ष्ट्योद॑स्थामा॒मृता॑ व॒यम् ।
व्य१॒हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥११॥

आ । प॒र्जन्य॑स्य । वृ॒ष्ट्या । उत् । अ॒स्था॒म॒ । अ॒मृता॑ः । व॒यम् ।
वि । अ॒हम् । सर्वे॑ण । पा॒प्मना॑ । वि । यक्ष्मे॑ण । सम् । आयु॑षा ॥११॥

आ समन्तात् स्थितस्य पर्जन्यस्य वृष्टिकारिणो देवस्य संबन्धिन्या वृष्ट्या जगत्प्राणभूतेन वर्षजलेन वयम् अमृताः मरणरहिता अमृतत्वं प्राप्ताः सन्तः उत् अस्थाम उत्थिता भवाम। ❀ "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति तिष्ठतेर्लुङ्। "गातिस्था०" इति सिचो लुक्। अमृता इति। "नञो जरमरमित्रमृताः" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ❀। व्याहम् इत्यादि व्याख्यातम् ॥

[इति] तृतीये काण्डे षष्ठेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ।

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरश्रीवीरहरिहरमहाराजसाम्राज्यधुरंधरेण
सायणाचार्येण विरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे
तृतीयकाण्डः समाप्तः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम वर्षा करने वाले पर्जन्यदेवके जगत्के प्राणभूत वर्षाजल से अमृतत्वको पाकर उठते हैं। मैं सब रोगोंके कारण पापसे तुझको मुक्त करता हूँ, यक्ष्मारोगसे तुझको मुक्त करता हूँ और दीर्घायुसे तुझको सम्पन्न करता हूँ ॥ ११ ॥

तृतीयकाण्डके छठे अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (१०२) ॥

छठा अनुवाक समाप्त

इति श्री अथर्ववेदसंहिताका तृतीयकाण्ड ऋ० कु०
प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका
सम्पादक ऋ० कु० प० रामचन्द्र
शर्मा कृत सायणभाष्यानुकूल
भाषानुवाद सहित
समाप्त.

तृतीयः काण्डः समाप्तः

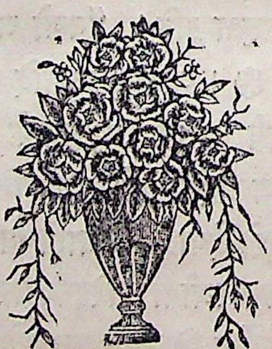

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

॥ श्रीहरिः ॥

अथर्ववेदसंहिता

चतुर्थ-काण्डम्

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योखिलं जगत् ।
निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥ १ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ वेद जिनके निःश्वासरूप हैं और वेदोंसे जिन्होंने सम्पूर्ण जगत्को रचा है, उन विद्यातीर्थ-महेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

चतुर्थे काण्डे अष्टानुवाकाः । तत्र प्रथमेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "ब्रह्म जज्ञानम्" इति आद्यं सूक्तं वेदकल्पाद्यध्ययनादौ विघ्नशमनार्थम् शास्त्रवादादौ प्रतिवादिजयार्थं च जपेत् । सूत्रितं हि । "ब्रह्म जज्ञानम् इत्यध्यायान् उपाकरिष्यन्नभिव्याहारयति प्राशम् आख्यास्यन् ब्रह्मोद्यं वदिष्यन्" इति [कौ० ५. २] ॥

तथा गोपुष्टिकर्मणि गवां रोगशमने च अनेन सूक्तेन लवणम् अभिमन्त्र्य गाः पाययेत् ॥

तथा अनेनैव प्रपातटाकादिस्थम् उदकम् अभिमन्त्र्य गाः पाययेत् ॥

सूत्रितं हि । "ब्रह्म जज्ञानम् [४. १] आ गावः [४. २१] एका च मे [५. १५] इति गा लवणं पाययत्युपतापिनीः प्रजननकामाः । प्रपाम् अवरुणद्धि" इति [कौ० ३. २] ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"ब्रह्म जज्ञानम्" इति आद्या बृहद्गणे पठिता । तस्य बृहद्गणस्य यत्र यत्र विनियोगस्तत्रतत्र अस्या विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा विवाहे चतुर्थिकाकर्मणि "ब्रह्म जज्ञानम्" इत्यनया वरः अंगुष्ठेन प्रजननदेशं तुदति । सूत्रितं हि । "ब्रह्म जज्ञानम् इत्यंगुष्ठेन व्यचस्करोति" इति [कौ० १० ५] ॥

उपाकर्मणि च "ब्रह्म जज्ञानम्" इत्येताम् उपाध्यायो जपेत् । सूत्रितं हि । "अव्यसश्च [१९. ६८] इति जपित्वा सावित्रीं ब्रह्म जज्ञानम् [१] इत्येकाम् इति [कौ० १४. ३] ॥

"ब्रह्म जज्ञानम्" इति द्वाभ्यां प्रवर्ग्ये कर्मणि निधीयमानं महावीरम् अनुमन्त्रयेत । सूत्रितं हि । "ब्रह्म जज्ञानम् [१] इयं पित्र्या [२] इति शस्त्रवद् अर्धर्चश आहावप्रतिगरवर्जम्" इति [वै० ३. ४] ॥

तथा अग्निचयने हिरण्मयरुक्मम् उपधीयमानं "ब्रह्म जज्ञानम्" इत्यनया अनुमन्त्रयेत । उक्तं वैताने । "ब्रह्म जज्ञानम् इति रुक्मं निधीयमानम्" इति [वै० ५. १] ॥

तथा "ब्राह्मीं ब्रह्मवर्चसकामस्य वस्त्रशयनाग्निज्वलने च" [न० क० १७] इति विहितायां ब्राह्म्यां महाशान्तौ "ब्रह्म जज्ञानम्" इति विनियुक्तम् । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "ब्रह्म जज्ञानम् ब्रह्म भ्राजत्" इति [न० क० १८] ॥

तथा तुलापुरुषविधौ "ब्रह्म जज्ञानम्" इति जुहुयात् । तद् उक्तं परिशिष्टे । "अथातस्तुलापुरुषविधिं व्याख्यास्यामः" इति प्रक्रम्य "महाव्याहृतिं सावित्रीं शान्तिं ब्रह्म जज्ञानम् इति हुत्वा" इति [प० ११. १] ॥

चतुर्थ काण्डमें आठ अनुवाक हैं । इनमेंके पहिले अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें 'ब्रह्म जज्ञानम्' इस प्रथमसूक्तका वेदकल्प आदिके अध्ययनके आरम्भमें विघ्नशमनके लिये किये जाने वाले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शास्त्रवादकी आदिमें और प्रतिवादीका जय करनेके लिये भी जप करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"ब्रह्म जज्ञानम् इत्यध्यायान् उपाकरिष्यन्नभिव्याहारयति प्राशं आख्यास्यन् ब्रह्मोद्यं वदिष्यन्" (कौशिकसूत्र ५ । २) ॥

तथा गोपुष्टिकर्ममें और गौओंका रोग शान्त करनेके लिये भी लवणको अभिमंत्रित कर गौओंको पिलावे।

तथा इसी सूक्तसे पौ वा तालाव आदिके जलका अभिमंत्रण करके गौओंको पिलावे ॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"ब्रह्म जज्ञानम् (४ । १) आ गावः (४ । २१) एका मे (५ । १५) इति गा लवणं पाययत्युपतापिनीः प्रजननकामाः । प्रपाम् अवरुणद्धि" (कौशिकसूत्र ३ । २) ॥

"ब्रह्म जज्ञानम्" इस पहिली ऋचाका बृहद्गणमें पाठ है। अत एव बृहद्गणका जहाँ २ विनियोग हो तहाँ सर्वत्र इसका विनियोग करना चाहिये।

तथा विवाहके समय चतुर्थिकाकर्ममें वर 'ब्रह्म जज्ञानम्' इस ऋचाको पढ़ता हुआ अँगूठेसे प्रजननदेशको तुदन करे। सूत्रमें भी कहा है, कि–"ब्रह्म जज्ञानम् इत्यङ्गुष्ठेन व्यचस्करोति" (कौशिकसूत्र १० । ५) ॥

उपाकर्ममें भी उपाध्याय 'ब्रह्म जज्ञानम्' इस ऋचाका जप करे। सूत्रमें भी कहा है, कि–"अव्यसश्च (१९ । ६८) इति जपित्वा सावित्रीं ब्रह्म जज्ञानम्(१)इत्येकाम्"(कौशिकसूत्र१४।३)॥

"ब्रह्म जज्ञानम्" आदि दो ऋचाओंसे प्रवर्ग्यकर्ममें निधीयमान महावीरका अनुमन्त्रण करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"ब्रह्म जज्ञानम् (१) इयं पित्र्या (२) इति शस्त्रवद् अर्धर्चश आहावप्रतिगरवर्जम्" (वैतानसूत्र ३ । ४) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा अग्निचयनमें उपधीयमान हिरण्मय रुक्मका 'ब्रह्म जज्ञानम्' इस ऋचासे अनुमन्त्रण करे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—

तथा—"ब्राह्मीं ब्रह्मवर्चसकामस्य वस्त्रशयनाग्निज्वलने च ॥—ब्रह्मवर्च चाहने वालेके वस्त्र और शयनके अग्निसे जलने पर ब्राह्मी महाशान्तिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ में विहित ब्राह्मी महाशान्तिमें 'ब्रह्म जज्ञानम्'का विनियोग किया जाता है। इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि—"ब्रह्म जज्ञानम् ब्रह्म भ्राजत्"

तथा तुलापुरुषविधिमें "ब्रह्म जज्ञानम्" इस सूक्तसे आहुति देय। इसी बातको अथर्वपरिशिष्टमें कहा है, कि—"अथातस्तुलापुरुषविधिं व्याख्यास्यामः" ॥

तत्र प्रथमा ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥ १ ॥

ब्रह्म। जज्ञानम्। प्रथमम्। पुरस्तात्। वि। सीमतः। सुऽरुचः। वेनः। आवः।
सः। बुध्न्याः। उपऽमाः। अस्य। विऽस्थाः। सतः। च। योनिम्। असतः। च। वि। वः ॥ १ ॥

"सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म" [तै० आ० ८. १] इति त्रय्यन्तप्रसिद्धं सच्चित्सुखात्मकम् अपरिच्छिन्नं सर्वजगत्कारणं यत् परं ब्रह्म तत् पुरस्तात् पूर्वस्मिन् काले सृष्ट्यादौ प्रथमम् प्रथम-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कार्यं हिरण्यगर्भरूपं सूर्यात्मकं जज्ञानम् जातम् उत्पन्नम्। उक्तं हि।

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते

इति। यद्वा उक्तलक्षणं सूर्यात्मकं परं ब्रह्म प्रत्यहं पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि प्रथमं जज्ञानं पूर्वम् आविर्भूतं सत् पश्चात् स्वतेजसा कृत्स्नं जगद् व्याप्नोतीत्यर्थः। अथ वा प्रथमम् मुख्यं सर्वतेजसां प्रधानभूतम्। ❀ जनी प्रादुर्भावे इत्यस्मात् लिट्। "लिटः कानज्वा" इति कानजादेशः। "गमहन०" इति उपधालोपे "द्विर्वचनेचि" इति स्थानिवत्त्वाद् द्विर्वचनम्। "पूर्वाधरावराणाम् असि पुरधवश्चैषाम्" "अस्तीति च" इति पूर्वशब्दात् सप्तम्यर्थे अस्तातिप्रत्ययः तत्संनियोगेन पुर् आदेशश्च ❀। तच्च पूर्वस्यां दिशि प्रादुर्भूतं हैरण्यगर्भं सूर्यात्मकं परमं तेजो वेनः कान्तः मध्यमस्थानः प्रकाशप्रवर्षणादिहेतुर्देवः। ❀ वेनो वेनतेः कान्तिकर्मणः इति निरुक्तम् [नि० १०. ३८] ❀। तत्स्वरूपं "वेनस्तत् पश्यत्" [२. १] इत्यत्र विस्तरेणोक्तम्। स च दीप्यमानः परब्रह्मात्मको वेनः सीमतः सीमभ्यः लोकमर्यादाभ्यो दिक्प्रान्तदेशेभ्यः आरभ्य सुरुचः शोभना दीप्तीः स्वकीयाः सुष्ठु रोचमानान् लोकान् वा व्यावः विवृणोति विशेषेण आवृणोति। प्रभामण्डलेन अन्धतमसं निराकृत्य सर्वं जगत् छादयतीत्यर्थः। ❀ सीमत इति। सीमन्शब्दात् "अपादाने चाहीयरुहोः" इति तसिप्रत्ययः। आवरिति। वृञ् वरणे इत्यस्मात् "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति वर्तमाने लुङ्। "मन्त्रे घस०" इत्यादिना च्लेर्लुक्। हल्ङ्यादिलोपे "छन्दस्यपि दृश्यते" इति आडागमः ❀॥ न केवलं पार्थिवानेव लोकान् आवृणोति आन्तरिक्षानपीत्याह स इति। स च सूर्यात्मको वेनः बुध्न्याः बुध्नम् अन्तरिक्षम् तत्र भवा बुध्न्याः। ❀ "भवे छन्दसि" इति यत् ❀। अस्य कारणभूतस्य ब्रह्मणस्तेजसा उपमाः उपमीयमानाः परिच्छिद्यमाना विष्ठाः विवि-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थम् अवस्थिताः। ईदृशान् आन्तरिक्षानपि लोकान् व्यावरिति संबन्धः। ❀ उपमा इति। "आतश्चोपसर्गे" इति कर्मणि अङ् प्रत्ययः। विष्ठा इति। विपूर्वात् तिष्ठतेः "आतश्चोपसर्गे" इति कर्तरि कः ❀। यद्वा अस्य प्रपञ्चस्य विष्ठाः विविधा अवस्थितीः वियदादिभूतभौतिकात्मिकाः व्यावृणोति। ❀ "आतश्चोपसर्गे" इति भावे अङ्। "उपसर्गात् सुनोति०" इत्यादिना षत्वम् ❀॥ किं बहुना। सतश्च विद्यमानस्य अभिव्यक्तनामरूपप्रपञ्चस्य योनिम् कारणम् असतश्च अव्याकृतावस्थस्य अनभिव्यक्तनामरूपात्मकस्य प्रपञ्चस्य योनिम् कारणभूतां सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिकां मूलप्रकृतिं वि वः विवृणोति व्याप्नोति। ❀ पूर्ववत् लुङ् ❀। यद्वा सच्छब्देन चक्षुर्ग्राह्यं पृथिव्यप्तेजोलक्षणं भूतत्रयम् उच्यते। असच्छब्देन च परोक्षं वाय्वाकाशलक्षणं भूतद्वयम् उच्यते। एतच्च प्रत्यक्षपरोक्षभेदेन द्वैविध्यम् अन्यत्र आम्नातम्। "सच्च त्यच्चाभवत्" [तै० आ० ८. ६] इति॥ एतदुक्तं भवति। उदीरितलक्षणं परं ब्रह्म स्वमायाशक्तिवशेन आदित्यापरपर्यायो वेनो भूत्वा स्वतेजसा भूतभौतिकात्मकं जगत् सकारणकं व्याप्नोतीति॥

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इस तैत्तिरीय आरण्यक ८। १ में प्रसिद्ध सत्–चित्–सुखात्मक अपरिच्छिन्न तथा सब जगत्का कारण जो परब्रह्म है वह पहिले सृष्टिकी आदिमें प्रथमकार्य हिरण्यगर्भरूप सूर्यरूपमें उत्पन्न हुआ है ‡ वह पूर्वदिशामें उदय हुआ हिरण्यगर्भका सूर्यात्मक परम तेज वेन है अर्थात् कान्ति फैलाने वाला है तथा प्रकाश और वर्षाका कारण मध्य-

‡ "स वै शरीरी प्रथमं स वै पुरुष उच्यते। वही प्रथम शरीरधारी है वही पुरुष कहलाते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मस्थानीय देवता है †। वह दमकता हुआ परब्रह्मात्मक वेन (आदित्य) लोकमर्यादाके लिये बाँधी हुई दिशाओंके कोनोंसे लेकर सुन्दर कांति वाले लोकों तकको व्याप्त कर देता है अर्थात् प्रभामण्डलसे अंधकारको दूर कर सब जगत्को छा लेता है। वह केवल पार्थिव लोकोंको ही नहीं छा लेता है, किंतु वह सूर्यात्मक वेन कारणभूत ब्रह्मके तेजसे परिच्छिन्न अनेक प्रकारसे स्थित अन्तरिक्षके लोकोंको और इस प्रपञ्चकी स्थितिके कारण आकाश आदि भूत भौतिक स्थितियोंको व्याप्त कर लेता है। अधिक क्या कहें, सत् अर्थात् विद्यमान प्रकट नाम और रूप प्रपञ्चकी और असत् अर्थात् अप्रकट अवस्थामें स्थित नामरूप वाले प्रपञ्चकी कारण सत्त्वरजस्तमोगुणरूपा मूल-प्रकृतिको भी व्याप्त कर लेता है और सत्—चक्षुसे ग्रहण करने योग्य पृथ्वी जल और तेजरूप तीन भूतोंको तथा असत्—परोक्ष वायु आकाशरूप दो भूतोंको भी व्याप्त कर लेता है +। तात्पर्य यह है, कि—पूर्वोक्त लक्षण वाला परब्रह्म अपनी मायाशक्तिके प्रभावसे आदित्य (वेन) बन कर अपने तेजसे भूत समूह और भूतोंसे बने हुए कारणसहित पूर्ण जगत्को व्याप्त कर लेते हैं १

द्वितीया ॥

इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे

† इसका स्वरूप 'वेनस्तत् पश्यत्' इस द्वितीयकाण्डके प्रथम सूक्तमें विस्तारपूर्वक दिखाया है ॥

+ प्रत्यक्ष और परोक्ष ये भूतोंके दो भेद अन्यत्र भी कहे हैं, कि—"सच्चत्यच्चाभवत्" (तैत्तिरीय आरण्यक ८ । ६) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इयम् । पित्र्या । राष्ट्री । एतु । अग्रे । प्रथमाय । जनुषे । भुवनेऽस्थाः । तस्मै । एतम् । सुऽरुचम् । ह्वारम् । अह्यम् । घर्मम् । श्रीणन्तु । प्रथमाय । धास्यवे ॥ २ ॥

पित्र्या । पिता कृत्स्नस्य जगत उत्पादयिता प्रजापतिः । तत आगता । ❀ "पितुर्यच्च" इति यत् प्रत्ययः ❀ । भुवनेष्ठाः भुवने भूतजाते नादात्मना व्याप्य तिष्ठतीति भुवनेष्ठाः उक्तं हि आचार्यैः शब्दब्रह्मप्रकरणे ।

स तु सर्वत्र संस्यूतो जाते भूताकरे पुनः ।
आविर्भवति देहेषु प्राणिनाम् अर्थविस्तृतः ॥

इति ॥ इयम् परिदृश्यमाना शब्दब्रह्मात्मिका वाग्देवता राष्ट्री । ईश्वरनामैतत् । राज्ञी सर्वजगद्व्यवहारस्य ईश्वरा नियन्त्री प्रथमाय प्रथमशब्दवाच्याय प्रागुक्ताय ब्रह्मणे जनुषे सूर्यात्मना जायमानाय । ❀ जनेरुसिः [उ० २. ११४] इति कर्तरि उसिप्रत्ययः । "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वात् चतुर्थी ❀ । जायमानं प्रथमं मुख्यम् आदित्यात्मकं ब्रह्म अग्रे पूर्वम् एतु । स्तुतिरूपेण व्याप्नोतु । यद्वा इयं भूमिः पित्र्या पितुः कश्यपाद् [आगता राष्ट्री स्वा]श्रितस्य जगतो नियन्त्री प्रथमाय स्वर्गादिभोगयोग्याय जनुषे जन्मने । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । तदर्थम् अग्रे प्रथमम् एतु प्रवर्ग्याधिष्ठानतां प्राप्नोतु । यः प्रवर्ग्यात्मक आदित्यः भुवनेष्ठाः भुवनशब्दवाच्यं लोकत्रयं व्याप्य स्थितः । तस्मै तादृशाय प्रथमाय धास्यवे । धासिरित्यन्ननाम । हविर्लक्षणम् अन्नम् इच्छते देवाय सुरुचम् सुष्ठु रोचमानं ह्वारम् कुटिलं वर्तमानम् । ❀ ह्वृ कौटिल्ये इत्यस्मात् एयन्तात् पचाद्यच् । यद्वा ह्वर्यते कौटिल्येन प्राप्यत इति ह्वारः । कर्मणि घञ् । "कर्षात्वतः०" इति अन्तोदात्तत्वम् ❀ ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अह्यम् । ❀ अहि गतौ ❀ । गन्तव्यं सुकृतविशेषैः प्राप्यम् । यद्वा अहनि भवः अह्यः । ❀ "भवे छन्दसि" इति यत् । "नस्तद्धिते" इति टिलोपः । "अह्नष्टखोरेव" इति नियमस्तु "सर्वे विधय छन्दसि विकल्प्यन्ते" इति प्रवर्तते ❀ । एवं गुणविशिष्टम् एतं घर्मम् प्रवर्ग्यं हविः श्रीणन्तु ऋत्विजः पयसा संस्कुर्वन्तु । यद्वा । ❀ श्रीञ् पाके ❀ । पचन्तु तपन्तु ॥

प्रजापति सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेसे पिता कहलाते हैं उन पितासे आई हुई भुवन भरके प्राणियोंमें नादरूपसे व्याप्त होकर रहने वाली ‡ यह शब्दब्रह्मरूपा वाग्देवता जगत्के सम्पूर्ण व्यवहारोंकी ईश्वरी है यह प्रथमशब्दवाच्य सूर्यरूपसे उत्पन्न हुए ब्रह्मके आगे आवे अर्थात् स्तुतिरूपसे व्याप्त होजावे । अथवा-यह भूमि पिता कश्यपके पाससे आई हुई है और अपने आश्रित जगत्की स्वामिनी है वह प्रथम अर्थात् स्वर्ग आदि भोगके योग्य जन्मके लिये प्रवर्ग्यकी अधिष्ठानताको प्राप्त होवे ॥ जो प्रवर्ग्यात्मक आदित्य तीनों लोकोंमें व्याप्त होकर स्थित हैं, उन पहिले ही हविरूप अन्नको चाहने वाले कुटिलगामी और जिनको पुण्योंसे प्राप्त किया जाता है उन प्रकाशमय सूर्यदेवके लिये ऋत्विज् इस घर्म प्रवर्ग्य हविको दुग्धसे संस्कृत करें ॥२॥

तृतीया ॥

प्र यो ज॒ज्ञे वि॒द्वान॑स्य॒ बन्धु॒र्विश्वा॑ दे॒वानां॒ जनि॑मा विवक्ति ।

---

‡ आचार्योंने कहा भी है, कि-"स तु सर्वत्र संस्यूतो जाते भूताकरे पुनः । आविर्भवति देहेषु प्राणिनां अर्थविस्तृतः ॥- वह वह शब्दब्रह्म सबमें पुरा हुआ है, प्राणिसमूहके प्रकट होने पर उनके अर्थसे विस्तारको प्राप्त होकर वह प्रकट होता है" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ॥ ३ ॥

प्र । यः । जज्ञे । विद्वान् । अस्य । बन्धुः । विश्वा । देवानाम् । जनिम । विवक्ति ।

ब्रह्म । ब्रह्मणः । उत् । जभार । मध्यात् । नीचैः । उच्चैः । स्वधाः । अभि । प्र । तस्थौ ॥ ३ ॥

अस्य प्रपञ्चस्य बन्धुः बन्धकः कारणभूतः यद्वा बन्धुवत् हितकारी विद्वान् निरावरणज्ञानेन सर्वं जगत् जानन् यो देवः प्र जज्ञे प्रथमम् उत्पन्नः । ❀ जनी प्रादुर्भावे इत्यस्मात् लिटि "गमहन०" इति उपधालोपः ❀ । यद्वा । ❀ जानातेर्लिट् ❀ । प्र जज्ञे प्रजानीते । ❀ "आतो लोप इटि च" इति आल्लोपे कृते "द्विर्वचनेचि" इति स्थानिवद्भावात् साच्कस्य द्विर्वचनम् । "यद्वृत्तान्नित्यम्" इति निघातप्रतिषेधः ❀ । स प्रथमजो देवः देवानाम् अन्येषाम् इन्द्रादीनां विश्वा विश्वानि सर्वाणि जनिमा जन्मानि विवक्ति अन्येभ्यः कथयति । ❀ वच परिभाषणे । आदादिकः । छान्दसः शपः श्लुः ❀ । स च ब्रह्मणः कारणभूतात् परब्रह्मणः सकाशात् त्रयीरूपं ब्रह्म मध्यात् मध्यभागात् नीचैः अधोभागात् उच्चैः उपरिभागाच्च उत् जभार उज्जहार उद्धृतवान् । ❀ "हृग्रहोर्भः०" इति भत्वम् ❀ । एवं वेदस्य उद्धरणे सति स्वधाः । अन्ननामैतत् । चरुपुरोडाशहविर्लक्षणानि अन्नानि अभिलक्ष्य अग्न्यादिर्देवः प्र तस्थौ प्राप्तवान् । यद्वा वेदवाक्यविहितानि हवींषि ऋत्विग्भिर्दत्तानि देवान् अभिलक्ष्य प्र तस्थौ प्रतस्थिरे । वचनव्यत्ययः । ❀ "समवप्रविभ्यः स्थः" इति आत्मनेपदाभावश्छान्दसः ❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस प्रपञ्चके बाँधने वाले कारण और बन्धुकी समान इस प्रपञ्च का हित करने वाले तथा आवरणरहित ज्ञानसे सब जगत् को जानने वाले जो देव प्रथम उत्पन्न हुए सबकी बातोंको पहिले ही जानते हैं, वह सूर्यदेव इन्द्र आदि सब देवताओंकी उत्पत्तिको दूसरोंसे कहते हैं, उन सूर्यदेवने कारणभूत परब्रह्मसे त्रयीरूप ब्रह्म अर्थात् वेदका मध्यभागसे और ऊपरके भागसे उद्धार किया। इस प्रकार वेदका उद्धार होने पर चरु पुरोडाश आदि हविरूप अन्न अग्नि आदि देवताओंको प्राप्त हुआ है और वेदवाक्यसे विहित हवि आदि अन्न ऋत्विजोंके देने पर देवताओंको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत् ।

महान् मही अस्कभायद् वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ॥ ४ ॥

सः । हि । दिवः । सः । पृथिव्याः । ऋतऽस्थाः । मही इति । क्षेमम् । रोदसी इति । अस्कभायत् ।

महान् । मही इति । अस्कभायत् । वि । जातः । द्याम् । सद्म । पार्थिवम् । च । रजः ॥ ४ ॥

स हि स खलु सूर्यात्मकः प्रथमजो देवः दिवः द्युलोकस्य ऋतस्थाः कारणभूतं यद् ऋतशब्दवाच्यं परं ब्रह्म तदात्मना स्थितः । तथा स एव पृथिव्याः संबन्धिऋतस्थाः सत्यरूपेण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्थितः । अतो मही महत्यौ रोदसी रोदस्यौ द्यावापृथिव्यौ क्षेमम् अस्कभायत् अविनाशो यथा भवति तथा अस्कभ्नात् स्वस्थाने स्थापितवान् । ❀ स्कन्भुः सौत्रो धातुः गतिप्रतिबन्धे । "स्त-म्भु-स्तुन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च" इति श्नाप्रत्ययः । "शायच् छन्दसि सर्वत्र" इति अहाविपि श्नः शायजादेशः ❀ । एतदेव विवृणोति । महान् अधिकः द्यावापृथिव्यौ व्याप्य वर्तमानः मही महत्यौ द्यावा-पृथिव्यौ अस्कभायत् अस्कभ्नात् ॥ तथा जातः तयोर्मध्ये सूर्या-त्मना प्रादुर्भूतः सन् द्याम् द्युलोकात्मकं सद्म सदनं पार्थिवम् पृथिवी-संबन्धि च रजः लोकम् । ❀ लोका रजांस्युच्यन्ते इति हि या-स्कः [नि० ४, १९] ❀ । स्वतेजसा व्याप्नोद् इत्यर्थः ॥ ❀ पार्थि-वम् इति । "पृथिव्या ञाञौ" इति अञ् प्रत्ययः ❀ ॥

वह सूर्यस्वरूप प्रथम उत्पन्न हुए देव द्युलोकका कारणभूत जो ऋत शब्दसे कहा जाने वाला परब्रह्म तदात्म्यभावसे स्थित हैं तथा वही पृथिवीके सत्यरूपसे स्थित हैं अत एव वह विशाल द्यावापृथिवीमें अविनाशको स्थापित करते हैं (इसीको स्पष्ट करते हैं, कि–) महान् सूर्यदेव द्यावापृथिवीको व्याप्त कर विशाल द्यावा पृथिवीको अपनेमें स्थापित करते हैं और उनके मध्यमें सूर्यरूपसे प्रकट होकर स्वर्ग-लोकरूपी भवनको और पृथिवीलोक को अपने तेजसे व्याप्त करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट् ।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥ ५ ॥

सः । बुध्न्यात् । आष्ट्र । जनुषः । अभि । अग्रम् । बृहस्पतिः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देवता । तस्य । सम्ऽराट् ।

अहः । यत् । शुक्रम् । ज्योतिषः । जनिष्ट । अथ । द्युऽमन्तः ।

वि । वसन्तु । विप्राः ॥ ५ ॥

स परब्रह्मात्मकः प्रथमजो देवः जनुषः जनिमतो लोकस्य बुध्न्यात् । बुध्नं मूलम् । तत्संबन्धिदेशात् रसातलादिलक्षणाद् आरभ्य तस्यैव लोकस्य अग्रम् उपरिभागम् अभिलक्ष्य आष्ट आश्नुत व्याप्नोत् । ❀ अशू व्याप्तौ इत्यस्मात् लुङि ऊदित्त्वाद् इडभावपक्षे "झलो झलि" इति सिचो लोपः ❀ । अपि च देवता । ❀ "देवात् तल्" इति स्वार्थिकस्तल् प्रत्ययः ❀ । देवो दानादिगुणयुक्तो बृहस्पतिः तस्य जनिमतो लोकस्य सम्राट् सम्यक् राजमानोधिपतिः । ❀ संपूर्वाद् राजतेः "सत्सूद्विष०" इत्यादिना क्विप् । "मो राजि समः क्वौ" इति समो मकारस्य मकारवचनाद् अनुस्वाराभावः ❀ । यद्वा तस्य प्रथमजस्य देवस्य प्रसादात् सम्राट् सम्यक् राजमानः अतिशयितदीप्तियुक्तः । वर्तत इत्यर्थः । यत् यदा शुक्रम् दीप्यमानम् अहः ज्योतिषो जनिष्ट द्योतमानात् सूर्याद् उत्पन्नम् अभूत् । अथ अनन्तरं द्युमन्तः दीप्तिमन्तो विप्राः मेधाविन ऋत्विजः वि वसन्तु स्वस्वव्यापारेषु विविधं वर्तन्ताम् । यद्वा विवसतिः परिचरणकर्मा । वि वसन्तु हविर्भिर्देवान् परिचरन्तु ॥

परब्रह्मात्मक प्रथम उत्पन्न हुए सूर्यदेव जन्म लेने वालोंके मूललोक रसातल आदिके आरम्भसे ऊपर तक व्याप्त हो जाते हैं और दान आदि गुणसे सम्पन्न बृहस्पतिदेव इस उत्पन्न होनेवाले लोकके सम्राट् हैं । जब प्रकाशमय दिन प्रकाशमान सूर्यसे प्रकट होवे । तब दीप्तिमय बुद्धिमान् ऋत्विक् अपने २ व्यापारमें प्रवृत्त होवें, हविसे देवताओंकी सेवा करें ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

षष्ठी ॥

नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु ६

नूनम्। तत्। अस्य। काव्यः। हिनोति। महः। देवस्य। पूर्व्यस्य। धाम।
एषः। जज्ञे। बहुऽभिः। साकम्। इत्था। पूर्वे। अर्धे। विऽसिते।
ससन्। नु॥ ६॥

काव्यः। कवय ऋत्विजः। तत्संबन्धी यज्ञः काव्यः। स च अस्य दृश्यमानस्य महः महतः पूर्वस्य सर्वदेवेभ्यः प्रथमम् उत्पन्नस्य [देवस्य] तत् धाम तेजोरूपं मण्डलात्मकं स्थानं नूनम् निश्चयं हिनोति प्रेरयति। उदयाद्रिं प्रापयतीत्यर्थः। ❀ हि गतौ वृद्धौ च इति धातुः ❀॥ एष च सूर्यः बहुभिः सहस्रसंख्याकै रश्मिभिः साकम् सार्धम् इत्था अनेन प्रकारेण पूर्वे पूर्वदिक्संबन्धिनि विषिते विशेषेण संबद्धे अर्धे देशे ससन्। अन्ननामैतत्। हविर्लक्षणम् अन्नम् उद्दिश्य नु क्षिप्रं जज्ञे जायते। उदेतीत्यर्थः। ❀ इत्थेति। "था हेतौ च च्छन्दसि" इति इदमः थाप्रत्ययः ❀॥

ऋत्विजोंसे सम्बन्ध रखने वाला यज्ञ इन देवताओंमें प्रथम उत्पन्न हुए दृश्यमान सूर्यदेवके तेजोमण्डलरूप स्थानको उदयाचल पर भेजता है। यह सूर्यदेव पूर्वदिशासे सम्बन्ध रखने वाले देशमें हविरूप अन्नको लक्ष्यमें रखकर शीघ्र ही उदय होते हैं ६

सप्तमी ॥

योथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात्।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत्
स्वधावान् ॥ ७ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यः । अथर्वाणम् । पितरम् । देवऽबन्धुम् । बृहस्पतिम् । नमसा । अव । च । गच्छात् ।

त्वम् । विश्वेषाम् । जनिता । यथा । असः । कविः । देवः । न । दभायत् । स्वधाऽवान् ॥ ७ ॥

यः देवः बृहस्पतिः अथर्वाणम् प्रजापतिम् । "अथर्वा वै प्रजापतिः" [गो० ब्रा० १. ४] इति श्रुतेः । पितरम् लोकस्योत्पादकं देवबन्धुम् देवानां बन्धुं कारणभूतम् । यद्वा अथर्वाणम् महर्षिं पितरम् अस्माकं पितृभूतं देवबन्धुम् देवा इन्द्रादयो बन्धवो बान्धवा [यस्य] तथाविधं नमसा अन्नेन तथा अव गच्छात् अवगच्छेत् जानीयात् यथा येन प्रकारेण त्वं विश्वेषाम् सर्वेषां स्थावरजङ्गमात्मकानां भावानां जनिता जनयिता असः भवेः । ❀ "जनिता मन्त्रे" इति णिलोपो निपात्यते । अस्तेर्लेटि अडागमः ❀ । कविः क्रान्तदर्शी स देवः बृहस्पतिः स्वधावान् अन्नवान् हविर्लक्षणेन अन्नेन युक्तः सन् न दभायत् न दभ्नोति न हिनस्ति । सर्वम् अनुगृह्णातीत्यर्थः । ❀ दन्भु दम्भे । व्यत्ययेन श्ना । पूर्ववत् शायजादेशः ❀ ॥

[इति] चतुर्थे काण्डे प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

बृहस्पतिदेव देवताओंके बन्धु हैं वह प्रजापति अथर्वा ‡ को नमस्कार और अन्नसे इस प्रकार सम्पन्न समझें, कि-जिस प्रकार तू सब स्थावर जङ्गमोंके भावको उत्पन्न करने वाला हो। वह अतीन्द्रियदर्शी बृहस्पतिदेव हविरूप अन्नसे युक्त होकर हिंसा नहीं करते हैं। सब पर अनुग्रह ही करते हैं ॥ ७ ॥

चतुर्थकाण्डके प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१०३) ॥

‡ गोपथब्राह्मण १ । ४ में कहा है, कि-"अथर्वा वै प्रजापतिः ॥-अथर्वा शब्द प्रजापतिका वाचक है" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"य आत्मदाः" इति सूक्तं वशाशमनकर्मणि शान्त्युदके अनुयोजयेत् । सूत्रितं हि । "य आत्मदा इति वशाशमनम्" इति प्रक्रम्य "शान्त्युदकं करोति तत्रैतत् सूक्तम् अनुयोजयति" इति [कौ० ५. ८] ॥

तथा संज्ञप्ताया वशाया यदि गर्भो दृश्येत तं गर्भम् अञ्जलौ गृहीत्वा सूत्रोक्तप्रकारेण अनेन सूक्तेन जुहुयात् । सूत्रितं हि । "यद्यष्टापदी स्याद् गर्भम् अञ्जलौ सहिरण्यं सयवं वा य आत्मदा इति खदायां त्र्यरत्नावग्नौ सकृज्जुहोति" इति [कौ० ५. ६] ॥

तथा वशाशमनकर्मणि चरुहोमे अवदानहोमे च एतत् सूक्तम् । "य आत्मदा इति वशाशमनम्" [कौ० ५. ८] इति सामान्येन सूत्रितत्वात् ॥

चातुर्मास्ये वरुणप्रघासाख्यपर्वणि "य आत्मदाः" इत्यनया कायम् एककपालं हविरनुमन्त्रयते । उक्तं वैताने । "वारुणं मारुतं कायं वरुणोपां य आत्मदाः" इति [वै २. ४] ॥

अग्निचयने प्राजापत्यपशोरवदानानुमन्त्रणे "य आत्मदाः" इति उक्तं वैताने । "य आत्मदा इत्यवदानानाम्" इति [वै० ५. १]

तत्रैव हिरण्मयपुरुषोपधाने "हिरण्यगर्भः" [७] इत्येषा । तद् उक्तं वैताने । "हिरण्यगर्भ इति हिरण्पुरुषम्" इति [वै० ५. १]

'य आत्मदा' इस सूक्तको वशाशमनकर्मके शान्त्युदकमें अनुयोजन करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"य आत्मदा इति वशाशमनम्" इति प्रक्रम्य "शान्त्युदकं करोति तत्रैतत् सूक्तं अनुयोजयति" (कौशिकसूत्र ५ । ८) ॥

तथा संज्ञप्ता वशाका यदि गर्भ दीखे तो उस गर्भको अञ्जलि में ग्रहण करके सूत्रोक्तरीतिसे इस सूक्तसे आहुति देय । इसी बातको कौशिकसूत्र ५ । ६ में कहा है, कि–"यद्यष्टापदी स्याद्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गर्भ अञ्जलौ सहिरण्यं सयवं वा य आत्मदा इति खदा (ट्वा) यां त्र्यरत्नावग्नौ सकृज्जुहोति" ॥

तथा वशाशमनकर्मके चरुहोममें और अवदानहोममें भी यह सूक्त पढ़ा जाता है क्योंकि—कौशिकसूत्रमें सामान्यरूपसे कहा है कि—"य आत्मदा इति वशाशमनम्"

चातुर्मास्यमें होने वाले वरुणप्रघास नामक पर्वमें 'य आत्मदा' इस ऋचासे काय एककपाल हविका अनुमन्त्रण करे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"वारुणं मारुतं कायं वरुणोपां य आत्मदाः" (वैतानसूत्र २। ४) ॥

अग्निचयनमें प्राजापत्य पशुके अवदानानुमन्त्रणमें 'य आत्मदा' सूक्त आता है। इसी बातको वैतानसूत्र ५। १ में कहा है, कि—"य आत्मदा इत्यवदानानाम्" ॥

तहाँ ही हिरण्मय पुरुषके उपधानके समय 'हिरण्यगर्भः' यह सातवीं ऋचा पढ़ी जाती है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—'हिरण्मयगर्भ इति हिरण्यपुरुषम्' (वैतानसूत्र ५। १) ॥

द्वितीयसूक्ते प्रथमा ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम

यः। आत्मऽदाः। बलऽदाः। यस्य। विश्वे। उपऽआसते। प्रऽशिषम्। यस्य। देवाः।

यः। अस्य। ईशे। द्विऽपदः। यः। चतुःऽपदः। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यः प्रजापतिः आत्मदाः सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः आत्मानं ददातीति आत्मदाः । प्राणप्रद इत्यर्थः । बलदा बलस्य प्रदाता । ❀ "आतो मनिन्०" इति उभयत्रापि विच् प्रत्ययः ❀ । विश्वे सर्वे प्राणिनः यस्य देवस्य प्रशिषम् प्रकृष्टं शासनम् आज्ञाम् उपासते भजन्ते । ❀ आस उपवेशने । अदादित्वात् शपो लुक् । अनुदात्तेत्वात् लसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वरः । "यद्वृत्तान्नित्यम्" इति निघाताभावः । "तिङि चोदात्तवति" इति गतेरनुदात्तत्वम् । प्रशिषम् इति । "क्वौ च शासः" इति क्विबन्तस्य शास उपधाया इत्वम् । "शासिवसिघसीनां च" इति षत्वम् ❀ । तथा यस्य देवस्य प्रशासनं देवा अपि उपासते । यो देवः द्विपदः पादद्वययुक्तस्य अस्य प्राणिजातस्य मनुष्यादेः ईशे ईष्टे । ❀ "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः । पूर्ववत् लसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वरः ❀ । तथा चतुष्पदः पादचतुष्टयोपेतस्य गोमहिषादेः प्राणिनः यः ईष्टे तस्मै कस्मै । इदम् ईदृग् इत्यनिरुक्तरूपत्वात् किंशब्दवाच्याय प्रजापतये देवाय । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वात् चतुर्थी ❀ । ईदृशं देवं हविषा विधेम परिचरेम । ❀ विधतिः परिचरणकर्मा । द्विपद इति । द्वौ पादावस्येति विगृह्य समासे "संख्यासुपूर्वस्य" इति पादशब्दान्त्यलोपः । ततो ङसि भसंज्ञायां "पादः पत्" इति पद्भावः । "द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु०" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । चतुष्पद इत्यस्यापि रूपसिद्धिरेवमेव । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं विशेषः ❀ ॥

जो प्रजापति आत्मदा हैं अर्थात् सब प्राणियोंको बल देते हैं और सब प्राणी उनकी श्रेष्ठ आज्ञाका पालन करते हैं और जिनके शासनकी देवता भी उपासना करते हैं और जो देवता, दो पैर वाले मनुष्य आदि पर शासन करते हैं और जो चार पैर वाले गौ भैंस आदि पर भी शासन करते हैं उन प्रजापति-देवकी हम हविसे सेवा करते हैं ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वितीया ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम

यः। प्राणतः। निऽमिषतः। महिऽत्वा। एकः। राजा। जगतः। बभूव। यस्य। छाया। अमृतम्। यस्य। मृत्युः। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम ॥ २ ॥

यः प्रजापतिः महित्वा। ❀ तृतीयाया आकारः ❀। महित्वेन माहात्म्येन प्राणतः प्रश्वसतः श्वासोच्छ्वासव्यापारं कुर्वतः। ❀ श्वस प्राणने अन च इति धातुः। लटः शत्रादेशे अदादित्वात् शपो लुक् ❀। निमिषतः निमेषणम् अक्षिपक्ष्मपरिस्पन्दलक्षणं व्यापारं कुर्वतः। ❀ मिष स्पर्धायाम्। अत्रापि पूर्ववत् शतरि तुदादित्वात् शः। उभयत्र "शतुरनुमः०" इति षष्ठ्या उदात्तत्वम् ❀। एवंभूतस्य जगतः जङ्गमस्य प्राणिजातस्य एकः असाधारणो राजा अधिपतिः बभूव भवति। ❀ "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति सार्वकालिको लिट् "लिति" इति प्रत्ययात् पूर्वस्य उदात्तत्वम् ❀। यस्य देवस्य अमृतम् मरणाभावोपलक्षितम् अमृतत्वं छायेव स्वाधीनं वर्तते। मृत्युः मरणं सर्वजनसंबन्धि छायेव यस्य वशे वर्तते। ❀ अमृतम् इति। "नञो जरमरमित्रमृताः" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ❀। कस्मै देवायेत्यादि व्याख्यातम् ॥

जो प्रजापति देवता अपने माहात्म्यके कारण श्वास उच्छ्वास करने वाले, पलक मारने वाले जङ्गम प्राणियोंके बड़े अधिपति हैं और मरणके अभावका साधनरूप अमृत छायाकी समान जिन देवताके अधीन है और सब प्राणियोंका मरण भी जिनके अधीन है उन प्रजापति देवकी हम हविसे सेवा करते हैं ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तृतीया ॥

यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेथाम् ।
यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

यम् । क्रन्दसी इति । अवतः । चस्कभाने इति । भियसाने इति । रोदसी इति । अह्वयेथाम् ।
यस्य । असौ । पन्थाः । रजसः । विऽमानः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ ३ ॥

क्रन्दसी क्रन्दन्ति क्रोशन्ति अनयोराश्रिता जना इति क्रन्दसी द्यावापृथिव्यौ । ❀ क्रदि क्लदि आह्वाने रोदने च इति धातुः । अधिकरणे असुन् प्रत्ययः ❀ । अवतः । अवनम् अवः । ❀ "घञर्थे कविधानम्" इति भावे कः ❀ । अवनात् जगद्रक्षणाद्धेतोः चस्कभाने संस्तभ्यमाने । यथा अधो न पततस्तथा निराधार-प्रदेशे देवेन धार्यमाणे इत्यर्थः । ❀ स्कन्भेश्छान्दसो लिट् । "लिटः कानज्वा" इति तस्य कानजादेशः ❀ । भियसाने अधः पतनाद् बिभ्यत्यौ । ❀ ञिभी भये इत्यस्माद्ध औणादिकः असानच् प्रत्ययः ❀ । रोदसी रोदस्यौ द्यावापृथिव्यौ । यस्माद् अनयोर्मध्ये वर्तमानः प्रजापतिः अरोदीत् तस्माद्ध रोदिति अनयोरिति व्युत्पत्त्या रोदसी इति द्यावापृथिव्योर्नाम संपन्नम् । तथा च तैत्तिरीयकम् । "सोरोदीत् प्रजापतिः" इति प्रक्रम्य "यद् अरोदीत् तद् अनयो रोदस्त्वम्" [तै० ब्रा० २. २. ९. ४] इति । ईदृश्यौ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्यावापृथिव्यौ आत्मरक्षणार्थं यं देवम् आह्वयेताम् । यस्य देवस्य संबन्धी असौ द्युलोकस्थः पन्थाः मार्गो रजसः उदकस्य वृष्टिलक्षणस्य विमानः विशेषेण निर्माता तस्मै । कस्मा इत्यादि गतम् ॥

जिनके आश्रयमें रहने वाले प्राणी क्रन्दन करते हैं वे क्रन्दसी कहाने वाले द्यावापृथिवी जिन देवताकी रक्षाके प्रभावसे स्तंभित होकर नीचे नहीं गिरते हैं । नीचे गिरनेकी आशंकासे डरते हुए इन द्यावापृथिवीके बीचमें वर्तमान प्रजापति रोये अत एव इन द्यावापृथिवीका नाम रोदसी पड़गया है । † ऐसे द्यावापृथिवीने आत्मरक्षाके लिये जिन देवताको पुकारा है और जिस देवताका द्युलोकमें स्थित मार्ग वृष्टिके जलको प्रकृष्टरूपसे बनाने वाला है उन प्रजापति देवकी हम हविसे सेवा करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्व१न्तरिक्षम् ।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

यस्य । द्यौः । उर्वी । पृथिवी । च । मही । यस्य । अदः । उरु । अन्तरिक्षम् ।

---

† इसी बातको तैत्तिरीयकमें कहा है, कि—"सोरोदीत् प्रजापतिः" इति प्रक्रम्य "यद् अरोदीत् तत् अनयोरोदस्त्वम् ॥—अर्थात् वह प्रजापति रोये इसका आरम्भ करके कहा है, कि—जो रोये यही इन द्यावापृथिवीका रोदस्त्व है" (तैत्तिरीयब्राह्मण २ । २ । ६ । ४) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यस्य । असौ । सूरः । विऽततः । महिऽत्वा । कस्मै । देवाय ।

हविषा । विधेम ॥ ४ ॥

यस्य देवस्य महित्वा महित्वेन माहात्म्येन द्यौः उर्वी विस्तीर्णा जाता । ❀ उरुशब्दाद् "वोतो गुणवचनात्" इति ङीष् ❀ । पृथिवी च यस्य महिम्ना मही महती विस्तीर्णा जाता । यस्य च माहात्म्येन अदः एतद् अन्तरिक्षम् उरु विस्तीर्णम् अभवत् । असौ द्युलोके प्रत्यक्षं दृश्यमानः सूरः सूर्यः यस्य ब्रह्मणो महिम्ना विततः विस्तीर्णो जातः तस्मै । कस्मा इत्यादि समानम् ॥

जिन देवताके माहात्म्यसे द्यौ (स्वर्गलोक) विस्तृत हुआ है और जिनकी महिमासे पृथ्वी विस्तृत हुई है मही हुई है और जिनके माहात्म्यसे यह अन्तरिक्ष विस्तृत हुआ है और यह द्युलोकमें प्रत्यक्ष दीखते हुए सूर्यदेव जिन ब्रह्मदेवकी महिमासे विस्तृत हुए हैं उन प्रजापतिकी हम हविसे सेवा करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ५

यस्य । विश्वे । हिमऽवन्तः । महिऽत्वा । समुद्रे । यस्य । रसाम् ।

इत् । आहुः ।

इमाः । च । प्रऽदिशः । यस्य । बाहू इति । कस्मै । देवाय ।

हविषा । विधेम ॥ ५ ॥

यस्य प्रजापतेर्देवस्य महित्वा महिम्ना विश्वे सर्वे हिमवन्तः हिमवत्पर्वतोपलक्षिता महागिरयः संजाताः । यस्य च महिम्ना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समुद्रे उदधौ । रसाम् रसोस्याम् अस्तीति रसा नदी । ❀ अर्श-आदित्वाद् अच् ❀ । रसति शब्दायत इति वा रसा । ❀ पचाद्यच् । रसा नदी भवति रसतेः शब्दकर्मणः इति यास्कः । [नि० ११. २५] जातावेकवचनम् । इच्छब्दः अवधारणे ❀ । सर्वा नदीः अन्तर्भूता एव आहुः ब्रुवन्ति । समुद्रा नद्यश्च यस्य विभूतिरूपा इत्यर्थः । इमाश्च प्रदिशः प्रधानभूताश्चतस्रो दिशः यस्य देवस्य बाहू बाहुभूताः तस्मै । कस्मा इत्यादिगतम् ॥

जिन प्रजापतिदेवकी महिमासे यह सम्पूर्ण हिमवान् आदि पर्वत उत्पन्न हुए हैं और जिनकी महिमासे समुद्रमें नदी होती हैं अर्थात् समुद्र और नदियें जिनकी विभूतिरूप हैं और ये चार प्रधान दिशायें जिन देवताकी भुजारूप हैं उन प्रजापतिदेवकी हम हविके द्वारा सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

आपो अग्रे विश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः ।
यासु देवीष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम

आपः । अग्रे । विश्वम् । आवन् । गर्भम् । दधानाः । अमृताः ।
ऋतऽज्ञाः ।
यासु । देवीषु । अधि । देवः । आसीत् । कस्मै । देवाय ।
हविषा । विधेम ॥ ६ ॥

अग्रे सृष्ट्यादौ सृष्टा आपः विश्वम् कृत्स्नं जगत् कारणरूपेण अवस्थितम् आवन् अरक्षन् उपचितम् अकुर्वन् । किं कुर्वत्यः । गर्भम् विश्वजगद्विधानाय गर्भरूपेण अवस्थितं हिरण्यगर्भं दधानाः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धारयन्त्यः अमृताः अविनाशा ऋतज्ञाः । ऋतं सत्यं जगत्कारणं ब्रह्म । ब्रह्म जानानाः । स्मर्यते हि ।

अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यम् अवाकिरत् ।
तद् अण्डम् अभवद्धैमम्

इति [म० स्मृ० १. ९] । ❀ दधाना इति । "अभ्यस्तानाम् आदिः" इति आद्युदात्तत्वम् । ऋतज्ञा इति । ज्ञा अवबोधने । "आतोनुपसर्गे कः" इति कः ❀ । यासु अप्सु देवेषु लिङ्गव्यत्ययः । देवीषु देवतारूपासु देवः गर्भभूतः अध्यासीत् । अधिकम् अवर्धतेत्यर्थः । ता आप इति संबन्धः । तस्मै अपां गर्भभूताय । कस्मा इत्यादि ॥

सृष्टिकी आदिमें रचे हुए, जलोंने कारणरूपसे स्थित जगत्की रक्षा की (उसकी रीति यह है, कि-) सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेके लिये गर्भरूपसे स्थित हिरण्यगर्भको धारण करते हुए और ऋत अर्थात् जगत्के कारण ब्रह्मको जानते हुए इन्होंने जगत्की रक्षा की । जिन देवीरूप जलोंमें हिरण्यगर्भ गर्भरूपसे बढ़े थे ‡ उन जलोंके गर्भभूत प्रजापतिकी हम हविसे सेवा करते हैं ॥ ९ ॥

सप्तमी ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम

‡ मनुस्मृति १ । ९ में भी कहा है, कि-"अप एव ससर्जादौ तासु वीर्य अवाकिरत् । तदण्डमभवद्द द्वैधम् ॥-पहिले जलकी ही रचना की और उनमें वीर्यको स्थापित किया वह अंड दो टुकड़े होगया" ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिरण्यऽगर्भः । सम् । अवर्तत । अग्रे । भूतस्य । जातः । पतिः । एकः । आसीत् ।

सः । दाधार । पृथिवीम् । उत । द्याम् । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ ७ ॥

[हिरण्यगर्भः] हिरण्यस्य हिरण्मयस्याण्डस्य गर्भः गर्भवद् अन्तरवस्थितः अग्रे सर्वजगत्सृष्टेः प्राक् सम्वर्तत उदपद्यत । स च जातः सन् भूतस्य सत्तया प्रतिभासमानस्य प्रपञ्चस्य एकः असाधारणः पतिः ईश्वर आसीत् । स्मर्यते हि ।

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ।
आदिगर्भः स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत

इति । स च पृथिवीम् इमां भूमिम् । उतशब्दः समुच्चये । द्याम् दिवं च दाधार धृतवान् । पृथिव्याद्युपलक्षितं कृत्स्नं जगत् सृष्टवान् इत्यर्थः ॥ गतम् अन्यत् ॥

हिरण्मय अंडेके भीतर गर्भकी समान स्थित हिरण्यगर्भ संपूर्ण सृष्टिसे पहिले उत्पन्न हुए वह उत्पन्न होकर सत्ता (विद्यमान) रूपसे भासमान प्रपञ्चके असाधारण स्वामी हुए † । उन्होंने इस पृथिवीको और स्वर्गको भी धारण किया उन प्रजापतिदेवकी हम हविसे सेवा करते हैं ॥ ७ ॥

† स्मृतिमें भी कहा है, कि--"स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते । आदिगर्भः स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥--वही प्रथम शरीरधारी हुए वही पुरुष कहलाते हैं, वह प्राणियोंके आदिगर्भ हैं वह ब्रह्माजीसे पहिले हुए"।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अष्टमी ॥

आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन् ।
तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥

आपः । वत्सम् । जनयन्तीः । गर्भम् । अग्रे । सम् । ऐरयन् ।
तस्य । उत । जायमानस्य । उल्बः । आसीत् । हिरण्ययः ।
कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ ८ ॥

ईश्वरेण प्रथमसृष्टा आपः वत्सम् पुत्रभूतं हिरण्यगर्भं जनयन्तीः । ❀ हेतौ शतृप्रत्ययः ❀ । उत्पादनाद्धेतोः अग्रे ततः प्राकाले गर्भं समैरयन् । ईश्वरेण विसृष्टं वीर्यं गर्भाशयं प्रापयन् । तस्य गर्भीभूतस्य हि जायमानस्य हिरण्यगर्भाख्यस्य प्रजापतेः । उतशब्दः अप्यर्थे । स च भिन्नक्रमः । उल्बोपि । गर्भवेष्टनः पट उल्बशब्दवाच्यः । सोपि हिरण्ययः हिरण्मयः सुवर्णमय एवासीत् । "तद् अण्डम् अभवद्धैमम्" इति प्रागुक्तहिरण्मयाण्डाभिप्रायम् एतत् । ❀ "ऋत्व्यवास्त्व्य०" इत्यादिना हिरण्यशब्दो निपातितः ❀ ॥ कस्मा इत्यादि व्याख्यातम् ॥

[इति] चतुर्थकाण्डे प्रथमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

ईश्वरके द्वारा पहिले रचे हुए जलोंने उत्पन्न करनेके लिये ईश्वरके छोड़े वीर्यको गर्भाशयमें प्राप्त कराया, उन गर्भरूप हुए उत्पन्न होने वाले हिरण्यगर्भ नामक प्रजापतिका उल्व (अर्थात् गर्भको ढकने वाली–झिल्ली–अण्डा) भी सुवर्णमय था । उन प्रजापतिकी हम हविसे सेवा करते हैं ॥ ८ ॥

चतुर्थकाण्डके प्रथम अनुवाकमें दूसरा सूक्त समाप्त (१०४) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"उदितस्त्रयो अक्रमन्" इति सूक्तेन गवादीनां व्याघ्रचोरादि-भयनिवृत्त्यर्थं खादिरं शङ्कुं संपात्य अभिमन्त्र्य तेन गोसंचार-भूमिं लिखन् गा अनुव्रजेत् ॥

तथा अनेन उदघटम् अभिमन्त्र्य गोप्रचारदेशे निनयेत् । ततः पांसुकूटं तत्र कृत्वा अर्धं दक्षिणहस्तेन विक्षिपेत् ॥

एवमेव अनेन सूक्तेन सारूपवत्सम् ओदनम् इन्द्राय त्रिर्जुहुयात् ॥

सूत्रितं हि । "उदित इति खादिरं शङ्कुं संपातवन्तम् उद्गृह्णन् लिखन् गा अनुव्रजति" इत्यादि [कौ० ७. २]

"उदितस्त्रयो अक्रमन्" इस सूक्तसे गौओंके चोर व्याघ्र आदि के भयको दूर करनेके लिये खैरके खूँटेका संपातन और अभिमंत्रण करके उससे गोसञ्चार भूमिको कुरेदता हुआ गौओंके पीछे जावे ॥

तथा इस सूक्तसे जलपूर्ण कलशका अभिमन्त्रण करके गौओं के विचरनेके स्थानमें ले जावे । तथा तहाँ धूलका ढेर बना कर उसका आधा करे और उस आधेको दाहिने हाथसे बखेर देय ॥

इसी प्रकार इस सूक्तसे सारूपवत्स ओदनको तीन वार होमे ॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"उदित इति खादिरं शङ्कुं सम्पातवन्तं उद्गृह्णन् लिखन् गा अनुव्रजति" (कौशिक-सूत्र ७ । २) ॥

तत्र प्रथमा ॥

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः ।

हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो हिरुग् देवो वनस्पतिर्हिरुङ्-

मन्तु शत्रवः ॥ १ ॥

उत् । इतः । त्रयः । अक्रमन् । व्याघ्रः । पुरुषः । वृकः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिरुक् । हि । यन्ति । सिन्धवः । हिरुक् । देवः । वनस्पतिः ।

हिरुक् । नमन्तु । शत्रवः ॥ १ ॥

व्याजिघ्रति विशिष्टाघ्राणमात्रेण प्राणिनो हन्तीति व्याघ्रः । ❀ घ्रा गन्धोपादाने इत्यस्मात् "आतश्चोपसर्गे" इति कप्रत्ययः ❀। तथा पुरुषः चोरः । "परमेणोत तस्करः" इति उत्तरत्र तस्यैवानुकीर्तनात् । वृकः अरण्यश्वा प्राणिनां घातकः एते त्रयः इतः अस्मात् स्थानात् उदक्रमन् उदक्रामन् उत्क्रान्ता उत्थिता अभवन् । यद्वा इतः अस्मात् स्थानात् उदक्रमन् उत्थाय पलायन्ताम् । ❀ "क्रमः परस्मैपदेषु" इति दीर्घाभावश्छान्दसः ❀ । ते यथा हिरुक् । अन्तर्हितनामैतत् । अन्तर्हिता भवन्ति तथा सिन्धवः स्यन्दनशीला नद्यः यन्ति गच्छन्ति । हिशब्दः प्रसिद्धौ । यद्वा यथा हि सिन्धवो हिरुक् अन्तर्हिता गूढाशया यन्ति प्रवहन्ति तथा व्याघ्रादयो अन्तर्हिताः । दृग्गोचरा न भवन्तु इत्यर्थः ॥ तथा वनस्पतिः वनानां पतिः अधिष्ठाता देवः तत्र अन्तर्हितो वर्तते तद्वद् व्याघ्रादयोपि हिरुक् अन्तर्हिता भवन्तु । ❀ वनस्पतिरिति । पारस्करादित्वात् सुट् । "उभे वनस्पत्यादिषु०" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । अपि च व्याघ्रादीनां ये शत्रवः विरोधिनः सन्ति ते तान् व्याघ्रादीन् हिरुक् नमन्तु अन्तर्हितान् कुर्वन्तु । यद्वा शातनशीलास्ते व्याघ्रादयः अन्तर्हिताः सन्तः प्रह्वा भवन्तु ॥

विशिष्ट घ्राणसे ही प्राणियोंको मारने वाला व्याघ्र, चोर पुरुष और भेड़िया ये तीनों इस स्थानसे उठ कर भाग जावें । जैसे नदियें गूढ़ाशय वाली अन्तर्हित होकर वहती हैं, इसी प्रकार व्याघ्र आदि अन्तर्हित होजावें, दृष्टिगोचर न होवें और वनस्पतियोंके अधिष्ठाता देव तहाँ अन्तर्धान होकर रहते हैं इसी प्रकार व्याघ्र आदि भी अन्तर्धान होकर रहें और व्याघ्र आदि के जो शत्रु हैं वे उनको अन्तर्धान करें ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वितीया ॥

परे॑णैतु प॒था वृक॑: पर॒मेणो॒त तस्क॑रः ।
परे॑ण द॒त्वती॒ रज्जु॒: परे॑णाघा॒युर॑र्षतु ॥ २ ॥

परे॑ण । ए॒तु । प॒था । वृक॑: । प॒र॒मेण॑ । उ॒त । तस्क॑रः ।
परे॑ण । द॒त्वती॑ । रज्जु॑: । परे॑ण । अ॒घ॒ऽयुः । अ॒र्ष॒तु ॥ २ ॥

परेण अस्मत्संचारमार्गाद् अन्येन पथा वृकः अरण्यश्वा एतु गच्छतु । उतशब्दः अप्यर्थे । तस्करः चोरोपि परमेण ततोपि दूरतरेण मार्गेण गच्छतु । ❀ "दिवाविभा०" इत्यादिना तच्छब्दोपपदे करोतेष्टः । "तद्बृहतोः करपत्योः०" इति चोरेभिधेये सुट् तलोपः ❀ । दत्वती दन्तवती रज्जुः रज्ज्वाकृतिः सर्पः परेण अन्येन मार्गेण गच्छतु । ❀ दन्ता अस्याः सन्तीति मतुपि "पद्दन्०" इत्यादिना दन्तशब्दस्य दद्भावः ❀ । तथा अघम् पापं हिंसनं परेषाम् इच्छतीति अघायुः । ❀ "छन्दसि परेच्छायामपि" इति क्यच् । "अश्वाघस्यात्" इति आत्वम् । "क्याच्छन्दसि" इति उप्रत्ययः ❀ । य एवंविधः अन्योपि हिंस्रः प्राणी अस्मत्संचरणप्रदेशे विद्यते सोपि परेण अन्येन पथा अर्षतु गच्छतु । ❀ ऋषी गतौ इति धातुः ❀ ॥

जंगली कुत्ता भेड़िया जिस मार्गमें हम विचरण करते हैं उस से अन्य मार्गमें जावे चोर उससे भी दूरके मार्गमें जावे । और जिसके दाँत वाली रज्जु है वह सर्प अन्यमार्गसे जावे तथा दूसरों का मरना रूप पापको चाहने वाला अघायु शत्रु तथा इसी प्रकार के अन्य हिंसक प्राणी भी अन्य मार्गसे जावें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अ॒क्ष्यौ॑ च ते॒ मुखं॑ च ते॒ व्याघ्र॑ जम्भयामसि ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ॥ ३ ॥

अक्ष्यौ । च । ते । मुखम् । च । ते । व्याघ्र । जम्भयामसि ।

आत् । सर्वान् । विंशतिम् । नखान् ॥ ३ ॥

हे व्याघ्र ते तव अक्ष्यौ अक्षिणी च मुखं च आस्यं च जम्भयामसि जम्भयामः । ❀ जभि नाशने । "इदन्तो मसिः" ❀ ॥ [आत्] अनन्तरं विंशतिम् विंशतिसंख्याकान् पादचतुष्टये पञ्चशोवस्थितान् सर्वान् नखान् विनाशयामः । ❀ "पङ्क्तिविंशति॰" इत्यादिना निपातितो विंशतिशब्दः । संख्येयानां बहुत्वेपि विंशतिसंख्याया एकत्वात् तदभिप्रायेण एकवचनम् ❀ ॥

हे व्याघ्र ! हम तेरे नेत्र और मुखको नष्ट करते हैं फिर तेरे चारों पैरोंमें स्थित बीस नाखूनोंको नष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थी ॥

व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि ।
आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥ ४ ॥

व्याघ्रम् । दत्वताम् । वयम् । प्रथमम् । जम्भयामसि ।

आत् । ऊं इति । स्तैनम् । अथो इति । अहिम् । यातुऽधानम् ।

अथो इति । वृकम् ॥ ४ ॥

दत्वताम् दन्तवतां खादनशीलानां हिंस्राणां मध्ये व्याघ्रम् शार्दूलं प्रथमं वयं जम्भयामसि जम्भयामः नाशयामः । आदु अनन्तरमेव स्तेनम् तस्करं जम्भयामः ॥ अथो अनन्तरमेव अहिम् सर्पं यातुधानम् यत्तरत्तःप्रभृतिग्रहं वृकम् सालावृकं च नाशयामः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दाँत वाले हिंसक जीवोंमेंसे पहिले हम व्याघ्रको नष्ट करते हैं फिर चोरको नष्ट करते हैं उसके पीछे ही हम सर्पको राक्षस और भेड़ियेको नष्ट करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति ।

पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ॥ ५ ॥

यः । अद्य । स्तेनः । आऽअयति । सः । सम्ऽपिष्टः । अप । अयति । पथाम् । अपऽध्वंसेन । एतु । इन्द्रः । वज्रेण । हन्तु । तम् ॥५॥

अद्य इदानीं यः स्तेन चोरः आयति आगच्छति । ❀ अय पय गतौ ❀ । स चोरः संपिष्टः अस्माभिश्चूर्णीकृतः सन् अपायति अपगच्छति । अपक्रामतु इत्यर्थः । स च पथाम् मार्गाणां मध्ये ध्वंसेन ध्वंसकेन कष्टेन मार्गेण अप एतु अपगच्छतु । तादृशेन मार्गेण अपगच्छन्तं तम् इन्द्रो देवः वज्रेण स्वकीयेन आयुधेन हन्तु हिनस्तु ॥

इस समय जो चोर आरहा है वह हमसे पिट कुट कर चूर्ण होकर भाग जावे और वह कष्ट देने वाले मार्गसे भागे और ऐसे मार्गसे भागने पर इन्द्रदेव उसको अपने वज्र नामक आयुधसे मार डालें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः ।

निम्रुक् ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ॥६॥

मूर्णाः । मृगस्य । दन्ताः । अपिऽशीर्णाः । ऊं इति । पृष्टयः । निऽम्रुक् । ते । गोधा । भवतु । नीचा । अयत् । शशयुः । मृगः ६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मृगस्य हिंस्रस्य व्याघ्रादेः दन्ताः मूर्णाः मूढाः खादनसमर्था न भवन्तु । ❀ मुर्छा मोहसमुच्छ्राययोः इत्यस्माद् निष्ठा । "राल्लोपः" इति छकारलोपः । "रदाभ्याम्०" इति निष्ठानत्वम् । "न ध्याख्यापृमूर्छिमदाम्" इति निषेधस्तु छान्दसत्वाद् न प्रवर्तते ❀ । शीर्ष्णाः शिरसि भवा हिंसका शृङ्गादयः अवयवा अपि मूढा भवन्तु । उशब्दः समुच्चये । पृष्टयः पर्शवः । पार्श्वास्थीन्यपि मूढानि भवन्तु ॥ हे पान्थ ते तव गोधा एतत्संज्ञः प्राणी निम्रुक् भवतु दृष्टिविषयो न भवतु । ❀०म्रुचु म्लुचु गत्यर्थाः इत्यस्मात् निपूर्वात् दर्शनवाचिनः क्विप् ❀ । शशयुः । शयनशीलो दुष्टो मृगः । नीचा न्यग्भूतेन मार्गेण अयत् अयतु गच्छतु । ❀ अयतेर्लेटि अडागमः । शशयुरिति । शीङ् स्वप्ने इत्यस्मात् ०मृशी० [उ०१.७] इत्यादिना उप्रत्ययः । बाहुलकाद् द्विर्वचनम्❀॥

हिंसक व्याघ्र आदिके दाँत मूढ़ हो जावें अर्थात् भक्षण करने में असमर्थ हो जावें और शिरके सींग आदि भी मूढ़ होजावें और पसलीकी हड्डियें भी मूढ़ होजावें । और हे यात्रिन् ! गोधा नामक प्राणी तेरी दृष्टिमें न पड़े । और शयनके स्वभाव वाला दुष्ट मृग भी नीचेके मार्गसे चला जावे ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

यत् संयमो न वि यमो वि यमो यन्न संयमः ।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ॥७॥

यत् । सम्ऽयमः । न । वि । यमः । वि । यमः । यत् । न । सम्ऽयमः ।

इन्द्रऽजाः । सोमऽजाः । आथर्वणम् । असि । व्याघ्रऽजम्भनम् ७

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन्द्रजाः इन्द्राज्जातः [सोमजाः] सोमाज्जातः । ❀ उभयत्र "जनसनखनक्रमगमो विट्" । "विड्वनोरनुनासिकस्यात्" इति आत्वम् ❀ । एवंविधः संयमः संयमनं सम्यग् व्याघ्रादीनां मन्त्रसामर्थ्येन नियमनं यत् अस्ति नासौ वियमः विरुद्धयमनं भवति । कृतस्य संयमस्य अन्यथाभावो नास्तीत्यर्थः । तथा वियमः वियमनं विरुद्धप्रापणं यत् मन्त्रेण क्रियते नायं संयमः । तत् तथैव भवतीत्यर्थः । आथर्वणस्य क्रियाकलापस्य न कुत्रापि अन्यथाभावोस्तीत्यर्थः ॥ अनेन सूक्तेन क्रियमाणं खादिरशङ्क्वालेखनादिकं क्रियाकलापं संबोध्य ब्रूते । हे क्रियाकलाप त्वम् आथर्वणम् अथर्वणा महर्षिणा दृष्टं कृतं वा व्याघ्रजम्भनम् । उपलक्षणम् एतत् । व्याघ्रादिदुष्टप्राणिहिंसकम् असि भवसि । ❀ अथर्वन्शब्दाद् अणि "अन्" इति प्रकृतिभावः ❀ ॥

[इति] चतुर्थकाण्डे प्रथमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इन्द्रसे उत्पन्न हुआ और सोमसे उत्पन्न हुआ जो व्याघ्र आदिका मन्त्रशक्तिसम्पन्न संयमन है वह वियमन नहीं होता है अर्थात् किया हुआ नियमन उलटा नहीं होता है। (इस सूक्त से किये जाने वाले क्रियाकलापका उल्लेख करके कहते हैं, कि-) हे क्रियाकलाप ! तू महर्षि अथर्वाका देखा हुआ है तू व्याघ्र आदि दुष्ट प्राणियोंको मार ही डालता है ॥ ७ ॥

चतुर्थकाण्डके प्रथम अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (१०५) ॥

"यां त्वा गन्धर्वः" इति सूक्तेन पुरुषस्य वीर्यकरणकर्मणि कपित्थकमूलम् ओषधिवत् खात्वा दुग्धे श्रपयित्वा अभिमन्त्र्य अधिज्यं धनुः उत्सङ्गे कृत्वा वीर्यकामः पुरुषः पिबेत् ॥

एवमेव कीलके मुसले वा उपविश्य पूर्ववद् अभिमन्त्र्य पिबेत् ॥

सूत्रितं हि । "यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वृषणस्ते खनितारः" इति प्रक्रम्य "दुग्धफाण्टावधिज्यम् उपस्थ आधाय पिबति मयूखे मुसले वासीनः" इति [कौ० ५. ४] ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुरुषको वीर्यसम्पन्न बनानेके कर्ममें "यां त्वा गन्धर्वः" इस सूक्तसे कैथकी जड़को ओषधिकी समान खोदकर दूधमें औटावे फिर अभिमन्त्रित करे तथा प्रत्यञ्चा चढ़े हुए धनुषको गोदीमें रख कर वीर्य चाहने वाला पुरुष पिये ॥

इसी प्रकार कीलक वा मूसल पर बैठ कर पहिलेकी समान अभिमन्त्रित करके पिये ॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वृषणस्ते खनितारः" इति प्रक्रम्य दुग्धफाण्टावधिज्यम् उपस्थ आधाय पिबति मयूखे मुसले वा आसीनः" (कौशिकसूत्र ५ । ४) ॥

तत्र प्रथमा ॥

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे ।
तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥ १ ॥

याम् । त्वा । गन्धर्वः । अखनत् । वरुणाय । मृतऽभ्रजे ।
ताम् । त्वा । वयम् । खनामसि । ओषधिम् । शेपऽहर्षणीम् १

मृतभ्रजे नष्टवीर्याय वरुणाय पुनस्तस्य वीर्यं जनयितुं हे ओषधे यां त्वा त्वां गन्धर्वो अखनत् खननेन उद्धृतवान् [ताम्] तादृशीं त्वा त्वां शेपोहर्षणीम् शेपसः पुंस्प्रजननस्य वर्धनीं वीर्यप्रदानेन उन्नमयित्रीम् ओषधिम् कपित्थकाख्यां वयं खनामसि खनामः । ❀ शेपोहर्षणीम् इति । वृङ्शीङ्भ्यां रूपस्वाङ्गयोः पुक् च [उ० ४. २००] इति स्वाङ्गे अभिधेये शीङः असुन् पुगागमश्च । हृष्यतेः करणे ल्युट् । टिड्ढाद्द् ङीप् ❀ ॥

वरुणका वीर्य नष्ट होने पर उनमें फिर वीर्य उत्पन्न करनेके लिये जिस तुझको हे ओषधे ! गन्धर्वने खोदा था अर्थात् खोद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर तेरा उद्धार किया था ऐसी तुझ पुरुषके उत्पन्न करनेवाली शक्तिको बढ़ाने वाली कैथ नामक औषधिको हम खोदते हैं १

द्वितीया ॥

उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः ।

उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ॥ २ ॥

उत् । उषाः । उत् । ऊं इति । सूर्यः । उत् । इदम् । मामकम् । वचः ।

उत् । एजतु । प्रजाऽपतिः । वृषा । शुष्मेण । वाजिना ॥ २ ॥

उषाः सूर्यस्य पत्नी देवी वाजिना बलवता शुष्मेण वीर्येण उदेजतु उद्वृत्तं करोतु । उशब्दः चार्थे । सूर्यश्च उदेजतु उत्कृष्टवीर्ययुक्तं करोतु मामकम् मदीयम् इदम् मन्त्रात्मकं वचः उदेजतु ॥ तथा [वृषा वर्षकः] प्रजापतिः प्रजानां पतिः सर्वजगत्स्रष्टा देवः उक्तलक्षणेन वीर्येण उदेजतु लम्बमानं पुंस्प्रजननम् उत्कम्पयतु । ❀ एज् कम्पने इति धातुः । प्रजापतिरिति । प्रजायन्ते इति प्रजाः । "उपसर्गे च संज्ञायाम्" इति डप्रत्ययः । षष्ठीसमासे "पत्यावैश्वर्ये" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥

सूर्यकी पत्नी उषा देवी बलसंपन्न वीर्यसे उद्वृत्त करें और सूर्य भी उत्कृष्टवीर्य सम्पन्न करें, मेरा यह मन्त्रात्मक वचन वीर्यसंपन्न हो, वर्षक सब जगत्के स्रष्टा प्रजापतिदेव पूर्वोक्त लक्षण वाले वीर्यसे लम्बमान पुंस्प्रजननको उत्कम्पित करें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यथा स्म ते विरोहतोभितप्तमिवानति ।

ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यथा । स्म । ते । वि॒ऽरोह॑ । अ॒भित॑प्तम्ऽइव । अन॑ति ।

ततः । ते । शुष्म॑वत्ऽतरम् । इ॒यम् । कृ॒णो॒तु । ओष॑धिः ॥ ३ ॥

हे वीर्यकाम पुरुष ते तव विरोहितः पुत्रपौत्रादिरूपेण विरोहणस्य निमित्तं पुंव्यञ्जनम् अभितप्तं फणयङ्गमिव यथा स्म येन प्रकारेण खलु अनति चेष्टते ततः तेनैव प्रकारेण इयम् ओषधिः ते तव पुंव्यञ्जनं शुष्मवत्तरं अतिशयितवीर्ययुक्तं कृणोतु करोतु ॥

हे वीर्यको चाहने वाले पुरुष ! तेरा पुत्र पौत्र आदिरूपसे विरोहणका निमित्त पुंव्यन्जक संतप्त सर्पफनकी समान जिस प्रकार चेष्टा कर सके, तैसा करनेके लिये ही यह औषधि तेरे पुंव्यन्ज़नको परमवीर्य वाला करे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

उच्छुष्मौष॑धीना॒ं सार॑ ऋष॒भाणा॑म् ।

सं पुं॒सामि॑न्द्र॒ वृष्ण्य॑मस्मि॒न् धे॑हि तनूवशि॒न् ॥४॥

उत् । शुष्मा॑ । ओष॑धीनाम् । सारा॑ । ऋ॒ष॒भाणा॑म् ।

सम् । पुं॒साम् । इ॒न्द्र॒ः । वृष्ण्य॑म् । अ॒स्मिन् । धे॒हि॒ । त॒नू॒ऽव॒शि॒न् ४

ओषधीनाम् अन्यासां वीर्ययुक्तानां वीरुधाम् इयम् ओषधिः शुष्मा वीर्यरूपा ऋषभाणाम् सेचनसमर्थानां वीर्यवतां सारा सारभूता तादृशी ओषधिः इमं पुरुषम् उत् ईरयतु वीर्ययुक्तं करोतु । ❀ सार ऋषभाणाम् इति । "ऋत्यकः" इति प्रकृतिभावः ❀ ॥ हे इन्द्र संपूषाम् सम्यक् पोषयित्रीणाम् ओषधीनां संबन्धि यद् वृष्ण्यम् वीर्यम् अस्ति तद् अस्मिन् पुरुषे तनूवशम् शरीराधीनं कृत्वा धेहि धारय । ❀ संपूषाम् इति । पूष पुष्टौ इत्यस्मात् "क्विप् च" इति क्विप् । धेहीति । "घ्वसोरेद्धौ०" इति एत्वाभ्यासलोपौ ❀ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अन्य वीर्यमयी औषधियोंमें भी यह औषधि वीर्यवती है, और यह सेचन करनेमें समर्थ वीर्यवान् बैलोंमें भी साररूप है, ऐसी यह औषधि इस पुरुषको वीर्यसम्पन्न करे। हे इन्द्र! पोषक औषधियोंमें जो वीर्य है उसको इस पुरुषके शरीरके अधीन करके धारण करिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अपां रसः प्रथमजोथो वनस्पतीनाम् ।

उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥ ५ ॥

अपाम् । रसः । प्रथमऽजः । अथो इति । वनस्पतीनाम् ।

उत । सोमस्य । भ्राता । असि । उत । आर्शम् । असि । वृष्ण्यम् ५

हे कपित्थकमूल त्वम् अपाम् मथ्यमानानां प्रथमजः प्रथमम् उत्पन्नो रसः अमृतात्मकस्त्वम् असि। अथो अपि च वनस्पतीनाम् समानजातीयानां वृक्षाणां सारभूतोसि ॥ [उत अपि च] सोमस्य ओषधीनाम् अधिपतेः अमृतमयस्य देवस्य भ्राता सहजोसि। अमृतमथनकाले सहोत्पन्नत्वात् ॥ उत अपि च [आर्षम्] ऋषीणाम् अङ्गिरःप्रभृतीनां संबन्धि वृष्ण्यम् मन्त्रप्रभावजनितं वीर्यं असि ॥

हे कैथकी जड़! तू जलोंके मथते समय पहिले उत्पन्न हुई है अमृतमय रस है। और वनस्पतियोंमें भी सारभूत है। और औषधियोंके स्वामी अमृतमय सोमकी तू भाई है, क्योंकि–अमृतमथनके समय तू साथ ही उत्पन्न हुई है और तू अंगिरा आदि ऋषियोंका मन्त्रके प्रभावसे उत्पन्न वीर्यरूप है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

अद्यागे अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥ ६॥

अद्य । अग्ने । अद्य । सवितः । अद्य । देवि । सरस्वति ।

अद्य । अस्य । ब्रह्मणः । पते । धनुःऽइव । आ । तानयः । पसः ६

हे अग्ने अद्य इदानीम् अस्य वीर्यकामस्य पसः पुंव्यञ्जनं वीर्य-प्रदानेन धनुरिव आ तानय आततम् ऊर्ध्वायतं कुरु । अद्य सवितरित्यादिकम् एवं योज्यम् ॥ सविता सर्वस्य प्रेरको देवः ॥ देवी देवतारूपा सरस्वती । अनेन विशेषणेन नदीरूपाया व्यावृत्तिः । ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रस्याधिपतिर्देवः ॥ ❀ आ तानयेति। तनु विस्तारे इत्यस्मात् ण्यन्तात् लोट् ❀ । पसःशब्दस्य लिङ्गवाचित्वम् "आहतं गभे पसो निजल्गुलीति धाणिका" [तै० सं० ७. ४. १६. ३] इत्यादिमन्त्रान्तरप्रसिद्धम् ॥

हे अग्ने ! इस वीर्य चाहने चाहने वालेके पुंव्यञ्जनको वीर्य-दान देकर धनुषकी समान ऊपरको फैला हुआ करिये । हे सबके प्रेरक सूर्य देव और हे देवी सरस्वती और हे मन्त्रके अधिपति ब्रह्मणस्पते ! आप इस वीर्य कामके पुंव्यञ्जनको धनुषकी समान ऊपरको फैला हुआ करिये ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।

क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥ ७ ॥

आ । अहम् । तनोमि । ते । पसः । अधि । ज्याम्ऽइव । धन्वनि ।

क्रमस्व । ऋशःऽइव । रोहितम् । अनवऽग्लायता । सदा ॥ ७॥

हे वीर्यकाम ते त्वदीयं पसः पुंव्यञ्जनम् अहम् आ तनोमि मन्त्रप्रभावेन आततं वीर्ययुक्तं करोमि । तत्र दृष्टान्तः । धन्वनि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धनुषि अध्यारोपितां ज्यामिव मौर्वीमिव ॥ तस्मात् त्वम् ऋष इव सेचनसमर्थो वृषभ इव रोहितम् अनु पुंव्यञ्जनम् अनु वल्गूयता नृत्यता मनसा सदा सर्वदा क्रमस्व भार्याम् आक्रमस्व ॥ ❀"वृत्ति-सर्गतायनेषु क्रमः" इति आत्मनेपदम् वल्गूयति कण्ड्वादिः । ततो यगन्तात् लटः शत्रादेशः ❀ ॥

हे वीर्याभिलाषिन् ! तेरे पुंव्यञ्जनको मैं मन्त्रके प्रभावसे धनुष पर चढ़ा कर तानी हुई प्रत्यञ्चाकी समान वीर्यसम्पन्न करता हूँ इस कारण तू सेचन करनेमें समर्थ वृषभकी समान नाचते हुए मन और पुंव्यञ्जनके साथ सदा भार्याके पास जा ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।

अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन्

अश्वस्य । अश्वतरस्य । अजस्य । पेत्वस्य । च ।

अथ । ऋषभस्य । ये । वाजाः । तान् । अस्मिन् । धेहि । तनूऽवशिन्

अश्वः प्रसिद्धः । अश्वतरस्तु अश्वगर्दभयोः सांकर्येण उत्पन्नो जातिविशेषः । अजः छागः । पेत्वो मेषः । ऋषभः गोजातिः सेक्ता पुमान् । अथशब्दः चार्थे । एतेषाम् अश्वादीनां ये वाजाः यानि वीर्याणि सन्ति तान् वाजान् हे ओषधे तनूवशम् तन्वाः शरीरस्य वशो यथा भवति तथा अस्मिन् वीर्यकामे पुंव्यञ्जने वा धेहि स्थापय ॥

[इति] चतुर्थे काण्डे प्रथमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

घोड़े खच्चर बकरे मेढ़े और बैलमें जो वीर्य है तैसे वीर्योंको हे ओषधे ! तू इसके शरीरके वशमें करके स्थापित कर ॥ ८ ॥

चतुर्थ काण्डके प्रथम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१०६)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"सहस्रशृङ्गः" इति सूक्तेन स्त्र्यभिगमने तस्यास्तत्परिसरवर्तिनां च स्वापनार्थम् उदपात्रं संपात्य अभिमन्त्र्य तेन शयनशालां प्रोक्ष्य शेषम् अभ्यन्तरद्वारे निनयेत् ॥

तथा नग्नः सन् अनेनैव उलूखलम् अभिमन्त्रयेत ॥

तथा गृहस्योत्तरां स्रक्तिं स्त्रीखट्वाया दक्षिणं पादं रज्जुं वा अभिमन्त्रयेत ॥

सूत्रितं हि । "सहस्रशृङ्ग इति स्वापनम् उदपात्रेण संपातवता शालां संप्रोक्ष्यापरस्मिन् द्वारपक्षे न्युब्जति । एवं नग्न उलूखलम् उत्तरां स्रक्तिं दक्षिणं शयनपादं तन्तून् अभिमन्त्रयते" इति [कौ० ४. १२] ॥

स्त्रीके पास जाते समय "सहस्रशृंगः" इस सूक्तसे उसको और उसके पासके व्यक्तियोंको निद्रित करनेके लिये जलपूर्ण पात्रका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके उससे शयनशालाका प्रोक्षण करे और बाकीको भीतरके द्वारमें ले जावे ॥

तथा नग्न होकर इसी सूक्तसे ओखलीका अभिमन्त्रण करे ॥ तथा घरकी उत्तरकी ओरकी नींव वा स्त्रीके खाटके दायें पाये वा रस्सीका अभिमन्त्रण करे ॥

सूत्रमें भी कहा है, कि–'सहस्रशृंग इति स्वापनम् उदपात्रेण सम्पातवता शालां सम्प्रोक्ष्यापरस्मिन् द्वारपक्षे न्युब्जति । एवं नग्न उलूखलं उत्तरां स्रक्तिं दक्षिणं शयनपादं तन्तून् अभिमन्त्रयते" (कौशिकसूत्र ४ । १२) ॥

तत्र प्रथमा ॥

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥१॥

सहस्रऽशृङ्गः । वृषभः । यः । समुद्रात् । उत्ऽआचरत् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तेन । सहस्येन । वयम् । नि । जनान् । स्वापयामसि ॥ १ ॥

सहस्रशृङ्गः सहस्ररश्मिः सूर्यः वृषभः वर्षिता कामानां वृष्टिजलस्य वा । स्मर्यते हि ।

आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः

इति [म० स्मृ० ३. ७६] । एवंभूतो य आदित्यः समुद्रात् अम्बुधेः । यद्वा समुद्रम् इति अन्तरिक्षनाम । अन्तरिक्षप्रदेशाद्व उदयाचलपरिसरवर्तिनः उदाचरत् उदगात् तेन उदितेन सहस्येन। सहः शत्रूणाम् अभिभवनम् । तत्र साधुः सहस्यः । तादृशेन आदित्येन [वयं] जनान् अवस्थितान् नि ष्वापयामसि निष्वापयामः । स्वापेन परवशान् कुर्मः ॥

सहस्र किरणों वाले, कामनाओंकी और जलकी वर्षा करने वाले जो सूर्यदेव उदयाचलके समीपवर्ती समुद्रोपनामक आकाश से उदित होते हैं, उन शत्रुओंको दबाने वाले उदयसे सम्पन्न आदित्यसे हम यहाँ पर उपस्थित व्यक्तियोंको निद्रासे परवश करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन ।
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् ॥ २ ॥

न । भूमिम् । वातः । अति । वाति । न । अति । पश्यति । कः । चन ।
स्त्रियः । च । सर्वाः । स्वापय । शुनः । च । इन्द्रऽसखा । चरन् २

वातः वायुः भूमिं नाति वाति नातिमात्रं गच्छतु । अतिवातेन स्वापभङ्गो मा भूद् इत्यर्थः ॥ तथा कश्चन यः कोपि तत्रस्थो जनः नाति पश्यति अतिशयेन न पश्यतु । स्वापपरवशो भवतु इत्यर्थः ॥ अपि च हे वात त्वम् इन्द्रसखा । इन्द्रः आत्मा । स सखा यस्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्राणवायोः तदात्मकः चरन् देहे वर्तमानः तत्र परितोवस्थिताः सर्वाः स्त्रियश्च शुनश्च स्वापय । ❀ श्वन्शब्दात् शसि "श्वयुवमघोनाम् अतद्धिते" इति संप्रसारणम् ❀ ॥

वायु भूमिमें अधिक न चले अर्थात् अधिक वायुसे निद्राका भङ्ग न होवे, तथा यहाँ पर स्थित कोई मनुष्य न देखसके अर्थात् निद्राके वशमें होजावें । हे वायुदेव ! आप इन्द्रसखा हैं अर्थात् आत्माके सहायक प्राणवायुरूप हैं वह आप देहमें रह कर सब स्त्रियोंको और कुत्तोंको भी निद्रित कर दीजिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्याः वह्यशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ३

प्रोष्ठेऽशयाः । तल्पेऽशयाः । नारीः । याः । वह्यऽशीवरीः ।
स्त्रियः । याः । पुण्यऽगन्धयः । ताः । सर्वाः । स्वापयामसि ।३।

प्रोष्ठेशयाः प्राङ्गणे शयानाः तल्पेशयाः खट्वायां शयानाः । ❀ उभयत्रापि "अधिकरणे शेतेः" इति अच् प्रत्ययः । "शयवासवासिष्वकालात्" इति सप्तम्या अलुक् ❀ । या एवंभूता नारीः नार्यः सन्ति याश्च वह्यशीवरीः । वहत्यनेनेति वहनसाधनम् आन्दोलिकादि वह्यम् । तत्र शयनस्वभावा याः स्त्रियः सन्ति । ❀ [वह्यम् इति] "वह्यं करणम्" इति यत्प्रत्ययान्तो निपात्यते । तस्मिन्नुपपदे शेतेः "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति क्वनिप् । "वनो र च" इति ङीब्रेफौ । जसि "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । याश्च अन्याः स्त्रियः पुण्यगन्धयः शोभनगन्धयुक्ताः सन्ति । ❀ पुण्यस्य गन्ध इव गन्धो यासु इति विगृह्य "उपमानाच्च" इति गन्धस्य इत् अन्तादेशः ❀ । ता अनुक्रान्ताः सर्वाः स्त्रियः स्वापयामसि स्वापयामः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो स्त्रियें पलँग पर सोरही हैं, जो स्त्रियें आँगनमें सोरही हैं, जो स्त्रियें पालकी आदिको उठाती हैं और जो स्त्रियें पुण्यगन्धा हैं उन सब स्त्रियोंको हम सुलाते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम् ।
अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ॥ ४ ॥

एजत्ऽएजत् । अजग्रभम् । चक्षुः । प्राणम् । अजग्रभम् ।
अङ्गानि । अजग्रभम् । सर्वाः । रात्रीणाम् । अतिऽशर्वरे ४

एजदेजत् यद्यद् एजतिमद् अस्ति प्राणिजातं तत् सर्वम् अजग्रभम् स्वापेन गृहीतम् अकार्षम् । ❀ एजृ कम्पने इत्यस्मात् लटः शत्रादेशः । ग्रह उपादाने इत्यस्मात् ण्यन्तात् लुङि चङि अजग्रभम् इति रूपम् । "हृग्रहोर्भः०" इति भत्वम् ❀ ॥ तथा चक्षुः प्राणम् तदीयं दर्शनसाधनम् इन्द्रियं प्राणसंचारस्थानाश्रितं गन्धग्राहकम् इन्द्रियं च अजग्रभम् स्वापेन गृहीतम् अकार्षम् ॥ तथा तदीयानि सर्वा सर्वाणि अङ्गानि हस्तपादादीनि अजग्रभम् अजग्रहम् ॥ एतत् सर्वं कस्मिन् काले कृतम् इति तद् आह । रात्रीणाम् इति । रात्रीणां संबन्धिनि अतिशर्वरे अतिशयिता शर्वरी यस्मिन् काले स कालः अतिशर्वरः । तमोभूयिष्ठे मध्यरात्रकाल इत्यर्थः ॥

जो जङ्गम प्राणी हैं उन सबको मैंने निद्रासे वशमें कर लिया है और उनकी दर्शनसाधन चक्षुरिन्द्रियको मैंने ग्रहण कर लिया है और प्राणसंचारस्थानमें स्थित घ्राणेन्द्रियको मैंने ग्रहण कर लिया है और इनके हाथ पैर आदि सब अंगोंको मैंने अंधकार भरे अर्धरात्रिके समय निद्रासे वशमें कर लिया है ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पञ्चमी ॥

य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ५ ॥

यः । आस्ते । यः । चरति । यः । च । तिष्ठन् । विऽपश्यति ।
तेषाम् । सम् । दध्मः । अक्षीणि । यथा । इदम् । हर्म्यम् । तथा ५

अस्मदभिसरणसमये यो जनः तत्र आस्ते यश्च [चरति] सञ्चरति यश्च तत्र तिष्ठन् स्थितः सन् विपश्यति विविधम् इतस्ततः पश्यति । तेषां सर्वेषाम् अक्षीणि चक्षूंषि सं दध्मः । संहितानि निमीलितानि कुर्मः । तत्र दृष्टान्तः । इदम् दृश्यमानं हर्म्यं यथा दर्शनशक्तिशून्यं तथा । चक्षुष्मदपि प्राणिजातं मां द्रष्टुम् असमर्थं भवतु इत्यर्थः ॥

हमारे गमनके समय जो पुरुष घूम रहा है जो तहाँ बैठ कर इधर उधर देख रहा है उन सबके नेत्रोंको हम, यह भवन जैसे दर्शनशक्तिशून्य है तिस प्रकार, बन्द करते हैं अर्थात् नेत्रवाला प्राणिसमूह भी हमें न देख सके ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः ।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥ ६ ॥

स्वप्तु । माता । स्वप्तु । पिता । स्वप्तु । श्वा । स्वप्तु । विश्पतिः ।
स्वपन्तु । अस्यै । ज्ञातयः । स्वप्तु । अयम् । अभितः । जनः ६

यस्याः स्त्रियाः प्रस्वापनेन वशीकरणम् अत्र चिकीर्षितं तस्या माता प्रथमं स्वप्तु स्वपितु निद्रापरवशा भवतु । ❀ञिष्वप् शये ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अस्मात् लोटि अदादित्वात् शपो लुक् । "रुदादिभ्यः सार्वधातुके" इति इडभावश्छान्दसः ❀ ॥ तस्याः पिता च स्वप्तु निद्रातु ॥ यस्तस्य गृहस्य परिरक्षणाय श्वा द्वारि वर्तते सोपि स्वप्तु निद्रातु ॥ विश्पतिः गृहाधिपतिश्च स्वप्तु शेताम् ॥ अस्यै । ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀ । अस्याः प्रेप्सितायाः स्त्रिया ये ज्ञातयः सन्ति तेपि स्वपन्तु । गृहाद् बहिः अभितः रक्षणार्थं नियुक्तः अयं जनश्च स्वप्तु निद्रागृहीतो भवतु । एवं मात्रादीनां स्वापनप्रार्थनेन स्वाभिलषितसिद्धिराशास्यते ॥

जिस स्त्रीको स्वापसे—निद्रासे हम वशमें करना चाहते हैं, पहिले उसकी माता सो जावे, उसका पिता भी निद्राके अधीन होजावे और उसके घरकी रक्षा करनेके लिये जो कुत्ता उसके द्वार पर रहता है वह भी सोजावे, गृहाधिपति भी सोजावे, इस स्त्रीके जो जाति वाले हैं वह भी सो जावें और घरके वाहर चारों ओर रक्षा करनेके लिये जो पुरुष नियुक्त है, वह भी सोजावे ॥ ५ ॥

सप्तमी ॥

स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम् । ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्र इवारिष्टो अक्षितः ॥ ७ ॥

स्वप्न । स्वप्नऽअभिकरणेन । सर्वम् । नि । स्वापय । जनम् । आऽउत्सूर्यम् । अन्यान् । स्वापय । आऽव्युषम् । जागृतात् । अहम् । इन्द्रःऽइव । अरिष्टः । अक्षितः ॥ ७ ॥

हे स्वप्न स्वप्नाभिमानिन् देव स्वप्नाधिकरणेन स्वप्नस्य यद् अधिकरणम् अधिष्ठानं शय्यादि तेन साधनेन सर्वं जनं नि ष्वा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पय नितरां स्वापय । अयमेवार्थः अवधिप्रदर्शनेन विव्रियते । मात्रादयो ये अन्य अनुक्रान्ताः तान् अन्यान् ओत्सूर्यम् उद्यन् सूर्यो यस्मिन् काले स उत्सूर्यः कालः तावत्पर्यन्तं स्वापयेत्यर्थः ॥ एवं सर्वजनस्य प्रस्वापने सति [अरिष्टः] अहिंसितः अक्षितः क्षयरहितश्च सन् अहम् इन्द्र इव भोगपरो भूत्वा आव्युषम् उषःकालावधि जागृतात् । ❀ पुरुषव्यत्ययः ❀ । जागरं करवाणि ॥

[इति] चतुर्थे काण्डे प्रथमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

[इति] चतुर्थे काण्डे प्रथमोनुवाकः ॥

हे स्वप्नके अभिमानी देव ! स्वप्नका जो शय्या आदि अधिष्ठान है, उसके द्वारा आप इन सबको सूर्यके उदय तक निद्रित रखिये, इस प्रकार सबके सोने पर मैं अहिंसित और क्षयरहित होकर इन्द्रकी समान भोगपरायण होकर उषःकाल तक जागरण कर सकूँ ॥ ७ ॥

चतुर्थ काण्डके प्रथम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (१०७) ॥
प्रथम अनुवाक समाप्त ।

"ब्राह्मणो जज्ञे" "वारिदम्" इत्याभ्यां कन्दविषभैषज्यार्थम् उदकम् अभिमन्त्र्य विषावृतं पुरुषं पाययेत् । तथाविधोदकेन प्रोक्षेत् तथा क्रमुकवृक्षशकलं सहोदकम् अभिमन्त्र्य पाययेत् प्रोक्षेच्च ॥

तथा आभ्यां जीर्णहरिणचर्मावज्वालितं पतितमार्जनिकाशकलैर्वा अवज्वालितम् उदकम् आभ्याम् अभिमन्त्र्य तेनोदकेन विषावृतम् अवसिञ्चेत् ॥

तथा आभ्याम् सूक्ताभ्याम् उदपात्रं संपात्य अभिमन्त्र्य तेन स्नावयेत्

तथा विषलिप्ताभ्याम् ऊर्ध्वफलाभ्यां सक्तुमन्थं मथित्वा अभिमन्त्र्य पाययेत् ॥

मथा मदनफलानि प्रत्यृचम् अभिमन्त्र्य यथा छर्दिर्भवति तथा प्रत्यृचं भक्षयेत् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सर्पिषा सहितां हरिद्राम् अनेनैवाभिमन्त्र्य आविष्टविषं पाययेत् सूत्रितं हि । "ब्राह्मणो जज्ञ इति तत्तकायाञ्जलिं कृत्वा जपन्नाचामयति अभ्युक्षति । क्रमुकशकलं संक्षुद्य दूर्शजरदजिनावकरज्वालेन संपातवद् उदपात्रम् ऊर्ध्वफलाभ्यां दिग्धाभ्यां मन्थम् उपमथ्य रयिधारणपिण्डान् अन्वृचं प्रकीर्य छर्दयति । हरिद्रां सर्पिषा पाययति" इति [कौ० ४. ४] ॥

अत्र "ब्राह्मणो जज्ञे" इति एकसूक्तप्रतीकोपादानेन विषापनोदनपरं "वारिदम्" इति समनन्तरं सूक्तमपि गृह्यते । "ग्रहणम् आ ग्रहणात्" [कौ० १. ८] इति परिभाषायाः सौत्रक्रम इव संहिताक्रमेपि प्रवृत्तिरस्तीति व्याख्यातृभिरभिहितत्वात् ॥

"ब्राह्मणो जज्ञे" और "वारिदम्" इन दो सूक्तोंसे कन्दविषकी चिकित्सा करनेके लिये जलको अभिमंत्रित करके विषसे आक्रांत पुरुषको पिलावे । और ऐसे ही जलसे प्रोक्षण करे ॥

और सुपारीके वृक्षके टुकड़ेको जलसहित अभिमन्त्रण करके पिलावे और प्रोक्षण करे ॥

तथा जीर्ण हरिणके चर्मसे गरम किये हुए वा गिरे हुए बुहारीके टुकड़ोंसे गरम किये हुए जलको इन दोनों सूक्तोंसे अभिमंत्रित करके उस जलको पिलावे और प्रोक्षण करे (छिड़के) ॥

और इन दोनों सूक्तोंसे जलपूर्ण पात्रका सम्पातन और अभिमंत्रण करके उससे स्नान करावे ॥

तथा विषलिप्त ऊर्ध्वफलोंसे सक्तुमन्थको मथ कर अभिमंत्रित करके पिलावे ॥

तथा मदनफलों (धतूरेके फलों) का प्रत्येक ऋचासे अभिमंत्रण करके जिस प्रकार कै हो तिस प्रकार प्रत्येक ऋचासे भक्षण करे ॥

और विषाक्रान्त पुरुषको घी और हल्दीको इस सूक्तसे अभिमंत्रित करके पिलावे ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"ब्राह्मणो जज्ञ इति तत्तकायाञ्जलिं कृत्वा जपन्नाचामयति अभ्युक्षति । क्रमुकशकलं संक्षुद्य दूर्शजरदजिनावकरज्वालेन सम्पातवद् उदपात्रं ऊर्ध्वफला-भ्यां दिग्धाभ्यां मन्थं उपमथ्य रयिधारणपिण्डान् अन्वृचं प्रकीर्य छर्दयते । हरिद्रां सर्पिषा पाययति इति (कौशिकसूत्र ४ । ४)॥

यहाँ 'ब्राह्मणो जज्ञे' इस एक सूक्तका प्रतीक देनेसे विषको दूर करने वाला इसके बादका ही 'वारिदम्' सूक्त भी ग्रहण किया जाता है । क्योंकि-"ग्रहणं आ ग्रहणात्" (कौशिकसूत्र १ । ८) इस परिभाषाके अनुसार सूत्रके क्रमकी समान संहिता का क्रम भी लिया जाता है । ऐसा व्याख्याताओंने कहा है ॥

तत्र प्रथमा ॥

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।

स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥ १ ॥

ब्राह्मणः । जज्ञे । प्रथमः । दशऽशीर्षः । दशऽआस्यः ।

सः । सोमम् । प्रथमः । पपौ । सः । चकार । अरसम् । विषम् १

मनुष्यजातिवत् सर्पजातावपि चातुर्वर्ण्यम् अस्ति । तत्र प्रथमः सर्पजातीयानाम् आदिभूतस्तत्तकाख्यो ब्राह्मणः ब्राह्मणजातिः जज्ञे उत्पन्नः । स विशेष्यते । दशशीर्षः दशसंख्यानि शीर्षाणि शिरांसि यस्य स तथोक्तः । अत एव दशास्यः दशमुखः । यस्माद् अयं ब्राह्मणः तस्मात् स तत्तकः प्रथमः क्षत्रियादिजातीयेभ्यः पूर्वभावी सन् सोमं पपौ द्युलोकस्थम् अमृतमयं सोमं पीतवान् । स च सोमपो ब्राह्मणः कन्दमूलादिजनितम् एतद् विषम् अरसम् रसरहितं निर्वीर्यं चकार करोतु । ❀ छान्दसो लिट् । जज्ञे इति । जनी प्रादुर्भावे इत्यस्मात् लिट् । "गमहन०" इति उपधालोपे "द्विर्वचनेचि" इति स्थानिवद्भावाद् द्विर्वचनम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(मनुष्यजातिकी समान सर्पजातिमें भी चारों वर्ण हैं) सर्पजाति में प्रथम तक्षक ब्राह्मण जातिके उत्पन्न हुए, उनके दश फन हैं और दश मुख हैं। यह तक्षकसर्प ब्राह्मण हैं, इस कारण इन्होंने क्षत्रियजाति वालोंसे प्रथम होनेके कारण द्युलोकमें स्थित अमृतमय सोमको पिया यह सोमपायी ब्राह्मण इस कन्दमूल आदिसे उत्पन्न हुए विषको रसरहित अर्थात् निर्वीय करें॥ १॥

द्वितीया॥

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिंधवो वितष्ठिरे वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम्॥ २॥

यावती इति। द्यावापृथिवी इति। वरिम्णा। यावत्। सप्त।

सिन्धवः। विऽतष्ठिरे।

वाचम्। विषस्य। दूषणीम्। ताम्। इतः। निः। अवादिषम् २

द्यावापृथिवी द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ। ❀ "दिवो द्यावा" इति द्यावादेशः। "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः❀। ते द्यावापृथिव्यौ वरिम्णा उरुत्वेन विस्तारेण यावती यावत्यौ यावत्परिमाणयुक्ते भवतः। ❀ यच्छब्दात् "यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्" इति वतुप्। "आ सर्वनाम्नः" इति आत्वम्। वरिम्णेति। उरुशब्दाद् इमनिचि "प्रियस्थिर०" इत्यादिना वर् आदेशः। उदात्तनिवृत्तिस्वरेण विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀। तथा [सप्त] सप्तसंख्याकाः सिन्धवः समुद्रा यावत् यत्परिमाणवैशिष्ट्येन वितस्थिरे व्यावर्तन्ते। ❀ "समवप्रविभ्यः स्थः" इति आत्मनेपदम् ❀। इतः अस्मात् तादृक्परिमाणविशिष्टयोर्द्यावापृथिव्योः सकाशात् सप्तसमुद्रवेष्टितस्थानाच्च विषस्य दूषणीम् कन्दमूलादिजनितविषस्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नाशनीं ताम् तादृशीं वाचम् मन्त्रात्मिकां निरवादिषम् । ताल्वोष्ठ-पुटव्यापारेण निर्गमय्य उच्चारयामीत्यर्थः । ❀ वदेश्छान्दसो लुङ् । "वदव्रजहलन्तस्याचः" इति वृद्धिः ❀ ॥

द्यावापृथिवी अपने बड़े भारी विस्तारसे जितने परिमाणसे युक्त हैं और सात समुद्र जितने परिमाणमें फैले हुए हैं, इन सब स्थानोंके कन्द मूल फल आदिके विषको दूर करने वाली मन्त्रात्मिका वाणीको मैं तालु आदिसे उच्चारण करता हूँ ॥२॥

तृतीया ॥

सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् ।
नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ॥३॥

सुऽपर्णः । त्वा । गरुत्मान् । विष । प्रथमम् । आवयत् ।
न । अमीमदः । न । अरूरुपः । उत । अस्मै । अभवः । पितुः ३

सुपर्णः शोभनपत्रयुक्तः । ❀ "बहुव्रीहौ नञ्सुभ्याम्" इति उत्तर-पदान्तोदात्तत्वम् ❀ । एवंभूतो गरुत्मान् वैनतेयः हे विष त्वा त्वां प्रथमम् पूर्वम् आवयत् । आवयतिः अत्तिकर्मा । अभक्षयत् । अतो निर्वीर्यत्वाद् विषोपहतं पुरुषं नामीमदः मत्तं ज्ञानविकलं मा कार्षीः । अत एव नारूरुपः । ❀ युप रुप लुप विमोहने इति धातुः ❀ । विमूढं मा कार्षीरित्यर्थः । ❀ उभयत्रापि ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् ❀ ॥ उत अपि तु अस्मै विषदुष्टाय पुरुषाय हे विष त्वं पितुः । अन्ननामैतत् । अन्नम् अभवः । ❀ छान्दसो लङ् ❀ । अन्नवज्जीर्णं भवेत्यर्थः ॥

सुन्दर पर वाले विनतानन्दन गरुड़ने हे विष ! पहिले तुझको खा लिया था अतः निर्वीर्य होनेसे तू इस विषपीड़ित पुरुषको ज्ञानविकल न कर, मूढ़ न कर, किन्तु हे विष ! इस विषदूषित पुरुषको तू अन्नरूप होजा अर्थात् अन्नकी समान पच जा ॥३।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चतुर्थी ॥

यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः ।
अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम् ॥ ४ ॥

यः । ते । आस्यत् । पञ्चऽअङ्गरिः । वक्रात् । चित् । अधि । धन्वनः ।
अपऽस्कम्भस्य । शल्यात् । निः । अवोचम् । अहम् । विषम् ॥४॥

पञ्चांगुरिः पञ्च अंगुरयः अंगुलयो यस्य स तथोक्तः । ❀"वालमूललघ्वलमङ्गुलीना रो लम् आपद्यते" इति लत्वस्य विकल्पनाद् रेफः ❀ । एवंभूतो यो हस्तः ते त्वां वक्रात् वक्रीभूताद् [अधि] अधिज्याद् धन्वनः आस्यत् धनुर्यन्त्रेण पुरुषशरीरे प्राक्षिपत् । चिच्छब्दः अप्यर्थे । तं विषम् विषप्रदं हस्तम् अपस्कम्भस्य अपस्कभ्यते विधार्यते अन्तरिक्षे इति अपस्कम्भः क्रमुकवृक्षः तस्य शल्यात् शकलाद् निमित्ताद् [अहं] निरवोचम् मन्त्रेण निर्वीर्यं करोमि । यद्वा अपस्कभ्यते धनुषि धार्यते इति अपस्कम्भो बाणः । तस्य शल्यात् विषदिग्धाद् अयोमयाद् अग्रात् । यो विषम् आस्यत् इति संबन्धः । ❀ ष्टभि स्कभि गतिप्रतिबन्धे । अस्मात् कर्मणि घञ् ❀ । यद्वा तदीयं विषं निर्गतं ब्रवीमीत्यर्थः ॥

पाँच अंगुलि वाले हाथने तुझको मुखरूप प्रत्यञ्चा चढ़े हुए धनुषरूपी यंत्रसे पुरुषको शरीरमें डाल दिया है, उस विषको और विषप्रद हाथको मैं सुपारीके वृक्षके टुकड़ेके द्वारा मन्त्रसे निर्वीर्य करता हूँ ४

पञ्चमी ॥

शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः ।
अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम् ॥५॥

शल्यात् । विषम् । निः । अवोचम् । प्रऽअञ्जनात् । उत । पर्णऽधेः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपाष्ठात् । शृङ्गात् । कुल्मलात् । निः । अवोचम् । अहम् । विषम् ॥

[शल्यात्] उक्तलक्षणाद्द बाणादिशल्यात् संभूतं विषं निरवोचम् निर्गतं ब्रवीमि । तथा प्राञ्जनात् प्रलेपात् । उतशब्दः समुच्चये । पर्णधेः पर्णानि पत्राणि धीयन्तेस्मिन्निति पर्णधि इषुकाण्डः विषमयपत्रयुक्तो वृक्षो वा । तस्माच्च यद्द उद्भूतं विषम् अपाष्ठात् अपकृष्टावस्थाद्द एतत्संज्ञाद्द विषोपादानात् शृङ्गात् विषाणात् कुल्मलात् कुत्सितप्राणिमलाच्च यद्द उद्भूतं विषम् तत् सर्वं विषम् अहं निरवोचम् निर्ब्रवीमि । मन्त्रसामर्थ्येन निर्गतं करोमीत्यर्थः ॥

बाणके फलकेसे जो विष हुआ है उसको मैं निकला हुआ कहता हूँ अर्थात् मंत्रके प्रभावसे निकालता हूँ, प्रलेपसे, सेंटेसे, विषमय पत्ते वाले वृक्षसे जो विष हुआ है, नीचेको झुके हुए सींगसे (डाढ़से) और कुत्सितप्राणिमलसे जो विष उत्पन्न हुआ है उस सबको मैं मन्त्रकी शक्तिसे निकला हुआ करता हूँ ॥५॥

षष्ठी ॥

अरसस्त इषो शल्योथो ते अरसं विषम् ।
उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ॥ ६ ॥

अरसः । ते । इषो इति । शल्यः । अथो इति । ते । अरसम् । विषम् । उत । अरसस्य । वृक्षस्य । धनुः । ते । अरस । अरसम् ॥ ६ ॥

हे इषो बाण ते त्वदीयो विषदिग्धः शल्यः अरसः निर्विषो भवतु ॥ अथो अनन्तरं च ते त्वदीयं विषम् अरसम् रसरहितं निर्वीर्यं भवतु ॥ उत अपि च अरसस्य निःसारस्य वृक्षस्य संबन्धि ते त्वदीयं धनुः अरसारसम् अत्यर्थम् अरसं नीरसं निर्वीर्यं भवतु ॥

हे बाण ! तेरा विषमें बुझा हुआ बाण निर्विष होजावे, फिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तेरा विष निर्वीर्य होजावे, फिर निःसार वृत्तका तेरा धनुष बहुत ही निर्वीय होजावे ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

ये अपीषन् ये अदिहन् य आस्यन् ये अवासृजन् ।
सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः ॥ ७ ॥

ये । अपीषन् । ये । अदिहन् । ये । आस्यन् । ये । अवऽअसृजन् ।
सर्वे । ते । वध्रयः । कृताः । वध्रिः । विषऽगिरिः । कृतः ॥ ७ ॥

ये जनाः अपीषन् विषोपादानम् औषधम् अपिंषन् चूर्णीकृत्य प्रयच्छन्तीत्यर्थः । ❀ छान्दसो लङ् ये च जना अदिहन् अलिम्पन् । लेपनविषं प्रयुञ्जत इत्यर्थः । ये च आस्यन् विषम् अस्यन्ति दूरात् प्रक्षिपन्ति ये च अवासृजन् समीपस्थः विषम् अन्नपानादिषु संसृजन्ति ते सर्वे जनाः एतन्मन्त्रप्रभावाद्द वध्रयः निर्वीर्याः कृताः । विषगिरिः कन्दमूलादिविषोत्पत्तिहेतुः पर्वतश्च वध्रिः निर्वीर्यः कृतः

जो प्राणी विषमयी औषधिको पीस करके देते हैं, जो पुरुष लेपनविषका प्रयोग करते हैं, जो पुरुष दूरसे विषको फैंकते हैं और जो प्राणी समीपमें खड़े होकर विषको अन्न जल आदिमें मिलाते हैं उन सब पुरुषोंको इस मन्त्रके प्रभावसे निर्वीर्य कर दिया और कन्द मूल आदिके विषकी उत्पत्तिका हेतु पर्वत भी निर्वीर्य कर दिया गया ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे ।
वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ॥८॥

वध्रयः । ते । खनितारः । वध्रिः । त्वम् । असि । ओषधे ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वध्रिः । सः । पर्वतः । गिरिः । यतः । जातम् । इदम् । विषम् ८

हे ओषधे विषोपादानभूते ते तव कन्दमूलादेः खनितारः खनेन उद्धर्तारो जनः वध्रयः निर्वीर्या भवन्तु । त्वमपि मन्त्रप्रभावात् वध्रिरसि निर्वीर्या भवसि । स तादृशः पर्वतः पर्ववान् गिरिः शिलोच्चयः वध्रिः निर्वीर्यो भवति । यतः यस्माद् गिरेः इदम् कन्दमूलादिलक्षणं विषं जातम् उत्पन्नम् । स पर्वत इति संबन्धः। ❀ जातम् इति । जनेः कर्तरि निष्ठा । "श्वीदितो निष्ठायाम्" इति इट्प्रतिषेधः । "जनसनखनां सन्झलोः" इति आत्वम् ❀ ॥

[इति] चतुर्थे काण्डे [द्वितीयेनुवाके] प्रथमं सूक्तम् ॥

हे विषमयी ओषधे ! तुझ कन्द मूल आदिको खोदकर उद्धार करने वाले मनुष्य भी निर्वीर्य होजावें, तू भी मन्त्रके प्रभावसे निर्वीर्य होजा और जिस पर्वतसे यह कन्द मूल आदिका विष उत्पन्न होता है, वह पर्वत निर्वीर्य होजावे ॥ ८ ॥

चतुर्थकाण्डके द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१०८)

"वारिदं वारयातै" इति द्वितीयसूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

"वारिदं वारियातै" इस द्वितीय सूक्तका पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ॥

तत्र प्रथमा ॥

वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि ।
तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम् ॥ १ ॥

वाः । इदम् । वारयातै । वरणऽवत्याम् । अधि ।
तत्र । अमृतस्य । आऽसिक्तम् । तेन । ते । वारये । विषम् ॥१॥

वरणावत्याम् । वरणा नाम वृक्षविशेषाः ते अस्यां सन्तीति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वरणावती । ❀ "शरादीनां च" इति मतौ पूर्वपदस्य दीर्घः ❀। तस्याम् [अधि]। अधिः सप्तम्यर्थानुवादी । तस्यां स्थितम् इदम् विषहरं वाः वारि वारयातै अस्मदीयं विषं वारयतु । ❀ वारयतेर्लेटि आडागमः ❀। वरणावत्युदकस्य कोतिशय इति तत्राह तत्रामृतस्येति । तत्र वरणावत्याम् अमृतस्य द्युलोकस्थस्य विषहरं स्वरूपम् आसिक्तम् प्रक्षिप्तं विद्यते । अतः तेन अमृतमयेन उदकेन ते त्वदीयं कन्दमूलादिजनितं विषं वारये निवारयामि ॥

वरण नामके वृक्ष जिसमें होते हैं उस वरणावतीका यह विषको दूर करने वाला जल हमारे विषको दूर करे । इस वरणावतीमें द्युलोकमें स्थित अमृतका विषको हरने वाला स्वरूप प्रक्षिप्त होनेसे वर्तमान है, अतः उस अमृतमय जलसे तेरे कन्दमूल आदिसे हुए विषको मैं दूर करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अरसं प्राच्यं विषमरसं यदुदीच्यम् ।
अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते ॥ २ ॥

अरसम् । प्राच्यम् । विषम् । अरसम् । यत् । उदीच्यम् ।
अथ । इदम् । अधराच्यम् । करम्भेण । वि । कल्पते ॥ २ ॥

प्राच्यम् प्राग्देशे भवं विषम् अरसम् नीरसं निर्वीर्यम् अस्तु । तथा उदीच्यम् उदग्देशे भवं यद् विषम् अस्ति तदपि अरसम् निर्वीर्यं भवतु । ❀ "द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्" इति शैषिको यत्प्रत्ययः ❀ । अथ अनन्तरम् इदम् अधराच्यम् । 'अधरम् अधोदेशम् अञ्चतीति अधराक् पृथिव्या अधस्ताद् वर्तमाना दिक् । तत्र भवम् अधराच्यं विषम् । यद्वा "प्राग् अपाग् उदग् अधराक्" [२०. कु० ८. १] "प्राक्ताद् अपाक्ताद् अधराद् उदक्ताद्"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[ऋ० ७. १०४. १९] इत्यादिमन्त्रान्तरेषु प्रागादिदिक्त्रयसमभिव्याहारेण दक्षिणा दिक् अधराक्शब्दवाच्या । एतच्च प्रत्यग्दिशोप्युपलक्षकम् । एवं सर्वदिक्संबन्धि विषं करम्भेण । "मन्थं संयुतं करम्भ इत्याचक्षते" [आप० १२. ४. १३] इति आपस्तम्बवचनाद् अत्र विषहरे प्रयोगे प्रयुज्यमानो मन्थः करम्भशब्दवाच्यः । तेन वि कल्पते । विगतसामर्थ्यं भवतीत्यर्थः । ❀ क्लृपू सामर्थ्ये । "कृपो रो लः" इति लत्वम् ❀ ॥

पूर्व दिशाका विष नीरस हो (निर्वीर्य हो) उत्तर दिशामें होने वाला विष निर्वीर्य हो, पृथिवीमें—दक्षिण दिशामें होनेवाला विष निर्वीर्य हो, इसप्रकार सब दिशाओंमें होने वाला विष मन्त्र के द्वारा निष्फल होवे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

करम्भं कृत्वा तिर्यं पीबस्पाकमुदारथिम् ।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः ॥३॥

करम्भम् । कृत्वा । तिर्यम् । पीबःऽपाकम् । उदारथिम् ।
क्षुधा । किल । त्वा । दुस्तनो इति दुःऽतनो । जक्षिऽवान् । सः ।
न । रूरुपः ॥ ३ ॥

हे दुष्टनो दुष्टशरीर विष तिर्यम् तिरोभवं प्रच्छन्नत्वेन प्रयुक्तम् । ❀ तिरस्शब्दात् "भवे छन्दसि" इति यत् । "अव्ययानां भमात्रे० इति टिलोपः ❀। पीबस्पाकम् । पीवो मेदः पच्यते येन तत् पीवस्पाकम् । ❀ पचेः करणे घञ् ❀ । उदारथिम् उद्रिक्तार्तिजनकम् ईदृशं त्वा त्वां करम्भं कृत्वा करम्भशब्दवाच्यं मन्थं विभाव्य क्षुधा किल बुभुक्षया । किलेति अपरमार्थे । जक्षिवान् भक्षितवान् । पुरुषो भक्षितवान् । स भक्षितस्त्वं तं पुरुषं न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूरुपः मूर्छितं मा कुरु । ❀ जक्षिवान् इति अदेर्लिटः क्वसुः । "लिट्यन्यतरस्याम्" इति घस्लृ आदेशः । "वस्वेकाजाद्धसाम्" इति इटि कृते उपधालोपे स्थानिवद्भावाद् द्विर्वचनादि । रूरुप इति। रुप विमोहने । ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् ❀ ॥

हे शरीरको दूषित करनेवाले विष ! धोखेसे खाए हुए, मेदको पचाने वाले और भयङ्कर पीड़ा देने वाले तुझको मन्थ समझ कर भूँखमें इस पुरुषने भक्षण कर लिया है वह खाया हुआ तू इस पुरुषको मूर्छित न कर ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि ।

प्र त्वा चरुमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि ॥ ४ ॥

वि । ते । मदम् । मदऽवति । शरम्ऽइव । पातयामसि ।

प्र । त्वा । चरुम्ऽइव । येषन्तम् । वचसा । स्थापयामसि ॥ ४ ॥

हे मदावति मूर्छाकरमदयुक्ते विषोपादानभूते ओषधे ते त्वदीयं मदम् मूर्छाकरं विषम् शरुमिव धनुषो विमुक्तं शरमिव वि पातयामसि विपातयामः । ❀ शरुम् इति । शृ हिंसायाम् इत्यस्मात् शृस्वृस्निहि० [उ० १. १०] इत्यादिना उप्रत्ययः ❀ । शरीराद्व विश्लेषयामः । हे विष चरुम् चरणशीलं गूढचरं दूतमिव जेषन्तम् । ❀ जेषृ प्रयत्ने ❀ । प्रयतमानम् अङ्गप्रत्यङ्गानि व्याप्नुवन्तं त्वा त्वां वचसा मन्त्रेण प्र स्थापयामसि प्रस्थापयामः ॥

हे मूर्छादायक मदसे युक्त औषधे ! तेरे मूर्छा करने वाले विष को हम धनुषसे छूटने वाले बाणकी समान शरीरसे अलग करते हैं । हे विष ! गुप्तरूपसे विचरण करने वाले दूतकी समान चेष्टा कर अङ्ग प्रत्यंगमें व्याप्त होते हुए तुझको हम मन्त्रके द्वारा (दूर) भेजते हैं ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पञ्चमी ॥

परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि ।

तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रूरुपः ॥ ५ ॥

परि । ग्रामम्ऽइव । आऽचितम् । वचसा । स्थापयामसि ।

तिष्ठ । वृक्षःऽइव । स्थाम्नि । अभ्रिऽखाते । न । रूरुपः ॥ ५ ॥

ग्राममिव जनसमूहमिव आचितम् उपचितं विषम् । ग्रामदृष्टान्तेन विषस्य प्राबल्यम् उक्तम् । ईदृशमपि वचसा मन्त्रेण परिहृत्य अन्यत्र स्थापयामसि स्थापयामः । निरस्याम इत्यर्थः ॥ हे अभ्रिखाते । अभ्रिः खननसाधनम् । तदीयखननेन लब्धे ओषधे स्थाम्नि स्थाने स्वकीये वृक्ष इव निश्चला भूत्वा तिष्ठ । मा व्याप्नुहीत्यर्थः । अत एव न रूरुपः पुरुषं नामूमुहः ॥

जनसमूहकी समान एकत्रित हुए विषको भी हम मन्त्ररूप वचनसे हरकर अन्यत्र भेजते हैं, अर्थात् निकालते हैं, हे खोदनेसे प्राप्त होने वाली औषधे ! तू अपने स्थानमें ही वृक्षकी समान निश्चल होकर रह, व्याप्त मत हो, इस पुरुषको मोहमें न डाल ५

षष्ठी ॥

पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत ।

प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रूरुपः ॥ ६ ॥

पवस्तैः । त्वा । परि । अक्रीणन् । दूर्शेभिः । अजिनैः । उत ।

प्रऽक्रीः । असि । त्वम् । ओषधे । अभ्रिऽखाते । न । रूरुपः ॥६॥

हे ओषधे विषमूलिके त्वा त्वाम् पवस्तैः पवनाय अस्तैः संमार्जनीतृणैः पर्यक्रीणन् परिक्रीतवन्तो महर्षयः । पवस्तशब्दो दाश-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तस्यां द्यावापृथिव्योर्वाचकत्वेन दृष्टः। "द्वे पवस्ते परि तं न भूतः" [ऋ० १०. २७. ७] इति। तथा दूर्शेभिः दूर्शैः दुष्टमृगसंबन्धिभिः अजिनैः त्वग्भिश्च पर्यक्रीणन्। उतशब्दः समुच्चये। ❀ दूर्शेभिरिति। "बहुलं छन्दसि" इति भिस ऐसभावः ❀॥ यत् एवम् अतो हेतोः त्वं प्रक्रीः प्रकर्षेण क्रीता असि भवसि। अतस्तैर्द्रव्यैस्त्वं प्रक्रीता सती अस्मात् स्थानान्निर्गच्छेति भावः। ❀ प्रपूर्वात् क्रीणातेः कर्मणि संपदादिलक्षणः क्विप् ❀॥ अभ्रिखाते इत्यादि व्याख्यातम्॥

हे विषमूलिके ओषधे! पवित्र करनेके लिये फैलाये हुए सम्मार्जनीतृणोंसे महर्षियोंने तुझको खरीद लिया है तू दुष्ट मृगों के चर्मोंसे खरीदी हुई है, अतः खरीदी हुई तू इस स्थानसे निकल जा, हे खोद कर प्राप्त की हुई ओषधे! तू इस पुरुषको मोहमें न डाल॥ ६॥

सप्तमी॥

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ७

अनाप्ताः। ये। वः। प्रथमाः। यानि। कर्माणि। चक्रिरे।
वीरान्। नः। अत्र। मा। दभन्। तत्। वः। एतत्। पुरः। दधे ७

हे जनाः वः युष्माकम् अनाप्ताः अननुकूला ये शत्रवः प्रथमा प्रथमानि मुख्यानि यानि योगादीनि कर्माणि चक्रिरे कृतवन्तः तैः कर्मभिस्ते शत्रवः नः अस्माकं वीरान् वीर्याज्जातान् पुत्रपौत्रादीन् अत्र अस्मिन् देशे यद्वा एषु कर्मसु निमित्तभूतेषु मा दभन् मा हिंसन्तु। ❀ दन्भु दम्भे ❀। तद् एतद् क्रियमाणं भैषज्यरूपं कर्म वः युष्माकं पुरः पुरस्ताद् दधे रक्षणार्थं धारयामि॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम्॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे पुरुषों! तुम्हारे अनुकूल न चलने वाले जिन शत्रुओंने योग आदि मुख्य कर्मोंको किया है उन कर्मोंसे वे हमारे वीर्यसे उत्पन्न हुए पुत्र पौत्र आदिको इस देशमें न मारें। इस चिकित्सा-रूप कर्मको मैं तुम्हारे सामने रक्षाके लिये रखता हूँ ॥ ७ ॥

चतुर्थ काण्डके द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (१०९) ॥

"भूतो भूतेषु" इति तृतीयसूक्तेन महति लघौ वा राजाभिषेक-कर्मणि शान्त्युदककलशेन उदपात्रेण च अभिषेकं जपं च पुरोहितः कुर्यात् ॥

तथा संपातितस्थालीपाकमाशनम् अभिमन्त्रितम् अश्वम् आरोह्य अपराजितदिशं प्रति गमनं च कारयेत्। सूत्रितं हि। "भूतो भूतेष्विति राजानम् अभिषेच्यन् महा[नदे]शान्त्युदकं करोति" इत्यादि [कौ० २. ८] ॥

तथा राजसूये आसन्द्यारोहणे राजाभिषेके च एतत् सूक्तम्। उक्तं वैताने। "राजसूयं" प्रक्रम्य "वैयाघ्रचर्मोपबर्हणायाम् आसन्द्यां भूतो भूतेष्वित्यारोहयति अभिषिञ्चति च" इति [वै० ७. १] ॥

'भूतो भूतेषु' इस तृतीयसूक्तसे छोटे वा बड़े राजाभिषेककर्म में शान्त्युदकके कलशसे और जलपूर्णपात्रसे भी पुरोहित जप और अभिषेक भी करे ॥

तथा संपातित स्थालीपाकका प्राशन करावे और अभिमन्त्रित घोड़े पर चढ़ाकर अपराजित दिशाकी ओर गमन भी करावे इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"भूतो भूतेष्विति राजानं अभिषेच्यन् महानदे शान्त्युदकं करोति०" (कौशिकसूत्र २।८) ॥

तथा राजसूयमें आसन पर बैठते समय और राजाभिषेक के समय भी यह सूक्त पढ़ा जाता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"राजसूयं" प्रक्रम्य "वैयाघ्रचर्मोपबर्हणायां आसन्द्यां भूतो भूतेष्वित्यारोहयति अभिषिञ्चति च" (वैतानसूत्र ७।१) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तत्र प्रथमा ॥

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव ।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम् ॥ १ ॥

भूतः । भूतेषु । पयः । आ । दधाति । सः । भूतानाम् । अधिऽपतिः । बभूव ।
तस्य । मृत्युः । चरति । राजऽसूयम् । सः । राजा । राज्यम् । अनु । मन्यताम् । इदम् ॥ १ ॥

भूतः समृद्धः अभिषेकेण प्राप्तैश्वर्यः भूतेषु समृद्धेषु स्वाम्यमात्यादिप्रकृतिजनेषु वा पयः । उपलक्षणम् एतत् । सर्वोपलक्षितं भोज्यं वस्तुजातम् आ दधाति स्थापयति । सर्वेषाम् अपि जीविनाम् अन्नप्रदो भवतीत्यर्थः ॥ अत एव सः अभिषिक्तो राजा भूतानाम् प्राणिनाम् अधिपतिः अधिष्ठाता स्वामी बभूव । मृत्युः धर्मराजः धर्माधर्मप्रविभागेन दुष्टनिग्रहशिष्टपरिपालनं कारयितुं तस्य राज्ञो राजसूयं चरति । राजा सूयते अनुज्ञायते प्रजारक्षणविधौ येन कर्मणा तद् राजसूयम् अभिषेकाख्यम् तत् कर्म अनुतिष्ठतीत्यर्थः ॥ स कृताभिषेको राजा राज्यम् । राज्ञः कर्म दुष्टनिग्रहशिष्टपरिपालनादिकं राज्यम् । तद् अनु मन्यताम् अनु करोतु । ❀ राज्यम् इति । "पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्" इति कर्मणि अभिधेये यक् प्रत्ययः । तत्र पुरोहितादिषु "राजा" इति पठितम् ❀ ॥

अभिषेकके द्वारा ऐश्वर्यको पाने वाला, स्वामी अपनी प्रजा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकृतियोंमें दुग्ध आदि भोज्य वस्तुओंको देता है अर्थात् सब अनुजीवियोंको अन्न देता है अतएव वह अभिषिक्त राजा सब प्राणियोंका स्वामी होता है, धर्मराज धर्म और अधर्मके विभाग से दुष्टों पर दण्ड और शिष्टों पर अनुग्रह करानेके लिये उस राजाके राजसूय यज्ञको करते हैं, अर्थात् जिस कर्मसे राजाको जगत्–रक्षण विधिकी अनुज्ञा दीजाती है, उस कर्मको करते हैं, अतः अभिषिक्त राजा दुष्टोंको दण्ड देना और सज्जनोंका पालन करना रूप राजाके कर्मको अंगीकार करे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा ।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन् ॥२॥

अभि । प्र । इहि । मा । अप । वेनः । उग्रः । चेत्ता । सपत्नऽहा ।
आ । तिष्ठ । मित्रऽवर्धन । तुभ्यम् । देवाः । अधि । ब्रुवन् ॥ २ ॥

हे राजन् सिंहासनं हस्त्यश्वरथादियानं च अभि प्रेहि अभिलक्ष्य प्रगच्छ । मा अप वेनः । ❀ वेनतिः कान्तिकर्मा ❀ । अपकामम् अनिच्छां मा कार्षीः ॥ उग्रः उद्गूर्णबलः दुरासदः चेत्ता चेतिता । कार्याकार्यविभागज्ञानशीलवान् इत्यर्थः । ❀ चिती संज्ञाने इत्यस्मात् ताच्छीलिकस्तृन् ❀ । अत एव सपत्नहा सपत्नानां शत्रूणां हन्ता । ❀ "बहुलं छन्दसि" इति हन्तेः क्विप् ❀ । राजसनादिसमीपं गत्वा च मित्रवर्धनः यानि राजमित्राणि महामात्रादीनि सन्ति तेषां वर्धयिता सन् आ तिष्ठ राजासनं हस्त्यश्वादियानं च आरोह । एवंभूताय तुभ्यं देवाः इन्द्रादयो लोकपालाः अधि ब्रुवन् [अधिब्रुवन्तु] । अधिवचनं पक्षपातेन वचनम् । मदीयोयम् इति त्वाम् अनुगृह्णन्तु इत्यर्थः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे राजन्! आप सिंहासन और हाथी घोड़ा रथ आदि यान की ओर लक्ष्य रख कर चलिये, इनकी अनिच्छा न करिये। प्रचण्ड बली, कार्य और अकार्यके विभागको जानने वाले शत्रु-संहारक आप राजासन आदि पर जाकर अपने मित्रोंको बढ़ाते हुए राजासन पर और हाथी आदि सवारी पर भी चढ़िये। ऐसे आपको इन्द्र आदि लोकपाल पक्षपातपूर्वक कहें, कि—यह तो हमारे हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ ३ ॥

आऽतिष्ठन्तम् । परि । विश्वे । अभूषन् । श्रियम् । वसानः । चरति । स्वऽरोचिः ।

महत् । तत् । वृष्णः । असुरस्य । नाम । आ । विश्वऽरूपः । अमृतानि । तस्थौ ॥ ३ ॥

आतिष्ठन्तम् सिंहासनादिकम् आरोहन्तं विश्वे सर्वे जनाः पर्यभूषन् परितः अलङ्कुर्वन्तु । ❀ भूष अलंकारे । भौवादिकः ❀ । [यद्वा] परितो भवन्तु वर्तन्ताम् । सेवन्ताम् इत्यर्थः । ❀ भवतेश्छान्दसे लुङि सिब्बहुलम्०" इति बहुलग्रहणात् सिप् ❀ ॥ आस्थानानन्तरं श्रियं वसानः राजलक्ष्मीं धारयन् स्वरोचिः स्वायत्तदीप्तिः चरति राज्यपरिपालने वर्तते । ❀ वसान इति । वस आच्छादने । अस्मात् लटः शानच् । अनुदात्तेत्त्वात् "तसार्वधातुक०" [इति] अनुदात्तत्वे धातुस्वरः ❀ ॥ विष्णोः अभिषेक-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकृतियोंमें दुग्ध आदि भोज्य वस्तुओंको देता है अर्थात् सब अनुजीवियोंको अन्न देता है अतएव वह अभिषिक्त राजा सब प्राणियोंका स्वामी होता है, धर्मराज धर्म और अधर्मके विभाग से दुष्टों पर दण्ड और शिष्टों पर अनुग्रह करानेके लिये उस राजाके राजसूय यज्ञको करते हैं, अर्थात् जिस कर्मसे राजाको जगत्–रक्षण विधिकी अनुज्ञा दीजाती है, उस कर्मको करते हैं, अतः अभिषिक्त राजा दुष्टोंको दण्ड देना और सज्जनोंका पालन करना रूप राजाके कर्मको अंगीकार करे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा ।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन् ॥२॥

अभि । प्र । इहि । मा । अप । वेनः । उग्रः । चेत्ता । सपत्नऽहा ।
आ । तिष्ठ । मित्रऽवर्धन । तुभ्यम् । देवाः । अधि । ब्रुवन् ॥ २ ॥

हे राजन् सिंहासनं हस्त्यश्वरथादियानं च अभि प्रेहि अभिलक्ष्य प्रगच्छ । मा अप वेनः । ❀ वेनतिः कान्तिकर्मा ❀ । अपकामम् अनिच्छां मा कार्षीः ॥ उग्रः उद्गूर्णबलः दुरासदः चेत्ता चेतिता । कार्याकार्यविभागज्ञानशीलवान् इत्यर्थः । ❀ चिती संज्ञाने इत्यस्मात् ताच्छीलिकस्तृन् ❀ । अत एव सपत्नहा सपत्नानां शत्रूणां हन्ता । ❀ "बहुलं छन्दसि" इति हन्तेः क्विप् ❀ । राजसनादिसमीपं गत्वा च मित्रवर्धनः यानि राजमित्राणि महामात्रादीनि सन्ति तेषां वर्धयिता सन् आ तिष्ठ राजासनं हस्त्यश्वादियानं च आरोह । एवंभूताय तुभ्यं देवाः इन्द्रादयो लोकपालाः अधि ब्रुवन् [अधिब्रुवन्तु] । अधिवचनं पक्षपातेन वचनम् । मदीयोयम् इति त्वाम् अनुगृह्णन्तु इत्यर्थः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे राजन्! आप सिंहासन और हाथी घोड़ा रथ आदि यान की ओर लक्ष्य रख कर चलिये, इनकी अनिच्छा न करिये। प्रचण्ड बली, कार्य और अकार्यके विभागको जानने वाले शत्रु-संहारक आप राजासन आदि पर जाकर अपने मित्रोंको बढ़ाते हुए राजासन पर और हाथी आदि सवारी पर भी चढ़िये। ऐसे आपको इन्द्र आदि लोकपाल पक्षपातपूर्वक कहें, कि—यह तो हमारे हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि
तस्थौ ॥ ३ ॥

आऽतिष्ठन्तम् । परि । विश्वे । अभूषन् । श्रियम् । वसानः । चरति । स्वऽरोचिः ।
महत् । तत् । वृष्णः । असुरस्य । नाम । आ । विश्वऽरूपः । अमृतानि । तस्थौ ॥ ३ ॥

आतिष्ठन्तम् सिंहासनादिकम् आरोहन्तं विश्वे सर्वे जनाः पर्यभूषन् परितः अलङ्कुर्वन्तु । ❀ भूष अलंकारे । भौवादिकः ❀ । [यद्वा] परितो भवन्तु वर्तन्ताम् । सेवन्ताम् इत्यर्थः । ❀ भवतेश्छान्दसे लुङि सिब्बहुलम्०" इति बहुलग्रहणात् सिप् ❀ ॥ आस्थानानन्तरं श्रियं वसानः राजलक्ष्मीं धारयन् स्वरोचिः स्वायत्तदीप्तिः चरति राज्यपरिपालने वर्तते । ❀ वसान इति । वस आच्छादने । अस्मात् लटः शानच् । अनुदात्तेत्त्वात् "लसार्वधातुक०" [इति] अनुदात्तत्वे धातुस्वरः ❀ ॥ विष्णोः अभिषेक-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकृतियोंमें दुग्ध आदि भोज्य वस्तुओंको देता है अर्थात् सब अनुजीवियोंको अन्न देता है अतएव वह अभिषिक्त राजा सब प्राणियोंका स्वामी होता है, धर्मराज धर्म और अधर्मके विभाग से दुष्टों पर दण्ड और शिष्टों पर अनुग्रह करानेके लिये उस राजाके राजसूय यज्ञको करते हैं, अर्थात् जिस कर्मसे राजाको जगत्—रक्षण विधिकी अनुज्ञा दीजाती है, उस कर्मको करते हैं, अतः अभिषिक्त राजा दुष्टोंको दण्ड देना और सज्जनोंका पालन करना रूप राजाके कर्मको अंगीकार करे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा ।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन् ॥२॥

अभि । प्र । इहि । मा । अप । वेनः । उग्रः । चेत्ता । सपत्नऽहा ।
आ । तिष्ठ । मित्रऽवर्धन । तुभ्यम् । देवाः । अधि । ब्रुवन् ॥ २ ॥

हे राजन् सिंहासनं हस्त्यश्वरथादियानं च अभि प्रेहि अभिलक्ष्य प्रगच्छ । मा अप वेनः । ❀ वेनतिः कान्तिकर्मा ❀ । अपकामम् अनिच्छां मा कार्षीः ॥ उग्रः उद्गूर्णबलः दुरासदः चेत्ता चेतिता । कार्याकार्यविभागज्ञानशीलवान् इत्यर्थः । ❀ चिती संज्ञाने इत्यस्मात् ताच्छीलिकस्तृन् ❀ । अत एव सपत्नहा सपत्नानां शत्रूणां हन्ता । ❀ "बहुलं छन्दसि" इति हन्तेः क्विप् ❀ । राजसनादिसमीपं गत्वा च मित्रवर्धनः यानि राजमित्राणि महामात्रादीनि सन्ति तेषां वर्धयिता सन् आ तिष्ठ राजासनं हस्त्यश्वादियानं च आरोह । एवंभूताय तुभ्यं देवाः इन्द्रादयो लोकपालाः अधि ब्रुवन् [अधिब्रुवन्तु] । अधिवचनं पक्षपातेन वचनम् । मदीयोयम् इति त्वाम् अनुगृह्णन्तु इत्यर्थः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे राजन् ! आप सिंहासन और हाथी घोड़ा रथ आदि यान की ओर लक्ष्य रख कर चलिये, इनकी अनिच्छा न करिये। प्रचण्ड बली, कार्य और अकार्यके विभागको जानने वाले शत्रु-संहारक आप राजासन आदि पर जाकर अपने मित्रोंको बढ़ाते हुए राजासन पर और हाथी आदि सवारी पर भी चढ़िये। ऐसे आपको इन्द्र आदि लोकपाल पक्षपातपूर्वक कहें, कि—यह तो हमारे हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि
तस्थौ ॥ ३ ॥

आऽतिष्ठन्तम् । परि । विश्वे । अभूषन् । श्रियम् । वसानः ।
चरति । स्वऽरोचिः ।
महत् । तत् । वृष्णः । असुरस्य । नाम । आ । विश्वऽरूपः ।
अमृतानि । तस्थौ ॥ ३ ॥

आतिष्ठन्तम् सिंहासनादिकम् आरोहन्तं विश्वे सर्वे जनाः पर्यभूषन् परितः अलङ्कुर्वन्तु । ❀ भूष अलंकारे । भौवादिकः ❀ । [यद्वा] परितो भवन्तु वर्तन्ताम् । सेवन्ताम् इत्यर्थः । ❀ भवतेश्छान्दसे लुङि सिब्बहुलम्०" इति बहुलग्रहणात् सिप् ❀ ॥ आस्थानानन्तरं श्रियं वसानः राजलक्ष्मीं धारयन् स्वरोचिः स्वायत्तदीप्तिः चरति राज्यपरिपालने वर्तते । ❀ वसान इति । वस आच्छादने । अस्मात् लटः शानच् । अनुदात्तत्वात् "लसार्वधातुक०" [इति] अनुदात्तत्वे धातुस्वरः ❀ ॥ विष्णोः अभिषेक-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जनितराजतेजसा दशदिगन्तान् व्याप्नुवतः असुरस्य शत्रूणां निरसितुः। ❀ असु क्षेपणे। असेरुरन् [उ० १. ४२] इति उरन् प्रत्ययः ❀। यद्वा असून् प्राणान् राति प्रयच्छति पादाक्रान्तानां द्विषाम् इति असुरः। ❀ रा दाने इत्यस्माद् "आतोनुपसर्गे कः" इति कः ❀। ईदृशस्य तस्याभिषिक्तस्य राज्ञः तन्नाम अभिषेकसमये कृतं सुन्दरपाण्ड्यादिकं नाम महः महत् अधिकं यन्नामश्रवणमात्राद् भीताः शत्रवः पलायन्ते [तादृशम्]। तादृङ्नामाङ्कितो राजा विश्वरूपः शत्रुमित्रकलत्रादिषु नानाविधरूपः सन् अमृतानि अमृतत्वप्रापकानि दण्डयुद्धादीनि अध्ययनादीनि च कर्माणि आ तस्थौ आतिष्ठतु। आचरतु इत्यर्थः ॥

सिंहासन आदि पर आरूढ़ होते हुए राजाकी सब जने चारों ओरसे सेवा करें, और सिंहासन आदि पर बैठनेके अनन्तर राज्यलक्ष्मीको धारण करने वाले यह राजा राज्यपरिपालनमें तत्पर रहें। अभिषेकके कारण उत्पन्न हुए राजतेजसे दशों दिशाओं में व्याप्त, और शत्रुओंका संहार करने वाले अभिषिक्त राजाके अभिषेकके समय रक्खा हुआ सुन्दर पाण्ड्य आदि नाम बड़ा भारी हो, कि–जिस नामके सुननेसे ही शत्रु भयभीत होकर भाग जावें। ऐसे नामसे अंकित राजा शत्रु मित्र स्त्री आदिमें अनेक रूपसे व्यवहार करता हुआ अमृतत्वको प्राप्त कराने वाले दण्ड युद्ध आदि और अध्ययन आदि कर्मोंको भी करे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ४

व्याघ्रः। अधि। वैयाघ्रे। वि। क्रमस्व। दिशः। महीः।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विशः । त्वा । सर्वाः । वाञ्छन्तु । आपः । दिव्याः । पयस्वतीः ४

वैयाघ्रे व्याघ्रस्य विकारश्चर्म वैयाघ्रम् । ❀ "अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः" इति विकारार्थे अण् । "न य्वाभ्यां पदान्ताभ्याम्०" इति वृद्धिनिषेधः ऐजागमश्च ❀ । व्याघ्रचर्मणि अधि उपरि उपविष्टः सन् व्याघ्रः । लुप्तोपमम् एतत् । व्याघ्रवद् दुष्प्रधर्षो भूत्वा महीः महतीः प्राच्याद्या दिशः वि क्रमस्व विजयस्व । विक्रमेण शौर्येण व्याप्नुहीत्यर्थः । ❀ "वेः पादविहरणे" इति क्रमेरात्मनेपदम् ❀ ॥ हे राजन् एवं तेजस्विनं त्वा त्वां सर्वा विशः प्रजाः वाञ्छन्तु स्वामित्वेन इच्छन्तु । ❀ वाछि इच्छायाम् ❀ । त्वदाज्ञावशे वर्तन्ताम् इत्यर्थः ॥ तथा दिव्याः दिवि भवाः पयस्वतीः पयस्वत्यः सारवत्यः आपश्च त्वां वाञ्छन्तु । त्वद्विषये अनावृष्टिर्मा भूद् इत्यर्थः ॥

आप व्याघ्रचर्म पर बैठ व्याघ्रकी समान दुष्प्रधर्ष होकर विशाल पूर्व आदि दिशाओंको जीतिये, हे राजन् ! ऐसे तेजस्वी आपको सब प्रजायें स्वामी बनाना चाहें, आपकी आज्ञाके वशमें रहें तथा आकाशमें होने वाले सारमय जल भी आपकी इच्छा करें अर्थात् आपके राज्यमें अनावृष्टि न हो ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम् ।
तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा ॥ ५ ॥

याः । आपः । दिव्याः । पयसा । मदन्ति । अन्तरिक्षे । उत । वा । पृथिव्याम् ।

 ६. ९. २९

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तासाम् । त्वा । सर्वासाम् । अपाम् । अभि । सिञ्चामि । वर्चसा ५

दिव्याः दिवि भवा या आपः पयसा स्वकीयेन सारभूतेन रसेन मदन्ति प्राणिनस्तर्पयन्ति । ❀ मद तृप्तियोगे । चुरादिरदन्तः । "छन्दस्युभयथा" इति शप आर्धधातुकत्वात् "णेरनिटि" इति णिलोपः ❀ । याश्च अन्तरिक्षे वर्तमाना आपः उत वा अपि वा पृथिव्याम् भूम्याम् अवस्थिताः तासां सर्वासां लोकत्रयव्याप्तानाम् अपां वर्चसा बलकरेण सारेण हे राजन् त्वा त्वाम् अभि षिञ्चामि ॥

स्वर्गके जो जल अपने सारभूत रससे प्राणियोंको तृप्त करते हैं, और जो जल अन्तरिक्ष और पृथिवीमें हैं उन तीनों लोकोंमें व्याप्त जलोंके बलप्रद सारसे हे राजन् ! मैं तेरा अभिषेक करता हूँ ५

षष्ठी ॥

अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः ।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ॥ ६ ॥

अभि । त्वा । वर्चसा । असिचन् । आपः । दिव्याः । पयस्वतीः ।
यथा । असः । मित्रऽवर्धनः । तथा । त्वा । सविता । करत् ॥६॥

हे राजन् त्वा त्वां प्रागुक्ता दिव्याः [पयस्वतीः] पयस्वत्यः आपः स्वकीयेन वर्चसा अभ्यसृजन् आभिमुख्येन संसृजन्तु । यथा त्वं मित्रवर्धनः मित्राणां वर्धयिता असः भवेः । ❀ वृधेर्ण्यन्तात् नन्द्यादिलक्षणो ल्युप्रत्ययः । अस्तेर्लेटि अडागमः ❀ । सविता सर्वप्रेरको देवः त्वा त्वां तथा करत् करोतु ॥

हे राजन् ! पूर्वोक्त दिव्य जल आपको अपने तेजसे अभिषिक्त करें और आप जिस प्रकार मित्रोंको बढ़ा सकें तिस प्रकारकी दशामें सर्वप्रेरक सूर्यदेव आपको करें ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सप्तमी ॥

एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभंगाय ।
समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्व१न्तः

एना । व्याघ्रम् । परिऽसस्वजानाः । सिंहम् । हिन्वन्ति । महते । सौभगाय ।
समुद्रम् । न । सुऽभुवः । तस्थिऽवांसम् । मर्मृज्यन्ते । द्वीपिनम् । अप्ऽसु । अन्तः ॥ ७ ॥

"या आपो दिव्याः" इति प्राग् उक्ता आपः एना इति अन्वादिश्यन्ते । एना एता उक्ता आपः । ❀ "द्वितीयाटौःस्वेनः" इति एतच्छब्दस्य एनादेशः । ततः "सुपां सुलुक्०" इति जस आजादेशः । अत एव अन्तोदात्तत्वम् । इतरथा हि अनुदात्त इत्यनुवृत्तेरेनादेशोनुदात्तः । जसस्तु सुप्त्वाद् अनुदात्ततेति ❀ । [व्याघ्रं व्याघ्रवत् पराक्रमयुक्तं परिषस्वजानाः परितः अभितः अतिशयेन आलिङ्गन्त्यः । मातरो वत्सम् इव अत्यन्तं प्रीणयन्त्य इत्यर्थः । ❀ परिषस्वजाना इति ष्वञ्ज सङ्गे । अस्मात् लिट् ।] तस्य कानजादेशः ❀ । सिंहम् सहनशीलम् यद्वा सिंहतुल्यपराक्रमं राजानं हिन्वन्ति वीर्यप्रदानेन प्रीणयन्ति । ❀ हिवि: प्रीणनार्थः । इदित्वान्नुम् ❀ । किमर्थम् । महते सौभगाय अधिकाय सौभाग्याय । ❀ "सुभग मन्त्रे" इति उद्गात्रादिषु पाठाद् भावे अञ् । "ञ्नित्यादिर्नित्यम् इति आद्युदात्तत्वम्" । "बृहन्महतोरुपसंख्यानम्" इति महतो विभक्तिरुदात्ता ❀ । तत्र दृष्टा तः । समुद्रं नेति । यथा नदीरूपा आपः समुद्रं प्रीणयन्ति तद्वद् अभिषेकसाधनभूता आपो राजानं प्रीणयन्तीत्यर्थः । यद्वा समुद्रशब्देन वरुण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उच्यते। समुद्रं न वरुणमिव । अप्सु उदकेषु परितो वर्तमानेषु अन्तः मध्ये तस्थिवांसम् स्थितवन्तं द्वीपिनम् शार्दूलवद् अप्रधृष्यं राजानं सुभुवः। सुष्ठु भवन्ति समृद्धा भवन्तीति सुभुवः सेवकजनाः । ते मर्मृज्यन्ते पुनःपुनः अङ्गप्रत्यङ्गानि अभिषेकेण शोधयन्ति । यद्वा पट्टवस्त्रकटकमुकुटादिभिरलंकुर्वन्ति । ❀ मृजू शौचालंकारयोः । "०मर्मृज्यागनीगन्तीति च" इति निपातनाद् अभ्यासस्य रुगागमः। अप्स्विति। "ऊडिदम्०" इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀॥

इति चतुर्थकाण्डे द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

"या आपो दिव्याः" इत्यादि पञ्चम मन्त्रमें कहे हुए जल, व्याघ्रकी समान पराक्रमी राजाको माताकी समान प्रसन्न करते हैं, सिंहकी समान पराक्रमी राजाको बड़ा भारी सौभाग्य पानेके लिये वीर्य प्रदान कर तृप्त करते हैं (उसमें दृष्टान्त यह है, कि) जैसे नदीरूप जल समुद्रको प्रसन्न करते हैं, तिसी प्रकार अभिषेकके साधन जल राजाको तृप्त करते हैं । जलोंके बीचमें स्थित सिंहकी समान अप्रधृष्य राजाको सेवक पट्टवस्त्र मुकुट आदिसे बारम्बार अलंकृत करते हैं ॥ ७ ॥

चतुर्थकाण्डके द्वितीय अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (११०) ॥

"एहि जीवम्" इति सूक्तेन उपनयनानन्तरम् आयुष्कामस्य [illegible]णवकस्य आञ्जनमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् । सूत्रितं [illegible] "एहि जीवम् इत्याञ्जनमणिं बध्नाति" इति [कौ० ७.६]॥ [illegible]िं गजक्षये" [न० क० १९ इति विहितायाम् ऐरावत्या- [illegible]नौ आञ्जनमणिबन्धनेपि एतत् सूक्तम्। उक्तं नक्षत्र- [illegible]त्याञ्जनमणिं ऐरावत्याम् इति[न०क० १६]॥

[illegible]से उपनयनके अनन्तर आयु चाहने [illegible]णिको सम्पातित और अभिमन्त्रित [illegible]माण भी है, कि–"एहि जीवम् [illegible]७।६)॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"ऐरावतीम् गजक्षये—गजक्षयमें ऐरावती महाशान्तिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित ऐरावती नामकी महाशान्तिमें भी यह सूक्त आता है। इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि— "एहि जीवम् इत्याञ्जनमणिम् ऐरावत्याम्" (नक्षत्रकल्प १६)

तत्र प्रथमा ॥

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् ।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥ १ ॥

आ । इहि । जीवम् । त्रायमाणम् । पर्वतस्य । असि । अक्ष्यम् ।
विश्वेभिः । देवैः । दत्तम् । परिऽधिः । जीवनाय । कम् ॥ १ ॥

हे आञ्जन एहि आगच्छ । कुतो हेतोरिति तत्राह । जीवम् इति । जीवति प्राणं धारयतीति जीवः आत्मा । तं त्रायमाणम् पालयत् जीवात्मनः पालनाद्धेतोरित्यर्थः । ❀ त्रैङ् पालने इत्यस्मात् हेतौ लटः शानच् ❀ । तथा पर्वतस्य त्रिककुन्नाम्नो गिरेः अक्ष्यम् असि चक्षुर्भवसि ॥ विश्वेभिः सर्वैर्देवैरिन्द्रादिभिरस्मभ्यं जीवनाय रोगादिराहित्येन चिरकालजीवनार्थं दत्तं सत् परिधिरसि । परितो धीयत इति परिधिः प्राकारः । मृत्योरनागमनाय प्राकारो भवसीत्यर्थः । ❀ परिधिः । परिपूर्वाद्द धात्रः "उपसर्गे घोः किः" इति किप्रत्ययः ❀ । कम् इति पादपूरणः ॥

हे अञ्जनमणे ! प्राणोंको धारण करनेवाले जीवात्माकी रक्षा करती हुई यहाँ आ । तू त्रिककुद नामवाले पर्वतकी नेत्ररूप है। इन्द्र आदि सब देवताओंने रोगरहित जीवन बितानेके लिये तुझ को हमें परकोटेके रूपमें दिया है अर्थात् तू मृत्युका आगमन रोकने के लिये परकोटारूप है ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वितीया ॥

परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि ।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥ २ ॥

परिऽपानम् । पुरुषाणाम् । परिऽपानम् । गवाम् । असि ।
अश्वानाम् । अर्वताम् । परिऽपानाय । तस्थिषे ॥ २ ॥

हे त्रिककुदाञ्जन त्वं पुरुषाणाम् मनुष्याणां परिपाणम् परिरक्षणसाधनम् असि । ❀ पातेः करणे ल्युट् । "वा भावकरणयोः" इति विकल्पेन णत्वम् ❀ । गवां च त्वं परिपाणम् परिरक्षणम् असि । ❀ गवाम् इति । "सावेकाचः०" इति प्राप्तस्य [विभक्त्युदात्तत्वस्य] "न गोश्वन्साववर्ण०" इति प्रतिषेधः ❀ ॥ अश्वानाम् अर्वताम् वडवानां च परिपाणाय परिरक्षणाय तस्थिषे तिष्ठसि । ❀ "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति वर्तमाने लिट् । क्रादिनियमाद् इट् । अर्वताम् इति । "अर्वणस्त्रसावनञः" इति नकारान्तस्य तकारातन्ता ❀ ॥

हे त्रिककुदाञ्जन ! तू पुरुषोंकी रक्षाका साधन होता है और तू गौओंकी भी रक्षाका साधन है, तू घोड़े और घोड़ियोंकी रक्षा के लिये भी स्थित रहता है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन ।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो
हरितभेषजम् ॥ ३ ॥

उत । असि । परिऽपानम् । यातुऽजम्भनम् । आऽअञ्जन ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत । अमृतस्य । त्वम् । वेत्थ । अथो इति । असि । जीवऽभोजनम् । अथो इति । हरितऽभेषजम् ॥ ३ ॥

आ समन्तात् अनक्ति चक्षुषी अनेनेति आञ्जनम् । ❀ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षण[कान्ति]गतिषु । अस्माद् आङ्पूर्वात् करणे ल्युट् ❀ । हे आञ्जन त्वं यातुजम्भनम् । यातवो यातनाः रक्षःपिशाचादिजनिताः पीडाः । तेषां नाशनं परिपाणम् परिरक्षणम् असि । उतशब्दः समुच्चये ॥ ईदृक् सामर्थ्यम् आञ्जनस्य कुत इत्यत आह । उत अपि च त्वम् अमृतस्य अमृतत्वसाधनस्य द्युलोकस्थस्य पीयूषस्य सारं वेत्थ वेत्सि जानासि । ❀ "विदो लटो वा" इति थल् आदेशः ❀ ॥ अथो अपि च जीवभोजनम् जीवानां जीवतां प्राणिनाम् अनिष्टनिवर्तने न पालकम् असि । यद्वा भोगसाधनम् असि ॥ अथो अपि च हरितभेषजम । हरितस्य पाण्ड्वादिरोगजनितस्य श्यामलत्वस्य निवर्तकम् असि ॥

जिससे समीपमें ही नेत्रोंको स्वच्छ किया जाता है, ऐसे हे आञ्जन ! तू राक्षस पिशाच आदिकी कीहुई यातनाओंका नाशक परिपाण–रक्षक–रूप है (इसका कारण यह है, कि–) तू अमृतत्व के साधन द्युलोकमें स्थित पीयूषके सारको जानता है और जीवित प्राणियोंके अनिष्टको हटा कर उनकी रक्षा करने वाला है और पाण्डु आदि रोगसे उत्पन्न हुए श्यामलत्वका भी निवर्तक है ३

चतुर्थी ॥

यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ॥ ४ ॥

यस्य । आऽअञ्जन । प्रऽसर्पसि । अङ्गम्ऽअङ्गम् । परुःऽपरुः ।
ततः । यक्ष्मम् । वि । बाधसे । उग्रः । मध्यमशीःऽइव ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे आञ्जन यस्य पुरुषशरीरस्य अङ्गमङ्गं सर्वाणि हस्तपादादीन्यङ्गानि परुष्परुः सर्वाणि परूंषि पर्वाणि अङ्गसंधींश्च प्रसर्पसि प्रविश्य अन्तःसिरामुखैर्व्याप्नोषि । ❀ "नित्यवीप्सयोः" इति अङ्गशब्दपरुःशब्दयोर्द्विर्वचनम् ❀ । ततः तस्मात् पुरुषशरीराद् यक्ष्मम् रोगं वि बाधते । पुरुषव्यत्ययः । विबाधसे । तत्र दृष्टान्तः । उग्रः उद्गूर्णबलः मध्यमशीरिव । मध्यमे अन्तरिक्षस्थाने शेते संचरतीति मध्यमशीः वायुः । स यथा मेघजालादिकं क्षणमात्रेण अपसारयति तद्वद् इत्यर्थः । यद्वा मध्यमशीः । "अरिर्मित्रम् अरेर्मित्रम्" इति नीतिशास्त्रोक्तराजमण्डलमध्यवर्ती राजा । स यथा उद्गूर्णबलः सन् पर्यन्तवर्तिनो रिपून् निगृह्णाति तद्वद् इत्यर्थः । ❀ मध्यमशीः । मध्ये भवं मध्यमम् । "मध्यान्मः" इति मप्रत्ययः । तत्र शेत इति मध्यमशीः । "क्विप् च" इति शीङः क्विप् ❀ ॥

हे आञ्जन ! तू जिस जिस पुरुषशरीरके हाथ पैर आदि प्रत्येक अंगोंमें और अंगसंधियोंमें प्रवेश करके व्याप्त हो जाता है उस पुरुषके शरीरसे यक्ष्मारोगको, प्रचण्ड बल वाले वायुके मेघको उड़ानेकी समान शीघ्र ही दूर कर देता है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम् ।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥ ५ ॥

न । एनम् । प्र । आप्नोति । शपथः । न । कृत्या । न । अभिऽशोचनम् ।

न । एनम् । विऽस्कन्धम् । अश्नुते । यः । त्वा । बिभर्ति । आऽअञ्जन ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे आञ्जन [आञ्जन] द्रव्य त्वा त्वां यो जनो बिभर्ति धारयति । ❀ डुभृञ् धारणपोषणयोः । "भीह्रीभृहुमद०" इत्यादिना पितः प्रत्ययात् पूर्वस्य उदात्तत्वम् ❀ । एनम् तव धारकं पुरुषं शपथः परकृतः शापः न प्राप्नोति । तथा पराभिचारजनिता कृत्या च न प्राप्नोति । ❀ "कृञः श च" इति चकारात् संज्ञायां करोतेः क्यप् । "ह्रस्वस्य पिति०" इति तुक् ❀ । अभिशोचन अभिशोकः कृत्याजनितो न प्राप्नोति । विष्कन्धम् गतिप्रतिबन्धकं विघ्नजातमपि एनं नाश्नुते न व्याप्नोति ॥

हे आञ्जन ! जो पुरुष तुझको धारण करता है उस पुरुषको दूसरेका किया हुआ शाप नहीं प्राप्त होता, दूसरेकी हुई आभिचारिक कृत्या नहीं प्राप्त होती और कृत्यासे होने वाला अभिशोक और गतिको रोकने वाले विघ्न भी प्राप्त नहीं होते ॥५॥

षष्ठी ॥

असन्मन्त्राद् दुष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत ।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥ ६ ॥

असत्ऽमन्त्रात् । दुःऽस्वप्न्यात् । दुःऽकृतात् । शमलात् । उत ।
दुःऽहार्दः । चक्षुषः । घोरात् । तस्मात् । नः । पाहि । आऽअञ्जन ६

[असन्मन्त्यात् ।] असन्तः अशोभना अभिचारार्था मन्त्रा असन्मन्त्राः । तत्र भवाद् दुःखात् दुष्वप्न्यात् दुःष्वप्नजनिताद् दुःखात् दुष्कृतात् जन्मान्तरकृतात् पापात् [उत] शमलात् अन्यस्मादपि क्रियमाणात् पापात् दुर्हार्दः दौर्मनस्याद् घोरात् क्रूरात् परकीयाच्चक्षुषश्च तस्मात् अनुक्रान्तात् सर्वस्मात् हे आञ्जन नः अस्मान् पाहि रक्ष ॥

हे अञ्जनमणे ! अभिचारोपयोगी असन्मन्त्रोंसे, उनसे होने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE ६-६-२६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माले दुःखसे, दुःस्वप्नसे होने वाले दुःखसे, जन्मान्तरमें बने हुए पापसे उत्पन्न हुए दुःखसे और भी बने हुए पापसे उत्पन्न हुए दुःखसे और भी बने हुए पापसे, दूषित मनसे और दूसरों के क्रूर चक्षुसे भी आप मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥ ७ ॥

इदम् । विद्वान् । आऽअञ्जन । सत्यम् । वक्ष्यामि । न । अनृतम् ।
सनेयम् । अश्वम् । गाम् । अहम् । आत्मानम् । तव । पुरुष ॥ ७ ॥

हे आञ्जन विद्वान् तव माहात्म्यं जानन् इदं सत्यम् यथार्थमेव वक्ष्यामि न तु अनृतम् असत्यम् । अतस्तव पूरुषः दासभूतोहम् अश्वं गाम् आत्मानम् जीवं सनेयम् संभजेयम् ॥

हे आञ्जन! मैं आपके माहात्म्यको जानता हूँ, अत एव मैंने यह सत्य बात ही कही है, मैं झूँठ नहीं कह रहा हूँ अत एव दासभूत मैं घोड़े गौ और जीवकी सेवा करूँ ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः ।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ॥ ८ ॥

त्रयः । दासाः । आऽअञ्जनस्य । तक्मा । बलासः । आत् । अहिः ।
वर्षिष्ठः । पर्वतानाम् । त्रिऽककुत् । नाम । ते । पिता ॥ ८ ॥

आञ्जनस्य आञ्जनसाधनस्य द्रव्यस्य त्रयो रोगा दासाः दासवद् वशवर्तिनः । तान् अनुक्रामति । तक्मा । ❀ तकि कृच्छ्र-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीवने इति धातुः । तस्माद् औणादिको मनिन् ❀ । कृच्छ्र-जीवनहेतुर्ज्वरस्तक्मशब्दवाच्यः । बलासः शारीरं बलम् अस्यति क्षिपतीति बलासः संनिपातादिः । आत् अनन्तरम् अहिः सर्पः । तज्जन्यविषविकार इत्यर्थः । एते प्राणापहारिणो रोगाः आञ्जन-प्रभावेन निवर्तन्त इत्यर्थः ॥ अपि च पर्वतानां मध्ये वर्षिष्ठः वृद्धतमः त्रिककुत् [नाम] त्रीणि ककुदानि शृङ्गाणि यस्य स तथोक्तः । ❀ "त्रिककुत् पर्वते" इति अन्त्यलोपः समासान्तो निपात्यते ❀ । एतत्संज्ञः पर्वतः हे आञ्जन ते तव पिता जनकः । ❀ वर्षिष्ठ इति । वृद्धशब्दात् इष्ठनि "प्रियस्थिर०" इत्यादिना वर्षादेशः ❀ ॥

आञ्जन द्रव्यके तीन रोग दासकी समान वेशमें रहते हैं। (१) कठिनतासे जीवनका निर्वाह कराने वाला ज्वर (२) शरीरके बलको क्षीण करनेवाला सन्निपात आदि और (३) सर्प आदिका विषविकार । तात्पर्य यह है, कि—ये प्राणनाशक रोग आञ्जनके प्रभावसे हट जाते हैं। और पर्वतोंमें श्रेष्ठ त्रिककुद् नामका पर्वत हे आंजन ! तुम्हारा पिता है ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि ।

यातूंश्च सर्वान् जम्भयत्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ९ ॥

यत् । आऽअञ्जनम् । त्रैककुदम् । जातम् । हिमऽवतः । परि ।

यातून् । च । सर्वान् । जम्भयत् । सर्वाः । च । यातुऽधान्यः ९

हिमवतस्परि हिमवत्पर्वतात् परि उपरिभागे । ❀ "पञ्चम्याः परावध्यर्थे" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀ । त्रैककुदम् । तत्रस्थः त्रिककुन्नाम पर्वतः तत्संबन्धि यद् आञ्जनं जातम् उत्पन्नं तद्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यातून् यातुधानांश्च सर्वान् अशेषान् सर्वा यातुधान्यः यातुधानीः। ❀ "वा छन्दसि" इति शसि पूर्वसवर्णदीर्घाभावः ❀। यातुधानस्त्रियश्च जम्भयत् नाशयद्व वर्तते। अतः अस्मद्रोगादीन् नाशयतु इत्यर्थः ॥

हिमालय पर्वतके ऊपरके भागमें स्थित त्रिककुद्द पर्वतका आंजन यातुधान और यातुधानियोंका नाश करता रहता है, अतः वह हमारे रोग आदिका नाश करे ॥ ९ ॥

दशमी ॥

यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे ।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन ॥१०॥

यदि । वा । असि । त्रैककुदम् । यदि । यामुनम् । उच्यसे ।
उभे इति । ते । भद्रे इति । नाम्नी इति । ताभ्याम् । नः । पाहि ।
आऽअञ्जन ॥ १० ॥

हे आञ्जन त्वं यदि वा त्रैककुदम् असि त्रिककुत्पर्वतसंबन्धि भवसि यदि वा यामुनम् यमुनायाः संबन्धि उच्यसे जनैः कथ्यसे ते उभे त्रैककुदं यामुनम् इति नाम्नी नामनी संज्ञे भद्रे कल्याण्यौ। ताभ्यां नामभ्याम् हे आञ्जन नः अस्मान् पाहि रक्ष ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे आञ्जन ! तू यदि त्रैककुद्द है अर्थात् त्रिककुद्द पर्वतकी कही जाती है, वा यामुन है अर्थात् जमनाकी है, तो तेरे ये त्रैककुद्द और यामुन दोनों नाम भी कल्याणकारक हैं, उन दोनों नामोंसे हे आञ्जन ! तू हमारी रक्षा कर ॥ १० ॥

चतुर्थकाण्डके द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१११) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"वाताज्जातः" इति सूक्तेन उपनयनानन्तरम् आयुष्कामस्य माणवकस्य शङ्खमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् । तद् उक्तं कौशिकेन । "उपनयनम्" [कौ० ७. ६] प्रक्रम्य "वाताज्जात इति कृशनम्" इति [कौ० ७. ६] ॥

"वारुणीं जलभये" [न० क० १७] इति विहितायां वारुण्याख्यायां महाशान्तौ शङ्खमणिबन्धनेपि एतत् सूक्तम् । उक्तं नक्षत्रकल्पे । "वाताज्जात इति शङ्खं वारुण्याम्" इति [न०क०१६]॥

उपनयनके अनन्तर आयुष्काम बालकके "वाताज्जातः" इस सूक्तसे शङ्खमणिको अभिमन्त्रित करके बाँधे । इसी बातको कौशिक सूत्रमें कहा है, कि–"उपनयनम्" (कौशिकसूत्र ७ । ६) प्रक्रम्य "वाताज्जात इति कृशनम्" (कौशिकसूत्र ७ । ६) ॥

"वारुणीं जलभये–जलका भय होनेपर वारुणी महाशान्तिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित वारुणी महाशान्तिके शङ्खमणि बन्धनमें भी यह सूक्त पढ़ा जाता है । इसी बातको नक्षत्र कल्प १६ में कहा है, कि–"वाताज्जात इति शङ्खं वारुण्याम्"

तत्र प्रथमा ॥

वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि ।
स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः ॥ १ ॥

वातात् । जातः । अन्तरिक्षात् । विऽद्युतः । ज्योतिषः । परि ।
सः । नः । हिरण्यऽजाः । शङ्खः । कृशनः । पातु । अंहसः ॥१॥

वातात् वायोः जातः उत्पन्नः शङ्खः तथा अन्तरिक्षात् तदधिष्ठिताद् अन्तरिक्षलोकाद् विद्युतः तडितः । यद्वा विद्योतमानात् । ज्योतिषः ज्योतिर्मण्डलाच्च परि अधि उपरिभागे जातः । ❀"पञ्चम्याः परावध्यर्थे" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀ । स तादृशो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वातादिकारणकः हिरण्यजाः हिरण्यात् सुवर्णाद् उत्पन्नः कृशनः कर्शयिता शत्रूणां तनूकर्ता एवं महानुभावः शङ्खः अंहसः पापात् नः अस्मान् पातु रक्षतु ॥

वायुसे उत्पन्न होनेवाला, अन्तरिक्षलोकमें उत्पन्न होनेवाला प्रकाशित ज्योतिर्मण्डलसे भी ऊपरके भागमें उत्पन्न होने वाला और सुवर्णसे उत्पन्न होने वाला शत्रुओंको कृश करने वाला शङ्ख पापसे हमारी रक्षा करे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे ।

शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे ॥ २ ॥

यः । अग्रतः । रोचनानाम् । समुद्रात् । अधि । जज्ञिषे ।

शङ्खेन । हत्वा । रक्षांसि । अत्त्रिणः । वि । सहामहे ॥ २ ॥

हे शङ्ख यस्त्वं रोचनानाम् रोचमानानां भास्वराणां नक्षत्रादीनाम् अग्रतः अग्रे प्रमुखे वर्तमानः श्रेष्ठः समुद्रादधि समुद्रस्योपरि जज्ञिषे जायसे । ❀ रुच दीप्तौ इत्यस्माद् "अनुदात्तेतश्च हलादेः" इति युच् ❀ । तेन ज्योतिर्मयेन शङ्खेन त्वया रक्षांसि हत्वा अत्त्रिणः अदनशीलान् पिशाचादीन् वि सहामहे विशेषेण अभिभवामः । ❀ अत्त्रिण इति । अदेस्त्रिनिश्च [उ० ४. ६८] इति औणादिकस्त्रिनिप्रत्ययः ❀ ॥

हे शंख ! तू प्रकाशमय नक्षत्र आदिके सामने वर्तमान समुद्रमें उत्पन्न होता है, ऐसे तुझ ज्योतिर्मय शंखसे राक्षसोंको मारकर हम पिशाच आदिको प्रबलतासे दबाते हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥ ३ ॥

शङ्खेन । अमीवाम् । अमतिम् । शङ्खेन । उत । सदान्वाः ।

शङ्खः । नः । विश्वऽभेषजः । कृशनः । पातु । अंहसः ॥ ३ ॥

अमीवाम् रोगम् अमतिम् सर्वानर्थमूलम् अज्ञानं च शङ्खेन मणिरूपापन्नेन । विषहामहे इत्यनुषङ्गः । उत अपि च शङ्खेन सदान्वाः सदा नोनूयमानाः अलक्ष्मीः अभिभवामः । एवं विश्व-भेषजः सर्वस्योपद्रवजातस्य निराकर्ता कृशनः । हिरण्यनामैतत् । विकारे प्रकृतिशब्दः । हिरण्याज्जातः शङ्खः नः अस्मान् अंहसः पापात् पातु रक्षतु ॥

हम मणिरूपको प्राप्त हुए शंखसे रोगको और सकल अनर्थों के मूल अज्ञानको दबाते हैं और शंखके द्वारा सर्वदा दुःख देने वाली अलक्ष्मीको भी तिरस्कृत करते हैं। ऐसा सब उपद्रवोंको दूर करने वाला सुवर्णसे उत्पन्न हुआ शंख पापोंसे हमारी रक्षा करे

चतुर्थी ॥

दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः ।

स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ४

दिवि । जातः । समुद्रऽजः । सिन्धुतः । परि । आऽभृतः ।

सः । नः । हिरण्यऽजाः । शङ्खः । आयुःऽप्रतरणः । मणिः ॥ ४ ॥

दिवि द्युलोके अन्तरिक्षे प्रथमं जातः उत्पन्नः ततः समुद्रजः समुद्रे जातः । ❀ "सप्तम्यां जनेर्डः" इति डप्रत्ययः ❀। सिन्धुतः सिन्धोः समुद्रात् नदीमुखाद्वा पर्याभृतः परित आहृतः स तादृशः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिरण्यजाः हिरण्याज्जातः शङ्खः शङ्खविकारो मणिः नः अस्माकम् आयुःप्रतरणः आयुषः प्रवर्धयिता भवतु ॥

पहिले द्युलोकमें उत्पन्न हुआ फिर समुद्रमें उत्पन्न हुआ, नदीके मुहानेसे लाया हुआ सुवर्णसे उत्पन्न शंखका विकार मणि हमारी आयुका बढ़ाने वाली हो ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः ।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥५॥

समुद्रात् । जातः । मणिः । वृत्रात् । जातः । दिवाऽकरः ।
सः । अस्मान् । सर्वतः । पातु । हेत्याः । देवऽअसुरेभ्यः ॥ ५ ॥

समुद्रात् अम्बुधेः । यद्वा । समुद्रम् इति अन्तरिक्षनाम । अन्तरिक्षात् जातो मणिः मण्युपादानभूतः शङ्खः वृत्रात् लोकत्रयावरकाद् वृत्रासुरशरीरात् । यद्वा आवरकस्वभावाद् मेघात् । जातः विनिर्मुक्तो दिवाकरः सूर्यः । लुप्तोपमम् एतत् । तद्वत् प्रभातिशययुक्तोयं शङ्ख इत्यर्थः । [स] शङ्खविकारो मणिः हेत्या हननेन हेतुना देवासुरेभ्यः । उपलक्षणम् एतत् । देवासुरप्रभृतिभ्यो भयहेतुभ्यः सर्वतः सर्वस्माद् उपद्रवजाताद् अस्मान् पातु रक्षतु ॥

समुद्रसे वा अन्तरिक्षसे उत्पन्न हुआ मणिका उपादानरूप शङ्ख, तीनों लोकोंको ढकने वाले वृत्रासुरके शरीरसे वा ढकनेके स्वभाव वाले मेघसे उत्पन्न हुआ सूर्यकी समान प्रकाशित होता है, उस शंखकी विकाररूप यह मणि देवता और असुरोंके उपद्रवोंसे हमारी रक्षा करे ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

हिरण्यानामेकोसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६ ॥

हिरण्यानाम् । एकः । असि । सोमात् । त्वम् । अधि । जज्ञिषे । रथे । त्वम् । असि । दर्शतः । इषुऽधौ । रोचनः । त्वम् । प्र । नः । आयूंषि । तारिषत् ॥ ६ ॥

हे शंख त्वं हिरण्यानाम् सुवर्णरजतादिभासुरद्रव्याणां मध्ये एकोसि मुख्यो भवसि । यतः त्वं सोमात् अमृतमयात् सोममण्डलाद् अधि जज्ञिषे जातोसि । अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी ॥ तथा संग्रामेषु त्वं रथे दर्शतोसि दर्शनीयो भवसि । ❀ दृशेरौणादिकः अतच् प्रत्ययः ❀ ॥ तथा इषुधौ शराधारभूते निषङ्गे ध्रियमाणस्त्वं रोचनः रोचमानः दीप्यमानो दृश्यसे ॥ एवं महानुभावः शंखः तद्विकारो मणिः नः अस्माकम् आयूंषि प्र तारिषत् प्रवर्धयतु । ❀ प्रपूर्वस्तिरतिर्वर्धनार्थः । तस्मात् लेटि अडागमः । "सिब्बहुलम्०" इति सिप् । तस्य आर्धधातुकत्वेन इटि कृते "०स च णिद् वक्तव्यः" इति वचनाद् वृद्धिः ❀ ॥

हे शंख ! तू सुवर्ण चाँदी आदि दमकते हुए द्रव्योंमें मुख्य है, क्योंकि-तू अमृतमय सोममण्डलसे उत्पन्न हुआ है और संग्रामके अवसरों पर रथोंमें तू दर्शनीय होता है और तू बाणोंके आधार भाथेमें रखने पर दमकता हुआ दीखता है । ऐसे शंखसे बनी हुई मणि हमारी आयुको बढ़ावे ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्व१न्तः । तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शत-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE २६ ७. ६. २६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ॥ ७ ॥

देवानाम् । अस्थि । कृशनम् । बभूव । तत् । आत्मन्ऽवत् । चरति । अप्ऽसु । अन्तः ।

तत् । ते । बध्नामि । आयुषे । वर्चसे । बलाय । दीर्घायुऽत्वाय । शतऽशारदाय । कार्शनः । त्वा । अभि । रक्षतु ॥ ७ ॥

देवानाम् इन्द्रादीनां संबन्धि यद् रक्षाकरम् अस्ति तत् कृशनम् शंखस्य कारणभूतं सुवर्णं बभूव । तत् कृशनम् आत्मन्वत् शंखरूपशरीरयुक्तं सत् अप्सु उदकेषु अन्तः चरति प्राणयात्मना वर्तते । हे उपनीत तत् तथाविधं शंखरूपेण अवस्थितं कृशनं ते तव बध्नामि किमर्थम् । [आयुषे] आयुरादिफलसिद्ध्यर्थम् । आयुः चिरकालजीवनम् । वर्चः शरीरकान्तिः । बलं प्रसिद्धम् ॥ आयुषे इत्युक्तमेव अर्थं विवृणोति दीर्घायुत्वायेति । दीर्घम् आयुरस्य दीर्घायुः । तस्य भावस्तत्त्वम् । ❀ छन्दसीणः [उ० १. २] इति एतेरुण् प्रत्ययः ❀ । आयुषो दैर्घ्यमपि स्पष्टयति शतशारदायेति । शरदा ऋतुना सह वर्तन्त इति शारदाः संवत्सराः । शतं शारदाः परिमाणम् अस्य तत् शतशारदम् । तावत्कालव्यापिजीवनायेत्यर्थः । स कार्शनः कृशनसंबन्धी मणिः हे माणवक त्वा त्वाम् अभि रक्षतु सर्वतः पालयतु ॥

इत्यथर्ववेदार्थप्रकाशे चतुर्थे काण्डे द्वितीयोनुवाकः ॥

इन्द्र आदि देवताओंकी रक्षा करने वाला शंखका कारणरूप जो सुवर्ण है, वह शंखरूपशरीरसे युक्त होकर जलके भीतर प्राणीरूपसे रहता है। हे यज्ञोपवीतिन् ! ऐसे शंखरूपसे स्थित सुवर्णको आयु शरीरकी कान्ति और बलके लिये मैं तेरे बाँधता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हूँ तेरी सौ वर्षकी आयु करनेके लिये बाँधता हूँ, सुवर्णसे सम्बंन्ध रखने वाली यह मणि तेरी रक्षा करे ॥ ७ ॥

चतुर्थकाण्डके द्वितीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (११२) ॥

द्वितीय अनुवाक समाप्त.

"अनड्वान् दाधार" इति आद्येन सूक्तेन अनडुत्सवे निष्कादेरभिमर्शनम् संपातम् दातृवचनं च कुर्यात् । तद् आह कौशिकः। "अनड्वान् [४. ११] इत्यनड्वाहम् सूर्यस्य रश्मीन् [४. ३८. ५–७] इति कर्कीम्" [कौ० ८. ७] इति ॥ अभिमर्शनादीनां सूत्रं तु "आशानाम्" [१. ३१] इति सूक्त एव उदाहृतम् ॥

"अनड्वान् दाधार" इस प्रथम सूक्तसे अनडुत्सवमें निष्कादि का अभिमर्शन सम्पातन और दातृवाचन करे। इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–"अनड्वान् (४ । ७१) इत्यनड्वाहं सूर्यस्य रश्मीन् (४ । ३८ । ५–७) इति कर्कीम्" (कौशिकसूत्र ८ । ७) ॥ अभिमर्शन आदिकासूत्र तो "आशानाम्" इस प्रथमकाण्डके ३१ वें सूक्तमें ही कह दिया है ॥

तत्र प्रथमा ॥

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ।

अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वं भुवनमा विवेश ॥ १ ॥

अनड्वान् । दाधार । पृथिवीम् । उत । द्याम् । अनड्वान् । दाधार । उरु । अन्तरिक्षम् ।

अनड्वान् । दाधार । प्रऽदिशः । षट् । उर्वीः । अनड्वान् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विश्वम् । भुवनम् । आ । विवेश ॥ १ ॥

अनः शकटं वहतीति अनड्वान् शकटवहनसमर्थो वृषभः । सोयं कर्षणभारवहनादिना पृथिवीम् भूमिं दाधार धारयति पोषयति । ❀ धृञ् धारणे इत्यस्मात् छान्दसो वर्तमाने लिट् । तुजादित्वाद् अभ्यासदीर्घत्वम् ❀ । यद्वा अनडुच्छब्देन वृषरूपो धर्मोभिधीयते । धर्मो वृषभाकृतिर्भूत्वा पृथिव्यादिधारणं करोतीति योज्यम् । श्रूयते हि । "धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा" इति [तै० आ० १०.६३]॥ उत द्याम् द्युलोकं स्वर्गलोकमपि स एव दाधार कर्षणादिनिष्पन्नेन चरुपुरोडाशादिहविषा द्युलोकं पोषयतीत्यर्थः॥ तथा उरु विस्तीर्णम् अन्तरिक्षलोकमपि स धारयति । [अनड्वान्] प्रदिशः प्राच्याद्या महादिशश्च [दाधार] धारयति ॥ षडुर्वीः उर्वीशब्दवाच्याः "द्यौश्च पृथिवी च अहश्च रात्रिश्च आपश्चौषधयश्च" [आश्व० १. २] इति षट्संख्याकाः सन्ति । ता अपि असौ धारयति । पृथिव्या द्योश्च पृथगुपादानाद् इतरचतुष्टयापेक्षम् उर्वीग्रहणम् ॥ इत्थं ब्रह्मणा सृष्टः अनड्वान् विश्वम् सर्वं [भुवनम्] पृथिव्यादिभ्यः अन्यमपि लोकम् आ विवेश रक्षणार्थं प्रविश्य वर्तते ॥

अनको अर्थात् गाड़ीको वहन करने (खेंचने) वाला बैल अनड्वान् कहलाता है वह जोतना भार ढोना आदिरूपसे पृथिवी का पोषण करता है । अथवा-धर्म वृषभकी आकृतिको धारण कर पृथिवी आदिको धारण करता है † । और वही स्वर्गलोक को धारण किये हुए है अर्थात् जोतने आदिसे उत्पन्न हुए चरु

† तैत्तिरीय आरण्यक १० । ६३ में भी कहा है, कि-"धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा ॥-धर्म सम्पूर्ण जगत्की स्थितिका कारण है" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुरोडाश आदि हविसे स्वर्गका पोषण करता है। विस्तृत अन्तरिक्ष लोकको भी वही धारण करता है और वही पूर्व आदि महादिशाओंको भी धारण करता है और दिन रात्रि जल और औषधि इन उर्वियोंको भी वह धारण करता है। इसप्रकार ब्रह्मादिका रचा हुआ अनड्वान् सब भुवनोंमें पृथिवी आदिसे अतिरिक्त लोकोंमें भी उनकी रक्षा करनेके लिये प्रवेश करके रहता है॥१॥

द्वितीया॥

अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयांछक्रो वि मिमीते अध्वनः।

भूतं भविष्यद् भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि॥

अनड्वान्। इन्द्रः। सः। पशुऽभ्यः। वि। चष्टे। त्रयान्। शक्रः। वि। मिमीते। अध्वनः।

भूतम्। भविष्यत्। भुवना। दुहानः। सर्वा। देवानाम्। चरति। व्रतानि॥ २॥

सः प्रागुक्तः अनड्वान् पशुभ्यः पशवो गोमहिषाद्याः। ❀तादर्थ्ये चतुर्थी ❀। तेषाम् अर्थे इन्द्रः सन् वि चष्टे प्रकाशते। रिरंसावशाद् इन्द्रवत् पशूनां दृष्टौ भासत इत्यर्थः। यद्वा। अयम् अनड्-

---

+ उर्वीशब्दसे "द्यौश्च पृथिवी च अहश्च रात्रिश्च आपश्चौषधयश्च॥—द्यौ पृथिवी दिन रात्रि जल और औषधि" इस आश्वलायनसूत्र १। २ में कपी हुई छः वस्तुएँ ग्रहणकी जाती हैं। इस मन्त्रमें आकाश और पृथिवीका अलग वर्णन आया है अतः उर्वी शब्दसे चारका ही ग्रहण किया है॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वान् इन्द्र एव । इन्द्रो यथा वृष्टिजलसेकेन चराचरात्मकं सर्वं जगद् उत्पादयति एवम् अनड्वानपि रेतःसेकेन पशून् उत्पादयन् तज्जन्यपयोदध्यादिद्रव्येण कृत्स्नं जगद् उत्पादयतीति एककार्यकरत्वाद् अनयोरभेदः ॥ स च अन्येभ्यः पशुभ्यः सकाशात् वि चष्टे वीर्यवत्त्वेन प्रकाशते । ❀ चष्टिः पश्यतिकर्मा ❀ ॥ स च शक्रः सर्वकर्मसु शक्तः इन्द्रात्मको वा स्तियान् । स्तिया आपो भवन्ति स्त्यायनात् [नि० ६. १७] इति यास्कवचनात् स्त्यायतेरेतद् रूपम् । अत्र तु अयम् अर्थः । स्तियान् संस्त्यानप्रभवान् अध्वनः अध्ववद् अविच्छिन्नान् पशुसंतानान् वि मिमीते विशेषेण निर्मिमीते । ❀ माङ् माने शब्दे च । शपः श्लुः । "भृञाम् इत्" इति अभ्यासस्य इत्वम् ❀ ॥ एवं इन्द्रात्मकोनड्वान् भूतम् भूतकालावच्छिन्नं वस्तु भविष्यत् आगामिकालावच्छिन्नं वस्तु भुवना भुवनानि वर्तमानकालावच्छिन्नसद्भावानि च वस्तूनि दुहानः उत्पादयन् देवानाम् इन्द्राद् अन्येषामपि व्रतानि कर्माणि सर्वा सर्वाणि चरति अनुतिष्ठति । ❀ भुवना सर्वा इत्युभयत्र "शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः ❀ ॥

यह पहिले कहा हुआ वृषभ गौ महिष आदिके लिये इन्द्ररूपमें प्रकाशित होता है अर्थात् रमण करनेकी इच्छाके कारण पशुओं की दृष्टिमें इन्द्रकी समान प्रतीत होता है । अथवा-यह अनड्वान् इन्द्र ही है । इन्द्र जैसे वृष्टिके जलको वरसा कर चर अचर सब जगत्को उत्पन्न करता है इसी प्रकार यह अनड्वान् भी वीर्य वरसा कर पशुओंको उत्पन्न करता हुआ उनके द्वारा प्राप्त होने वाले दूध दही आदि द्रव्योंसे सब जगत्का पालन करता है। इस प्रकार एक कार्य करनेके कारण इनका अभेद है ऐसा अनड्वान् और पशुओंकी पेक्षा अधिक वीर्यवान् होनेसे प्रकाशित रहता है । यह सब कर्मोंमें समर्थ इन्द्रात्मक पशु वृष्टिसे होने वाले तथा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मार्गकी समान अविच्छिन्न पशुसन्तानोंको निर्मित करता है और यह इन्द्रात्मक अनड्वान् भूतकालकी तथा भविष्यत्कालकी और वर्तमानमें सद्रूपसे वर्तमान वस्तुओंको भी उत्पन्न करता हुआ इन्द्रसे भी अन्य देवताओंके सब कर्मोंको अनुष्ठित करता है ॥२॥

तृतीया ॥

इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर्घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः ।
सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद् यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥ ३ ॥

इन्द्रः । जातः । मनुष्येषु । अन्तः । घर्मः । तप्तः । चरति । शोशुचानः ।
सुऽप्रजाः । सन् । सः । उत्ऽआरे । न । सर्षत् । यः । न । अश्नीयात् । अनडुहः । विऽजानन् ॥ ३ ॥

मनुष्येषु मनोरपत्येषु मनुष्यजातीयेषु अन्तः मध्ये तावत् अनड्वान् प्रागुक्तरीत्या इन्द्रो जातः॥ तथा सोऽनड्वान् घर्मः दीप्तः सूर्यः सन् तप्तः । ❀ कर्तरि क्तः ❀ । कृत्स्नं जगत् तपन् संतापयुक्तं कुर्वन् शोशुचानः अत्यर्थं दीप्यमानः चरति वियति संचरति । यद्वा घर्मः प्रवर्ग्यः तप्तः वैकङ्कतखादिरादिभिरिध्मैः संतप्तः शोशुचानः अत्यर्थं शोचन् चरति वर्तते । तादृग्घर्मरूपः अनड्वान् जात इत्यर्थः सोपि हि कर्षणादिव्यापारजनितश्रमेण तप्तः संतप्तगात्रः अतिशयितशोकयुक्तश्च सन् चरति । अतस्तप्तत्वादिधर्मसामान्याद् अनडुहो घर्मतादात्म्यम् ॥ इत्थं नः अस्माकं संबन्धिनः अनडुहः दीयमानस्य माहात्म्यं विजानन् विशेषेण अवगच्छन् यः प्रतिग्रहीता अश्नीयात् भुञ्जीत स सुप्रजाः शोभनप्रजोपेतः सन् आरे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूरे देहावसानकाले उत् अस्माच्छरीरात् उत्क्रान्तः न सं सर्षत् न संसरति पुनः संसारधर्मान् न प्राप्नोति । किंतु सूर्यादिलोकं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ अत एव सोमयागविशेषस्य अनडुहां लोकः प्राप्यत्वेन आम्नायते । "अग्निष्टोमेन अनडुहो लोकम् आप्नोति ज्योतिष्मतो लोकान् जयति" इति ॥ ❀ सुप्रजा इति । "नित्यम् असिच् प्रजामेधयोः" इति असिच् समासान्तः । सर्षत् इति । सृ गतौ इत्यस्मात् लेटि अडागमः । "सिब्बहुलम्०" इति सिप् ❀ ॥

मनुकी मनुष्यजातीय सन्तानोंके मध्यमें अनड्वान् पूर्वोक्तरीतिसे इन्द्र हुआ है । इसी प्रकार वह अनड्वान् घर्म (दीप्त) सूर्यरूप से सम्पूर्ण जगत्को सन्तापयुक्त करता हुआ परमदीप्त होता हुआ आकाशमें विचरण करता है । अथवा—घर्म अर्थात् प्रवर्ग्य खदिर आदिके ईंधनसे संतप्त बड़ी गरमी पाता हुआ विचरता है अर्थात् उस घर्मकी समान ही अनड्वान् होगया है । वह भी जोतना आदि व्यापारसे उत्पन्न हुए श्रमके कारण सन्तप्त शरीरवाला हो कर परमशोकयुक्त होता हुआ रहता है, अतः तप्तत्व आदि धर्मोंकी समानताके कारण अनडुह और घर्मका तादात्म्य है । इस प्रकार हमारे दिये हुए वृषभके माहात्म्यको जानता हुआ जो प्रतिग्रहीता उपभोग करता है वह सुन्दर प्रजा से संपन्न होकर देहान्तके समय इस शरीरसे निकल कर संसारके धर्मोंको फिर प्राप्त नहीं होता है, किंतु सूर्य आदि लोकोंको प्राप्त होता है । अत एव सोमयागविशेषके करने वालेको गोलोककी प्राप्ति सुनी जाती है कि—"अग्निष्टोमेन अनुडुहो लोकं आप्नोति ज्योतिष्मतो लोकान् जयति" ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक ऐनं प्याययति पव-
मानः पुरस्तात् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ४ ॥

अनड्वान् । दुहे । सुऽकृतस्य । लोके । आ । एनम् । प्याययति । पवमानः । पुरस्तात् ।

पर्जन्यः । धाराः । मरुतः । ऊधः । अस्य । यज्ञः । पयः । दक्षिणा । दोहः । अस्य ॥ ४ ॥

सुकृतस्य यागादिजनितपुण्यस्य फलभूते लोके इन्द्रादिदेवतात्मकः अयम् अनड्वान् दुहे अपेक्षितम् अक्षयं फलं दुग्धे । ❀ "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः ❀ । तत्प्रकारमेव विभज्य दर्शयति । पुरस्तात् पूर्वं पवमानः पवित्रेण शोध्यमानः अमृतमयः सोमः एनम् अनड्वाहम् आ प्याययति आप्यायितं रसभरितं करोति ॥ ततश्च पर्जन्यः वृष्टिप्रेरको देवो धारा भवति ॥ मरुतः एकोनपञ्चाशत्संख्या देवगणाः अस्य अनडुहः ऊधो भवति ॥ योऽयं कृतः सवयज्ञः स एव पयः दोह्यं भवति ॥ येयं तस्मिन् यज्ञे दत्ता दक्षिणा सा अस्य अनडुहो [दोहः] दोहक्रिया संपद्यते ॥ इत्थम् इन्द्रादिदेवतात्मकस्य अनडुहो दोहोपि देवतात्मकः संपन्न इति अक्षयफलत्वम् ॥

याग आदिसे उत्पन्न होने वाले पुण्यके फलरूप लोकमें इन्द्र आदि देवतारूप यह अनड्वान् अभिलषित अक्षय फलको देता है (उसकी रीति यह है, कि—पहिले पवित्रसे शोधा हुआ अमृतमय सोम इस वृषभको रससे भरा हुआ करता है । फिर वृष्टिप्रेरक देव धारारूप होता है, उञ्चास मरुद्गण इस अनड्वान्के ऐन होते हैं और यह किया हुआ सवयज्ञ ही दुहने योग्य दूध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होता है और इस यज्ञमें जो दक्षिणा दीजाती है वही इस अनड्वान्की दोहक्रिया होती है। इस प्रकार इन्द्र आदि देवतारूप अनड्वान्का दोह भी देवतारूप होनेसे अक्षयफलत्व हुआ ॥४॥

पञ्चमी ॥

यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता ।
यो विश्वजिद् विश्वभृद् विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् ॥ ५ ॥

यस्य । न । ईशे । यज्ञऽपतिः । न । यज्ञः । न । अस्य । दाता । ईशे । न । प्रतिऽग्रहीता ।

यः । विश्वऽजित् । विश्वऽभृत् । विश्वकर्मा । घर्मम् । नः । ब्रूत । यतमः । चतुःऽपात् ॥ ५ ॥

यस्य देवतात्मकस्य अनडुहः । ❀ "अधीगर्थदयेशाम्०" इति कर्मणि षष्ठी ❀ । यम् इत्यर्थः । यज्ञपतिः यजमानः नेशे नेष्टे । ❀ "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः । यज्ञपतिः । "पत्यावैश्वर्ये" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । यज्ञः यागक्रिया च नेशे नेष्टे । दाता प्रतिग्रहीता च अस्य अनडुहो नेशे नेष्टे । सर्वत्र ईशितृत्वमेव अनडुहः न ईशितव्यत्वम् इत्युक्तम् अर्थं समर्थयते । य इन्द्रादिदेवतारूपः अनड्वान् विश्वजित् विश्वस्य सर्वस्य जेता विश्वभृत् विश्वस्य सर्वस्य वाय्वात्मना भर्ता यद्वा अन्नप्रदानेन पोषयिता । विश्वकर्मा । "प्रजापतिः परमेष्ठी" [७] इत्याम्नास्यते तदभिप्रायेणेदम् । विश्वं सर्वं जगत् कर्म कर्तव्यं यस्य स विश्वकर्मा । तथा यतमः यज्जातीयः चतुष्पात् पादचतुष्टयोपेतः सन् नः अस्मभ्यं घर्मम् दीप्यमानम् आदित्यं ब्रूत ब्रूते कथयति । ❀ लटि टेरेत्वा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भावश्छान्दसः ❀ । तत्त्वस्वरूपम् उपदिशतीत्यर्थः । नास्य दातेति संबन्धः । ❀ यतम इति । "वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने०" इति यच्छब्दात् डतमच् ❀ ॥

जिस देवतास्वरूप अनड्वान्का यजमान स्वामी नहीं है, यज्ञक्रिया भी इसकी स्वामी नहीं है, दाता और प्रतिग्रहीता भी इसके स्वामी नहीं हैं सर्वत्र यह ईशिता (स्वामी) ही है ईशितव्य (सेवक) नहीं है (इसका समर्थन करते हैं, कि-) यह इन्द्रादिरूप अनड्वान् सम्पूर्ण जगत्का जेता है वायुरूपसे सब जगत्का भरण करने वाला है अन्न देकर पोषण करने वाला है, जगत्के संपूर्ण कर्म इसके ही हैं यह चतुष्पात् पशु हमें दीप्यमान आदित्य का उपदेश देता है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

येन देवाः स्वरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥ ६ ॥

येन । देवाः । स्वः । आऽरुरुहुः । हित्वा । शरीरम् । अमृतस्य । नाभिम् ।
तेन । गेष्म । सुऽकृतस्य । लोकम् । घर्मस्य । व्रतेन । तपसा । यशस्यवः ॥ ६ ॥

येन देवतात्मना अनडुहा देवाः [स्वः] स्वर्गं लोकम् [आरुरुहुः] आरूढवन्तः । तत्प्रकार उच्यते । पार्थिवम् एतच्छरीरं हित्वा त्यक्त्वा । ❀ ओहाक् त्यागे इत्यस्मात् क्त्वाप्रत्यये "जहातेश्च क्त्वि" इति हित्वम् ❀ । अमृतस्य अमरणस्य नाभिम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बन्धकम् । मोक्षद्वारभूतम् इत्यर्थः । तेन अनडुहा सुकृतस्य पुण्यस्य फलभूतं लोकं जेष्म जयेम । ❀ जयतेर्लिङि "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुक् । "सिब्बहुलम्०" इति सिप् ❀ । कथंभूताः सन्तः । घर्मस्य दीप्यमानस्य सूर्यस्य संबन्धिना व्रतेन कर्मणा तपसा दीक्षादिनियमजनितेन अनशनादिना च यशस्यवः । "न तस्येशे कश्चन तस्य नाम महद् यशः" [तै० आ० १०. १. २] इति यशःशब्दस्य अद्वितीयब्रह्मपरत्वेन श्रुतत्वाद् अत्रापि यशः-शब्देन तद् विवक्ष्यते । ❀ यशःशब्दोपलक्षितं निरतिशयं मोक्ष-सुखम् आत्मन इच्छन्तः ॥ ❀ यशःशब्दात् "सुप आत्मनः क्यच्" । "क्याच्छ दसि" इति उप्रत्ययः ❀ ॥

जिस देवरूप अनड्वान्के द्वारा देवता पार्थिवशरीरको छोड़ कर अमरणके बन्धक अर्थात् मोक्षके द्वाररूप स्वर्गलोकमें चढ़े हैं उस ही अनडवान्के द्वारा हम प्रदीप्त सूर्यदेवका व्रत कर और दीक्षा नियम आदिके उपवाससे यशको अर्थात् निरतिशय मोक्ष-सुखको चाहते हुए पुण्यके फलरूप लोकको जीतते हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।
विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत ।
सोऽदृंहयत सोऽधारयत ॥ ७ ॥

इन्द्रः । रूपेण । अग्निः । वहेन । प्रजाऽपतिः । परमेऽस्थी । विऽराट् ।
विश्वानरे । अक्रमत । वैश्वानरे । अक्रमत । अनडुहि । अक्रमत ।
सः । अदृंहयत । सः । अधारयत ॥ ७ ॥

रूपेण आकृत्या अयम् अनड्वान् इन्द्रो भवति ॥ वहेन युगव-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वहेन प्रदेशेन स्कन्धेन अग्निः अग्न्यात्मको भवति। "अग्निदग्धमिवा अस्य वहं भवति" इति ब्राह्मणम्। वहत्यनेनेति वहः। ❀"गोचरसंचर०" इत्यादिना करणे घप्रत्ययान्तो निपातितः❀॥ प्रजापतिः प्रजानां पतिः प्रजासृष्टिकर्ता। परमेष्ठी परमे सत्यलोके तिष्ठतीति परमेष्ठी आदिब्रह्मा। विराट् स्थूलप्रपञ्चस्य कर्ता "तस्माद् विराट् अजायत" [तै० आ० ३. १२, २] इति श्रुतिप्रसिद्धः। एते त्रयः क्रमेण विश्वानरादिषु व्याप्य वर्तन्ते। तत्र विश्वानर इति सर्वनरात्मकस्य "विश्वानरस्य वस्पतिम् अनानतस्य शवसः" [ऋ० ८. ६८. ४] इति श्रुत्यन्तरप्रसिद्धस्य देवस्य संज्ञा। तस्मिन् प्रजापतिः अक्रमत तादात्म्येन प्रविष्टः। वैश्वानर इति विश्वनरहितः अग्निः। तत्र परमेष्ठी अक्रमत तदात्मना संक्रान्तवान्। उक्तप्रभावे अनडुहि विराड् अक्रमत तद्रूपेण प्राविशत्। अतः अयम् अनड्वान् विराडात्मक इत्यर्थः॥ यद्वा इन्द्रो देवः रूपेण स्वकीयेन विश्वानरे देवे अक्रमत। अग्निर्वहेन वहनसामर्थ्येन वैश्वानरे अक्रमत। परमेष्ठी परमे सत्यलोके स्थितः प्रजापतिः विराट्। ❀ "सुपां सुलुक्०" इति तृतीयाया लुक् ❀। विराजा अन्नेन अनडुहि अक्रमत॥ अतः प्रजापत्यात्मकोयम् अनड्वान् इति स्तुतिः॥

अष्टमी॥

मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः।
एतावदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः॥ ८ ॥

मध्यम्। एतत्। अनडुहः। यत्र। एषः। वहः। आऽहितः।
एतावत्। अस्य। प्राचीनम्। यावान्। प्रत्यङ्। सम्ऽआहितः॥ ८॥

सः अनडुच्छरीरे प्रविष्टः प्रजापतिः तस्य अनडुहः एतत् मध्यम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अङ्गम् अदृंहयत दृढम् अकरोत् । तथा स प्रजापतिः अधारयत तद् मध्यं भारवहनसमर्थम् अकरोत् ॥ तद् मध्यं विशिनष्टि । यत्र यस्मिन् मध्ये पृष्ठभागे एष वहः भारः आहितः स्थापितः ः एतद् मध्यम् इति संवन्धः । भारवहनप्रदेशस्य मध्यत्वम् उपपादयति । एतावद् इति । अस्य अनडुत्संबन्धिनो मध्यदेशस्य प्राचीनम् प्राग्भागः एतावत् एतत्परिमाणयुक्तम् प्रत्यङ् प्रत्यग्भागो यावान् यत्परिमाणवान् समाहितः सम्यङ् निर्वर्तितः । एवं प्राक्प्रत्यग्भागावुभावपि समानौ । तयोर्मध्यदेशेन भारं वहतीत्यर्थः ॥

आकृतिसे यह अनड्वान् इन्द्र है और जुएको उठाने वाले देशसे यह अनड्वान् अग्निरूप है ‡ सृष्टिकर्ता प्रजापति, सत्यलोक में रहने वाले आदिब्रह्मा परमेष्ठी, और "तस्माद विराडजायत" इस तैत्तिरीय आरण्यक ३ । १२ । २ की श्रुतिमें प्रसिद्ध स्थूल प्रपञ्चके कर्ता विराट ये तीनों क्रमशः विश्वानर आदिमें व्याप्त होकर रहते हैं । इनमें विश्वानर यह "विश्वानरस्य वस्पतिम् अनानतस्य शवसः" (ऋग्वेद ८ । ६८ । ४) इस अन्य श्रुतिमें प्रसिद्ध देवताका नाम है उस देवतामें प्रजापति तादात्म्यरूपसे प्रविष्ट होगए । सम्पूर्ण जगत्का हित करने वाले वैश्वानर अग्नि में परमेष्ठी तादात्म्यरूपसे प्रविष्ट होगए और पूर्वोक्त प्रभाव वाले वृषभमें विराट् तादात्म्यभावसे प्रविष्ट होगए, इस कारण यह वृषभ विराट्रूप है ॥

अथवा-इन्द्रदेव अपने रूपसे विश्वानरमें आक्रान्त हुए, अग्नि अपनी वहनशक्तिसे वैश्वानरमें आक्रान्त हुए । और सत्यलोक में स्थित प्रजापति विराट् परमेष्ठी अन्नरूपसे वृषभमें आक्रान्त

‡ "अग्निदग्धमिव वा अस्य वहं भवति ॥-इस बैलका कंधा अग्निसे जला हुआ सा (काला) होता है" ब्राह्मण ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुए । अतएव यह वृषभ प्रजापतिरूप है ॥ उन वृषभके शरीरमें प्रविष्ट प्रजापतिने इस वृषभके अङ्गको दृढ़ किया और मध्यभाग को भार सहनेके योग्य किया उस मध्यभागमें अर्थात् पीठमें ही यह भार स्थापित होता है । इस वृषभके मध्यदेहका प्राग्भाग इतने परिमाण वाला है, कि-जितने परिमाण वाला उत्तरभाग बनाया हुआ है । तात्पर्य यह है, कि-इसके प्राग्भाग और प्रत्यग्भाग दोनों ही समान हैं, उनके मध्यवर्ती देशसे यह बोझेको ढोता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यो वेदानडुहो दोहान् सप्तानुपदस्वतः ।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ९

यः । वेद । अनडुहः । दोहान् । सप्त । अनुपऽदस्वतः ।

प्रऽजाम् । च । लोकम् । च । आप्नोति । तथा । सप्तऽऋषयः । विदुः

यः पुरुषः अनडुहः बलीवर्दस्य [सप्त] सप्तसंख्याकान् अनुपदस्वतः क्षयरहितान् दोहान् व्रीह्यादिसप्तग्राम्यौषधिरूपान् वेद जानाति । यद्वा अनडुहः प्रजापतिरूपत्वस्य उक्तत्वात् तत्सृष्टो लोकसमुद्रादयो ये सप्तसंख्याकाः सन्ति तान् सर्वान् सप्तधा विभक्तान् अनडु होदोहान् [यो] जानाति स विद्वान् प्रजाम् पुत्रपौत्रादिकां प्रागादिभिः प्राप्यं [लोकम्] स्वार्गादिलोकं च प्राप्नोति । तथैतद् उक्तम् तथा तेनैव प्रकारेण अनडुन्माहात्म्यं सप्तर्षयो विदुः जानन्ति ॥ ते च आश्वलायनेन अनुक्रान्ताः ।

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोथ गौतमः ।
अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्तऋषयः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इति [आश्व० प० १२. १]। सप्तर्षिप्रख्यानामेव इयम् अनडुहि प्रजापतिविद्या नान्येषाम् इति विद्यास्तुतिः ॥

जो पुरुष वृषभके व्रीहि आदि ग्राम्यौषधिरूप सात क्षयरहित दोहों को जानता है। अथवा अनड्वान्का प्रजापतिरूप कह दिया है अतएव उनकी सृष्टिमें लोक समुद्र आदि सात प्रकारसे विभक्त अनड्वान्के दोहोंको जो जानता है वह विद्वान् पुत्र पौत्र आदि प्रजाको और याग आदिसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग आदि लोकोंको भी प्राप्त होता है यह जिस प्रकार कहा है उसको यथार्थरूपसे सात ऋषि ही जानते हैं। (सप्त ऋषियोंका वर्णन आश्वलायन मुनिने किया है, कि—विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोथ गौतमः। अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः ॥ (आश्व प० १२ । १) इन सात ऋषियोंको ही यह अनड्वान्में आक्रान्त प्रजापति विद्या आती है औरोंको नहीं आती) ॥ ९ ॥

दशमी ॥

पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जंघाभिरुत्खिदन् ।
श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः १०

पत्ऽभिः । सेदिम् । अवऽक्रामन् । इराम् । जङ्घाभिः । उत्ऽखिदन् । श्रमेण । अनड्वान् । कीलालम् । कीनाशः । च । अभिः । गच्छतः

अयम् प्रजापत्यात्मकः अनड्वान् पद्भिः पादैश्चतुर्भिः सेदिम् अवसादकरीम् अलक्ष्मीम् अवक्रामन् अवाङ्मुखीम् अधिष्ठिन् इराम् भूमिं जङ्घाभिः उत्खिदन् कर्षणेन उद्भिन्दन् स्वकीयेन श्रमेण कर्षणादिव्यापारजनितदुःखेन अभिगच्छतः स्वाभिमुखं गच्छतः कीनाशस्य कर्षकस्य कीलालम् अन्नम्। प्रयच्छतीत्यर्थः ॥

यह प्रजापतित्यात्मक अनड्वान् चारों पैरोंसे खिन्नता लाने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाली अलक्ष्मी पर नीचेकी ओर मुख करा कर स्थित होता हुआ और भूमिको जङ्घाओंसे उद्भिन्न करता हुआ अपने श्रमके द्वारा अपने अभिमुख चलने वाले किसानको अन्न देता है ॥ १० ॥

एकादशी ॥

द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः ।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद् वा अनडुहो व्रतम् ॥ ११ ॥

द्वादश । वै । एताः । रात्रीः । व्रत्याः । आहुः । प्रजाऽपतेः ।
तत्र । उप । ब्रह्म । यः । वेद । तत् । वै । अनडुहः । व्रतम् ११

अनडुहि संक्रान्तस्य यज्ञात्मकस्य प्रजापतेः [द्वादश वा एता] व्रत्याः व्रतार्हा द्वादशसंख्याका रात्रीः आहुः कथयन्ति। वैशब्दः श्रुत्यन्तरप्रसिद्धिं द्योतयति । "द्वादश रात्रीर्दीक्षितः स्यात् । द्वादश मासाः संवत्सरः । संवत्सरो विराट् । विराजम् आप्नोति" इति [तै० सं० ५. ६. ७. १] । "तस्माद् दीक्षितो द्वादशाहं भृतिं वन्वीत" इति च ॥ तत्र तावति काले अनडुद्रूपम् उपगतं प्रजापत्यात्मकं ब्रह्म यो वेद विद्यात् स एव अस्मिन् अनडुत्सवे अधिक्रियत इत्यर्थः । तत् एतत् ज्ञानम् अनडुहः प्रजापत्यात्मकस्य व्रतम् अनुष्ठेयं कर्म ॥

वृषभमें संक्रान्त यज्ञात्मक प्रजापतिके व्रतके योग्य बारह रात्रियों को विद्वान् कहते हैं + उतने समयमें जो वृषभरूपमें आये हुए प्रजा-

+ तैत्तिरीयसंहिता ५ । ६ । ७ । १ में कहा है, कि—"द्वादशरात्रीर्दीक्षितः स्यात् । द्वादशमासाः सम्वत्सरः । सम्वत्सरो विराट् विराजम् आप्नोति ॥—बारह रात्रिकी दीक्षा लेय । बारह महीनोंका सम्वत्सर होता है । सम्वत्सर ही विराट् है । विराज (अन्न) को प्राप्त होता है ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पत्यात्मक ब्रह्मको जानता है वही इस अनडुत्सवका अधिकारी है। यह ज्ञान प्रजापत्यात्मक अनडुहका अनुष्ठेय कर्म है ११

द्वादशी ॥

दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यंदिनं परि ।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विद्मानुपदस्वतः ॥१२॥

दुहे । सायम् । दुहे । प्रातः । दुहे । मध्यंदिनम् । परि ।
दोहाः । ये । अस्य । सम्ऽयन्ति । तान् । विद्म । अनुपऽदस्वतः ॥

सायम् सायाह्ने उक्तलक्षणम् अनड्वाहं दुहे। देवतारूपेण उपासीनस्तत्फलं प्राप्नोमीत्यर्थः । तथा प्रातःकालेपि दुहे । मध्यन्दिनं परि मध्याह्नेपि दुहे। ❀ "लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः" इति लक्षणे परेः कर्मप्रवचनीयत्वम् । तद्योगाद् मध्यन्दिनम् इति द्वितीया ❀ । [यद्वा] सायमादिकालत्रयेपि उक्तरीत्या अनड्वान् दुहे । सवयज्ञानुष्ठातुः फलानि दुग्धे। ❀ "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः ❀। एवम् अस्य अनडुहो दोहा ये संयन्ति फलेन संगच्छन्ते अनुपदस्वतः । उपदासः क्षयः । तद्रहितांस्तान् दोहान् विद्म जानीमः ॥ ❀ "विदो लटो वा" इति मसो मादेशः ❀ ॥

[इति] तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

मैं सायाह्नके समय पूर्वोक्त लक्षण वाले वृषभको दुहता हूँ, तथा प्रातःकालमें भी दुहता हूँ, मध्याह्नमें भी दुहता हूँ, सवयज्ञ का अनुष्ठान करने वालोंके फलोंको दुहता हूँ, इस प्रकार इस अनड्वान्के जो दोह फलसे युक्त होते हैं उन क्षयरहित दोहोंको हम जानते हैं॥ १२ ॥

तीसरे अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (११३)॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"रोहिण्यसि" इति सूक्तेन शस्त्राद्यभिघातजनितरुधिरप्रवाहनिवृत्तये अस्थ्यादिभङ्गनिवृत्तये च लाक्षोदकं क्वथितम् अभिमन्त्र्य उषःकाले क्षतप्रदेशम् अवसिञ्चेत् ॥

तथा अनेन सूक्तेन घृतदुग्धम् अभिमन्त्र्य क्षताङ्गं पुरुषं पाययेत् ॥

तथा तेनैव द्रव्येण क्षतदेशम् अभ्यञ्ज्यात् ॥

सूत्रितं हि । "रोहिणीत्यवनक्षत्रेऽवसिञ्चति पृषातकं पाययत्यभ्यनक्ति" इति [कौ० ४. ४] ॥

"रोहिण्यसि" इस सूक्तसे शस्त्र आदिके प्रहारसे निकलते हुए रुधिरके प्रवाहको रोकनेके लिये और टूटी हुई हड्डीके टूटेपनको मिटानेके लिये काढ़ेके रूपमें औटाये हुए लाखके जलको उषःकालके समय घावके स्थान पर छिड़के ।

तथा इस सूक्तसे घृत दुग्धका अभिमन्त्रण करके क्षत अंगवाले पुरुषको पिलावे ।

और इसी सूक्तसे उसी द्रव्यसे क्षतस्थानको स्वच्छ करे ॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"रोहिणीत्यवनक्षत्रेऽवसिञ्चति पृषातकं पाययत्यभ्यनक्ति" (कौशिकसूत्र ४।४)॥

तत्र प्रथमा ॥

रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी ।

रोहयेदमरुन्धति ॥ १ ॥

रोहणि । असि । रोहणी । अस्थ्नः । छिन्नस्य । रोहणी ।

रोहय । इदम् । अरुन्धति ॥ १ ॥

हे रोहिणि लोहितवर्णे लाक्षे । ❀ रोहितशब्दात् "वर्णाद् अनुदात्तात् तोपधात् तो नः" इति ङीप् तकारस्य च नकारः ❀ । त्वं [रोहिणी] रोहित्री प्ररोहयित्री असि भवसि । अतस्त्वं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तेरे शरीरका जो मांस प्रहारके कारण फट गया है, वह जिस प्रकार सुखको प्राप्त हो तैसा हो अर्थात् फिर आकर मिल जावे३

चतुर्थी ॥

मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।

असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥४॥

मज्जा । मज्ज्ञा । सम् । धीयताम् । चर्मणा । चर्म । रोहतु ।

असृक् । ते । अस्थि । रोहतु । मांसम् । मांसेन । रोहतु ॥ ४ ॥

मज्जाख्यो धातुः मज्ज्ञा मज्जधातुना सं धीयताम् संहितः संयुक्तो भवतु । चर्मणा शस्त्रादिप्रहारभिन्नेन चर्म रोहतु प्ररूढं भवतु । संयुज्यताम् इत्यर्थः । असृक् रक्तं ते त्वच्छरीरगतं यद् अस्थ्नः सकाशात् विश्लिष्टं पुनस्तद् अस्थि रोहतु प्राप्नोतु । मन्त्रौषधिसामर्थ्येन संयुज्यताम् इत्यर्थः । यद्वा चर्मणा चर्मेति तृतीयान्तस्य तत्र दृष्टत्वात् असृजा अस्थ्ना इति तृतीयान्तं पदम् अध्याहृत्य योज्यम् । [असृजा] असृग् रोहतु अस्थ्ना अस्थि रोहत्विति । शिष्टं निगदसिद्धम् ॥

मज्जा धातु मज्जा धातुसे मिल जावे, शस्त्रके प्रहारसे भिन्न हुआ चमड़ा चमड़ेसे मिल जावे तेरे शरीरका जो रक्त हड्डी पर से टपका है वह फिर हड्डीमें आवे ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।

असृक् ते अस्थि रोहतु छिन्नं सं धेह्योषधे ५

लोम । लोम्ना । सम् । कल्पय । त्वचा । सम् । कल्पय । त्वचम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

असृक् । ते । अस्थि । रोहतु । छिन्नम् । सम् । धेहि । ओषधे ५

हे लाक्षात्मिके ओषधे शरीरस्थं लोम लोम्ना प्रहारविश्लिष्टेन सं कल्पय संक्लृप्तं पुनः स्वस्थानगतं कुरु ॥ तथा त्वचमपि विश्लिष्टत्वचा सं कल्पय संक्लृप्तां कुरु ॥ असृक् ते अस्थि रोहतु इति पूर्ववत् । एवम् अन्यदपि छिन्नम् भग्नं यद्यद् अङ्गम् अस्ति तत् सर्वं सं धेहि संहितं संश्लिष्टं व्यापारक्षमं कुर्वित्यर्थः ॥

हे लाखनामक ओषधे ! तू शरीरमें स्थित लोमको प्रहारसे अलग हुए लोमसे मिलाकर फिर अपने स्थान पर स्थापित कर और अलग हुई खालको भी खालसे मिलाकर ठीक कर तेरा रक्त हड्डियों पर दौड़ने लगे, इसी प्रकार और भी जो कोई टूटा अङ्ग है उसको भी मिलाकर तू व्यापार करनेमें समर्थ कर ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

स उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः प्रति तिष्ठोर्ध्वः ॥ ६ ॥

सः । उत् । तिष्ठ । प्र । इहि । प्र । द्रव । रथः । सुऽचक्रः । सुऽपविः । सुऽनाभिः ।
प्रति । तिष्ठ । ऊर्ध्वः ॥ ६ ॥

हे शस्त्रप्रहारादिभिर्विश्लिष्टावयव पुरुष स तादृशः मन्त्रौषधिसामर्थ्येन संहितगात्रः सन् उत् तिष्ठ शयनाद् उद्गच्छ । प्रेहि तस्मात् स्थानात् प्रगच्छ । प्र द्रव प्रधाव वेगेन गच्छ । उक्तम् अर्थं दृष्टान्तेन द्रढयति रथ इत्यादिना । सुचक्रः सुदृढैश्चक्रैर्युक्तः सुपविः सुदृढः पविर्नेमिश्चक्रधारा यस्य स तथोक्तः सुनाभिः सुदृढया नाभ्या अक्षच्छिद्रेण युक्तः एवं गुणविशिष्टो रथः यथा प्रगमनादिव्यापारं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुर्वन् प्रतिष्ठितो भवति एवं त्वमपि सुदृढाङ्गो भूत्वा ऊर्ध्वः उत्थितः सन् प्रति तिष्ठ प्रतिष्ठितो भव ॥

हे शस्त्रके प्रहार आदिसे भिन्न अंग वाले पुरुष ! तू मन्त्र और औषधिकी सामर्थ्यसे अवयव आदिके जुड़ने पर शयन परसे उठ कर खड़ा हो और उस स्थानसे चल, वेगसे दौड़। सुन्दर चक्रोंसे दृढ़, सुदृढ़ नेमि वाला और दृढ़ नाभि वाला रथ जैसे गमन आदि व्यापारको करता हुआ प्रतिष्ठित होता है, इसी प्रकार तू भी सुदृढ़ अंगों वाला हो उठकर प्रतिष्ठित हो ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान ।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत् परुषा परुः ॥ ७ ॥

यदि । कर्तम् । पतित्वा । सम्ऽसश्रे । यदि । वा । अश्मा । प्रऽहृतः । जघान ।

ऋभुः । रथस्यऽइव । अङ्गानि । सम् । दधत् । परुषा । परुः ॥७॥

यदि कर्तम् कर्तकं छेदकम् आयुधं पुरुषशरीरे पतित्वा संशश्रे संमृणाति संहिनस्ति । ❀ शॄ हिंसायाम् इत्यस्मात् छान्दसो लिट् ❀ । यदि वा अपि वा अश्मा पाषाणः प्रहृतः परेण पुरुषशरीरे प्रक्षिप्तः सन् जघान हन्ति पुरुषं हिनस्ति । तेन आयुधेन अश्मना [च] हिंसितं परुः पर्व परुषा पर्वान्तरेण सं दधत् मन्त्रौषधप्रभावः संदधातु । तत्र दृष्टान्तः । ऋभू रथस्येवेति । सुधन्वन आंगिरसस्य त्रयः पुत्रा बभूवुऋर्भुर्विभ्वा वाज इति [नि० ११. १६] [इति] यास्कवचनात् सुधन्वनः पुत्रा ऋभ्वाद्यो रथनिर्माणादिना देवत्वं प्राप्ताः । तथात्वं च दाशतय्याम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"तन्नन् रथं सुवृतं विद्मनापसः" [ऋ० १. १११. १] इत्याद्याभवसूक्तेषु प्रसिद्धम् । ऋभुर्यथा रथस्य अङ्गानि अक्षचक्रेषायुगादीनि निर्माय संदधाति एवम् आथर्वणो मन्त्रो विश्लिष्टम् अङ्गं संदधातीत्यर्थः ॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

यदि काटने वाला आयुध पुरुषके शरीर पर पड़ कर उसका संहार कर रहा है वा दूसरेका फैंका हुआ जो पाषाण इसके शरीर पर गिर कर इसको कष्ट देरहा है, उस आयुध वा पत्थर से टूटी हुई हड्डी मंत्रके प्रभावसे हड्डीसे मिल जावे । ऋभु ‡ जैसे रथके अंग अक्ष चक्र ईषा युग आदिको बनाकर मिला देता है, इसी प्रकार अथर्ववेदका मंत्र भी अलग हुए अंगको मिला देता है७

द्वितीय सूक्त समाप्त (११४) ॥

"उत देवाः" इति सूक्तेन उपनयनानन्तरम् आयुष्कामं माणवकम् अभिमृश्य अनुमन्त्रयेत । सूत्रितं हि । "वि देवा जरसा [३. ३१] उत देवाः [४. १३] आवतस्ते [५. ३०]" इत्यादि "विषासहिम् [१७. १] इत्यनुमन्त्रयते ब्राह्मणोक्तम्" इत्यन्तम् [कौ० ७. ६] ॥

तथा ऋषिहस्ते माणवकशरीरानुमन्त्रणेपि एतत् सूक्तम् । सूत्रितं हि । "मुञ्चामि त्वा [३. ११] उत देवाः [४. १३] आवतस्ते [५. ३०]" इत्यादि "विषासहिम् [१७. १] इत्यनुमन्त्रयेत" इत्यन्तम् [कौ० ७. ६] ॥

तथा लघुगणे "हिरण्यवर्णाः [१. ३३] शंतायीयम् [४. १३] यद्यन्तरिक्षे [७. ६८]" [कौ० १. ६] इति शंतातीयपदेन शंतातिशब्दयुक्तस्य अस्य सूक्तस्य विवक्षितत्वाद् अस्य गणस्य यत्रयत्र विनियोगः तत्र सर्वत्र अस्य विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

‡ "अंगिरागोत्री सुधन्वाके ऋभु विभु और वाज नाम वाले तीन पुत्र हुए" (निरुक्त ११ । १६) ॥

 ६-६-२६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा अंहोलिङ्गगणेपि अस्य सूक्तस्य पाठात् तस्य गणस्य यत्र-यत्र भैषज्यादिषु विनियोगस्तत्र सर्वत्र अस्य विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा क्रतुमध्ये व्याधितस्य यजमानस्य भैषज्यकरणेपि एतत् सूक्तम्। सूत्रितं हि। "अथ भैषज्याय यजमानम् 'अक्षीभ्यां ते' [२. ३३] 'मुञ्चामि त्वा' [३. ११] 'उत देवाः' [४. १३]" इति [वै० ७. ३] ॥

"उत देवाः" इस सूक्तसे उपनयनके अनन्तर आयु चाहने वाले बालकका अभिमर्शन करके अनुमंत्रण करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"वि देवा जरसा (३। ३१) उत देवाः (४। १३) आवतस्ते (५। ३०)" इत्यादि "विषासहिम् (१७। १) इत्यनुमंत्रयते ब्राह्मणोक्तम्" इत्यंतं (कौशिकसूत्र ७।६) ॥

तथा ऋषिके हाथसे बालकका अनुमन्त्रण कराने पर भी यह सूक्त पढ़ा जाता है। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-मुञ्चामि त्वा (३। ११) उत देवा (४। १३) आवतस्ते (५।३०) इत्यादि "विषासहिम् (१७। १) इत्यनुमन्त्रयेत" इत्यन्तम् (कौशिकसूत्र ७। ६) ॥

तथा लघुगणमें "हिरण्यवर्णाः (१।३३) शन्तातीयम् (४। १३) यद्यन्तरिक्षे (७। ६८)" (कौशिकसूत्र १। ६) इनका पाठ है। यहाँ शन्तातीयपदसे शन्तातिशब्द वाला यह सूक्त लिया जाता है। अतः जहाँ २ लघुगणका विनियोग हो तहाँ २ सर्वत्र इसका विनियोग होगा ॥

तथा अंहोलिङ्गगणमें भी इस सूक्तका पाठ है अत एव इस गणका भैषज्य आदि जिन २ कर्मोंमें विनियोग हो तहाँ २ सर्वत्र इसका भी विनियोग होगा ॥

तथा यज्ञमें रुग्ण हुए यजमानकी चिकित्सामें भी यह सूक्त पढ़ा जाता है। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"अथ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भैषज्याय यजमानम् 'अक्षीभ्यां' ते (२ । ३३) मुञ्चामि त्वा (३ । ११) उत देवा (४ । १३)" वैतानसूत्र (७ । ३) ॥

तत्र प्रथमा ॥

उत दे॑वा॒ अव॑हितं॒ देवा॒ उन्न॑यथा॒ पुन॑ः ।
उ॒ताग॑श्च॒क्रुषं॑ दे॒वा॒ देवा॑ जी॒वय॑था॒ पुन॑ः ॥ १ ॥

उ॒त । दे॒वाः॒ । अव॑ऽहितम् । दे॒वाः॑ । उत् । न॒य॒थ॒ । पुन॑ः ।
उ॒त । आग॑ः । च॒क्रु॒षम् । दे॒वाः॑ । देवा॑ः । जी॒वय॑थ । पुन॑ः ॥१॥

उतशब्दः अप्यर्थे । हे देवाः इमम् उपनीतं धर्मविषये अवहितम् सावधानम् अप्रमत्तं कुरुत । यद्वा अवहितम् अवस्थापितं कुरुत । यथासौ चिरकालम् अवतिष्ठते तथा कुरुतेत्यर्थः । ❀ अवपूर्वाद् धाञः कर्मणि निष्ठा । "गतिरनन्तरः" इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥ हे देवाः यूयं संभाविताद् अनवधानाद् एनं पुनः उन्नयथ उद्गमयथ । यद्वा अध्ययनतदर्थज्ञानादिलक्षणं यद् उत्कृष्टं फलं तद् उपनीतं प्रापयथ । ❀ देवा इत्यस्य पादादित्वात् षाष्ठिकम् आमन्त्रिताद्युदात्तत्वम् ❀ ॥ उत अपि च हे देवाः आगः अपराधं विहिताननुष्ठानादिजनितं पापं चक्रुषम् चकृवांसं कृतवन्तम् । ❀ करोतेर्लिटः क्वसुः । अमि भत्वाभावेपि छान्दसं वसोः संप्रसारणम् ❀ । अज्ञानात् पापं कृतवन्तमपि एनं तस्मात् पापाद् रक्षतेत्यर्थः ॥ एवं संभवदायुर्भङ्गनिमित्तापराधपरिहारेण हे देवाः यूयं पुनरिमं जीवयथ शतसंवत्सरपरिमितजीवनयुक्तं कुरुत ॥ इत्थम् आमन्त्रितभेदेन वाक्यचतुष्टयं साध्याध्याहारेण योजयितव्यम् । यद्वा पूर्वोत्तरार्धे द्वे वाक्ये । तत्र एकैको देवशब्दो गौणः । अपरः संज्ञा । हे दानादिगुणयुक्ता देवाः अवहितमपि एनं पुनरुन्नयथ । आगः कृतवन्तमपि एनं पुनर्जीवयथेति । अक्षरार्थस्तु स एव ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे देवताओं ! इस उपनीत बालकको धर्मविषयमें प्रमादरहित करो, हे देवताओं ! तुम प्रमादसे इसको फिर उठाओ । अध्ययन और उसके अर्थका ज्ञान आदि जो उत्कृष्ट फल है उससे इस उपनीतको संयुक्त करो । हे देवताओं ! विहित कर्मका अनुष्ठान न करनेसे उत्पन्न होने वाले पापको करते हुए भी इसकी रक्षा करो अर्थात् अज्ञानवश हुए पापसे भी इसकी रक्षा करो । इस प्रकार कभी न कभी बन जाने वाले आयुर्भंगके निमित्त अपराधोंको दूर कर तुम इसको सौ वर्ष तकके जीवनसे युक्त करो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यऽन्यो वातु यद् रपः ॥२॥

द्वौ । इमौ । वातौ । वातः । आ । सिन्धोः । आ । पराऽवतः ।
दक्षम् । ते । अन्यः । आऽवातु । वि । अन्यः । वातु । यत् । रपः ॥२॥

इमौ दृश्यमानौ द्वौ वातौ । "पश्चाद्वातं प्रति मीवति पुरोवातमेव जनयति" [तै० सं० २. ४. ६. १] इति श्रुत्यन्तरप्रसिद्धौ वायु आ सिन्धोः आ समुद्रात् । मर्यादायाम् आकारः । समुद्रपर्यन्तम् । तथा आ परावतः । परावत् इति दूरनाम । समुद्रादपि यो दूरदेशः तावत्पर्यन्तं वा वातः गच्छतः । ❀ वा गतिगन्धनयोः । आदादिकः ❀ । यद्वा इमौ प्राणापानात्मकौ द्वौ वातौ वातः शरीरेषु संचरतः आ सिन्धोः । अत्र सिन्धुशब्देन स्यन्दनशीलानि स्वेदायनानि उच्यन्ते । तावत्पर्यन्तं आ परावतः । परावच्छब्देन शरीराद् बाह्यदेशो द्वादशांगुलपरिमितो विवक्षितः । तावत्पर्यन्तं च प्राणापानयोः संचारस्थानम् ।

नाडीभ्याम् अस्तम् अभ्येति प्राणतो द्विषडंगुलः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इति ॥ तयोर्वातयोः अन्यः पुरोवातः प्राणो वा हे उपनीत ते तव दक्षम् बलम् आवातु आगमयतु । अन्यः पश्चाद्वातः अपानवायुर्वा तव यद् रपः पापम् अस्ति । ❀ रपो रिप्रम् इति पापनामनी भवतः इति हि निरुक्तम् [नि० ४. २१] ❀ । तत् पापं वि वातु त्वत्सकाशाद् विगमयतु ॥

"पश्चाद्वातं प्रति मीवति पुरोवातमेव जनयति ॥—पिछला चलता हुआ वायु अस्त होता हुआ ही अगले वायुको उत्पन्न कर देता है" इस तैत्तिरीयसंहिता २ । ४ । ६ । १ की श्रुतिमें जो दो प्रसिद्ध वायु हैं वह समुद्र तक और समुद्रसे भी अधिक दूर देश तक जावें अथवा यह प्राण और अपानरूप दो वायु शरीरमें चलें यह स्वेदके स्थानों तक जावें और उससे भी दूरके देश अर्थात् शरीरके बाहर बारह अंगुल तक जावें † इन वायुओंमें जो प्राण वा पुरोवात है हे उपनीत ! वह तुझमें बल लावे और पश्चाद्वात वा अपानवायु तुझमें जो रिप्र अर्थात् पाप ‡ है उसको तुझसे दूर करे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

आ वा॑त वाहि भेष॒जं वि वा॑त वाहि॒ यद् रपः॑ ।
त्वं हि वि॒श्वभे॑षज दे॒वानां॑ दू॒त ईय॑से ॥ ३ ॥

† इसी बातको कहा भी है, कि—"नाड़ीभ्यां अस्तं अभ्येति प्राणतो द्विषडंगुलः ॥—इडापिंगला इन दो नाड़ियोंसे छोड़ा हुआ प्राण बारह अंगुल तक जाता है ॥"

‡ "रपो रिप्रं इति पापनामनी भवतः इति हि निरुक्तम् ॥—रप और रिप्र पापके नाम हैं ऐसा निरुक्तमें कहा है" (निरुक्त ४ । २१) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आ । वात । वाहि । भेषजम् । वि । वात । वाहि । यत् । रपः ।

त्वम् । हि । विश्वऽभेषज । देवानाम् । दूतः । ईयसे ॥ ३ ॥

हे वात वायो भेषजम् सर्वव्याधिनिवर्तकम् औषधम् आ वाहि आगमय । हे वात वायो यद् रपः पापं व्याधिनिदानम् अस्ति तद् वि वाहि विगमय अस्मत्तो विनाशय ॥ हे विश्वभेषज सर्वव्याधिनिवर्तक हि यस्मात् त्वं देवानाम् इन्द्रादीनां दूतः चारः सन् सर्वजगद्रक्षणाय ईयसे संचरसि । ❀ ईङ् गतौ । दिवादित्वात् श्यन् ❀ ॥ यद्वा देवानाम् इन्द्रियाणां दूतः दूतवद् आसन्नवर्ती सन् तत्पोषणाय ईयसे । कृत्स्नं शरीरं व्याप्य वर्तस इत्यर्थः ॥

हे वायो ! सब व्याधियोंको दूर करने वाली औषधिको लाइये और हे वायो ! जो व्याधिका कारण पाप है उसको हमसे दूर करिये । हे सब व्याधियोंको दूर करने वाले ! आप इन्द्र आदि देवताओंके दूत बन कर सब जगत्की रक्षा करनेके लिये घूमते हैं और इन्द्रियोंके दूतकी समान उनके पासमें रह कर उनका पोषण करनेके लिये रहते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।

त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥ ४ ॥

त्रायन्ताम् । इमम् । देवाः । त्रायन्ताम् । मरुताम् । गणाः ।

त्रायन्ताम् । विश्वा । भूतानि । यथा । अयम् । अरपाः । असत् ॥ ४ ॥

देवाः इन्द्रादयः इमम् उपनीतं माणवकं त्रायन्ताम् । यद्वा "अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्" [ऐ० आ० २. ४. २] इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धा अग्न्याद्या इन्द्रियाधिष्ठातृदेवता देवाः । ते तत्तदि-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

न्द्रियपाटवप्रदानेन इमं रक्षन्तु इत्यर्थः ॥ तथा मरुताम् एकोनपञ्चाशत्संख्याकानाम् "ईदृङ् चान्यादृङ् च" [तै० सं० १. ८. १३. २] इत्यादिश्रुत्यन्तरप्रसिद्धसंज्ञकानां ये गणाः सप्तसंख्याकाः सन्ति तेपि इमं त्रायन्ताम् संरक्षन्तु । यद्वा मरुताम् प्राणापानव्यानादीनां देहे अवस्थितानां गणाः । पूजार्थं बहुवचनम् ॥ तथा विश्वा विश्वानि सर्वाणि अन्यानि भूतानि भूतजातानि यथा येन प्रकारेण अयं पुरुषः अरपा असत् अपापो भवेत् तथा त्रायन्ताम् इमं पालयन्तु ॥ ❀ त्रैङ् पालने । अरपा इति । न विद्यन्ते रपांसि पापानि यस्मिन्निति बहुव्रीहौ "नञ्सुभ्याम्" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् ❀ ॥

इन्द्र आदि देवता इस उपनीत बालककी रक्षा करें । और 'अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत् ॥—अग्निने वाणी बन कर मुखमें प्रवेश किया" इस ऐतरेय आरण्यककी २ । ४ । ३ श्रुतिके अनुसार जो अग्नि आदि इन्द्रियोंके अधिष्ठात्री देवता हैं वे उस २ इन्द्रियकी कुशलता देकर इस बालककी रक्षा करें । और उञ्श्वास मरुद्गणोंके जो सात गण हैं, वे भी इस बालककी रक्षा करें । और प्राण अपान आदिके जो देहमें स्थित गण हैं वे सब और अन्य प्राणी भी जिस प्रकार यह पुरुष पापरहित हो तिस प्रकार इसकी रक्षा करें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥ ५ ॥

आ । त्वा । अगमम् । शंतातिऽभिः । अथो इति । अरिष्टतातिऽभिः । दक्षम् । ते । उग्रम् । आ । अभारिषम् । परा । यक्ष्मम् । सुवामि । ते ५

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे उपनीत त्वा त्वां शंतातिभिः शंकरैः सुखकरैर्मन्त्रैः अथो अपि च अरिष्टतातिभिः अरिष्टम् अहिंसा तत्करैः श्रेयोहेतुभिः कर्मभिश्च आगमम् आगतवान् अस्मि । ❀ गमेर्लुङि लृदित्वात् च्लेः अङ् आदेशः । "शिवशमरिष्टस्य करे" इति उभयत्र करणेर्थे तातिल् प्रत्ययः । "लिति" इति प्रत्ययात् पूर्वस्य उदात्तत्वम् ❀॥ अपि च उग्रम् उद्गूर्णं दक्षम् समृद्धिकरं बलं ते तव आभार्षम् । आहार्षम् ❀ । "हृग्रहोर्भः०" इति भत्वम् ❀ । "दक्षं ते अन्य आवातु" [२] इति वायुप्रार्थनया तत्सकशाद् आनैषम् ॥ तथा यक्ष्मम् रोगं ते तव सकाशात् परा सुवामि पराङ्मुखं प्रेरयामि ॥ ❀ षू प्रेरणे । तौदादिकः ❀ ॥

हे उपनीत ! मैं तुझको सुख देने वाले मन्त्रोंसे और अहिंसामय कल्याणकारी कर्मोंके द्वारा प्राप्त हुआ हूँ और प्रचण्ड बलको भी तुझमें ले आया हूँ तथा यक्ष्मा रोगको भी तुझसे पराङ्मुख करके भेजता हूँ ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोयं शिवाभिमर्शनः ॥ ६ ॥

अयम् । मे । हस्तः । भगऽवान् । अयम् । मे । भगवत्ऽतरः ।
अयम् । मे । विश्वऽभेषजः । अयम् । शिवऽअभिमर्शनः ॥ ६ ॥

मे मदीयः अयम् अभिमर्शनसाधनो हस्तः भगवान् भाग्यवान् । तथा मे मदीयोयम् ऋषिहस्तः भगवत्तरः अतिशयितभाग्ययुक्तः । मे मम अयं हस्तो विश्वभेषजः विश्वानि भेषजानि सर्वव्याधिनिवर्तकानि औषधानि यस्मिन्नृषिहस्ते स तथोक्तः । यस्माद् एवं गुणविशिष्टो मदीयो हस्तः तस्माद् अयं शिवाभिमर्शनः सुखकरस्पर्शनयुक्तो भवतु ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरा यह अभिमर्शनका साधन हाथ भाग्यवान् है और मेरा यह ऋषिहस्त परमभाग्यवान् है, मेरे इस ऋषिहस्तमें संपूर्ण व्याधियोंको दूर करनेवालीं सब औषधियें (। का प्रभाव) हैं। मेरा हाथ ऐसे गुणोंवाला है अतः यह सुखदायक स्पर्शसे युक्त हो ६

सप्तमी ॥

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ७

हस्ताभ्याम् । दशऽशाखाभ्याम् । जिह्वा । वाचः । पुरःऽगवी ।
अनामयित्नुऽभ्याम् । हस्ताभ्याम् । ताभ्याम् । त्वा । अभि ।
मृशामसि ॥ ७ ॥

दशशाखाभ्याम् दश अंगुलयः शाखाभूता ययोः तादृशाभ्यां हस्ताभ्यां प्रजापतिसंबन्धिभ्यां सृज्यमाना जिह्वा वागिन्द्रियाधिष्ठान-भूता रसना वाचः शब्दस्य पुरोगवी पुरतो गन्त्री भवति । यत्र-यत्र शब्दः प्रयुज्यते तत्र सर्वत्र तस्य शब्दस्योच्चारणाय पुरतो व्याप्रियत इत्यर्थः ॥ अनामयित्नुभ्याम् अनामयशीलाभ्याम् आरोग्यहेतुभ्यां ताभ्यां प्रजापतिसंबन्धिभ्यां हस्ताभ्याम् हे उपनीत त्वा त्वाम् अभि मृशामसि अभितः संस्पृशामः । ❀ "इदन्तो मसिः" ❀॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

अंगुलिरूप दश शाखा वाले प्रजापतिके दोनों हाथोंसे रची हुई वागिन्द्रियकी अधिष्ठानभूत रसना शब्दके आगे चलने वाली होती है, तात्पर्य यह है, कि—जहाँ २ शब्दका प्रयोग किया जाता है सर्वत्र उस शब्दोच्चारणसे पहिले ही पुर जाती है। आरोग्य के कारण उन प्रजापतिके हाथोंसे हे उपनीत ! हम तेरा स्पर्श करते हैं ॥ ७ ॥

चतुर्थ काण्डके तृतीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (११५) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अजो ह्यग्नेः" इति सूक्तेन अजौदनसवे हविरभिमर्शनादिकं कुर्यात् । सूत्रितं हि । "तस्मिन्नन्वारब्धं दातारं वाचयति तन्त्रं सूक्तं पच्छस्तानेन यौ ते पक्षौ" इत्युपक्रम्य "क्रमध्वम् अग्निना नाकम् [२] पृष्ठात् पृथिव्या अहम् अन्तरिक्षम् आरुहम् [३] स्वर्यन्तो नापेक्षन्ते [४]" इति [कौ० ८. ६] ॥

"क्रमध्वम् अग्निना" इत्याद्यास्तिस्रः सर्वेषु सवयज्ञेषु वाचने विनियुक्ताः ॥

"अजो ह्यग्नेः" इत्यनया ऋचा अग्निचयने उपधीयमानम् अजशिरोऽनुमन्त्रयेत । "अजो हीत्यजशिरः" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ५.२] ॥

"अग्ने प्रेहि" इत्यनया सर्वेषु सवयज्ञेषु आज्यं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "अग्ने प्रेहि [५] समाचिनुष्व [११. १. ३६] इत्याज्यं जुहुयात्" [इति] [कौ० ८. ४] ॥

"अजम् अनज्मि" [६] इत्यन्या अजौदनसवे दर्भेषूद्धृतं पाशुकं हविः आज्येनाभ्यञ्ज्यात् । सूत्रितं हि । "उद्धृतम् अजम् अनज्मीत्याज्येनानक्ति" इति [कौ० ८. ५] ॥

"पञ्चौदनम्" [७, ८] इति द्वाभ्यां सवयज्ञे पञ्चधा विभक्तौदनसहितान् शिरःपार्श्वाद्यवयवान् प्राच्यादिदिक्षु स्थापयेत् । सूत्रितं हि । "पञ्चौदनम् इति मन्त्रोक्तम् ओदनान् पृथक्पादेषु निदधाति मध्ये पञ्चमम्" इति [कौ० ८. ५] ॥

"शृतम् अजम्" [९] इत्यनया शिरःपादाद्यवयवोपेतं चर्म जुहुयात् । सूत्रितं हि । "शृतम् अजम् इत्यनुबद्धशिरःपादम् अजस्य चर्म" इति [कौ० ८. ५] ॥

वाजपेये "पृष्ठात् पृथिव्याः" [३] इत्येतां यूपम् आरुह्य यजमानो जपेत् । उक्तं वैताने । वाजपेयं प्रक्रम्य "पृष्ठात् पृथिव्या अहम् इत्यारूढः" इति [वै० ४. ३] ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वरुणप्रघासाख्ये पर्वणि अग्निप्रणयनकाले "अग्ने प्रेहि" [५] इति ब्रह्मा जपन् गच्छेत् । तद्ध उक्तं वैताने । "आषाढ्यां वरुणप्रघासेष्वग्नौ प्रणीयमाने अग्ने प्रेहीति जपन्नेति" इति [वै० २.४] ॥

सोमयागे उत्तरवेद्यग्निप्रणयनेपि एषा जप्या । उक्तं वैताने । "अग्नौ प्रणीयमाने अग्ने प्रेहीति जपित्वा बहिर्वेद्युपविशति" इति। [वै० ३.५] ॥

"अजो ह्यग्ने" इस सूक्तसे अजौदनसवमें हविका अभिमर्शन आदि करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"तस्मिन्नन्वारब्धं दातारं वाचयति तंत्रं सूक्तं पच्छस्त्नानेन यौते पत्तौ" इत्युपक्रम्य "क्रमध्वं अग्निना नाकं (२) पृष्ठात् पृथिव्या अहम् अन्तरिक्षं आरुहम् (३) स्वर्यन्तो नापेक्षन्ते (४)" इति कौशिकसूत्र (८ । ६) ॥

"क्रमध्वम् अग्निना" इत्यादि तीन ऋचायोंका सब सवयज्ञोंके वाचनमें विनियोग है ॥

"अजो ह्यग्ने" इस ऋचासे अग्निचयनमें उपधीयमान बकरेके शिरका अनुमन्त्रण करे । वैतानसूत्र ५ । २ में कहा है, कि—"अजो हीत्यजशिरः" ॥

'अग्ने प्रेहि' इस ऋचासे सब सवयज्ञोंमें घृतकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"अग्ने प्रेहि" इस पाँचवीं ऋचासे और 'समाचिनस्व' इस ग्यारहवें काण्डके प्रमथ अनुवाक की छत्तीसवें सूक्तसे घृतकी आहुति देय" (कौशिकसूत्र ८।४)

"अजं अनज्मि" इस छठी ऋचासे अजौदनसवमें कुशाओं पर रक्खी हुई पशुसम्बन्धी हविको घृतसे शुद्ध करे । इस विषय में सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"उद्धृतं अजं अनज्मीत्याज्येनानक्ति" (कौशिकसूत्र ८ । ५) ॥

'पञ्चौदनम्' इन सातवीं और आठवीं ऋचासे सवयज्ञमें पाँच

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्थानमें विभक्त ओदनसहित सिर पसली आदि अवयवोंको पूर्व आदि दिशाओंमें स्थापित करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"पञ्चौदनम् इति मन्त्रोक्तं ओदनान् पृथक् पादेषु निदधाति मध्ये पञ्चमम्" (कौशिकसूत्र ८ । ५)॥

"भृतम् अजम्" इस नौवीं ऋचासे शिर पैर आदि अवयवों से युक्त चर्मकी आहुति देय। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"भृतं अजं इत्यनुबद्धशिरःपादं अजस्य चर्म" (कौशिकसूत्र ८ । ५)॥

वाजपेयमें 'पृष्ठात् पृथिव्याः' इस तीसरी ऋचाको यजमान यूप पर चढ़कर जपे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि ववाजपेयं प्रक्रम्य 'पृष्ठात् पृथिव्या अहं इत्यारूढः' वैतानसूत्र (४ । ३)॥

ब्रह्मा वरुणप्रघास नाम वाले कर्ममें अग्निप्रणयनके समय 'अग्ने प्रेहि' इस पाँचवी ऋचाको जपता हुआ जावे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"आषाढयां वरुणप्रघासेऽग्नौ प्रणीयमाने अग्ने प्रेहीति जपन्नेति" (वैतानसूत्र २ । ४)॥

सोमयागके उत्तरवेदिप्रणयनमें भी इस ऋचाका जप करना चाहिये। इसी बातको वैतानसूत्र ३ । ५ में कहा है, कि—"अग्नौ प्रणीयमाने अग्ने प्रेहीति जपित्वा बहिर्वेद्युपविशति"॥

तत्र प्रथमा॥

अजो ह्य१ग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनितारमग्रे।
तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेध्यासः १

अजः । हि । अग्नेः । अजनिष्ट । शोकात् । सः । अपश्यत् ।
जनितारम् । अग्रे ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तेन । देवाः । देवताम् । अग्रे । आयन् । तेन । रोहान् । रुरुहुः ।

मेध्यासः ॥ १ ॥

अजः छागः अग्नेः शोकात् तापाद् अजनिष्ट उदपद्यत । हि-शब्दः श्रुत्यन्तरप्रसिद्धिं द्योतयति । तथा च तैत्तिरीयके अजस्याग्नि-सकाशाद् उत्पत्तिराम्नाता । "स आत्मनो वपाम् उदक्खिदत् । ताम् अग्नौ प्रागृह्णात् । ततोजस्तूपरः समभवत्" इति [तै० सं० २. १. १. ४] । सः जातोजः अग्रे सर्वप्रजापतिपशुसृष्टेः प्राग् जनितारम् जनयितारं प्रजापतिम् अग्निं वा अपश्यत् दृष्टवान् । जनयितृगौरवेण आत्मनो गौरवम् अज्ञासीद् इत्यर्थः । ❀ "जनिता मन्त्रे" इति णिलोपो निपात्यते ❀ ॥ तेन प्रथमसृष्टेन अजेन देवाः इन्द्रादयः देवताम् देवत्वं देवभावम् अग्रे सृष्ट्यादौ आयन् तत्सा-ध्ययागद्वारा प्राप्नुवन् । ❀ देवताम् इति । "तस्य भावस्त्वतलौ" इति तल् प्रत्ययः ❀ ॥ तथा मेध्यासः मेधार्हाः । ❀ "छन्दसि च" इति यप्रत्ययः । "आज्जसेरसुक्" ❀ । यज्ञार्हा अन्येपि ऋषि-जनाः रोहान् । रोह्यन्ते प्राप्यन्त इति रोहाः स्वर्गादिलोकाः । ❀ रुहे-रर्यन्तात् कर्मणि घञ् ❀ । तान् तेन अजेन साधनेन यागद्वारा रुरुहुः आरूढवन्तः । तस्मात् ईदृक्साधनकः अजौदनसवोदेवत्वादि-सर्वफलप्राप्तिसाधक इत्यर्थः ॥

बकरा अग्निके तापसे उत्पन्न हुआ है, यह बात दूसरी श्रुतियोंमें भी प्रसिद्ध है † । वह उत्पन्न हुआ अज प्रजापतिकी सब पशुसृष्टिसे पहिले उत्पादक प्रजापति वा अग्निको देखने लगा अर्थात् उसने उत्पादकके गौरवसे अपना गौरव समझा ॥ उस

† तैत्तिरीयसंहिता २ । १ । १ । ४ में कहा है, कि—"स आत्मनो वपां उदक्खिदत् । ताम् अग्नौ प्रागृह्णात् । ततोऽजस्तूपरः समभवत् ॥"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रथम रचे हुए अजके (यागके) द्वारा इन्द्र आदि सृष्टिके प्रारम्भमें देवभावको प्राप्त हुए तथा यज्ञके अधिकारी दूसरे ऋषि भी उस अजरूपी साधनके द्वारा यज्ञ करके स्वर्ग आदि लोकोंमें चढ़े हैं। इस कारण ऐसा अजौदनसव देवत्व आदि सकल फलोंकी प्राप्तिका साधक है॥ १॥

द्वितीया॥

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान् हस्तेषु बिभ्रतः।
दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम्॥ २॥

क्रमध्वम्। अग्निना। नाकम्। उख्यान्। हस्तेषु। बिभ्रतः।
दिवः। पृष्ठम्। स्वः। गत्वा। मिश्राः। देवेभिः। आ। अध्वम् २

हे जनाः अग्निना सवयज्ञार्थम् उत्पादितेन तत्साध्यान् सवयज्ञान् अनुष्ठाय तत्फलभूतं नाकम् दुःखसंभेदरहितम् उत्तमं लोकं क्रमध्वम् आरोहत। कथंभूताः सन्तः। उख्यान् उखावत् प्रकाशकान् अनुष्ठितान् यज्ञान् हस्तेषु बिभ्रतः धारयन्तः। यागादिजनितसुकृतविशेषान् अवलम्ब्य तत्फलभूतं लोकं प्राप्नुतेत्यर्थः। ❀ क्रमध्वम् इति। "अनुपसर्गाद् वा"। इति क्रमेरात्मनेपदम्। बिभ्रत इति। डुभृञ् धारणपोषणयोः। अस्मात् लटः शत्रादेशः। "भृञाम् इत्" इति अभ्यासस्य इत्त्वम्। "अभ्यस्तानाम् आदिः" इति आद्युदात्तः ❀॥ तदनन्तरं दिवः अन्तरिक्षस्य पृष्ठम् पृष्ठवंशवद् उन्नतप्रदेशं स्वः स्वर्गाख्यं लोकं गत्वा प्राप्य देवेभिः देवैः आजानशुद्धैः मिश्राः मिश्रिताः समानैश्वर्येण एकीभूताः आध्वम् उपविशत। ❀ "षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इति दिवो विसर्जनीयस्य सत्वम्। देवेभिरिति। "बहुलं छन्दसि" इति भिस ऐसभावः। ततो "बहुवचने झल्येत्" इति एत्त्वम्। आध्वम् इति। आस उप-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वेशने। अदादित्वात् शपो लुक्। "झलां जश् झशि" इति सकारस्य जश्त्वम्। दकारः ❀॥

हे मनुष्यो! तुम सब यज्ञोंके लिये उत्पन्न किये हुए अग्निके द्वारा सब यज्ञोंका अनुष्ठान करके अन्नकी समान प्रकाशक अनुष्ठित यज्ञोंको हाथमें रख कर दुःखरहित उत्तम स्वर्गलोकमें चढ़ो अर्थात् याग आदिसे उत्पन्न हुए पुण्यका अवलम्ब लेकर उनके फलरूप स्वर्गलोकमें चढ़ो। तदनन्तर अन्तरिक्षके पीठकी समान उन्नतस्वर्गमें पहुँचने पर देवताओंकेसा ऐश्वर्य पाकर देवताओं के साथ बैठो॥ २॥

तृतीया॥

पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम्।

दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्व१र्ज्योतिरगामहम्॥ ३॥

पृष्ठात्। पृथिव्याः। अहम्। अन्तरिक्षम्। आ। अरुहम्। अन्तरिक्षात्। दिवम्। आ। अरुहम्।

दिवः। नाकस्य। पृष्ठात्। स्वः। ज्योतिः। अगाम्। अहम्॥३॥

पृथिव्याः पृष्ठात् भूलोकाद् अहम् अन्तरिक्षम् आरुहम् अन्तरिक्षलोकम् आरोहामि। ❀ रुहेश्छान्दसो लुङ्। "कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि" इति च्लेः अङ् आदेशः ❀। तस्माद् अन्तरिक्षलोकाद् दिवम् द्युशब्दवाच्यं तृतीयं लोकम् आरुहम् आरोहामि॥ नाकस्य नास्मिन् अकम् दुःखम् अस्तीति नाकः तादृशस्य दिवः द्युलोकस्य पृष्ठात् उपरिदेशात् स्वः। आदित्यनामैतत्। आदित्यमण्डलस्थं हिरण्मयपुरुषाख्यं ज्योतिः अहम् अगाम् प्राप्नोमि। ❀

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एतेश्छान्दसो लुङ् । "इणो गा लुङि" इति गादेशः ❀ ॥ इत्थं सोपानक्रमेण पृथिव्यादिलोकेषु नानाविधान् भोगान् भुक्त्वा अन्ते सूर्यसायुज्यं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥

मैं भूलोकसे अन्तरिक्षलोकमें चढ़ता हूँ और उस अन्तरिक्ष-लोकसे स्वर्ग नामके तीसरे लोकमें चढ़ता हूँ और जिसमें दुःखका लेशमात्र नहीं है, उस स्वर्गलोकसे ऊपरके लोक आदित्यमण्डल में स्थित हिरण्मय पुरुष नामक ज्योतिमें मैं चढ़ता हूँ (तात्पर्य यह है, कि—इस प्रकार सोपानक्रमसे पृथिवी आदि लोकोंमें अनेक प्रकारके भोगोंको भोगता हुआ पुरुष अन्तमें सूर्यसायुज्यको प्राप्त होता है) ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

स्व१र्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥ ४ ॥

स्वः । यन्तः । न । अप । ईक्षन्ते । आ । द्याम् । रोहन्ति । रोदसी इति । यज्ञम् । ये । विश्वतःऽधारम् । सुऽविद्वांसः । विऽतेनिरे ॥ ४ ॥

स्वः स्वर्गं यज्ञफलभूतं यन्तः गच्छन्तः नापेक्षन्ते पुत्रपश्वादि-जनितम् ऐहिकसुखम् अल्पं नेच्छन्ति । किं तु द्याम् अन्तरिक्षं रोदसी द्यावापृथिव्यौ चेति लोकत्रयं प्रागुक्तरीत्या आ रोहन्ति । के पुन-स्ते । ये यजमानाः विश्वतोधारम् विश्वतः सर्वतो धारकम् यद्वा विश्वतः सर्वतो धारकाः अविच्छिन्नफलप्राप्त्युपाया यस्मिंस्तादृशम् यज्ञं सुविद्वांसः सुष्ठु जानन्तः वितेनिरे वितन्वन्ति विस्तारयन्ति । ❀ छान्दसो वर्तमाने लिट् ❀ । ते स्वर्यन्त इति संबन्धः ॥

यज्ञके फलरूप स्वर्गमें जानेवाले पुरुष पुत्र पशु आदिके इस लोक के थोड़ेसे सुखकी इच्छा नहीं करते हैं, किंतु अन्तरिक्ष स्वर्ग और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पृथिवी इन तीनों लोकोंमें पूर्वोक्तरीतिसे जाते हैं। जो यजमान अविच्छिन्न फल प्राप्तिके उपाय यज्ञको भली प्रकार समझ कर उसको करते हैं वे ही इन तीनों लोकोंको जीतते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम्
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति

अग्ने। प्र। इहि। प्रथमः। देवतानाम्। चक्षुः। देवानाम्। उत। मानुषाणाम्।

इयक्षमाणः। भृगुऽभिः। सऽजोषाः। स्वः। यन्तु। यजमानाः। स्वस्ति

हे प्रणीयमान अग्ने त्वं प्रेहि प्रगच्छ आहवनीयदेशं प्राप्नुहि। कीदृशस्त्वम्। देवतानाम् यष्टव्यानां प्रथमः मुख्यः। अत एव दर्शपूर्णमासयोस्तावद् अग्निः प्रथमम् इज्यते। चातुर्मास्येषु च पञ्चसंचरेषु आग्नेयः प्रथमो यागः। सोमयागे च दीक्षणीयायाम् आग्नावैष्णवयागे अग्निः प्रथमभावी। अत एव मन्त्रवर्णः। "अग्निरग्रे प्रथमो देवतानाम्" इति [तै० ब्रा० २. ४. ३. ३.]। तथा देवानाम् इन्द्रादीनां हविर्वहनेन अयम् अग्निः चक्षुः चक्षुरिन्द्रियवत् प्रियः। उत अपि च मानुषाणाम् मनोरपत्यभूतानां मनुष्याणां चक्षुः आहवनीयादिरूपेण पुण्यलोकस्य दर्शयिता। ❀ "मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च" इति अञ् प्रत्ययः षुगागमश्च ❀। यस्माद् एवम् अग्निर्देवानां मानुषाणां च चक्षुः तस्मात् तदीयप्रकाशेन इयक्षमाणां प्रथमं यष्टुम् इच्छन्तः पश्चाद् यजमानाः यागं कुर्वाणाश्च जनाः भृगुभिः एतत्संज्ञैर्महर्षिभिः सजोषाः समानप्रीतयः सन्तः स्वः स्वर्गं कर्मफलभूतं स्वस्ति क्षेमेण यन्तु प्राप्नुवन्तु। ❀ इय-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्षमाणा इति। यजेः सन्। "स यतः" इति अभ्यासस्य इत्वे आदिवर्णलोपश्छान्दसः। सजोषाः। जुषी प्रीतिसेवनयोः। भावे घञ्। ततो बहुव्रीहौ "समानस्य छन्दसि०" इति सभावः। परादिश्छन्दसि बहुलम्" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम्। यद्वा समानं जोषमाणाः प्रीयमाणाः। असुनि "सुपां सुलुक्०" इति जसः सुः। कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥

हे प्रणीयमान अग्ने! आप आहवनीयस्थानमें आइये। आप पूजनीय देवताओंमें मुख्य हैं (अतः दर्श और पूर्णमासमें अग्नि की पहिले पूजा होती है, पञ्चसञ्चर चातुर्मास्य यागोंमें भी आग्नेय प्रथम याग है। सोमयागमें भी दीक्षणीयाके आग्नावैष्णवयागमें अग्नि प्रथम होता है। इसी लिये मन्त्रमें प्रसिद्ध है, कि–"अग्निरग्रे प्रथमो देवानाम् ॥–देवताओंमें अग्रणी अग्नि प्रथमपूजनीय हैं" तैत्तिरीय ब्राह्मण २।४।३३) तथा यह अग्नि इन्द्र आदि देवताओंको हवि पहुँचाते हैं अतः उनको नेत्रकी समान प्रिय हैं और मनुकी अपत्यरूप मनुष्योंके लिये भी आहवनीय आदिरूपसे पुण्यलोकके दिखाने वाले नेत्ररूप हैं। अग्निदेव इस प्रकार मनुष्योंके और देवताओंके नेत्र हैं अत एव उनके प्रकाशसे पहिले पूजन करनेकी इच्छा वाले और फिर यज्ञ करते हुए पुरुष भृगु आदि महर्षियोंसे प्रेम करते हुए कर्मफलरूप स्वर्ग को क्षेमपूर्वक प्राप्त होवें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम्
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अजम् । अनज्मि । पयसा । घृतेन । दिव्यम् । सुऽपर्णम् । पयसम् । बृहन्तम् ।

तेन । गेष्म । सुऽकृतस्य । लोकम् । स्वः । आऽरोहन्तः । अभि । नाकम् । उत्ऽतमम् ॥ ६ ॥

हवीरूपम् आपन्नम् अजं पयसा पयोविकारेण पयोवद् रसवता वा घृतेन आज्येन अनज्मि अभिघारयामि । ❀ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणगतिषु । रुधादित्वात् श्नम् । श्नान्नलोपः" ❀ । कीदृशम् अजम् । दिव्यम् दिवि भवं द्युलोकार्हं वा सुपर्णम् शोभनपक्षयुक्तं पयसम् । ❀ छान्दसो वर्णविकारः ❀ । वयसं पक्षिरूपम् आपन्नं बृहन्तम् महान्तं यजमानं स्वर्गं प्रापयितुं शक्तम् ॥ तेन ईदृक्प्रभावेन अजेन सुकृतस्य पुण्यस्य फलभूतं लोकं गेष्म वयं गच्छेम। ततश्च उत्तमम् उत्कृष्टं नाकम् दुःखसंस्पर्शशून्यं स्वः स्वर्गं सूर्यात्मकं वा परमं ज्योतिः अभि आरोहन्तः अभिगच्छन्तः भवेमेत्यर्थः ॥

हविरूपको प्राप्त हुए अजको मैं दुग्धकी समान रस वाले घृत से मिलाता हूँ । यह अज द्युलोकके योग्य और पक्षिरूपको प्राप्त होकर महानुभाव यजमानको स्वर्ग पहुँचानेमें समर्थ है । ऐसे प्रभाव वाले अजके द्वारा हम पुण्यके फलरूप लोकमें जाते हैं । तदनन्तर हम उत्कृष्ट सूर्यात्मक परमज्योतिमें प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम् ।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ॥ ७ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पञ्चऽओदनम् । पञ्चऽभिः । अंगुलिऽभिः । दर्व्या । उत् । हर ।

पञ्चऽधा । एतम् । ओदनम् ।

प्राच्याम् । दिशि । शिरः । अजस्य । धेहि । दक्षिणायाम् । दिशि । दक्षिणम् । धेहि । पार्श्वम् ॥ ७ ॥

हे पाचक पञ्चौदनम् पञ्चधा विभक्तम् ओदनम् । ❀ "दिक्संख्ये संज्ञायाम्" इति समासः ❀ । पञ्चभिरंगुलिभिः करणैः दर्व्या साधनेन उद्धर । स्थाल्याः सकाशाद् उद्धृत्य बर्हिषि स्थापयेत्यर्थः । एतम् उद्धृतम् ओदनं पञ्चधा विभज्य तत्र एकं भागम् अजस्य पक्वं [शिरः] शिरोगतमांसं च प्राच्यां दिशि धेहि स्थापय । पुनः एकम् ओदनभागम् अजस्य [दक्षिणम् पार्श्वम्] दक्षिणपार्श्वस्थं मांसं च दक्षिणायाम् दक्षिणस्यां दिशि [धेहि] स्थापय॥

हे पाचक ! पाँच प्रकारसे विभक्त होने वाले ओदनको पाँच अँगुलियोंके द्वारा दर्वीसे स्थालीमेंसे निकाल कर कुशाओं पर स्थापित कर और इस निकाले हुए ओदनको पाँच भागोंमें बाँट कर एक भागको और बकरेके पके हुए शिरोमांसको पूर्वदिशामें स्थापन कर फिर एक ओदनके भागको और बकरेकी पसलीके दाहिने भागके मांसको भी दक्षिण दिशामें स्थापित कर ॥ ७ ॥

अष्टमी॥

प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् ।

ऊर्ध्वायां दिश्य१जस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यमन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रतीच्याम् । दिशि । भसदम् । अस्य । धेहि । उत्तरस्याम् । दिशि । उत्तरम् । धेहि । पार्श्वम् ।
ऊर्ध्वायाम् । दिशि । अजस्य । अनूकम् । धेहि । दिशि । ध्रुवायाम् । धेहि । पाजस्यम् । अन्तरिक्षे । मध्यतः । मध्यम् । अस्य ८

प्रतीच्याम् पश्चिमायां दिशि अस्य अजस्य भसदम् । भसत् कटिप्रदेशः । तत्रत्यं मांसम् ओदनभागसहितं धेहि स्थापय ॥ उत्तरस्याम् उदीच्यां दिशि ओदनभागसहितम् [उत्तरं पार्श्वम्] उत्तरपार्श्वसंबन्धि मांसं धेहि ॥ तथा ऊर्ध्वायां दिशि अस्य [अजस्य] अनूकम् पृष्ठवंशस्थं मांसम् ओदनभागसहितं धेहि स्थापय ॥ ध्रुवायाम् स्थिरायां भूम्यात्मिकायाम् अधस्ताद् दिशि पाजस्य । पाज इति बलनाम । तत्र हितम् उदरगतम् ऊवध्यं धेहि स्थापय । निखनेत्यर्थः । मध्यतः मध्यभागे अन्तरिक्षे आकाशे अस्य अजस्य [मध्यम्] शरीरमध्यवर्ति आकाशम् संयोजयेत्यर्थः॥

पश्चिम दिशामें बकरेकी कमरके मांसको ओदनसहित स्थापित कर और उत्तरदिशामें ओदनभागसहित उत्तरपार्श्वके मांसको रख और ऊपरकी दिशामेंपीठके मांसको ओदनसहित स्थापित कर और ध्रुव भूमिरूप नीचेकी दिशामें उदरके मांसको स्थापित कर और मध्यभागमें अर्थात् आकाशमें अजके मध्यभागको स्थापित कर८

नवमी॥

शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम् ।
स उत् तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शृतम् । अजम् । शृतया । प्र । ऊर्णुहि । त्वचा । सर्वैः । अङ्गैः ।
सम्ऽभृतम् । विश्वऽरूपम् ।
सः । उत् । तिष्ठ । इतः । अभि । नाकम् । उत्ऽतमम् । पत्ऽभिः ।
चतुःऽभिः । प्रति । तिष्ठ । दिक्षु ॥ ६ ॥

हे शमितः शृतम् पक्वम् अजं श्रथया विशसनेन विभक्तया त्वचा तदीयेन चर्मणा सपादवालशीर्षेण मोर्णुहि प्रकर्षेण च्छादय । ❀ ऊर्णुञ् छादने ❀ । कीदृशम् अजम् । सर्वैः अशेषैः अङ्गैः हस्तपादाद्यवयवैः संभृतम् संयुक्तं विश्वरूपम् सर्वाकारम् ॥ हे अज स तादृशः सर्वाङ्गसहितस्त्वम् उत्तमम् उत्कृष्टं नाकम् स्वर्गम् अभिलक्ष्य इतः अस्माद् भूलोकाद् उत् तिष्ठ उद्गच्छ । ❀ ऊर्ध्वकर्मत्वाद् आत्मनेपदाभावः ❀ ॥ तथा चतुर्भिः पद्भिः पादैः दिक्षु प्राच्यादिषु चतसृषु प्रति तिष्ठ प्रतिष्ठितो भव । ❀ पद्भिरिति । "पद्दन्०" इत्यादिना पादशब्दस्य पद् आदेशः । "ऊडिदंपदादि०" इति विभक्त्युदात्तत्वम् । चतुर्भिरिति । "झल्युपोत्तमम्" इति उकार उदात्तः । दिक्ष्विति । "सावेकाचः०" इति विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀ ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे शमितः ! पके हुए अजको विभक्त त्वचा और पैर बाल तथा शिर सहित ढ़क । यह अज हाथ पैर आदि सम्पूर्ण अङ्गों से युक्त है सर्वाकार है । ऐसे हे सर्वांगसम्पन्न अज ! तू श्रेष्ठ स्वर्गलोककी ओर लक्ष्य कर इस भूलोकसे ऊपरको जा तथा चारों पैरोंसे पूर्व आदि चारों दिशाओंमें प्रतिष्ठित हो ॥ ६ ॥

चतुर्थकाण्डके तृतीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (११६) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"समुत्पतन्तु" इति सूक्तेन वृष्टिकामः मरुद्भ्यो मान्त्रवर्णिकीभ्यो वा देवताभ्य आज्यहोमः। काशदिविधुवकवेतसाख्या ओषधीः एकस्मिन् पात्रे कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य जलमध्ये अधोमुखं निनयनम्। तासामेव काशादीनां संपातिताभिमन्त्रितानाम् अप्सु स्रावनम्। श्वशिरसो मेषशिरसश्च अभिमन्त्रितस्य अप्सु प्रक्षेपणम्। मानुषकेशजरदुपानहां वंशाग्रे बन्धनम् तुषसहितम् आमपात्रम् अभिमन्त्रितोदकेन संप्रोक्ष्य त्रिपादे शिक्ये निधाय अप्सु प्रक्षेपणं च इत्येतानि अभिवर्षणकर्माणि कुर्यात्। सूत्रितं हि। "समुत्पतन्तु [४. १५] प्र नभस्व [७. १८] इति वर्षकामो द्वादशरात्रम्" इत्यादि "त्रिपादेऽश्मानम् अवधाय अप्सु निदधाति" इत्यन्तम् [कौ० ५. ५]॥

तथा उपतारकाद्भुतशान्तौ अनेन सूक्तेन आज्यं जुहुयात्। सूत्रितं हि। "अथ यत्रैतद् उपतारकम्" इति प्रक्रम्य "समुत्पतन्तु प्र नभस्वेति वार्षीर्जुहुयात्। सा तत्र प्रायश्चित्तिः" इत्यन्तम् [कौ० १३. ११]॥

चातुर्मास्यान्वारम्भणीयेष्टौ "अभि क्रन्द" [६] इति पर्जन्यचरुयागाभिमन्त्रणम्। उक्तं वैताने। "पूर्वेद्युर्वैश्वानरपार्जन्येष्टिर्वा अग्ने वैश्वानर [२. १६. ४] अभि क्रन्द स्तनय [६]" इति [वै० २. ४]॥

धूमकेतूत्पातदर्शने पञ्चपशुयागमध्ये प्राजापत्यपशुपुरोडाशस्थाने "आग्नेयस्य प्राजापत्यस्य क्षीरौदनान्" इति विहितं क्षीरौदनं "प्रजापतिः सलिलात्" [११] इत्यृचा जुहुयात्। सूत्रितं हि। ["अथ यत्रैतद धूमकेतुः" इति प्रक्रम्य] "प्रजापतिः सलिलात् [११] इति प्राजापत्यस्य" इति [कौ० १३. ३५]॥

"प्राजापत्यां प्रजापशवन्नकामस्य प्रजाक्षये च" इति [न०क० १७] विहितायां महाशान्तौ "प्रजापतिः सलिलात्" इत्येषा आव-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पनीया । उक्तं नक्षत्रकल्पे । "प्रजापतिः सलिलाद् इति प्राजापत्यायाम्" इति [न० क० १८] ॥

वृष्टिको चाहने वाला 'समुत्पतन्तु' इस सूक्तसे मरुतोंके लिये वा मन्त्रोंसे पहिचानमें आने वाले देवताओंके लिये घृतका होम करे । और काश दिविधुवक और वेतस नामवाली औषधियोंको एक पात्रमें करके सम्पातन और अभिमन्त्रण कर जलमें नीचेको मुख करके ले जावे तथा इस सूक्तसे संपातित और अभिमन्त्रित उन ही काश आदिको जलमें डुबावे, अभिमन्त्रित कुत्तेके शिरको और मेढ़के शिरको इस सूक्तसे जलमें फैंके । मनुष्यके केश और पुराने जूतोंको बाँसके अग्रभागमें बाँधे और भूसी सहित कच्चे पात्रको अभिमन्त्रित जलसे प्रोक्षण करके, तीन लट वाले छीके पर रख कर जलमें डाले । इतने अभिवर्षणके काम इस सूक्तसे करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"समुत्पतन्तु (४ । १५) प्र नभस्व (७ । १९) इति वर्षकामो द्वादशरात्रि" इत्यादि "त्रिपादेऽश्मानं अवधाय अप्सु निदधाति" इत्यन्तं (कौशिकसूत्र ५ । ५) ॥

तथा उपतारकाद्भुतशान्तिमें इस सूक्तसे घृतकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"अथ यत्रैतद् उपतारकं" इति प्रक्रम्य "समुत्पतन्तु प्र नभस्वेति वार्षीजु हुयात् । सा तत्र प्रायश्चित्तिः" इत्यन्तं (कौशिकसूत्र १३ । ११) ॥

चातुर्मास्यकी अन्वारंभणीयेष्टिमें "अभि क्रन्द" इस छठी ऋचासे पर्जन्यचरुयागका अभिमन्त्रण करे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—"पूर्वेद्युर्वैश्वानर पार्जन्येष्टिर्वा अग्ने वैश्वानर (२ । १६ । ४) अभिक्रन्द स्तनय (६)" वैतानसूत्र २ । ४ ॥

धूमकेतुरूप उत्पात दीखने पर पञ्चपशुयागके प्राजापत्यपशुपुरोडाशस्थानमें "आग्नेयस्य प्राजापत्यस्य क्षीरौदनान्" से विहित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्षीरौदनकी "प्रजापतिः सलिलात्" इस ग्यारहवीं ऋचासे आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—['अथ यत्रैतद्ध धूमकेतुः' इसका आरंभ करके कहा है, कि—] "प्रजापतिः सलिलात् (११) इति प्राजापत्यस्य" इति (कौशिकसूत्र १३ । ३५)॥

"प्राजापत्यां प्रजापशवन्नकामस्य प्रजाक्षये च ॥—प्रजाक्षयमें तथा प्रजा पशु और अन्न चाहने वालेको भी प्राजापत्या महाशान्तिको करावे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित महाशांतिमें "प्रजापतिः सलिलात्" ऋचा पढ़नी चाहिये । इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि—"प्रजापतिः सलिलाद् इति प्राजापत्यायाम्" (नक्षत्रकल्प १८) ॥

तत्र प्रथमा ॥

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥ १ ॥

सम्ऽउत्पतन्तु । प्रऽदिशः । नभस्वतीः । सम् । अभ्राणि । वातऽजूतानि । यन्तु ।
महाऽऋषभस्य । नदतः । नभस्वतः । वाश्राः । आपः । पृथिवीम् । तर्पयन्तु ॥ १ ॥

प्रदिशः प्रकृष्टाः प्राच्याद्या दिशः नभस्वतीः नभस्वता वायुना युक्ताः सत्यः समुत्पतन्तु मेघैः संहता उद्गच्छन्तु । ❀ नभस्वतीरिति । एकस्य मतुपो लोपो द्रष्टव्यः । "वा छन्दसि" इति पूर्व-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सवर्णदीर्घः ❀ ॥ अभ्राणि । अपो बिभ्रति वृष्ट्यर्थम् उदकं धारयन्तीति उदकपूर्णा मेघा अभ्रशब्देनोच्यन्ते । तानि च वातजूतानि वातेन वायुना प्रेरितानि भूत्वा सं यन्तु संगच्छन्तां संहतानि भवन्तु ॥ महर्षभस्य महांश्चासौ ऋषभश्च महर्षभः । ❀ "आन्महतः०" इति आत्वम् ❀ । नदतः ध्वनिं कुर्वतः यथा लोके महान् ऋषभः सेचनसमर्थः पुंगवो दृप्तः सन् गर्जति तादृगाकारयुक्तस्य गर्जतो नभस्वतः वायुप्रेरितस्य मेघस्य संबन्धिन्य आपः वाश्राः शब्दायमानाः पृथिवीम् भूमिं तर्पयन्तु तृप्ताम् ओषधिप्ररोहणसमर्थां कुर्वन्तु । ❀ वाश्रा इति । वाशृ शब्दे । स्फायितञ्चीत्यादिना [उ० २. १३] रक् प्रत्ययः ❀ ॥

पूर्व आदि श्रेष्ठ दिशायें वायुसे युक्त होती हुई मेघोंके साथ उदित होवें । वृष्टिके लिये जलको धारण करने वाले मेघ वायुसे प्रेरित होकर एकत्रित होवें, गर्जना करने वाला महावृषभ जैसे गर्जना करता है इस प्रकार गर्जना करते हुए वायुसे प्रेरित मेघ के जल शब्द करतेहुए भूमिको तृप्त करें, अर्थात् ओषधिके उत्पन्न करनेमें समर्थ करें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम् ।

वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ॥ २ ॥

सम् । ईक्षयन्तु । तविषाः । सुऽदानवः । अपाम् । रसाः । ओषधीभिः । सचन्ताम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वर्षस्य । सर्गाः । महयन्तु । भूमिम् । पृथक् । जायन्ताम् ।

ओषधयः । विश्वऽरूपाः ॥ ३ ॥

तविषाः । महन्नामैतत् । महान्तः सुदानवः शोभनदाना मरुतः समीक्षयन्तु वृष्टिं संदर्शयन्तु । यथा वृष्टिर्भवति तथा अस्मान् अनुगृह्णन्तु इत्यर्थः ॥ अपाम् वृष्ट्युदकानां रसाः ओषधीभिः व्रीहियवादिभिः पृथिव्याम् उप्तैर्बीजैः सचन्ताम् समवयन्तु । ❀ षच समवाये ❀ ॥ उक्त एवार्थो विव्रियते वर्षस्येति । वर्षस्य वृष्ट्युदकस्य सर्गाः सृज्यन्त इति सर्गा धाराः । ❀ कर्मणि घञ् ❀ । भूमिम् पृथ्वीं महयन्तु पूजयन्तु । ❀ मह पूजायाम् ❀ । वर्षधाराभिरलंकृताद् भूप्रदेशाद् विश्वरूपाः नानाविधा ओषधयः व्रीहियवाद्याः पृथक् अवान्तरजातिभेदेन जायन्ताम् उत्पद्यन्ताम् ॥

महान् शोभन दान करने वाले मरुत देवता वृष्टिको दिखावें, तात्पर्य यह है, कि—जिस प्रकार वृष्टि हो तिस प्रकार हमें अनुगृहीत करें । वृष्टिके जलोंके रस पृथिवीमें बोयेहुए जौं धान आदिके बीजोंसे मिलें । वर्षाकी धारायें पृथ्वीकी पूजा करें । वर्षाकी धारासे अलंकृत भूप्रदेशसे अनेकप्रकारकी धान जौ आदि औषधें दूसरे अनेक रूपोंको धारण कर उत्पन्न होवें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद्विजन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम् । ईक्षयस्व । गायतः । नभांसि । अपाम् । वेगासः । पृथक् ।
उत् । विजन्ताम् ।

वर्षस्य । सर्गाः । महयन्तु । भूमिम् । पृथक् । जायन्ताम् । वीरुधः ।
विश्वऽरूपाः ॥ ३ ॥

हे मरुद्गण त्वं गायतः स्तुवतः अस्मान् नभांसि अभ्राणि समीक्षयस्व दर्शय ॥ अपां वेगासः वेगाः वेगयुक्ताः प्रवाहाः पृथक् भेदेन उद्ध विजन्ताम् उच्चलन्तु। ❀ ओविजी भयचलनयोः ❀ ॥ उत्तरार्धर्चः पूर्ववत् । ओषधीनां स्थाने वीरुध इति विशेषः । वीरुधः विरोहणशीला अरण्या ओषधिवनस्पतयः ॥

हे मरुत् देवताओं ! हम आपकी स्तुति कर रहे हैं अतः आप जलपूर्ण मेघोंका हमें दर्शन कराइये । जलोंके प्रवाहवाले वेग अलग अलग चलें । वर्षाके प्रवाह भूमिकी पूजा करें, और वर्षाकी धारोंसे अलंकृत पृथिवीसे औषधियें अनेक रूप धारण कर उत्पन्न होवें ३

चतुर्थी ॥

गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ४ ॥

गणाः । त्वा । उप । गायन्तु । मारुताः । पर्जन्य । घोषिणः । पृथक् ।
सर्गाः । वर्षस्य । वर्षतः । वर्षन्तु । पृथिवीम् । अनु ॥ ४ ॥

हे पर्जन्य वृष्ट्यभिमानिन् देव त्वा त्वां घोषिणः गर्जनघोषयुक्ता मारुताः मरुत्संबन्धिनो गणाः उप गायन्तु उपश्लोकयन्तु ॥ वर्षस्य वृष्टिजलस्य पृथक् नानात्वेन सर्गाः सृज्यमानाः वर्षन्तः सिञ्चन्तो बिन्दवः पृथिवीम् अनु वर्षन्तु अनुगतम् आर्द्रीकुर्वन्तु ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे वृष्टिके अभिमानी पर्जन्यदेव ! गर्जना करने वाले मरुद्गण आपकी स्तुति करें। वर्षाके अनेकरूपके वरसते हुए जलविन्दु पृथिवीको गीली करें ॥ ४ ॥

पञ्चमी

उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं
तर्पयन्तु ॥ ५ ॥

उत् । ईरयत । मरुतः । समुद्रतः । त्वेषः । अर्कः । नभः । उत् । पातयाथ ।
महाऽऋषभस्य । नदतः । नभस्वतः । वाश्राः । आपः । पृथिवीम् ।
तर्पयन्तु ॥ ५ ॥

हे मरुतः समुद्रतः समुद्रमध्याद् उदीरयत वृष्टिजलम् ऊर्ध्वं प्रेरयत ॥ त्वेषः दीप्तिमत् अर्कः अर्चनसाधनम् उदकम् तद्युक्तं नभः अभ्रम् उत् पातयाथ उद्गमयत ॥ महर्षभस्येत्यादि व्याख्यातम् ॥

हे मरुत् देवताओं ! तुम समुद्रमेंसे वृष्टिके जलको ऊपरको प्रेरित करो, दीप्तिमय पूजाके साधन जलसे युक्त मेघको ऊपरको प्रेरित करो, महावृषभकी समान गर्जना करते हुए जलके प्रवाह भूमिको तृप्त करें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा
समङ्ग्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ।६।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अभि । क्रन्द । स्तनय । अर्दय । उद्ऽधिम् । भूमिम् । पर्जन्य ।
पयसा । सम् । अङ्धि ।
त्वया । सृष्टम् । बहुलम् । आ । एतु । वर्षम् । आशारऽएषी ।
कृशऽगुः । एतु । अस्तम् ॥ ६ ॥

हे पर्जन्य अभि क्रन्द अभितः शब्दं कुरु । स्तनय मेघान् प्रविश्य घोषय । उदधिम् जलधिम् अर्दय उदकादानेन पीडय । पयसा वृष्टेन उदकेन भूमिं समङ्धि समक्तां संसिक्तां कुरु ॥ त्वया सृष्टम् प्रेरितं बहुलम् सान्द्रं वर्षम् वर्षणसमर्थम् अभ्रम् ऐतु आगच्छतु ॥ आसारैषी । आसारो धारासंपातः तमिच्छतीति आसारैषी सूर्यः कृशगुः कृशाः तनूकृता गावो रश्मयो यस्य तथाविधः सन् अस्तम् एतु अदर्शनं प्राप्नोतु । "दिवा चित् तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन" [ऋ० १.३८. ६] इति हि मन्त्रान्तरम् ॥

हे पर्जन्य ! आप चारों ओरसे शब्द करिये । मेघोंमें प्रवेश कर घोषणा करिये, जलको लेनेसे समुद्रको पीड़ित करिये । आपसे प्रेरित वृष्टि जलपूर्ण बादलको लावे । धारासम्पातको चाहनेवाले सूर्यदेव सूक्ष्म किरणोंवाले होतेहुए अदर्शनको प्राप्त होजावें सप्तमी ॥

सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ७ ॥

सम् । वः । अवन्तु । सुऽदानवः । उत्साः । अजगराः । उत ।
मरुत्ऽभिः । प्रऽच्युताः । मेघाः । वर्षन्तु । पृथिवीम् । अनु ॥७॥

सुदानवः शोभनदाना मरुतः हे जना वः युष्मान् सम् अवन्तु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संतर्पयन्तु । अजगरा उत । उतशब्दोत्र वितर्के । अजगरात्मना वितर्क्यमानाः स्थूला उत्साः वारिप्रवाहाः । उत्पद्यन्ताम् इत्यर्थः । यद्वा हे सुदानवः वः युष्माकं संबन्धिनः उक्तलक्षणा उत्साः समवन्तु संतर्पयन्तु इति एकवाक्यता ॥ ईदृशानाम् उत्सानाम् उत्पत्तिः कथं सेत्स्यतीत्यत्राह मरुद्भिरिति । मरुद्भिः वायुविशेषैः प्रच्युताः स्वस्थानात् प्रेरिता मेघाः पृथिवीम् अनु वर्षन्तु ॥

हे मनुष्यों ! शोभनदानसम्पन्न मरुत्देवता आपको तृप्त करें, अजगरसे स्थूल जलके प्रवाह प्रकट हों वायुके द्वारा अपने स्थानसे प्रेरित मेघ पृथिवी पर वरसें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥८॥

आशाम्ऽआशाम् । वि । द्योतताम् । वाताः । वान्तु । दिशःऽदिशः ।
मरुत्ऽभिः । प्रऽच्युताः । मेघाः । सम् । यन्तु । पृथिवीम् । अनु ८

आशामाशाम् दिशंदिशम् आश्रित्य विद्युद् वि द्योततां स्फुरतु ॥ दिशोदिशः सर्वस्या अपि दिशो वाता वान्तु मेघस्य उद्गमयितारो वायवः संचरन्तु । यद्वा दिशोदिश इति द्वितीया । सर्वा अपि दिशः प्राप्य वायवो वान्तु ॥ तदनन्तरं [मरुद्भिः प्रच्युताः] वायुप्रेरिता मेघाः पृथिवीम् भूमिम् अनुलक्ष्य सं यन्तु संगता भवन्तु । वृष्ट्यर्थं संहन्यन्ताम् इत्यर्थः ॥

प्रत्येक दिशामें विजली चमके, प्रत्येक दिशामें मेघको लाने वाली वायु चले, तदनन्तर वायुसे प्रेरित मेघ पृथिवीकी ओर लक्ष्य कर एकत्रित होवें ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नवमी ॥

आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।

मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥ ९ ॥

आपः । विऽद्युत् । अभ्रम् । वर्षम् । सम् । वः । अवन्तु । सुऽदानवः । उत्साः । अजगराः । उत ।

मरुत्ऽभिः । प्रऽच्युता । मेघाः । प्र । अवन्तु । पृथिवीम् । अनु ९

हे सुदानवः शोभनदाना मरुतः वः युष्माकं संबंधिनः अबादिपदार्थाः समवन्तु जगत् संतर्पयन्तु । आपो मेघस्थानि उदकानि । विद्युत् सौदामिनी । अभ्रम् उदकपूर्णो मेघः । वर्षम् वृष्टिजलम् ॥ अजगरसमानाकाराः उत्साः वारिप्रवाहाश्च युष्मत्संबन्धिनः संतर्पयन्तु । लोकम् इत्यर्थः । तदर्थं मरुद्भिः प्रच्युताः प्रेरिता मेघाः पृथिवीम् अनु प्लावन्तु प्रावन्तु । ❀ "उपसर्गस्यायतौ" इति विधीयमानं लत्वं व्यत्ययेन अत्रापि भवति ❀ ॥

हे सुन्दर दान देने वाले मरुतदेवताओं ! मेघोंमें स्थित जल, बिजली, जलपूर्ण मेघ, वर्षाका जल, और अजगरकी समान आकार वाले तुम्हारे जल प्रवाह जगत्को तृप्त करें । इस कार्यके लिये मरुतोंसे प्रेरित मेघ पृथिवीको प्लावित करें ॥ ९ ॥

दशमी ॥

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।

स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥ १० ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपाम् । अग्निः । तनूभिः । सम्ऽविदानः । यः । ओषधीनाम् ।
अधिऽपाः । बभूव ।
सः । नः । वर्षम् । वनुताम् । जातऽवेदाः । प्राणम् । प्रऽजाभ्यः ।
अमृतम् । दिवः । परि ॥ १० ॥

अपाम् मेघस्थानां तनूभिः शरीरः संविदानः ऐकमत्यं गतो यो वैद्युताग्निः ओषधीनाम् उत्पत्स्यमानाम् अधिपा बभूव अधिपतिः ईश्वरो भवति । जातवेदाः जातानां वेदिता सः अग्निः नः अस्मभ्यं वर्षं वनुताम् प्रयच्छतु । कीदृशं वर्षम् । प्रजाभ्यः । ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀ । प्रजानां प्राणम् जीवनप्रदं [दिवस्परि] दिवः संबन्धि अमृतम् अमृतत्वप्रापकम् । यद्वा दिवः द्युलोकाद्द अन्तरिक्षाद्द वनुताम् इति संबन्धः ॥

मेघोंके शरीररूप जलोंसे एकमत हुए वैद्युताग्नि उत्पन्न होने वाली औषधियोंके स्वामी होते हैं, उत्पन्न होने वालोंको जानने वाले वह अग्नि हमैं प्राणियोंमें जीवन लानेवाली और स्वर्गके अमृतको प्राप्त कराने वाली वर्षा दें ॥ १० ॥

एकादशी ॥

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नुदधिमर्दयाति
प्र प्यायता वृष्णो अश्वस्य रेतोर्वाङेतेन स्तनयित्नु-
नेहि ॥ ११ ॥

प्रजाऽपतिः । सलिलात् । आ । समुद्रात् । आपः । ईरयन् । उद-
ऽधिम् । अर्दयाति ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्र । प्यायताम् । वृष्णः । अश्वस्य । रेतः । अर्वाङ् । एतेन । स्तनयित्नुना । आ । इहि ॥ ११ ॥

प्रजापतिः प्रजानां पालयिता वृष्टिप्रदः संवत्सरात्मकः सूर्यः सलिलात् । ❀ षल गतौ इत्यस्माद् इलच् प्रत्ययः ❀ । व्यापनशीलात् समुद्राद् आपः । ❀ व्यत्ययेन जस् ❀ । अपः उदकानि आ समन्तात् ईरयन् वृष्ट्यर्थं प्रेरयन् उदधिम् जलधिम् अर्दयाति अर्दयतु रश्मिभिरादानेन पीडयतु । ❀ अर्दयतेर्लेटि आडागमः ❀ । विष्णोः व्यापनशीलस्य अश्वस्य अश्ववद् वेगवतो मेघस्य रेतः वृष्ट्युपादानभूतं वीर्यं प्र प्यायताम् प्रवर्धताम् । एतेन प्रवृद्धवीर्येण स्तनयित्नुना मेघेन हे पर्जन्य त्वम् अर्वाङ् अस्मदभिमुखः सन् एहि आगच्छ ॥

प्रजाओंका पालन करने वाले वृष्टिदायक सम्वत्सरात्मक सूर्यदेव व्यापनशील समुद्ररूप जलसे जलोंको वृष्टिके लिये प्रेरित करें अर्थात् अपनी किरणोंसे जल लेकर समुद्रको पीड़ित करें । व्यापनशील, अश्वकी समान वेगवान् मेघका वृष्टिसंबंधी उपादानरूप वीर्य बढ़े । इस बढ़े हुए वीर्य वाले गरजते हुए मेघके साथ हे पर्जन्य ! आप हमारे अभिमुख होकर आइये ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज ।
वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥ १२ ॥

अपः । निऽसिञ्चन् । असुरः । पिता । नः । श्वसन्तु । गर्गराः । अपाम् । वरुण । अव । नीचीः । अपः । सृज ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वदन्तु । पृश्निऽबाहवः । मण्डूकाः । इरिणा । अनु ॥ १२ ॥

असुरः मेघानां क्षेप्ता । यद्वा असवः प्राणाः । तान् रातीत्यसुरः । वृष्टिजलेन प्राणप्रद इत्यर्थः । "आपोमयः प्राणः" इति हि ब्राह्मणम् [छा० ६. ५. ४] । एवंभूतो नः अस्माकं पिता उत्पादयिता सूर्यः अपः निषिञ्चन् वृष्ट्युदकानि न्यग्भावेन सिञ्चन् । वर्तताम् इत्यर्थः । श्रूयते हि । "यदा खलु [वा] असावादित्यो न्यङ् रश्मिभिः पर्यावर्ततेथ वर्षति" इति [तै०सं०२.४. १० .२] ॥ ततश्च अपाम् उदकानां गर्गराः । अनुकरणशब्दोयम् । ईदृग्ध्वनियुक्ताः प्रवाहाः श्वसन्तु उच्छ्वसिता भवन्तु ॥ हे वरुण त्वमपि अवनीचीः अवनिं भूमिम् अञ्चन्ति गच्छन्तीत्यवनीच्य आपः । ❀ अवनिशब्दोपपदाद् अञ्चतेः "ऋत्विग्०" इत्यादिना क्विन् । "अनिदिताम्०" इति नलोपः । "अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्" इति ङीप् । "अचः" इति अकारलोपे "चौ" इति दीर्घत्वम् ❀ । भूमिं प्राप्नुवतीरपः अप सृज मेघेभ्यः अपगमय ॥ अनन्तरं पृश्निबाहवः श्वेतबाहवो मण्डूकाः इरिणानु । इरिणशब्दो निस्तृणभूवचनः । ❀ "शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः ❀ । इरिणानि अनुप्राप्य वृष्टिजलेन लब्धप्राणाः सन्तः वदन्तु शब्दं कुर्वन्तु ॥

असुओंको अर्थात् प्राणोंको वृष्टिका जल देकर देने वाले असुर हमारे उत्पादक सूर्यदेव वर्षाके जलोंको तिरछे भावसे वरसावें । उस समय जलोंके गरगर करते हुए प्रवाह चलें । हे वरुणदेव ! आप भी भूमि पर आने वाले जलोंको मेघोंसे अलग करिये । तदनन्तर श्वेत भुजा वाले मण्डूक तृणरहित भूमिमें वृष्टिके जलसे जीवन पाकर शब्द करें ॥ १२ ॥

त्रयोदशी ॥

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१३॥

सम्ऽवत्सरम् । शशयानाः । ब्राह्मणाः । व्रतऽचारिणः ।

वाचम् । पर्जन्यऽजिन्विताम् । प्र । मण्डूकाः । अवादिषुः ॥१३॥

व्रतं नियमविशेषं चरन्ति अनुतिष्ठन्तीति व्रतचारिणः । लुप्तोपमम् एतत् । व्रतचारिणो ब्राह्मणा इव संवत्सरं शशयानाः संवत्सरकालपर्यन्तं वातातपाभ्यां शुष्काः शयानाः संवत्सरान्ते वृष्टिजलेन लब्धसंज्ञा मण्डूकाः पर्जन्यजिन्विताम् पर्जन्यप्रीतां वाचम् अवादिषुः अवोचन् । पर्जन्यप्रीतिकरं घोषं कृतवन्त इत्यर्थः । ❀ वसिष्ठो वर्षकामः पर्जन्यं तुष्टाव । तं मण्डूका अन्वमोदन्त । स मण्डूकान् अनुमोदमानान् दृष्ट्वा तुष्टाव [नि० ९. ६] इत्यादि निरुक्तम् अत्र अनुसंधेयम् ❀ ॥

नियमोंका पालन करने वाले व्रतचारी ब्राह्मणोंकी समान वर्ष भर तक वायु और धूपसे झुलस कर सोते हुए और सम्वत्सर के अन्तमें वृष्टिके जलसे चैतन्य पाने वाले मण्डूक मेघोंसे प्रसन्नता भरी वाणी बोलें + ॥ १३ ॥

चतुर्दशी ॥

उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि ।

मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥ १४ ॥

+ इस विषयमें "वसिष्ठो वर्षकामः पर्जन्यं तुष्टाव । तं मण्डूका अन्वमोदन्त । स मण्डूकान् अनुमोदमानान् दृष्ट्वा तुष्टाव ॥ अर्थात् वर्षा चाहने वाले वसिष्ठजीने पर्जन्यकी स्तुति की । मण्डूकोंने उस का अनुमोदन किया वह मण्डूकोंको अनुमोदन करते देख सन्तुष्ट हुआ" (निरुक्त ९ । ६) का यहाँ अनुसंधान करना चाहिये ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उपऽप्रवद । मण्डूकि । वर्षम् । आ । वद । तादुरि ।

मध्ये । ह्रदस्य । प्लवस्व । विऽगृह्य । चतुरः । पदः ॥ १४ ॥

हे मण्डूकि त्वं हर्षम् उपेत्य प्रवद प्रकृष्टं घोषं कुरु । हे तादुरि । तदुरस्य अपत्यं स्त्री तादुरी । हे तादृशि वर्षम् वृष्टिम् आ वद आभाषय । यादृशेन त्वद्घोषेण वृष्टिर्जायते तादृशं शब्दं कुर्वित्यर्थः ॥ वृष्टिजलेन ह्रदे पूर्णे सति तस्य ह्रदस्य मध्ये चतुरः पदः आत्मीयान् चतुःसंख्याकान् पादान् विगृह्य प्लवनानुगुणं प्रसार्य प्लवस्व प्रतर । प्लवनेन यथेच्छं विहरेत्यर्थः ॥

हे मण्डूकि ! तू हर्षमें भर कर वेगसे शब्द कर, हे तादुरि ! तू वर्षासे भाषण कर अर्थात् तेरे जैसे घोषसे वर्षा होती है तैसा शब्द कर । वृष्टिके जलसे सरोवरके पूर्ण होने पर उस सरोवरमें अपने चारों पेरोंको फैला कर तैर ॥ १४ ॥

पञ्चदशी ॥

खण्वखा३इ खैमखा३इ मध्ये तदुरि ।

वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ॥ १५ ॥

खण्वखा३इ । खैमखा३इ । मध्ये । तदुरि ।

वर्षम् । वनुध्वम् । पितरः । मरुताम् । मनः । इच्छत ॥ १५ ॥

खण्वखा खैमखा तदुरी इति मण्डूकस्त्रीजातेः संज्ञाविशेषाः । हे खण्वखे [हे] खैमखे हे तदुरि इति तिस्रः संबोध्यन्ते । ❀ "एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ" इति विगृह्य अत्रर्णस्य प्लुतः ❀ । हे तत्संज्ञा हे मण्डूक्यः ह्रदस्य मध्ये वर्तमाना यूयं युष्मदीयेन घोषेण वर्षम् वृष्टिं वनुध्वम् प्रयच्छत । हे पितरः पालयितारो मण्डूकाः [मारुतम्] मरुत्संबन्धि वृष्ट्यभिमुखं मनः इच्छत घोषेण वशीकुरुत ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खण्वखा षैमखा और तदुरी यह मेंडकोंकी स्त्रीजातिके नाम-विशेष हैं। उन तीनोंको सम्बोधित करके कहते हैं, कि-हे खण्वखे! हे षैमखे और हे तदुरि! तुम सरोवरमें जाकर अपने घोषसे वृष्टि को दो। हे पालन करने वाले मण्डूकों! तुम मरुत्देवताओंके वृष्टि करनेको उद्यत मनको घोषसे वशमें करो ॥ १५ ॥

षोडशी ॥

महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु॥

महान्तम्। कोशम्। उत्। अच। अभि। सिञ्च। सऽविद्युतम्। भवतु। वातु। वातः।
तन्वताम्। यज्ञम्। बहुऽधा। विऽसृष्टाः। आऽनन्दिनीः। ओषधयः। भवन्तु ॥ १६ ॥

महान्तम् अधिकं कोशम्। मेघनामैतत्। मेघम् हे पर्जन्य त्वम् उदच समुद्राद् उदकपूर्णम् उद्धर। ❀ अञ्चु गतौ इत्यस्य एतद् रूपम् ❀। तेन मेघेन अभि षिञ्च सर्वां भूमिम् अभितः सिक्तां कुरु। तदर्थं तं मेघं सविद्युतम् विद्युत्सहितं कुरु। ततो वृष्टिर्भवतु। यद्वा सविद्युतम्। ❀ लुगभावश्छान्दसः ❀। सविद्युत् विद्युत्सहितम् अन्तरिक्षं भवतु। वातः वायुः वृष्ट्यनुकूलं वातु संचरतु। बहुधा बहुप्रकारं विसृष्टाः वृष्ट्या प्रेरिता आपः यज्ञं तन्वताम् विस्तारयन्तु। यज्ञादिक्रियाहेतवो भवन्तु इत्यर्थः। ओषधयः व्रीहि-यवाद्या ग्राम्याः आरण्यास्तरुगुल्माद्याः आनन्दिनीः वृष्टिजलेन हर्षयुक्ता भवन्तु ॥

[इति] पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति अथर्ववेदार्थप्रकाशे चतुर्थकाण्डे तृतीयोऽनुवाकः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे पर्जन्य ! तुम समुद्रसे जलपूर्ण बड़े भारी मेघको लाओ और उस मेघके द्वारा सारी भूमिको चारों ओरसे सींचो । अन्तरिक्ष बिजलीसे संयुक्त होवे, वायु वृष्टिके अनुकूल होकर चले । अनेक प्रकारसे प्रेरित जल यज्ञक्रियाको विस्तृत करने वाले हों । धान जौ आदि ग्रामकी औषधियें तथा वृक्ष लता आदि वनकी औषधियें वृष्टिके जल हर्षमें भर जावें ॥ १६ ॥

चतुर्थ काण्डके तृतीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (११७) ॥

तीसरा अनुवाक समाप्त.

चतुर्थेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "बृहन्नेषाम्" इति आद्येन सूक्तेन अभिचारकर्मणि शत्रुं क्रोशन्तम् अनुब्रूयात् [कौ० ६. २]॥ धूमकेतूत्पातशान्तौ वारुणपशुप्रयोगे "उतेयं भूमिः" [३] इत्येषा [कौ० १३. ३५]॥

चौथे अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें 'बृहन्नेषां' इस प्रथम सूक्तसे अभिचारकर्ममें बुरा चाहने वाले शत्रुसे भाषण करे (कौशिकसूत्र ६ । २)॥ धूमकेतुरूप उत्पातकी शान्तिके वारुणपशुप्रयोगमें उतेयं भूमिः इस तीसरी ऋचाका विनियोग होता है (कौशिकसूत्र १३ । ३५)॥

तत्र प्रथमा ॥

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।
यस्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥ १ ॥

बृहन् । एषाम् । अधिऽस्थाता । अन्तिकात्ऽइव । पश्यति ।
यः । तायत् । मन्यते । चरन् । सर्वम् । देवाः । इदम् । विदुः १

बृहन् महान् परिवृढो वा वरुणः एषाम् दुरात्मनां शत्रूणाम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अधिष्ठाता नियन्ता सन् तैः कृतं सर्वम् अन्याय्यम् अन्तिकादिव पश्यति समीपदेशादिव जानाति । न तस्य व्यवधायकं किंचिद् अस्तीत्यर्थः । यो वरुणः तायत् सांतत्येन वर्तमानं स्थिरवस्तु चरत् चरणशीलं नश्वरं च वस्तु मन्यते । स्थावरजङ्गमात्मकं सर्वं जगज्जानातीत्यर्थः । स बृहन् इति संबन्धः । ❀ तायत् इति । तायृ संतानपालनयोः अस्मात् लटः शत्रादेशः ❀ । ईदृग्विधज्ञानसद्भावं वरुणस्य उपपादयति सर्वम् इति। व्यवहितं विप्रकृष्टं स्थिरं नश्वरं स्थूलं सूक्ष्मम् इति एतादृग् इदं सर्वम् अतिरोहितज्ञानत्वाद् देवाः विदुः जानन्ति । ❀ विद ज्ञाने । "विदो लटो वा" इति झेः उस् आदेशः ❀ ॥

जो वरुणदेव सर्वदा वर्तमान स्थिर वस्तुओंको और चरणशील विनाशवान् वस्तुओंको जानते हैं अर्थात् स्थावरजंगमरूप सब वस्तुओंको जानते हैं, वह महत्त्वमय वरुणदेव इन दुरात्मा शत्रुओंके नियन्ता हैं अतः उनके किये हुए अन्यायको समीपकी समानसे ही देखते हैं अर्थात् उनसे कुछ छिपा हुआ नहीं रहता ~~रहता~~ है । (इसका कारण यह है, कि–) दूरके भी स्थूल सूक्ष्म सब वृत्तान्तोंको देवता अतीन्द्रिय ज्ञान वाले होनेसे जानते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यस्तिष्ठ॑ति॒ चर॑ति॒ यश्च॒ वञ्च॑ति॒ यो नि॒लायं॒ चर॑ति॒ यः प्र॒तङ्क॑म् ।
द्वौ सं॑नि॒षद्य॒ यन्म॒न्त्रये॑ते॒ राजा॒ तद् वे॑द॒ वरु॑णस्तृ॒तीयः॑ २

यः । तिष्ठ॑ति । चर॑ति । यः । च॒ । वञ्च॑ति । यः । नि॒ऽलाय॑न् । चर॑ति । यः । प्र॒ऽतङ्क॑म् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वौ । सम्ऽनिषद्य । यत् । मन्त्रयेते इति । राजा । तत् । वेद ।

वरुणः । तृतीयः ॥ २ ॥

पूर्वस्याम् ऋचि एषाम् इत्युक्तम् । तत्र इदमा के पुनः प्रतिनिर्दिश्यन्त इति तान् निर्दिशति यस्तिष्ठतीति पूर्वार्धेन । यः शत्रुस्तिष्ठति अभिमुखम् अवतिष्ठते यश्चरति गच्छति यश्च वञ्चति कौटिल्येन प्रतारयति यः शत्रुः निलायम् निलयनेन अनिर्गमनेन चरति । यद्वा निलीनः अदृश्यः सन् चरति । ❀ अयतेर्निस्पूर्वात् णमुल् । निपूर्वात् लीयतेर्वा । उभयथापि समानोर्थः । "उपसर्गस्यायतौ" इति लत्वम् ❀ । यः शत्रुः प्रतङ्कम् प्रकर्षेण कृच्छ्रजीवनं प्राप्य चरति वर्तते । ❀ तकि कृच्छ्रजीवने । अस्मात् प्रपूर्वात् णमुल् ❀ । एषां शत्रूणाम् इति पूर्वेण संबन्धः ॥ अन्तिकादिव पश्यतीति यद् उक्तं तदपि समर्थयते द्वौ संनिषद्येत्युत्तरार्धेन । द्वौ पुरुषौ रहसि संनिषद्य उपविश्य यत् कार्यं मन्त्रयेते गुप्तं भाषेते । ❀ मन्त्रि गुप्तभाषणे इति धातुः ❀ । तयोर्गुप्तं भाषमाणयोः तृतीयः त्रित्वसंख्यापूरकः सन् राजा ईश्वरो वरुणः स्वसार्वज्ञ्येन तत् सर्वं वेद । जानातीत्यर्थः । ततश्च अकार्यचिन्तावसर एव तान् निग्रहीतुं वरुणः शक्नोतीत्यर्थः । ❀ "त्रेः संप्रसारणं च" इति पूरणार्थे तीयप्रत्ययः संप्रसारणं च ❀ ॥

जो शत्रु हमारे सामने घूमता है, जो छलसे हमें ठगता है, जो शत्रु अदृश्यभावसे घूमता है और जो शत्रु कठिनतासे जीवन बिताता हुआ घूमता है उनको और जो दो पुरुष एकान्तमें बैठकर गुप्त भाषण करते हैं उनमें तीन संख्या पूर्ण करते हुए राजा वरुणदेव उनको सर्वज्ञ होनेसे जानते हैं अत एव अकार्यकी चिन्ता करनेके अवसर पर ही वरुणदेव उनको दण्ड देसकते हैं ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

१२. ६. २६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तृतीया ॥

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके
निलीनः ॥ ३ ॥

उत। इयम्। भूमिः। वरुणस्य। राज्ञः। उत। असौ। द्यौः।
बृहती। दूरेऽअन्ता।
उतो इति। समुद्रौ। वरुणस्य। कुक्षी इति। उत। अस्मिन्। अल्पे। उदके।
निऽलीनः ॥ ३ ॥

उतशब्दः अप्यर्थे। इयं सर्वाधिष्ठानत्वेन निहिता भूमिरपि राज्ञः ईश्वरस्य दुष्टनिग्रहे अधिकृतस्य वरुणस्य वशे वर्तते ॥ उत अपि च असौ विप्रकृष्टा बृहती महती दूरेअन्ता दूरे विप्रकृष्टे देशे अन्ते अन्तिके च भवतीति दूरेअन्ता। यत एवं व्याप्य वर्तते अतो बृहतीति भावः। एवंरूपा द्यौश्च वरुणस्य राज्ञो वशे वर्तते। बृहती दूरेअन्तेति विशेषणद्वयं भूम्या अपि योज्यम्। अत एव दूरेअन्ते इति द्यावापृथिव्योर्नामसु पठितम् [निघ० ३. ३०] ॥ उतो अपि च समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ वरुणस्य राज्ञः कुक्षी दक्षिणोत्तरपार्श्वभेदेन अवस्थिते द्वे उदरे। एवं भूम्यादिकं कृत्स्नं जगद् व्याप्य वर्तमानोपि अस्मिन् अल्पेपि उदके तटाकह्रदादिगते निलीनः अन्तर्हितो भवति

यह सबके अधिष्ठानरूपसे स्थापित पृथ्वी भी दुष्टोंको दण्ड देनेके काम पर नियुक्त राजा वरुणके वशमें रहती है और यह दूरके तथा पासके देशमें भी मिलने वाली बृहत् द्यौ राजा वरुण के वशमें है और पूर्व तथा पश्चिमके दोनों समुद्र भी राजा वरुण के दक्षिण और उत्तरके पार्श्वरूपसे स्थित हैं। इसप्रकार भूमि आदि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर वर्तमान वरुणदेव इस तालाव आदिके थोड़ेसे जलमें भी हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिवः स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥ ४ ॥

उत । यः । द्याम् । अतिऽसर्पात् । परस्तात् । न । सः । मुच्यातै । वरुणस्य । राज्ञः ।
दिवः । स्पशः । प्र । चरन्ति । इदम् । अस्य । सहस्रऽअक्षाः । अति । पश्यन्ति । भूमिम् ॥ ४ ॥

उत अपि च यः शत्रुः अनर्थकारी अस्माकं पुरस्तात् द्याम् अन्तरिक्षप्रदेशम् अतिसर्पाद् अतिक्रम्य सर्पेद् गच्छेत् । यद्वा सुकृतप्राप्यं द्यां स्वर्गम् अतिक्रम्य अपथे प्रवर्तेतेत्यर्थः । स शत्रुः वरुणस्य राज्ञः पाशेभ्यो न मुच्यातै न मुच्येत । तैर्बद्ध एव वर्तताम् इत्यर्थः । ❀ मुचेः कर्मणि लेटि आडागमः । "वैतोन्यत्र" इति ऐकारः ❀ ॥ कथं द्युलोकस्थो वरुणः मनुष्यकृतम् अपराधं जानातीति तत्राह दिवः स्पश इति । दिवं द्युलोकान्निर्गताः अस्य वरुणस्य स्पशः चारा इदं पार्थिवं स्थानं प्र चरन्ति प्राप्य संचरन्ति । ते च सहस्राक्षाः सहस्रसंख्याकैर्दर्शनोपायैर्युक्ताः सन्तः भूमिम् अति पश्यन्ति । भूलोकवृत्तान्तं सर्वम् अतिशयेन साक्षात्कुर्वन्तीत्यर्थः ॥

जो अनर्थकारी शत्रु पुण्योंसे प्राप्त होने वाले स्वर्गके नियमों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का उल्लङ्घन कर कुमार्गमें चलता है, वह शत्रु राजा वरुणके पाशों से न छूटे, उनसे बँधा हुआ ही रहे (द्युलोकमें स्थित वरुणदेव मनुष्योंके किये हुए अपराधोंको कैसे जानसकते हैं, इस शंकाका समाधान यह है, कि-) द्युलोकसे बाहर निकलने वाले वरुणके दूत इस पार्थिवस्थानमें घूमते हैं, और वे देखनेके सहस्रों उपायों से भूमिके वृत्तान्तको सूक्ष्म रीतिसे देखते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।

संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥ ५ ॥

सर्वम् । तत् । राजा । वरुणः । वि । चष्टे । यत् । अन्तरा । रोदसी इति । यत् । परस्तात् ।

सम्ऽख्याताः । अस्य । निऽमिषः । जनानाम् । अक्षान्ऽइव । श्वऽघ्नी । नि । मिनोति । तानि ॥ ५ ॥

रोदसी अन्तरा द्यावापृथिव्योर्मध्ये यत् प्राणिजातं वर्तते तथा पुरस्तात् स्वस्य पुरोभागे तत् प्राणिजातम् अस्ति तत् सर्वं वरुणो राजा वि चष्टे विशेषेण पश्यति ॥ तस्मात् तेषां जनानाम् प्राणिनां निमिषः निमेषणव्यापारस्य । उपलक्षणम् एतत् । अक्षिपरिस्पन्दो-पलक्षितस्य अस्य साध्वसाधुकर्मणः संख्याता परिमाणयिता वरुणः तानि पापिनां शिक्षाकर्माणि तत्तत्पापानुसारेण नि मिनोति निक्षि-पति । ❀ डुमिञ् प्रक्षेपणे ❀ । तत्र दृष्टान्तः । अक्षानिवेति ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वघ्नी स्वम् आत्मानं स्वकीयं धनं च हन्तीति कितवः स्वघ्नी। ❀ तथा च यास्कः। श्वघ्नी कितवो भवति स्वं हन्ति [नि० ५. २२] इति ❀। यथा कितवः अक्षान् आत्मनो जयार्थं निक्षिपति तद्वद् इत्यर्थः॥

द्यावापृथिवीके मध्यमें जो प्राणी रहते हैं और जो अपने सामने प्राणी रहते हैं, उन सबको राजा वरुण विशेषरूपसे देखते हैं अत एव उन जनोंके निमेषमात्रमें बनने वाले भी सद् असद् कर्मोंकी संख्या करने वाले वरुणदेव उन पापियोंको उनके पापोंके अनुसार (इस प्रकार) फेंकते हैं (जिस प्रकार) अपने धनका नाश करने वाला श्वघ्नी † अर्थात् जुआरी फाँसोंको अपनी विजयके लिये फैंकता है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ६

ये। ते। पाशाः। वरुण। सप्तऽसप्त। त्रेधा। तिष्ठन्ति। विऽसिताः। रुशन्तः।
छिनन्तु। सर्वे। अनृतम्। वदन्तम्। यः। सत्यऽवादी। अति। तम्। सृजन्तु॥ ६॥

†निरुक्त ५। २२ में कहा है, कि—"श्वघ्नी कितवो भवति स्वं हन्ति॥—श्वघ्नी जुआरी होता है, वह अपने ही धनका नाश करता है"।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे वरुण ये त्वदीयाः पाशाः सप्तसप्त उत्तममध्यमाधमभेदेन प्रत्येकं सप्तसंख्याकाः त्रेधा त्रिप्रकारं विसिताः तत्रतत्र पापिनां निग्रहाय जालवद् बद्धाः। एतच्च त्रैविध्यम् "उदुत्तमं वरुण" [ऋ० १. २४. १५] इति मन्त्रान्तरादप्यवसितम्। रुषन्तः तत्तत्पापानुसारेण पापिष्ठान् हिंसन्तस्तिष्ठन्ति सर्वे ते पाशाः अनृतं वदन्तम् पापकृतम् अस्मदीयं शत्रुं छिनन्तु छिन्दन्तु। यस्तु सत्यवादी सत्यवदनशीलः पुण्यकृत् तम् अति सृजन्तु विमुञ्चन्तु ॥

हे वरुणदेव ! आप जो उत्तम मध्यम और अधम इस प्रकार तीन भेदसे विभक्त सात सात पाश पापियोंका निग्रह करनेके लिये जहाँ तहाँ जालकी समान फैले हुए हैं, वे पापियोंका पापके अनुसार हिंसन करनेवाले सब पाश हमारे शत्रु झूँठ बोलनेवाले पापी को छेदें और जो सत्यभाषी पुण्यात्मा हो उसको छोड़दें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंशयित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥ ७ ॥

शतेन। पाशैः। अभि। धेहि। वरुण। एनम्। मा। ते। मोचि। अनृतऽवाक्। नृऽचक्षः।
आस्ताम्। जाल्मः। उदरम्। श्रंशयित्वा। कोशःऽइव। अबन्धः। परिऽकृत्यमानः ॥ ७ ॥

हे वरुण शतेन शतसंख्याकैस्त्वदीयैः पाशैः एनम् अनृतवादिनं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शत्रुम् अभि धेहि बधान । बद्ध्वा निगृहाणेत्यर्थः । अभिपूर्वो दधातिर्बन्धने वर्तते यथा "अश्वाभिधानीम् आ दत्ते" [तै० सं० ५. १. २. १] इति । हे नृचक्षः नृणां मनुष्याणां साध्वसाधुचरित्राणां विवेकेन द्रष्टः । ❀ चक्षिङः असुनि "असनयोश्च" इति इति ख्याञादेशाभावः ❀ । ईदृश हे वरुण अनृतवाक् अनृतं ब्रुवन् पुरुषः ते त्वत्तः [मा] मोचि विमुक्तो विसृष्टो मा भूत् । किंतु जाल्मः असमीक्ष्यकारी स्वकीयम् उदरं स्रंसयित्वा जलोदररोगेण स्रस्तं कृत्वा अबन्धः बन्धरहितः प्रान्तेषु अकृतबन्धनः असेः कोश इव परिकृत्यमानः आस्ताम् त्वत्पाशबद्ध एव वर्तताम् । अत एव अन्यत्राम्नातम् । "अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति" [तै० ब्रा० १. ७. २. ६] इति । ❀ परिकृत्यमान इति । कृती छेदने । अस्मात् कर्मणि यक् ❀ ॥

हे वरुण ! अपने सैंकड़ों पाशोंसे आप इस झूँठ बोलने वाले शत्रुको बाँधिये और बाँधनेके पीछे दण्ड दीजिये । हे मनुष्योंके सद् असद् चरित्रोंको विवेकदृष्टिसे देखने वाले नृचक्षःवरुणदेव ! झूँठ बोलने वाला पुरुष आपसे न छूटे, किन्तु विना विचारे कामको करने वाला वह जाल्म, अपने उदरको जलोदररोगसे ध्वंस कर प्रान्तोंमें न बँधी हुई तलवारकी म्यानकी समान कटता हुआ ही रहे अर्थात् आपके पाशमें बँधा हुआ ही रहे † ॥७॥

अष्टमी ॥

यः समाम्यो३ वरुणो यो व्याम्यो३ यः संदेश्यो३ वरुणो यो विदेश्यः ।

† इसी कारण अन्यत्र कहा है, कि—"अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति ॥—झूँठ बोलने पर वरुण दण्ड देते हैं" (तैत्तिरीयब्राह्मण १ । ७ । २ । ६) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ॥ ८ ॥

यः । सम्ऽआम्यः । वरुणः । यः । विऽआम्यः । यः । सम्ऽदेश्यः । वरुणः । यः । विऽदेश्यः ।

यः । दैवः । वरुणः । यः । च । मानुषः ॥ ८ ॥

समानम् आमयति व्याधितो भवति [पुरुषोनेनेति] समाम्यः । ईदृशो यो वरुणः । ❀ लुप्ततद्धितोयं निर्देशः ❀ । वारुणः । पाश इत्यर्थः । विगमनेन विविधं वा आमयति पुरुषोनेनेति व्याम्यो [यः] पाशः । तथा यो वरुणः वरुणः वरुणसम्बंधी पाशः संदेश्यः समानदेशे भवः यश्च विदेश्यः विदेशे भवः यश्च वरुणः वरुणसंबन्धी पाशो दैवः देवेषु भवः यश्च वरुणपाशो मानुषः मनुष्येषु प्रयुक्तः । तैस्त्वा सर्वैरिति वक्ष्यमाणेन संबन्धः ॥

समानरूपसे पुरुष जिससे रुग्ण होता है, वह वरुणदेवका समाम्य नामक पाश है, अनेक रूपोंसे पुरुष जिसके द्वारा रुग्ण होता है वह वरुणका व्याम्य नामका पाश है । और जो समान देशमें होने वाला वरुणका पाश संदेश्य नामक है, जो विदेशमें होनेवाला वरुणका पाश विदेश्य कहलाता है और जो देवताओं पर प्रभाव दिखाने वाला वरुणका पाश दैव कहलाता है और मनुष्योंमें प्रयुक्त होनेसे मानुष पाश कहलाता है ॥ ८ ॥

नवमी ॥

तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र तानु ते सर्वाननुसंदिशामि ॥ ९ ॥

तैः । त्वा । सर्वैः । अभि । स्यामि । पाशैः । असौ । आमुष्यायण । अमुष्याः । पुत्र ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तान् । ऊँ इति । ते । सर्वान् । अनुऽसंदिशामि ॥ ६ ॥

असावित्यस्य स्थाने संबुद्ध्या शत्रुनामग्रहणम् । आमुष्यायणेति गोत्रतो निर्देशः । अमुष्याः पुत्रेति अदःशब्दस्थाने मातृनामनिर्देशः । तद् अयम् अर्थः । हे देवदत्तायाः पुत्र गार्ग्य यज्ञशर्मन् त्वा त्वां तैः पूर्वस्याम् ऋचि उक्तैः सर्वैः पाशैः अभि ष्यामि अभि दधामि । बध्नामीत्यर्थः ॥ तथा हे शत्रो ते तुभ्यं तान् सर्वान् पाशान् अनुलक्षीकृत्य संदिशामि संप्रयच्छामि ॥

इति चतुर्थकाण्डे [चतुर्थेनुवाके] प्रथमं सूक्तम् ॥

हे अमुक नाम वाले ! हे अमुक गोत्र वाले हे अमुक माताके पुत्र ! मैं तुझको पूर्व ऋचामें कहे हुए वरुण देवके सब पाशोंसे बाँधता हूँ और हे शत्रो ! तुझको उन सब पाशोंकी ओर लक्ष्य रख कर उनके अधीन करता हूँ ÷ ॥ ६ ॥

चतुर्थ काण्डके चतुर्थ अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (११७) ॥

स्त्रीशूद्रकापालादिकृताभिचारदोषनिवृत्त्यर्थं दर्भापामार्गसहदेव्याद्या मन्त्रोक्ता ओषधीः शान्त्युदककलशे प्रक्षिप्य तदनुमन्त्रणविनियुक्ते महाशान्तिगणे "ईशानां त्वा" इत्यादिसूक्तत्रयम् आवपनीयम् । सूत्रितं हि । "दूष्या दूषिरसि [२. ११] ये पुरस्तात् [४. ४०] ईशानां त्वा [४. १७] समं ज्योतिः [४. १८] उतो अस्य बन्धुकृत् [४. १९] सुपर्णस्त्वा [५. १४] यां ते चक्रुः [५. ३१] अयं प्रतिसरः [८. ५] यां कल्पयन्ति [१०. १] इति महाशान्तिम् आवपते" इति [कौ० ५. ३] ॥

÷ अमुक नामके स्थानमें शत्रुका नाम लेना चाहिये, अमुक गोत्रके स्थानमें शत्रुके गोत्रका उच्चारण करना चाहिये और अमुक माताके स्थानमें शत्रुकी माताका नाम लेना चाहिये । यथा-हे देवदत्तायाःपुत्र गार्ग्य यज्ञशर्मन् ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एतत्सूक्तसंघस्य कृत्याप्रतिहरणगणत्वाद् अस्य गणस्य यत्र यत्र विनियोगस्तत्र सर्वत्र अस्य सूक्तत्रयस्यापि विनियोगो द्रष्टव्यः।

स्त्री शूद्र कापाल आदिके किये हुए अभिचारके दोषको दूर करनेके लिये कुशा चिरचिटा और सहेदेवी इन मन्त्रमें कही हुई औषधियोंको शान्त्युदककलशमें डाल कर इनका अनुमन्त्रण करने में विनियोग किये जाने वाले महाशान्तिगणके 'ईशानां त्वा' आदि तीन सूक्तोंको पढ़ना चाहिये। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"दूष्या दूषिरसि (२ । ११) ये पुरस्तात् (४ । ४०) ईशानां त्वा (४ । १७) समं ज्योतिः (४ । १८) उतो अस्य बन्धुकृत् (४ । १६) सुपर्णस्त्वा (५ । १४) यां ते चक्रुः (५ ।३१) अयं प्रातिसरः (८ । ५) यां कल्पयन्ति (१० । १) इति महाशान्तिं आवपते" (कौशिकसूत्र ५ । ३) ॥

यह सूक्तोंका समूह कृत्याप्रतिहरणगण है, अत एव कृत्याप्रतिहरणगणका जहाँ २ विनियोग होगा, तहाँ २ सर्वत्र ही इन तीनों सूक्तोंका विनियोग होगा ॥

तत्र प्रथमा ॥

ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ॥ १ ॥

ईशानाम् । त्वा । भेषजानाम् । उत्ऽजेषे । आ । रभामहे ।
चक्रे । सहस्रऽवीर्यम् । सर्वस्मै । ओषधे । त्वा ॥ १ ॥

हे सहदेव्याख्ये ओषधे भेषजानाम् तत्तद्रोगशान्तये भेषजत्वेन प्रयुज्यमानानाम् अन्यासाम् ओषधीनाम् ईशानाम् ईश्वरां त्वा त्वाम् उज्जेषे शत्रुकृताभिचारदोषम् उज्जेतुं निवर्तयितुम् आ रभामहे संस्पृशामः। ❀ ईशानाम् इति। ईश ऐश्वर्ये अस्मात् लटः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शानच्। अदादित्वात् शपो लुक्। अनुदात्तेत्त्वात् लसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वरः। उज्जेष इति। "तुमर्थे सेसेन्०" इति सेप्रत्ययः ❀॥ ईश्वरत्वमेवास्या उपपादयति। हे ओषधे सहदेवि त्वा त्वां सर्वस्मै अभिचारजनितज्वरादिसर्वदोषनिवृत्तये सहस्रवीर्यं चक्रे अपरिमितसामर्थ्ययुक्तां करोमि। यस्माद् एवं तस्मात् त्वम् ओषधीनाम् अधिपतिरसीत्यर्थः॥

हे सहदेवी नामक ओषधे! रोगोंकी शान्तिके लिये ओषधिरूपसे प्रयोग की जाने वाली अन्य औषधियोंकी स्वामिनी तुझको हम शत्रुके किये हुए अभिचारदोषको दूर करनेके लिये छूते हैं। हे सहदेवी नाम वाली ओषधे! मैं अभिचारसे उत्पन्न हुए सब दोषोंको हटानेके लिये तुझको अपरिमित शक्ति वाली करता हूँ। क्योंकि—तू सब ओषधोंकी स्वामिनी है॥ १॥

द्वितीया॥

सत्याजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम्।
सर्वाः समह्व्योषधीरितो नः पारयादिति॥ २॥

सत्यऽजितम्। शपथऽयावनीम्। सहमानाम्। पुनःऽसराम्।
सर्वाः। सम्। अह्वि। ओषधीः। इतः। नः। पारयात्। इति २

सत्यजितम् सत्येन याथार्थ्येन अभिचारादिदोषं जयति निवर्तयतीति सत्यजित्। तां शपथयोपनीम् शपथस्य परकृतस्य आक्रोशस्य पृथक्कर्त्रीं नाशयित्रीं वा सहमानाम् अभिभवनशीलां पुनःसराम् पुनःपुनः आभीक्ष्ण्येन बहुतरव्याधिनिवृत्तये सरति प्रवर्तत इति पुनःसरा ताम् ईदृशीम् ओषधिम् अन्याः सर्वा ओषधीः ओषध्यः इतः अस्माद् अभिचारदोषशमनाद्धेतोः न अस्मान् पारयात्। ❀ पार तीर कर्मसमाप्तौ ❀। अस्मत्कर्तव्यं समापयेत् इति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनेन अभिप्रायेण समभि । गच्छन्तीति उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ॥

यथार्थरीतिसे अभिचार आदि दोषोंको दूर करने वाली सत्यजित्, दूसरेके आक्रोशको नष्ट करने वाली शपथयावनी, अभिचारोंको सहने वाली सहमाना और पुनःपुनः अनेक रोगोंकी निवृत्तिके लिये प्रवृत्त होने वाली पुनःसरा ओषधिको अन्य सब ओषधियें इस अभिप्रायसे प्राप्त होती हैं, कि–अभिचारजनित दोषको दूर कर यह हमारे कर्तव्यको समाप्त कर देय ॥ २ ॥

तृतीया ॥

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३॥

या । शशाप । शपनेन । या । अघम् । मूरम् । आऽदधे ।
या । रसस्य । हरणाय । जातम् । आऽरेभे । तोकम् । अत्तु । सा ॥ ३ ॥

एषा प्रथमकाण्डे व्याख्याता [१. २८. ३] । अक्षरार्थस्तु या पिशाची शपनेन आक्रोशेन शशाप या च मूरम् मूर्छाप्रदम् अघम् पापम् आददे । या च शरीरगतासृगादिरसस्य हरणाय जातम् पुत्रादिम् [आरेभे] आलिङ्गति सा सर्वा मद्विषये अभिचरतः शत्रोः तोकम् पुत्रं भक्षयतु इति ॥

जो पिशाची आक्रोश मचा कर शाप देती है और मूर्छित करने वाला पाप करती है और जो शरीरके रक्त आदि रसका हरण करनेके लिये पुत्रको आलिंगन करती है, ये सब राक्षसियें मेरे लिये अभिचार करने वाले शत्रुके पुत्रको खावें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ४

याम् । ते । चक्रुः । आमे । पात्रे । याम् । चक्रुः । नीलऽलोहिते । आमे । मांसे । कृत्याम् । याम् । चक्रुः । तया । कृत्याऽकृतः । जहि ४

हे कृत्ये ते त्वां याम् आमे अपक्वे मृत्पात्रे चक्रुः कृतवन्तः अभिचारकाः । यद्वा नीललोहिते । धूमोद्गमेन नीलः ज्वालया च लोहितः अग्निः नीललोहितः । तादृशे अग्नौ अग्न्यायतने यां चक्रुः कृतवन्तः । आमे अपक्वे मांसे कुक्कुटादिप्राणिशरीरे यां कृत्यां चक्रुः कृतवन्तः । आमपात्रम् अग्न्यायतनं कुक्कुटादिप्राणिशरीरं सभास्थलम् इत्येवमादीनि हि कृत्यानिधानस्थानानि । एवं कृत्याकृतः कृत्यायाः प्रयोक्तॄन् हे कृत्ये त्वया । ❀ विभक्तिव्यत्ययः ❀ । त्वं जहि नाशय । यद्वा ओषधिः संबोध्यते । हे ओषधे त्वया कृत्याप्रयोक्तारो हन्तव्या इत्यर्थः । ❀ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ❀ ॥

हे कृत्ये ! तुझको अपक्व मृत्पात्रमें अभिचार करने वालोंने किया है अथवा जिस तुझको धूम निकलनेसे नील और ज्वाला से लोहित (लाल) अग्निके स्थानमें अभिचारकोंने किया है अथवा तुझको अपक्व मांसमें अर्थात् कुक्कुट आदिके शरीरमें किया है, इस प्रकार कृत्याका प्रयोग करने वालोंको हे कृत्ये ! तू नष्ट कर ॥ ४ ॥

पञ्चमी

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥५॥

दौःऽस्वप्न्यम् । दौःऽजीवित्यम् । रक्षः । अभ्वम् । अराय्यः । दुःऽनाम्नीः । सर्वाः । दुःऽवाचः । ताः । अस्मत् । नाशयामसि ५

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दुष्टः स्वप्नो दुःस्वप्नः तत्र भवम् अरिष्टं दर्शनं दौष्वप्न्यम्। दौर्जीवित्यं दुष्टा जीवता जीवभावो यस्य दुर्जीवतः तस्य भावो दौर्जीवित्यम्। ❀ ब्राह्मणादेराकृतिगणत्वात् ष्यञ् ❀। रक्षः राक्षसजातिः अभ्वम्। महन्नामैतत्। यच्च अभिचारक्रियाजनितम् अन्यद् महद् भयकारणम् अस्तीत्यर्थः। यद्वा अभ्वम् महद् रक्षो ब्रह्मराक्षसादिः इति रक्षोविशेषणत्वेन योज्यम्। अत एव "द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्" [ऋ० १. १८५. २] इति अभ्वस्य भयहेतुता श्रुता। अराय्यः असमृद्धिहेतवः पापलक्ष्म्यः तथा दुर्णाम्नीः छेदिका भेदिका इत्येवं दुष्टनाम्नोपेता याः पिशाच्यः दुर्वाचः नाशयामि छेदयामि भक्षयामि इत्येवं दुष्टाः शब्दा याभिः सततं प्रयुज्यन्ते तास्तथोक्ताः। इत्थं या इमाः कृत्या अनुक्रान्ताः ताः सर्वाः अस्मिन् अभिचर्यमाणपुरुषविषये नाशयामसि नाशयामः॥

दुःस्वप्नमें होने वाले अरिष्टदर्शनरूपी दौःस्वप्न्यको, कठिनता से जीवन बितानेकी स्थितिको, राक्षस जातिको, अभिचारक्रिया से उत्पन्न हुए बड़े भारी भयको, असमृद्धि करने वाली पाप-लक्ष्मियोंको, छेदिका भेदिका आदि बुरे नाम वाली पिशाचियों को और काट डालूँ खा लूँ आदि दुर्वचनोंका नित्य उच्चारण करने वाली पिशाचियोंको हम इस अभिचरित पुरुषसे दूर करते हैं

षष्ठी॥

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम्।

अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे॥ ६॥

क्षुधाऽमारम्। तृष्णाऽमारम्। अगोताम्। अनपऽत्यताम्।

अपामार्ग। त्वया। वयम्। सर्वम्। तत्। अप। मृज्महे॥ ६॥

क्षुधामारम् क्षुधा क्षुत्पीडया पुरुषस्य मारणम् तृष्णामारम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तृष्णया पिपासातिशयेन पुरुषस्य मारणम् । यद्वा क्षुत्पिपासयोः पुरुषे स्वरूपतो नाशनम् अत्र विवक्षितम् । तद्विरहे पुरुषस्य स्वत एव मरणसंभवात् । अगोताम् गोराहित्यम् अनपत्यताम् अपत्य-राहित्यं च । तत् एतत् सर्वं हे अपामार्ग त्वया वयम् अप मृज्महे अपमार्जयामः विनाशयामः ॥

भूँखकी पीड़ासे पुरुषका मरण होना, अधिक प्यास लगनेसे पुरुषका मरण होना अथवा भूँख प्यासके नष्ट होनेसे पुरुषका मरण होना, गौओंसे रहित होना और सन्तानहीनता, हे अपा-मार्ग (चिरचिटे) इन सबको हम तुझसे नष्ट करते हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥ ७ ॥

तृष्णाऽमारम् । क्षुधाऽमारम् । अथो इति । अक्षऽपराजयम् ।
अपामार्ग । त्वया । वयम् । सर्वम् । तत् । अप । मृज्महे ॥ ७ ॥

क्षुत्तृष्णानाशयोरत्र विपर्यास एव विशेषः । अथो अपि च अक्षपराजयम् अक्षैर्द्यूतसाधनैः द्यूतक्रियानिमित्तः पराजयः । तत् एतत् सर्वं हे अपमार्गेत्यादि पूर्ववत् ॥

तृषासे मरना, भूखसे मरना और जुएमें हारना, इन सबको हे अपामार्ग ! हम तुम्हारे द्वारा नष्ट करते हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी ।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपामार्गः । ओषधीनाम् । सर्वासाम् । एकः । इत् । वशी ।

तेन । ते । मृज्मः । आऽस्थितम् । अथ । त्वम् । अगदः । चरः ८

सर्वासाम् अन्यासाम् ओषधीनम् अपामार्गः एक एव वशी वशयिता । सर्वा अस्य वशे वर्तन्त इत्यर्थः । हे अभिचारदोषगृहीत ते तव आस्थितम् कृत्यादिभिरापतितं रोगादिकं तेन अपामार्गेण मृज्मः मार्जयामः अपगमयामः ॥ अथ अनन्तरं त्वम् अगदः व्याधिरहितः चर चिरकालं वर्तस्व ॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

अन्य सब ओषधियोंको एक अपामार्ग ही वशमें करने वाला है अर्थात् सब ओषधियें इसके वशमें चलती हैं, हे अभिचारग्रस्त पुरुष ! कृत्या आदिके द्वारा तुझमें स्थापित रोग आदिको उस अपामार्गके द्वारा हम दूर करते हैं । तदनन्तर तू व्याधिरहित होकर चिरकाल तक रह ॥ ८ ॥

चतुर्थकाण्डके चतुर्थ अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (११९) ॥

"समं ज्योतिः" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः । सूत्रं तु तत्रैव उदाहृतम् ॥

"समं ज्योतिः" इस सूक्तका पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह दिया है । सूत्र भी तहाँ ही कह दिया है ॥

तत्र प्रथमा ॥

समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्री समावती ।
कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः ॥ १ ॥

समम् । ज्योतिः । सूर्येण । अह्ना । रात्री । समऽवती ।

कृणोमि । सत्यम् । ऊतये । अरसाः । सन्तु । कृत्वरीः ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूर्येण आदित्येन तदीयं ज्योतिः प्रभामण्डलं समम् समानमेव भवति न कदाचित् तेन वियुज्यते । रात्री । ❀ "रात्रेश्चाजसौ" इति ङीप् ❀ । रात्रिश्च अह्ना समावती समानायामा । ❀ सम-शब्दात् आवतुप्रत्ययः स्वार्थिकः ❀ । यथैवं प्रभाप्रभावतोर्दिवा-रात्रयोश्च समानत्वं यथार्थम् तथा सत्यम् यथार्थं कर्म कृणोमि करोमि । किमर्थम् । ऊतये अभिचर्यमाणस्य पुरुषस्य रक्षणार्थम् । तस्मात् कृत्वरीः कर्तनशीलाः कृत्याः अरसाः शुष्काः कार्या-समर्थाः सन्तु भवन्तु ॥

प्रभामण्डल आदित्यके साथ ही रहता है कभी आदित्यसे पृथक् नहीं होता है, रात्रि भी दिनके समान ही आयाम वाली होती है । जैसे प्रभा प्रभावान्का और दिन तथा रात्रिका समानत्व यथार्थ है, इसी प्रकार मैं भी जिसके ऊपर अभिचार किया गया है उस पुरुषकी रक्षाके लिये यथार्थ कर्मको ही करता हूँ, इस कारण काटनेके स्वभाव वाली कृत्याएँ अरस अर्थात् कार्य करने में असमर्थ शुष्क होजावें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् ।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् ॥ २ ॥

यः । देवाः । कृत्याम् । कृत्वा । हरात् । अविदुषः । गृहम् ।
वत्सः । धारुःऽइव । मातरम् । तम् । प्रत्यक् । उप । पद्यताम् २

हे देवाः यः शत्रुः कृत्याम् मन्त्रौषधादिभिः शत्रोः पीडाकरीं कृत्यां कृत्वा अविदुषः अजानानस्य तस्य गृहम् अरात् ऋच्छेत् कृत्यानिखननार्थं गच्छेत् । ❀ ऋ गतौ इत्यस्मात् लेटि आडा-गमः । छान्दसः शपो लुक् ❀ । तम् अभिचरन्तं सा कृत्या प्रत्यक्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अभिमुखं प्रतिनिवृत्य उप पद्यताम् उपगच्छतु । तत्र दृष्टान्तः । वत्स इति । [धारुः] । ❀ धेट् पाने । "दाधेट्सिशदसदो रुः" इति रु-प्रत्ययः ❀ । यथा धारुः स्तनपानं कुर्वन् वत्सः स्वमातरमेव अनु-धावति एवं कृत्यापि स्वोत्पादकमेव प्रतिनिवृत्य गच्छतु इत्यर्थः ॥

हे देवताओं ! जो शत्रु मन्त्र औषधि आदिसे शत्रुको पीड़ित करने वाली कृत्याको करके अनजान शत्रुके घरमें कृत्याको गाढ़नेके लिये आता है, उस अभिचार करने वालेको कृत्या अभिमुख होकर इस प्रकार लिपटे जिस प्रकार दुग्धपान करने वाला बछड़ा अपनी मातासे लिपटता है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।

अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति ।३।

अमा । कृत्वा । पाप्मानम् । यः । तेन । अन्यम् । जिघांसति ।

अश्मानः । तस्याम् । दग्धायाम् । बहुलाः । फट् । करिक्रति ३

यः शत्रुः अनुकूल इव अमा सह स्थितः सन् पाप्मानम् कृत्या-निखननलक्षणं कृत्वा तेन पाप्मना अन्यम् द्वेष्यं जिघांसति हन्तुम् इच्छति । ❀ "अज्झनगमां सनि" इति दीर्घः ❀ । तस्याम् तेन शत्रुणा कृतायां कृत्यायां दग्धायाम् प्रतीकारेण रिक्तीकृतायां स्वकार्यकरणासमर्थायां सत्याम् अश्मानः पाषाणाः मन्त्रसामर्थ्यो-त्पादिता बहुलाः सन्तः फट् हिंसनं करिक्रति पुनःपुनः कुर्वन्तु । कृत्याकृतं शत्रुं हिंसन्तु इत्यर्थः । ❀ करोतेर्यङ्लुगन्तात् पञ्चमलकारे "रुग्रिकौ च लुकि" इति अभ्यासस्य रिगागमः ❀ ॥

जो शत्रु साथमें रह अनुकूलसा बन कर कृत्याको गाढ़ना आदि पाप करके उस पापसे शत्रुको मारना चाहता है, उस शत्रु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की कीहुई कृत्याके प्रतीकारके कारण अपने कार्यको करनेमें असमर्थ होने पर, मन्त्रशक्तिसे उत्पन्न किये हुए बहुतसे पाषाण उसको मारें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवां छायया त्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥ ४ ॥

सहस्रऽधामन् । विऽशिखान् । विऽग्रीवान् । शायय । त्वम् ।
प्रति । स्म । चक्रुषे । कृत्याम् । प्रियाम् । प्रियऽवते । हर ॥४॥

हे सहस्रधामन् । धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानीति [नि० ६. २८] [इति] यास्कवचनाद्ध धामशब्देन स्थानादिकम् उच्यते । सहस्रं धामानि स्थानादीनि यस्याः सा सहस्रधामा ओषधिः । ❀ "मनः" इति ङीपः प्रतिषेधः ❀ । हे सहस्रधामन् सहदेव्याख्ये ओषधे त्वम् अस्मदीयान् शत्रून् विशिखान् विच्छिन्नकेशान् विग्रीवान् विच्छिन्नग्रीवान् छिन्नशिरसः कृत्वा क्षायय क्षयं प्रापय । ❀ क्षै जै षै क्षये इति धातुः ❀ ॥ प्रियाम् शत्रूणां हितकारित्वेन अनुकूलां कृत्याम् पिशाचीं चक्रुषे कृतवते उत्पादितवते प्रियावते प्रियया कृत्यया तद्वते प्रति हर स्म तां कृत्यां प्रतिनिवृत्य प्रापय । ❀ चक्रुषे । करोतेर्लिटः क्वसुः । चतुर्थ्येकवचने भसंज्ञायां "वसोः संप्रसारणम्" ❀ ॥

हे सहस्रों स्थानोंमें होने वाली सहदेवी ओषधे ! तू हमारे शत्रुओंको कटे हुए केश वाले, छिन्न ग्रीवावाले करके नष्ट कर, शत्रुओंकी हितकारिणी होनेसे प्रिय अनुकूल कृत्या पिशाचीको करनेवाले प्रिया कृत्यासे युक्त शत्रु पर तू कृत्याको लौटाल॥४॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पञ्चमी ॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
या क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ ५ ॥

अनया । अहम् । ओषध्या । सर्वाः । कृत्याः । अदूदुषम् ।
याम् । क्षेत्रे । चक्रुः । याम् । गोषुः । याम् । वा । ते । पुरुषेषु ५

अनया सह देव्याख्यया ओषध्या अहं सर्वाः कृत्याः वक्ष्यमाणप्रदेशेषु खाताः अदूदुषम् दूषितवान् अस्मि । कार्यासमर्थाः करोमीत्यर्थः । ❀ दुषेर्ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् ❀ । ताः कृत्या दर्शयति । यां कृत्यां क्षेत्रे बीजावापार्हे भूप्रदेशे चक्रुः कृतवन्तः निखातवन्तः यां कृत्यां गोषु मध्ये निखातवन्तः वाते वातसंचारप्रदेशे यां कृत्यां कृतवन्तः । कृत्यासंस्पृष्टवाय्वभिघातेनापि अभिचारदोषो जायत इत्येवम् उक्तम् । तथा पुरुषेषु मनुष्येषु तत्संचारदेशे यां कृत्यां निखातवन्तः ताः सर्वाः कृत्या अदूदुषम् इत्यन्वयः ॥

जिस कृत्याको बीज बोनेके योग्य स्थानमें गाढ़ा गया है और जिस कृत्याको गौओंके बीचमें गाढ़ा गया है और जिस कृत्याको शत्रुओंने वायुप्रवाहके स्थानमें किया है (इससे यह बात सिद्ध होती है, कि—कृत्यासे छुए वायुके अभिघातसे भी अभिचारदोष उत्पन्न होता है) और शत्रुओंने पुरुषोंके चलनेके स्थानमें जिस कृत्याको गाढ़ दिया है उन सब कृत्याओंको मैं इस सहदेवी नामकी औषधिसे दूषित करता हूँ ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यः । चकार । न । शशाक । कर्तुम् । शश्रे । पादम् । अङ्गुरिम् ।

चकार । भद्रम् । अस्मभ्यम् । आत्मने । तपनम् । तु । सः ॥६॥

यः शत्रुः चकार कृत्यां प्रयुङ्क्ते तया कृत्यया एकं पादम् एकाम् अङ्गुलिं वा शश्रे हिनस्ति । ❀ शॄ हिंसायाम् इत्यस्मात् छान्दसो लिट् ❀ । स शत्रुः कर्तुं तथा हिंसितं न शशाक न शक्नोतु । ❀ छान्दसो लिट् ❀ ।कृत्याप्रयोगेण मारणम् अवयवहानिं वा कर्तुम् असमर्थो भवतु इत्यर्थः । तत्कृतम् अभिचारकर्म अस्मभ्यं भद्रम् मङ्गलं चकार । प्रतीकारमन्त्रौषधिप्रभावेन श्रेयः करोतु इत्यर्थः । अपि तु आत्मने स्वस्मै कृत्याप्रयोक्त्रे सः तत्कृतोऽभिचारः तपनम् दहनं करोतु ॥

जो शत्रु कृत्याको करके उस कृत्यासे एक पैरको वा एक अंगुलिको मारना चाहता है वह शत्रु तैसा करनेको समर्थ न हो तात्पर्य यह है, कि–कृत्याके प्रयोगसे वह मारण वा अवयवहानि करनेमें असमर्थ रहे । उसका किया हुआ अभिचारकर्म प्रतीकार के लिये उपयोगमें लाईहुई औषधि और मन्त्रोंके प्रभावसे हमारा कल्याण करे और प्रयोग करने वालेको ही उसका किया हुआ अभिचारकर्म पीड़ित करे ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अपामार्गोप माष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः ।
अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ॥ ७ ॥

अपामार्गः । अप । मार्ष्टु । क्षेत्रियम् । शपथः । च । यः ।

अप । अह । यातुऽधानीः । अप । सर्वाः । अराय्यः ॥ ७ ॥

अपामार्गाख्या ओषधिः क्षेत्रियम् क्षेत्रं मातापितृशरीरम् तत्सकाशाद् आगतं सांक्रामिकं क्षयकुष्ठापस्माराादिकं रोगम् अपमार्ष्टु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अस्मत्तोपगमयतु । ❀ मृजूष् शुद्धौ । अपमृज्यते रोगादिनिराकरणेन पुरुषः शोध्यते अनेनेति अपामार्गः । करणे घञ् । "चजोः कुः घिण्ण्यतोः" इति कुत्वम् । "उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" इति दीर्घः । अप मार्ष्टु । अदादित्वात् शपो लुक् । "मृजेर्वृद्धिः" इति वृद्धिः । क्षेत्रियम् इति । "क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः" इति निपात्यते ❀ । यश्च शत्रुकृतः शपथः शापः तमपि अप मार्ष्टु । तथा यातुधानीः पिशाचीः अप मार्ष्टु । अह इति विनिग्रहे । तथा अराय्यः अरायीः अलक्ष्मीः सर्वा अपामार्गः अप मार्ष्टु । ❀ अरायीशब्दात् शसि छान्दसः पूर्वसवर्णदीर्घाभावः ❀ ॥

अपामार्ग नाम वाली औषधी माता पिताके शरीरसे आये हुए संक्रामक क्षय कुष्ठ अपस्मार आदि रोगको हमसे दूर करे। शत्रुके किये हुए आक्रोशको भी हमसे दूर करे। पिशाचियोंको दूर करे और सम्पूर्ण अलक्ष्मियोंको बन्धनमें डाल कर दूर करे ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥ ८ ॥

अपऽमृज्य । यातुऽधानान् । अप । सर्वाः । अराय्यः ।
अपामार्ग । त्वया । वयम् सर्वम् । तत् । अप । मृज्महे ॥ ८ ॥

हे अपामार्ग त्वं यातुधानान् यक्षरक्षःप्रभृतीन् अपमृज्य अपमृड्ढि । ❀ व्यत्ययेन श्यन् ❀ । तथा सर्वा अराय्यः अलक्ष्मीकरीः पापदेवताः अप गमय। यद्वा । ❀ अपमृज्येति ल्यबन्तः ❀ । हे अपामार्ग त्वया प्रथमं यातुधानादीन् अपमृज्य तैः कृतं सर्वं तद् दुःखजातं त्वयैव साधनेन वयम् अप मृज्महे निराकुर्मः ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

हे अपमार्ग (चिरचिटे) ! तू यक्ष राक्षस आदि यातुधानोंको

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूरकर तथा सम्पूर्ण अलक्ष्मी करने वाली पापदेवताओंको हमसे दूर रख ॥ ८ ॥

चतुर्थकाण्डके चतुर्थ अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (१२०) ॥

"उतो असि" इति सूक्तस्य पूर्ववद् विनियोगः ॥

'उतो असि' इस सूक्तका पहिले सूक्तकी समान विनियोग है ॥

तत्र प्रथमा ॥

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत् ।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा च्छिन्धि वार्षिकम् १

उतो इति । असि । अबन्धुऽकृत् । उतो इति । असि । नु । जामिऽकृत् ।

उतो इति । कृत्याऽकृतः । प्रऽजाम् । नडम्ऽइव । आ । छिन्धि । वार्षिकम् ॥ १ ॥

सहदेव्यपामार्गयोरन्यतरः संबोध्यः । उतो अपि च हे सहदेवि अपामार्ग वा अबन्धुकृत् अबन्धूनां शत्रूणां कर्तकश्छेदकोसि । ❀ कृती छेदने इत्यस्मात् क्विप् ❀ ॥ उतो अपि च नु क्षिप्रं जामिकृत् जामयः सहजाः शत्रवः तेषामपि कर्तयिता [असि] भवसि । इत्थं सहजासहजभेदेन शत्रुद्वैविध्यम् अन्यत्रापि श्रुतम् । "जामिम् अजामिं प्र मृणीहि शत्रून्" [ऋ० ४. ४. ५] इति ॥ उतो अपि च कृत्याकृतः कृत्यायाः प्रयोक्तुः प्रजाम् पुत्रपौत्रादिकां वार्षिकम् वर्षासु भवं नडम् एतत्संज्ञं सुच्छेदं तृणविशेषमिव आ छिन्धि आसमन्तात् छिन्नां वियुक्तां कुरु । ❀ छिदिर् द्वैधीकरणे । "हुझल्भ्यो हेर्धिः" इति हेर्धिरादेशः । "श्नसोरल्लोपः" इति अकारलोपः । वार्षिकम् इति । "वर्षाभ्यष्ठक्" "छन्दसि ठञ्" इति ठञ् प्रत्ययः ❀ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे सहदेवी वा अपामार्ग ! तू शत्रुओंको काटने वाली है, तू स्वाभाविक शत्रुओंको भी काटने वाली है ‡। तू कृत्याका प्रयोग करने वाले शत्रुकी पुत्र पौत्र आदि प्रजाकी वर्षाऋतुमें होनेवाली नड नामक घासकी समान काट डाल ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन ।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नो-
ष्योषधे ॥ २ ॥

ब्राह्मणेन । परिऽउक्ता । असि । कण्वेन । नार्षदेन ।
सेनाऽइव । एषि । त्विषिऽमती । न । तत्र । भयम् । अस्ति ।
यत्र । प्रऽआप्नोषि । ओषधे ॥ २ ॥

नार्षदेन नृषदस्य पुत्रेण कण्वेन एतत्संज्ञेन ब्राह्मणेन मन्त्रदृशा हे ओषधे सहदेवि पर्युक्तासि परितो विनियुक्तासि। अतः त्विषीमते दीप्तिमते यजमानाय परिरक्षणार्थं सेनेव एषि गच्छसि। तादृशी त्वं यत्र यस्मिन् देशे प्राप्नोषि तत्र भयम् अभिचारादिजनितभीतिर्नास्ति। अतो भयनिवारकत्वात् सेनया उपमीयस इत्यर्थः॥

---

‡ इस प्रकार स्वाभाविक और अस्वाभाविक भेदसे दो प्रकार के शत्रुओंका वर्णन अन्यत्र भी मिलता है। यथा-ऋग्वेदसंहिता ४।४।५ में कहा है, कि-"जामिं अजामिं प्रमृणीहि शत्रून् ॥-- स्वाभाविक और अस्वाभाविक दोनों प्रकारके शत्रुओंका नाश करिये" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नृषद्के पुत्र कण्व नामक मन्त्रद्रष्टा ब्राह्मणने हे सहदेवि ! तेरा विनियोग किया है । अतः तू कान्तिमान् यजमानकी रक्षाके लिये सेनाकी समान जाती है, ऐसी तू जहाँ आती है तहाँ अभिचारसे होने वाली भीति नहीं होती है । (अत एव भयनिवारक होनेसे तुझे सेनाकी उपमा दीजाती है) ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन् ।
उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ॥ ३ ॥

अग्रम् । एषि । ओषधीनाम् । ज्योतिषाऽइव । अभिऽदीपयन् ।
उत । त्राता । असि । पाकस्य । अथो इति । हन्ता । असि । रक्षसः ३

हे सहदेवि ओषधीनाम् सर्वासां वीरुधाम् अग्रम् प्रथमम् एषि । सर्वौषधिप्रतिनिधित्वेन मुख्या भवसीत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः ज्योतिषेवेति । ज्योतिषा प्रकाशेन अभितः सर्वतो दीपयन् प्रकाशयन्नादित्यः यथा सर्वज्योतिषाम् अग्रगण्यो भवति तथेत्यर्थः ॥ यद्वा ज्योतिषा आत्मीयेन तेजसैव स्वसामर्थ्येन अभिदीपयन् कृत्यादोषान् संदहन् हे अपामार्ग त्वं पाकस्य पक्तव्यप्रज्ञस्य दुर्बलस्य त्रातासि रक्षिता भवसि । तद्बाधकस्य च रक्षसः राक्षसस्य हन्तासि नाशयिता भवसि ॥

प्रकाशके द्वारा सब ओर दमकाते हुए सूर्य जिस प्रकार सब ज्योतियोंमें उत्तम हैं, हे सहदेवि ! इसी प्रकार तू भी सब औषधियोंमें उत्तम है । अथवा हे अपामार्ग ! तू अपनी शक्तिसे कृत्याके दोषोंको दूर करता हुआ दुर्बलकी रक्षा करने वाला होता है और उसके बाधक राक्षसका नाश कर डालता है ॥ ३॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

१३-६ २६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चतुर्थी ॥

यद्दो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत ।

ततस्त्वमध्योषधेपामार्गो अजायथाः ॥ ४ ॥

यत् । अदः । देवाः । असुरान् । त्वया । अग्रे । निःऽअकुर्वत ।

ततः । त्वम् । अधि । ओषधे । अपामार्गः । अजायथाः ॥ ४ ॥

हे ओषधे यत् यस्माद्ध अदः अमुष्मिन् विप्रकृष्टे अग्रे पुरा त्वया साधनेन देवाः इन्द्रादयः असुरान् [निरकुर्वत] निराकृतवन्तः ततः तस्मात् कारणात् हे ओषधे त्वम् अन्यासाम् ओषधीनाम् अधि उपरि वर्तमानः श्रेष्ठः सन् अपामार्गो अजायथाः अपामार्गात्मना उत्पन्ना भवसि । अपमार्जनाद्ध अपामार्ग इति संज्ञां लब्धवतीत्यर्थः ॥

हे ओषधे ! क्योंकि--पहिले तेरे साधनसे इन्द्र आदि देवताओं ने असुरोंको तिरस्कृत किया था, इस कारण हे ओषधे ! तू अन्य ओषधियोंके ऊपर वर्तमान रह कर अपामार्गरूपसे उत्पन्न होती है, अपामार्जनसे तेरा नाम अपामार्ग है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता ।

प्रत्यग् वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ५

विऽभिन्दती । शतऽशाखा । विऽभिन्दन् । नाम । ते । पिता ।

प्रत्यक् । वि । भिन्धि । त्वम् । तम् । यः । अस्मान् । अभिऽदासति ५

हे अपामार्गाख्ये ओषधे शतशाखा अपरिमितशाखा सती विभिन्दती विभेदनशीला एतत्संज्ञा भवसि । विभेदनशक्तिश्च

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कारणगुणायातत्वाद् दुःसहेत्याह विभिन्दन्निति । हे अपामार्ग ते तव पिता उत्पादकः विभिन्दन् [नाम] विभेदकः एतत्संज्ञो भवति । अतः त्वं तम् अस्मदीयं शत्रुं प्रत्यग् भिन्धि प्रतीपगमनेन विदारय यः शत्रुः अस्मान् अभिदासति उपक्षपयति । ❀ दसु उपक्षये । अस्मात् ण्यन्तात् लटि शपः "छन्दस्युभयथा" इति आर्धधातुकत्वात् "णेरनिटि" इति णिलोपः ❀ ॥

हे अपामार्ग नाम वाली ओषधे ! तू अपरिमित शाखाओंको धारण कर विभिन्दती नाम पाती है, हे अपामार्ग ! तेरा उत्पादक विभिदन् (विभेदक) नामक है अतः तू जो हमको क्षीण करना चाहते हैं उन हमारे शत्रुओंके सामने जाकर उनको विदीर्ण कर५

षष्ठी ॥

असद् भूम्याः समभवत् तद्यामेति महद् व्यचः ।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ॥ ६ ॥

असत् । भूम्याः । सम् । अभवत् । तत् । याम् । एति । महत् । व्यचः । तत् । वै । ततः । विऽधूपायत् । प्रत्यक् । कर्तारम् । ऋच्छतु ६

हे ओषधे त्वत् सकाशाद् महत् अधिकं व्यचः व्याप्तं तेजो निष्क्रम्य यां भूमिम् एति प्राप्नोति तस्यां भूम्यां निखातम् [असत् सम् अभवत्] । बाधितुं न शक्नोतीत्यर्थः । तद् [वै] असत्कल्पं कृत्यारूपं ततः तस्माद् देशात् निर्गत्य विधूपायत् विशेषेण धूपितं प्रज्वलितं सत् कर्तारम् कृत्याकृतमेव प्रत्यग् ऋच्छतु प्रतिनिवृत्य पीडयतु । यद्वा असत् अशोभनं कृत्यारूपं समभवत् परपीडार्थं समजायत । तत्र कृत्यायुक्तां यां भूमिं त्वदीयं महद् व्यचः प्राप्नोतीत्यादि पूर्ववत् । ❀ विधूपायत् । धूप संतापे । "गुपूधूपविच्छि०" इति आयप्रत्ययः ❀ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे ओषधे ! तेरे पाससे जो व्याप्त तेज निकलकर जिस भूमिको प्राप्त होता है, उस भूमिमें गाढ़ी हुई कृत्या असत् होकर बाधित नहीं कर सकती, यह असत् कृत्या इस स्थानसे निकल प्रज्वलित होता हुआ लौट कर कृत्याका प्रयोग करने वालेको ही नष्ट करे६

सप्तमी ॥

प्रत्यङ् हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम् ।

सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ॥७॥

प्रत्यङ् । हि । सम्ऽबभूविथ । प्रतीचीनऽफलः । त्वम् ।

सर्वान् । मत् । शपथान् । अधि । वरीयः । यवय । वधम् ॥७॥

हे प्रतीचीनफल । प्रतीचीनानि आत्माभिमुखानि फलानि यस्य सः अपामार्गः प्रतीचीनफलः । हे तादृश त्वं प्रत्यङ् हि प्रत्यञ्चनः प्रतिनिवृत्तमुख एव खलु संबभूविथ उदपद्यथाः । हि शब्दो हेतौ । हि यस्माद् एवं तस्मात् सर्वान् शत्रुकृतान् शपथान् आक्रोशान् मत्सकाशाद् यवय पृथक् कुरु। अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी । पृथक्कृत्य च शप्तारमेव प्रतीचीनं प्रापयेत्यर्थः । तथा वरीयः उरुतरं विस्तीर्णतरं वधम् तदीयं हननसाधनम् आयुधं कृत्यारूपं वा अस्मत्तः पृथक् कुरु॥

हे अभिमुख फल वाले अपामार्ग ! तू प्रतिनिवृत्त मुख वाला ही उत्पन्न हुआ है, इस कारण शत्रुके किये हुए सब आक्रोशों को मुझसे पृथक् कर और अलग करके मेरे शत्रुके ऊपर ही भेज और शत्रुके विस्तृत हननसाधन कृत्या वा आयुधोंको हमसे अलग कर ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा ।

इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शतेन । मा । परि । पाहि । सहस्रेण । अभि । रक्ष । मा ।

इन्द्रः । ते । वीरुधाम् । पते । उग्रः । ओज्मानम् । आ । दधत् ॥ ८ ॥

हे ओषधे सहदेवि अपामार्ग वा शतेन शतसंख्याकेन रक्षणोपायेन मा मां परि पाहि ॥ तथा सहस्रेण सहस्रसंख्याकेन मा माम् अभि रक्ष कृत्याकृताद् दोषात् सर्वतः पालय ॥ हे वीरुधां पते लतारूपाणाम् ओषधीनाम् अधिपते ते तव उग्रः उद्गूर्णबलः इन्द्रो देवः ओज्मानम् ओजस्वित्वम् आ दधत् आस्थापयतु । ददातु इत्यर्थः ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे ओषधे ! रक्षणके सैंकड़ों उपायोंसे तू मेरी रक्षा कर और सहस्रों उपायोंसे कृत्याके दोषसे बचा हे लतापति ओषधे ! प्रचण्ड बली इन्द्र मुझमें ओजस्वित्वको स्थापित करे ॥ ८ ॥

चतुर्थ काण्डके चतुर्थ अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१२१)॥

"आ पश्यति" इति सूक्तेन ब्रह्मग्रहादिजनितभयनिवृत्तये त्रिसंध्यामणिं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् । सूत्रितं हि । "आ पश्यतीति सदंपुष्पामणिं बध्नाति" इति [कौ० ४. ४] ॥

तथा चातनगणेपि एतत् सूक्तम् । [तद् उक्तं] कौशिकेन । "शं नो देवी पृश्निपर्णी [२. २५] आ पश्यति [४. २०] तान्त्सत्यौजाः [४. ३६]" इति [कौ० १. ८] । अतोस्य सूक्तस्य "चातनानाम् अपनोदनेन व्याख्यातम्" [कौ० ४. १] इत्याद्युक्तकर्मसु विनियोगः ॥

"आ पश्यति" इस सूक्तसे ब्रह्मग्रह आदिसे उत्पन्न हुए भयको हटानेके लिये त्रिसंध्या (दुपहरियाकी) मणिका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके बाँधे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, "आ पश्यतीति सदंपुष्पामणिं बध्नाति" (कौशिकसूत्र ४ । ४) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा चातनगणमें भी इस सूक्तका पाठ है। इसी बातको कौशिकसूत्र १।८में कहा है, कि-"शंनो देवी पृश्निपर्णी (२।२५) आ पश्यति (४ । २०) तान्त्सत्यौजाः (४ । ३६) ॥" अतः इस सूक्तका "चातनानां अपनोदनेन व्याख्यातम्" (कौशिकसूत्र ४ । १) आदि कर्मोंमें विनियोग होता है ॥

तत्र प्रथमा ॥

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति।
दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति॥१॥

आ । पश्यति । प्रति । पश्यति । परा । पश्यति । पश्यति ।
दिवम् । अन्तरिक्षम् । आत् । भूमिम् । सर्वम् । तत् । देवि । पश्यति १

हे देवि देवतारूपे सदंपुष्पाख्ये ओषधे त्वद्विकारमणिधारकोयं जनस्त्वत्प्रसादात् आ पश्यति आगामिभयकारणं परिहर्तुं जानाति। तथा प्रति पश्यति प्रतिमुखं स्थितं वर्तमानमपि भयकारणं निरसितुं जानाति ॥ तथा परा पश्यति परागतं दूरस्थमपि भयकारणम् अवलोकयति ॥ किं बहुना । अविशेषेण सर्वमपि भयकारणम् असौ पश्यति साक्षात्करोति ॥ ये खलु ब्रह्मग्रहादयो भयहेतवः ते सर्वे पृथिव्यादिलोकत्रयं व्याप्य वर्तन्ते अतस्तदपरिज्ञाने तदाश्रया ब्रह्मग्रहादयो दुष्परिज्ञाना इत्यभिप्रेत्याह दिवम् अन्तरिक्षम् इति । दिवम् स्वर्गम् अन्तरिक्षम् अन्तरा क्षान्तं मध्यमं लोकम् आत् अनन्तरं भूमिम् पृथिवीम् एतल्लोकत्रयोपलक्षितं तत् तत्रत्यं सर्वम् प्राणिजातं त्रिसंध्यामणिधारणमाहात्म्येन पश्यति साक्षात्करोति । एवं सर्वज्ञतया जागरूकं तं ब्रह्मग्रहादिर्न स्पृशतीत्यर्थः ॥

हे देवस्वरूप सदंपुष्पा नाम वाली ओषधे ! तेरी मणिको धारण करनेवाला यह पुरुष तेरे प्रसादसे आने वाले भयको देखता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है अर्थात् उसके हटानेके उपायको जान जाता है और वर्तमान भयके कारणके हटानेके उपायको भी जान जाता है। दूरस्थित भयके कारणको भी देखता है अर्थात् उसके हटानेके उपायको जान जाता है, अधिक क्या, भयके सब कारणोंका यह साक्षात् करता है (अब शंका होती है, कि–ब्रह्मग्रह आदि भयके कारण तीनों लोकोंमें व्याप्त होकर रहते हैं अतः उनके आश्रित ब्रह्मग्रह आदिका ज्ञान होना कठिन है, इसका समाधान करनेके लिये कहा है, कि–) स्वर्ग अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनोंके सब प्राणियोंको त्रिसंध्यामणिके धारणसे साधक देखता है। तात्पर्य यह है, कि–इस प्रकार सर्वज्ञ होनेसे सावधान रहने वाले उस साधकको ब्रह्मग्रह आदि स्पर्श नहीं करते ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक्।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥ २ ॥

तिस्रः। दिवः। तिस्रः। पृथिवीः। षट्। च। इमाः। प्रऽदिशः। पृथक्।
त्वया। अहम्। सर्वा। भूतानि। पश्यानि। देवि। ओषधे ॥२॥

"तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रींरुत द्यून्" [ऋ० २. २७. ८] इत्यादिमन्त्रवर्णात् "त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः" [ऐ० ब्रा० २. १७] इत्यादिब्राह्मणवचनाच्च पृथिव्यादिलोकानां प्रत्येकं त्र्यात्मकत्वम् अवसीयते। तद् इदम् उच्यते तिस्रो दिव इत्यादिना। तिस्रः त्रिसंख्याका दिवः द्युलोकान् [तिस्रः] त्रिसंख्याकाः पृथिवीश्च इमा परिदृश्यमानाः प्रदिशः प्रकृष्टा दिशः प्राच्याद्या ऊर्ध्वाधोदिग्भ्यां सह षट्संख्याकाश्च तथा तत्रस्थानि सर्वा सर्वाणि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूतानि भूतजातानि हे देवि देवतारूपे ओषधे त्वया मणिरूपेण धार्यमाणया अहं [पृथक्] पश्यानि साक्षात्करवाणि ॥

("तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रींरुत द्यून् ॥-तीन भूमि और तीन स्वर्गोंको धारण करता हुआ" इस ऋग्वेदके २ । २७ । ८ वें मन्त्रसे और "त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः" इस ऐतरेय ब्राह्मण २ । १७ की श्रुतिसे पृथिवी आदि तीनों लोकोंका त्र्यात्मकत्व निश्चित होता है । इसी बातको इस मन्त्रमें कहते हैं, कि—तीन स्वर्ग, तीन पृथिवी तथा ऊपरकी और नीचेकी दिशासहित छः दिशा तथा तथा इनमें रहने वाले सब प्राणियोंको भी हे देवता-रूप ओषधे ! तेरी धारण की हुई मणिके प्रभावसे मैं देखता हूँ २

तृतीया ॥

दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।

सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥ ३ ॥

दिव्यस्य । सुऽपर्णस्य । तस्य । ह । असि । कनीनिका ।

सा । भूमिम् । आ । रुरोहिथ । वह्यम् । श्रान्ता । वधूःऽइव ३

हे सदंपुष्पौषधे दिव्यस्य दिवि भवस्य देवतारूपस्य सुपर्णस्य शोभनपक्षयुक्तस्य तस्य प्रसिद्धस्य गरुत्मतः चक्षुषोर्वर्तमाना कनीनिका दर्शनसाधनं कृष्णमण्डलम् असि । हशब्दः प्रसिद्धौ । तदीयस्य पुष्पस्य कनीनिकासाधर्म्यात् ताद्रूप्येण ओषध्या स्तुतिः । सा तादृशी त्वं सौपर्णचक्षुर्मण्डलाद् भूमिम् आ रुरोहिथ । जगद्रक्षणार्थम् ओषधिरूपेण भूमौ अवतीर्णासीत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः वह्यम् इति । श्रान्ता अध्वश्रमखिन्ना गन्तुम् असमर्था [वधूः] स्त्री यथा वह्यम् वहनसाधनम् अश्वान्दोलिकादि यानम् आरोहति तद्वद् इत्यर्थः । ❀ "वह्यं करणम्" इति वहतेर्यत् प्रत्ययो निपात्यते ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रान्तेति । श्रमु तपसि खेदे च । "यस्य विभाषा" इति निष्ठायाम् इडभावः । "अनुनासिकस्य क्विझलोः०" इति दीर्घत्वम् ❀ ॥

हे सदम्पुष्पौषधे ! स्वर्गमें होने वाले देवतारूप शोभन पक्ष वाले गरुड़की तू नेत्रोंमें वर्तमान कनीनिका है । (सदम्पुष्पाका पुष्प कनीनिकाकी समान होता है, अत एव ताद्रूप्यसे ओषधिकी स्तुति की है) ऐसी तू थकी हुई स्त्री जैसे पालकी आदि पर चढ़ती है तिस प्रकार गरुड़के नेत्रमण्डलसे भूमि पर उत्पन्न हुई है, अर्थात् जगत्की रक्षा करनेके लिये ओषधिरूपसे भूमिमें अवतीर्ण हुई है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥ ४ ॥

ताम् । मे । सहस्रऽअक्षः । देवः । दक्षिणे । हस्ते । आ । दधत् ।
तया । अहम् । सर्वम् । पश्यामि । यः । च । शूद्रः । उत । आर्यः ४

ताम् उक्तप्रभावां सदंपुष्पाख्याम् ओषधिं देवः दानादिगुणयुक्तः सहस्राक्षः इन्द्रो मे मम दक्षिणे हस्ते आ दधत् अधारयत् । हे तादृशि ओषधे त्वया दक्षिणहस्ते मणिरूपेण धृतया अहं सर्वम् द्रष्टव्यं विषयं पश्यामि साक्षात्करोमि । द्रष्टव्यं विषयं निर्दिशति यश्चेति । शूद्रोपलक्षितो यस्त्रैवर्णिकव्यतिरिक्तो जनः आर्यो विद्वान् ब्राह्मणः । त्रैवर्णिकोपलक्षणम् एतत् । ये च ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या ये च तद्व्यतिरिक्ताः शूद्रादयः तान् सर्वान् वशीकृत्य तत्कृतं रक्षःपिशाचादिकं निरसितुं पश्यामीत्यर्थः ॥

उक्तप्रभाव वाली सदम्पुष्पा ओषधिको सहस्राक्ष दानादिगुण युक्त इन्द्रने मेरे दाहिने हाथमें धारण कराया है । हे दाहिने हाथमें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मणिरूपसे धारण कीहुई ओषधे ! तेरे द्वारा मैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सबको वशमें करके उनसे प्रयुक्त राक्षस पिशाच आदि को देखता हूँ अर्थात् उनको दबानेका उपाय कर लेता हूँ ॥४॥

पञ्चमी ॥

आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः ।

अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥५॥

आविः । कृणुष्व । रूपाणि । मा । आत्मानम् । अप । गूहथाः । अथो इति । सहस्रचक्षो इति सहस्रऽचक्षो । त्वम् । प्रति । पश्याः । किमीदिनः ॥ ५ ॥

हे ओषधे त्वदीयानि रक्षःपिशाचादिनिवर्तकानि रूपाणि आविष्कृणुष्व प्रकाशय । आत्मानम् तव स्वरूपं माप गूहथाः संवृतं मा कार्षीः । ❀ गुहू संवरणे ❀ ॥ अथो अपि च हे सहस्रचक्षो सहस्रसंख्याकानि चक्षूंषि दर्शनसाधनानि इन्द्रियाणि यस्याः सा सहस्रचक्षुः हे तथाविधे ओषधि त्वं किमीदिनः किम् इदानीं किम् इदानीम् इति गूढं संचरतो राक्षसान् प्रतिपश्याः । अस्मद्रक्षणार्थं प्रतीक्षस्व। ❀ प्रतिपश्या इति । प्रतिपूर्वाद् दृशेर्लेटि अडागमः ❀ ॥

हे ओषधे ! तू राक्षस पिशाच आदिको हटानेवाले अपने रूपों को प्रकाशित कर, अपने स्वरूपको न छिपा और हे सहस्रों दर्शनसाधनोंसे देखने वाली ओषधे ! गूढ़ रूपसे फिरनेवाले राक्षसोंको हमारी रक्षा करनेके लिये देख ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ।

पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दर्शय । मा । यातुऽधानान् । दर्शय । यातुऽधान्यः ।

पिशाचान् । सर्वान् । दर्शय । इति । त्वा । आ । रभे । ओषधे ६

हे सदंपुष्पौषधे यातुधानान् राक्षसान् मा मां दर्शय । गूढं यथा न बाधन्ते तथा कुरु इत्यर्थः ॥ यातुधान्यः यातुधानीः राक्षसीश्च दर्शय ॥ तथा पिशाचान् पिशिताशान् यातुधानव्यतिरिक्तान् सर्वान् रक्षोविशेषान् दर्शय इति एवमर्थम् हे ओषधे त्वा त्वाम् आ रभे धारयामि ॥

हे सदम्पुष्पा ओषधे ! तू राक्षसोंको मुझे दिखा अर्थात् वे जिस प्रकार गुप्तरूपमें रहकर मुझे पीड़ा न देसकें तैसा कर और यातुधानियोंको तथा सब प्रकारकी पिशाचियोंको भी मुझे दिखा इसी कारण हे ओषधे ! मैं तुझको धारण करता हूँ ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥ ७ ॥

कश्यपस्य । चक्षुः । असि । शुन्याः । च । चतुःऽअक्ष्याः ।

वीध्रे । सूर्यम्ऽइव । सर्पन्तम् । मा । पिशाचम् । तिरः । करः ७

हे ओषधे त्वं कश्यपस्य महर्षेः चक्षुरसि । तादृशपुष्पोपेतत्वात् तादात्म्येन स्तुतिः । तथा चतुरक्ष्याः चत्वारि अक्षीणि यस्याः सा चतुरक्षी तादृश्याः शुन्याः देवानां संबन्धिन्याः सरमाख्यायाः । चक्षुरसीत्यनुषङ्गः । एतेन अप्रधृष्यत्वम् उक्तम् । वीध्रे । विविधम् इन्धते दीप्यन्तेस्मिन् ग्रहनक्षत्रादीनीति वीध्रम् अन्तरिक्षम् । ❀वाविन्धेः [उ० २. २६] इति औणादिको रक् प्रत्ययः ❀ । तत्र सर्पन्तम् गच्छन्तं सूर्यमिव इतस्ततः सर्पणशीलं पिशाचं मा तिर-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्कुरः अन्तर्हितं मा कार्षीः । ❀ कर इति । करोतेर्माङि लुङि "कृमृदृरुहिभ्यः०" इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ ॥

हे ओषधे ! तू महर्षि कश्यपकी चक्षु है (सदम्पुष्पाका पुष्प वैसा ही होता है अत एव तादात्म्यसे स्तुति की है) तथा चार नेत्र वाली देवताओंकी कुक्कुरी सरमाकी भी तू चक्षु है (इससे औषधिका अप्रधृष्यत्व सूचित किया है) जिसमें अनेक प्रकारसे ग्रह नक्षत्र आदि दिपते हैं उस वीध्र नामक अन्तरिक्षमें सूर्यकी समान इधर उधर घूमते हुए पिशाचको अन्तर्हित न कर ॥७॥

अष्टमी ॥

उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम् ।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥ ८ ॥

उत् । अग्रभम् । परिऽपानात् । यातुऽधानम् । किमीदिनम् ।
तेन । अहम् । सर्वम् । पश्यामि । उत । शूद्रम् । उत । आर्यम् ८

परिपानात् परिरक्षणात् हेतोः किमीदिनम् किम् इदानीं किम् इदानीम् इति चरन्तं यातुधानम् राक्षसम् उत् अग्रभम् उद्गृहीतवान् अस्मि । वशीकृतवान् अस्मीत्यर्थः । तेन यातुधानेन अहं सर्वं ग्रहं पश्यामि । उत शूद्रम् । शूद्रजातियुक्तम् उत आर्यम् ब्राह्मणजातियुक्तं च । सर्वं ग्रहं पश्यामीत्यर्थः ॥

परिरक्षणके कारण मैंने राक्षसको वशमें कर लिया है, उसके द्वारा मैं शूद्रजातियुक्त वा ब्राह्मणजातियुक्त सब ही ग्रहोंको देखता हूँ

नवमी ॥

यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति ।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय ॥ ९ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यः । अन्तरिक्षेण । पतति । दिवम् । यः । च । अतिऽसर्पति ।

भूमिम् । यः । मन्यते । नाथम् । तम् । पिशाचम् । प्र । दर्शय ॥६॥

यः पिशाचः अन्तरिक्षेण द्यावापृथिव्योर्मध्यवर्तिना लोकेन पतति संचरति यश्च दिवम् अधिसर्पति द्युलोकस्योपरि गच्छति यश्च भूमिम् पृथिवीम् आत्मनो नाथम् स्वामिनं मन्यते तं सर्वं त्रैलोक्यवर्तिनं पिशाचम् प्र दर्शय चक्षुर्गोचरं कुरु। त्रिसंध्यामणिधारणेन ब्रह्मग्रहादीन् साक्षात्कृत्य मन्त्रसामर्थ्येन तान् निराकरोमीत्यर्थः ॥

पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे चतुर्थकाण्डे चतुर्थोऽनुवाकः॥

जो पिशाच द्यावापृथिवीके बीचके अन्तरिक्षलोकमें घूमता है और जो स्वर्गमें विचरता है और जो पृथिवीको अपने अधीन समझता है, उस त्रैलोक्यवर्ती पिशाचको मुझे दिखा। तात्पर्य यह है, कि—त्रिसंध्यामणिको धारण करनेके प्रभावसे मैं ब्रह्मग्रह आदिका साक्षात्कार कर मंत्रकी शक्तिसे उनका उपाय करता हूँ६

चतुर्थ काण्डके चतुर्थ अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (१२२)॥

चतुर्थ अनुवाक समाप्त

पञ्चमेऽनुवाके पञ्च सूक्तानि। तत्र "आ गावः" इत्यादिसूक्तदशकस्य मृगारसंज्ञकत्वात् "मृगारैर्मुञ्चेत्याप्लावयति" [कौ० ४. ३] इत्यादिसूत्रविहिते सर्वभैषज्यकर्मणि होमसंपातावसेकादिषु विनियोगः। तत्र "आ गावः" इति प्रथमेन सूक्तेन गवां रोगोपशमनपुष्टिप्रजननकर्मसु सलवणं केवलं वा उदकम् अभिमन्त्र्य गाः पाययेत्। सूत्रितं हि। "ब्रह्म जज्ञानम् [४. १] आ गावः [४. २१] एका च मे [५. १५] इति गा लवणं पाय-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यत्युपतापिनीः प्रजननकामाः प्रपाम् अवरुणद्धि" इति [कौ० ३.२]॥

तथा गोपुष्टिकर्मणि अनेनैव सूक्तेन गोष्ठं प्रत्यागच्छन्तीर्गाः प्रत्युद्गच्छेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेनैव सूक्तेन इन्द्राय चरुं त्रिर्जुहुयात् ॥

तथा "प्रजावतीः" [७] इत्यनया अरण्यं प्रति गच्छन्तीर्गाः अनुमन्त्रयेत ॥

सूत्रितं हि ॥ "आ गाव इति गा आयतीः प्रत्युत्तिष्ठति । [प्रावृषि प्रथमधारस्य] इन्द्राय त्रिर्जुहोति । प्रजावतीरिति प्रतिष्ठमाना अनुमन्त्रयते" इति [कौ० ३.४] ॥

तथा तत्रैव कर्मणि "प्रजावतीः" [७, ८] इति द्वाभ्याम् अभिनवं पयो वत्सलालामिश्रितं संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् ॥

तथा [अनेनैव] द्वयृचेन गा अभिमन्त्र्य दद्यात् ॥

तथा उदपात्रम् अभिमन्त्र्य गोष्ठमध्ये निनयेत् ॥

एवं सारूपवत्सौदने गुग्गुलुलवणशकृत्पिण्डान् प्रक्षिप्य पश्चादग्नेस्त्रिरात्रं निखाय चतुर्थेऽहनि उद्धृत्य अनेन द्वयृचेन संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् ॥

सूत्रितं हि । "प्रजावतीः [७, ८] प्रजापतिः [६. ७] इति गोष्ठकर्माणि गृष्टेः पीयूषं श्लेष्ममिश्रम् अश्नाति" [कौ० ३.२] इति

सोमयागे माध्यंदिनसवने दक्षिणार्थम् आगता गा हिरण्यहस्तो यजमानः अनेन सूक्तेन प्रत्युत्तिष्ठेत् । उक्तं वैताने । "हिरण्यहस्तो यजमानो बहिर्वेदि दक्षिणा आयतीरा गाव इति प्रत्युत्तिष्ठति" इति [वै० ३. ११] ॥

पञ्चम अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें "आ गावः" आदि दश सूक्त मृगारसूक्त कहलाते हैं । अतः "मृगारैर्मुञ्चेत्याप्लावयति" (कौशिकसूत्र ४ । ३) इत्यादि सूत्रोंसे विहित सर्वभैषज्यकर्ममें और होम सम्पात अवसेक आदिमें इनका विनियोग है । उनमें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'आ गावः' इस प्रथमसे गौओंकी शान्ति, गौओंकी पुष्टि और प्रजननकर्ममें लवणसहित वा केवल जलका अभिमंत्रण कर गौओं को पिलावे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"ब्रह्म ब्रह्मानम् (४।१) आ गावः (४।२१) एका च मे (५।१५) इति गा लवणं पाययत्युपतापिनीः प्रजननकामाः प्रपां अक्लाग्नि" (कौशिकसूत्र ३।२)॥

तथा गोपुष्टिकर्ममें इसी सूक्तसे गोष्ठमें आतीहुई गौओंके सामने खड़ा होवे॥

और इसी कर्ममें इस सूक्तसे इन्द्रदेवको चरुकी तीन आहुति देय तथा "प्रजावतीः" इस सातवीं ऋचासे जङ्गलको जाती हुई गौओंका अनुमन्त्रण करे॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"आ गाव इति आयतीः प्रत्युत्तिष्ठति। [प्रावृषि प्रथमधारस्य] इन्द्राय त्रिर्जुहोति। प्रजावतीरिति प्रतिष्ठमाना अनुमन्त्रयते" (कौशिकसूत्र ३।४)॥

तथा इसी कर्ममें "प्रजावतीः" इन सातवीं आठवीं ऋचासे बछड़ेकी लारसे मिश्रित नवीन दुग्धका संपातन और अभिमंत्रण करके प्राशन करे॥

तथा इन्हीं दो ऋचाओंसे गौओंको अभिमंत्रित करके दान देय॥

तथा जलपूर्ण पात्रका अभिमंत्रण करके गोठके मध्यमें लेजावे।

इसी प्रकार सारूपवत्सौदनमें गूगल लवण और शकृत्पिण्डों को डाल कर अग्निमें तीन रात्रि तक दवा रहने दे फिर चौथे दिन निकाल कर इन दो ऋचाओंसे सम्पातन और अभिमन्त्रण करके खावे॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-'प्रजावतीः (७, ८) प्रजापतिः (६।७) इति गोष्ठकर्माणि गृष्टे पीयूषं श्लेष्ममिश्रं अश्नाति" (कौशिकसूत्र ३।२)॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सोमयागके माध्यन्दिनसवनमें दक्षिणाके लिये आई हुई गौओं के प्रति यजमान हाथमें सुवर्णको लेकर इस सूक्तको पढ़ता हुआ उठे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—'हिरण्यहस्तो यजमानो बहिर्वेदि दक्षिणा आयतीरा गाव इति प्रत्युत्तिष्ठतीति" (वैतानसूत्र ३ । ११) ॥

तत्र प्रथमा ॥

आ गावो॑ अग्मन्नु॒त भ॒द्रम॑क्र॒न्त्सीद॑न्तु गो॒ष्ठे र॒णय॑न्त्व॒स्मे ।
प्र॒जाव॑तीः पुरु॒रूपा॑ इ॒ह स्यु॒रिन्द्रा॑य पू॒र्वीरु॒षसो॒ दुहा॑नाः ॥ १ ॥

आ । गावः॑ । अ॒ग्म॒न् । उ॒त । भ॒द्रम् । अ॒क्र॒न् । सीद॑न्तु । गो॒ऽस्थे । र॒णय॑न्तु । अ॒स्मे इति॑ ।
प्र॒जाऽव॑तीः । पु॒रु॒ऽरूपाः॑ । इ॒ह । स्यु॒ः । इन्द्रा॑य । पू॒र्वीः । उ॒षसः॑ । दुहा॑नाः ॥ १ ॥

गावः [आ] अग्मन् अस्मान् अभिलक्ष्य आगच्छन्तु । ❀ "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति लोडर्थे लुङ् । "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "गमहन०" इति उपधालोपः ❀ ॥ उत अपि च भद्रम् कल्याणम् अक्रन् कुर्वन्तु । ❀ पूर्ववल्लुङ् ❀ ॥ गावस्तिष्ठन्त्यत्रेति गोष्ठम् । तस्मिन्नस्मदीये गोष्ठे सीदन्तु उपविशन्तु ॥ अस्मे अस्मान् रणयन्तु क्षीरादिप्रदानेन रमयन्तु । यद्वा अस्मे अस्मासु रमन्ताम् ॥ प्रजावतीः प्रजावत्यः बह्वपत्याः पुरुरूपाः बहुरूपाः श्वेतकृष्णारुणाद्यनेकवर्णाः इह अस्मिन् यजमानगृहे स्युः समृद्धा भवेयुः ॥ पूर्वीः बह्वीः उषसः उषःकालोपलक्षितान् । ❀ "०अत्यन्तसंयोगे" द्वितीया ❀ । सर्वकालम् इन्द्राय इन्द्रार्थं सांनाय्यार्थम् आशिरार्थं च पयो दुहानाः । भवन्तु इति शेषः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गौएँ हमको लक्ष्य करके आवें, और कल्याण करें, गोठमें बैठें, हमें क्षीर आदि देकर आनन्दित करें। प्रजा वाली श्वेत कृष्ण आदि अनेक रूप वाली गौएँ इस यजमानके घरमें बढ़ें। अनेक उषःकालों तक इन्द्रको बुलानेके लिये दुग्धको दुहाती रहें॥१॥

द्वितीया॥

इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद् ददाति न स्वं मुषायति।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम्॥ २॥

इन्द्रः। यज्वने। गृणते। च। शिक्षते। उप। इत। ददाति। न। स्वम्। मुषायति।
भूयःऽभूयः। रयिम्। इत्। अस्य। वर्धयन्। अभिन्ने। खिल्ये। नि। दधाति। देवऽयुम्॥ २॥

यज्वने यागं कुर्वते गृणते स्तुवते च जनाय इन्द्रो देवः शिक्षते। दानकर्मायम्। गाः प्रयच्छति। यद्वा यज्वने स्तोत्रे च शिक्षते गवां लाभोपायम् उपदिशति। ❀ शिक्ष विद्योपादाने ❀। शिक्षानन्तरं स्वयम् उपेत्य। इच्छब्दः अवधारणे। बह्वीस्ता गाः ददात्येव। तस्य च यज्वनः स्तोतुश्च स्वम् धनं न मुषायति न मुष्णाति नापहरति। अपि तु भूयोभूयः बहुतरम् अस्य यज्वनः स्तोतुश्च रयिम् धनं वर्धयन्नित् समृद्धं कुर्वन्नेव वर्तते॥ एवम् ऐहिकफलविषयम् उक्तम्। आमुष्मिकविषयेप्याह। तं देवयुम् देवान् आत्मन इच्छन्तं यज्वानं स्तोतारं च अभिन्ने दुःखेन असंभिन्ने खिल्ये खिलम् अप्रहतं स्थानम् तत्र भवं खिल्यम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

१४ ६ २६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[तस्मिन्] अयज्वभिः अगृणद्भिश्च अनाक्रान्ते नाकस्य पृष्ठे नि दधाति स्थापयति । ❀ देवयुम् इति । देवशब्दात् "सुप आत्मनः क्यच्"। "न च्छन्दस्यपुत्रस्य" इति ईत्वदीर्घयोः प्रतिषेधः। "क्याच्छन्दसि" इति उप्रत्ययः ❀ ॥

याग करने वाले और स्तुति करनेवाले पुरुषको इन्द्रदेव गोप्राप्तिके उपायका उपदेश देते हैं । उपदेश देनेके अनन्तर वही बहुतसी गौओंको देते हैं और उस यजमानके तथा स्तोताके भी धनका अपहरण नहीं करते हैं, किन्तु इस यजमान स्तोताकी धनसमृद्धिको बढ़ाते ही रहते हैं (इस प्रकार इस लोकमें मिलने वाला फल कह दिया अब परलोकमें मिलने वाला फल कहते हैं, कि–) उस देवभक्त यजमान और स्तोताको सूर्यदेव दुःखसे रहित अप्रहत स्थान स्वर्गमें स्थापित करते हैं, उसमें यज्ञ न करने वाले नहीं पहुँचते हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित् ताभिः सचते गोपतिः सह ॥ ३ ॥

न । ताः । नशन्ति । न । दभाति । तस्करः । न । आसाम् । आमित्रः । व्यथिः । आ । दधर्षति ।
देवान् । च । याभिः । यजते । ददाति । च । ज्योक् । इत् । ताभिः । सचते । गोऽपतिः । सह ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ताः इन्द्रेण दत्ता गावः न नशन्ति न नश्यन्तु ॥ तस्करः चोरश्च न दभाति न हिनस्तु । ❀ नश अदर्शने । दन्भु दम्भे । आभ्यां लेटि यथाक्रमम् अडागम आडागमश्च । छान्दसो विकरणस्य लुक् ❀ ॥ आसां गवाम् आमित्रः अमित्राः शत्रवः तत्संबन्धी तत्कृतो व्यथिः व्यथाजनकम् आयुधं ना दधर्षति आधर्षणं पीडां मा करोतु ॥ याभिर्गोभिः देवान् यजते क्षीरादिहविर्द्वारा याश्च गास्तत्र यज्ञे दक्षिणात्वेन ददाति ताभिर्गोभिः सह गोपतिः गोस्वामी यजमानः ज्योगित् चिरकालमेव सचते समवैति सेवते वा । न कदाचिद् वियुज्यत इत्यवधारणाभिप्रायः ॥

इन्द्रकी दी हुई वे गौएँ नष्ट न हों, चोर भी उनका संहार न कर सके, इन गौओंके शत्रुओंका व्यथा करने वाला आयुध भी इनको पीड़ित न कर सके । जिन गौओंके दुग्ध आदिके द्वारा यजमान देवताओंकी पूजा करता है और जिन गौओंको दक्षिणा-रूपमें देता है । उन गौओंके साथ गोस्वामी यजमान चिरकाल तक रहे, कभी वियुक्त न होवे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥ ४ ॥

न । ताः । अर्वा । रेणुऽककाटः । अश्नुते । न संस्कृतत्रम् । उप । यन्ति । ताः । अभि ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उरुऽगायम् । अभयम् । तस्य । ताः । अनु । गावः । मर्तस्य । वि ।

चरन्ति । यज्वनः ॥ ४ ॥

अर्वा हिंसको व्याघ्रादिः रेणुककाटः पादाघातेन रेणोः पार्थिवस्य रजस उद्भेदकः । ❀ कटिर्भेदनकर्मा ❀ । एवं क्रूरो व्याघ्रादिर्दुष्टमृगः ता गाः नाश्नुते न प्राप्नोतु ॥ तथा ता गावः संस्कृतत्रम् । संस्कृतं विशसितं त्रायते पालयतीति संस्कृतत्रो मांसपाचकः । उक्तं हि ।

संस्कृतः स्याद् विशसितः संस्कृतत्रश्च पाचकः ।

इति । तम् अभिलक्ष्य नोप यन्ति नोपगच्छन्तु ॥ तस्य यज्वनो मर्तस्य मनुष्यस्य उरुगायम् विस्तीर्णगमनम् अभयं भयरहितं देशम् अनुलक्ष्य ता गावो वि चरन्ति विविधं चरन्तु ॥

हिंसक और पैरोंसे धूलको उड़ाने वाला व्याघ्र आदि दुष्ट पशु इन गौओंको प्राप्त न हो और गौएँ संस्कृतत्रकी अर्थात् कटे हुए मांसको पकाने वालेकी † ओर न जावें, इस मनुष्य यजमानके विस्तृत गमन वाले भयरहित देशकी ओर अनेक प्रकारसे विचरण करें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य

प्रथमस्य भक्षः ।

इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा

चिदिन्द्रम् ॥ ५ ॥

† कहा भी है, कि—"संस्कृतः स्याद् विशसितः संस्कृतत्रश्च पाचकः ॥–काटी हुई वस्तु संस्कृत कहलाती है और उसका पाचक संस्कृतत्र कहलाता है ॥"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गावः । भगः । गावः । इन्द्रः । मे । इच्छात् । गावः । सोमस्य । प्रथमस्य । भक्षः ।

इमाः । याः । गावः । सः । जनासः । इन्द्रः । इच्छामि । हृदा । मनसा । चित् । इन्द्रम् ॥ ५ ॥

गाव एव भगः धनं पुरुषस्य सौभाग्यं वा । ततश्च मे मह्यं गावः यथा भवन्ति तथा इन्द्र इच्छात् इच्छेत् । ❀ इषु इच्छायाम् । अस्मात् लेटि आडागमः । "इषुगमियमां छः" ❀ । प्रथमस्य मुख्यस्य हविषां मध्ये श्रेष्ठस्य सोमस्य गावः भक्षो भवन्ति । अभिषुतो हि सोमो गव्येन पयसा दध्ना च श्रीयते ॥ इमा या गावो दृश्यन्ते हे जनासः जनाः स एवेन्द्रः । प्रतिनिर्दिश्यमानापेक्षं स इत्येकवचनम् । ता एव गावः इन्द्र इति उपजीव्योपजीवकभावेन इन्द्रात्मना गवां स्तुतिः । अतस्तदीयेन पयःप्रभृतिना हविषा इन्द्रं यष्टुं हृदा हृदयेन मनसा तदन्तर्वर्तिना ज्ञानकरणेन च इच्छामि कामये । चिच्छब्दः अप्यर्थे ॥

गौएँ ही पुरुषका धन वा सौभाग्यरूप हैं, इस कारण जिस प्रकार मेरे गौएँ हों, तैसे इन्द्र इच्छा करें । हवियोंमें श्रेष्ठ और मुख्य सोमकी गौएँ भक्त होती हैं अर्थात् अभिषुत सोम गौके दूध वा दहीमें पकाया जाता है । हे मनुष्यो ! यह जो गौएँ दीख रही हैं यही इन्द्र (रूप) हैं । अतः इनके दूध आदिकी बनी हुई हविसे मैं हृदयके द्वारा और उसके भीतर रहने वाले ज्ञानके द्वारा इन्द्रकी पूजा करना चाहता हूँ ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ॥ ६ ॥

यूयम् । गावः । मेदयथ । कृशम् । चित् । अश्रीरम् । चित् । कृणुथ । सुऽप्रतीकम् ।

भद्रम् । गृहम् । कृणुथ । भद्रऽवाचः । बृहत् । वः । वयः । उच्यते । सभासु ॥ ६ ॥

हे गावः यूयं कृशं चित् कृशमपि शरीरिणं मेदयथ स्नेहयथ पयोदध्यादिना आप्याययथ ॥ अश्रीरं चित् अश्रीकम् अशोभनाङ्गमपि पुरुषं सुप्रतीकम् शोभनावयवं कृणुथ कुरुथ ॥ हे भद्रवाचः भद्राः कल्याण्यः हम्भारवलक्षणा वाचो यासां तास्तथोक्ताः ईदृश्यो हे गावः अस्मदीयं गृहम् भद्रम् कल्याणम् अलंकृतं कृणुत कुरुत । गोसमृद्धं हि गृहं कल्याणं भवति ॥ वः युष्माकं सबन्धि वयः अन्नं क्षीरदध्यादिलक्षणं सभासु जनसमूहेषु बृहत् महद् अधिकम् उच्यते प्रशस्यते अहो गवां क्षीरं दध्याज्यम् इति ॥

हे गौओं ! तुम दुर्बल प्राणीको भी दुग्ध दही आदिसे पुष्ट करो, अशोभन अङ्ग वाले पुरुषको भी शोभन अंग वाला करो, हे कल्याणमय हंभा शब्द करने वाली गौओं ! तुम हमारे घरको अलंकृत करो। तुम्हारा क्षीर दधि आदिरूप अन्न जनसमूहमें प्रशंसित होता है, कि-गौओंका दूध दही परम श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मा व॑ स्ते॒न ई॑शत॒ माघशं॑सः॒ परि॑ वो रु॒द्रस्य॑ हे॒तिर्वृ॑णक्तु ॥७

प्र॒जाऽव॑तीः । सु॒ऽय॒व॑से । रु॒शन्तीः॑ । शु॒द्धाः । अ॒पः । सु॒ऽप्र॒पा॒ने ।
पि॒ब॑न्तीः ।

मा । वः॒ । स्ते॒नः । ई॒श॒त॒ । मा । अ॒घऽशं॑सः । परि॑ । वः॒ । रु॒द्रस्य॑ ।
हे॒तिः । वृ॒ण॒क्तु ॥ ७ ॥

गावः प्रजावतीः प्रजाभिः पुत्रपौत्रादिभिरुपेताः सूयवसे शोभनतृणयुक्ते देशे रुशन्तीः तृणं भक्षयन्तीः शुद्धाः कालुष्यरहिता अपः सुप्रपाणे सुखेन पातव्ये शोभनावतरणमार्गयुक्ते तटाकादौ पिबन्तीः ईदृशीर्वः युष्मान् स्तेनः तस्करः मा ईशत अपहर्तुम् ईश्वरो मा भूत् । अघशंसः । अघम् पापं वधलक्षणं शंसति अभिलषतीति अघशंसो व्याघ्रादिर्दुष्टमृगः । सोपि मा ईशत ईश्वरो मा भूत् । रुद्रस्य ज्वराभिमानिदेवस्य हेति आयुधं वः युष्मान् परि वृणक्तु परिवर्जयतु । युष्मान् परिहृत्य अन्यत्र वर्तताम् इत्यर्थः ॥

[इति पञ्चमेनुवाके] प्रथमं सूक्तम् ॥

पुत्र पौत्र आदिसे सम्पन्न, शोभन तृण वाले देशमें तृणोंको भक्षण करती हुई और सुखसे उतरने योग्य मार्ग वाले जलाशयमें निर्मल जलको पीती हुई तुमको चोर न हर सके और तुमको मारना चाहने वाला व्याघ्र आदि भी तुम्हारा हरण करनेको समर्थ न हो। ज्वरके अभिमानी देवता रुद्रका आयुध तुमको छोड़देय

पञ्चम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१२३) ॥

"इमम् इन्द्र" इति सूक्तेन संग्रामजयार्थम् आज्यहोमम् सक्तु होमम् धनुरिध्माधानम् इषुसमिदाधानम् राज्ञे अभिमन्त्रितधनुः प्रदानं च कुर्यात् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूत्रितं हि । "इमम् इन्द्रेति युक्तयोः प्रदानान्तानि" इति [कौ० २. ५] ॥

तथा "इमम् इन्द्र" इति सूक्तेन अभिषिक्तस्य राज्ञः प्रातःप्रातरभिमन्त्रणम् उदपात्रसमासेचनं [च] कुर्यात् । तद्व उक्तं कौशिकेन । ["इमम् इन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इति क्षत्रियं प्रातःप्रातरभिमन्त्रयत उक्तं समासेचनम्" इति । कौ० २. ८ ॥

तथा क्रव्याच्छमनकर्मणि अनेन सूक्तेन वृषभम् अनड्वाहं वा अभिमन्त्रयते। तद्व उक्तं कौशिकेन]। "वैश्वदेवीम् इति वत्सतरीम् आलम्भयति इमम् इन्द्रेति वृषभम् अनड्वाहम्" इति [कौ० ६. ४]॥

'इमं इन्द्र' इस सूक्तसे संग्राममें विजय पानेके लिये घृतहोम सक्तुहोम, धनुषरूपी ईंधनका आधान और बाणरूपी समिधाका रखना और राजाको अभिमन्त्रित धनुष देना आदि भी करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"इमं इन्द्रेति युक्तयोः प्रदानान्तानि" (कौशिकसूत्र २ । ५) ।

तथा 'इमं इन्द्र' इस सूक्तसे अभिषिक्त राजाका प्रतिदिन अभिमन्त्रण करे और जलपूर्ण पात्रसे जल भी छिड़के । इसी बातको कौशिक सूत्रमें कहा है, कि—'इमं इन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इति क्षत्रियं प्रातः प्रातरभिमन्त्रयत उक्तं समासेचनम्" (कौशिकसूत्र २ । ८) ॥

तथा क्रव्याच्छमनकर्ममें इस सूक्तसे वृषभका अभिमन्त्रण करे इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि-"वैश्वदेवीं इति वत्सतरीं आलम्भयति इमं इन्द्रेति वृषं अनड्वाहम्" (कौशिकसूत्र ६।४)

तत्र प्रथमा ॥

इमामिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥ १ ॥

इमम् । इन्द्र । वर्धय । क्षत्रियम् । मे । इमम् । विशाम् । एकऽवृषम् । कृणु । त्वम् ।

निः । अमित्रान् । अक्ष्णुहि । अस्य । सर्वान् । तान् । रन्धय । अस्मै । अहम्ऽउत्तरेषु ॥ १ ॥

हे इन्द्र त्वं मे मदीय इमं क्षत्रियम् राजानं वर्धय पुत्रपौत्रादिभिर्वस्तुवाहनादिभिश्च समृद्धं कुरु । वृषाम् सेचनसमर्थानां वीर्यवतां पुरुषाणां मध्ये इमं राजानम् एकवृषम् मुख्यसेक्तारम् असहायशूरं कृणु कुरु । अस्य राज्ञः सर्वान् अमित्रान् शत्रून् निरक्ष्णुहि निर्गतव्याप्तिकान् कुरु । संकुचितप्रभावान् कुरु इत्यर्थः । ❀ अक्षू व्याप्तौ । स्वादित्वात् श्नुः ❀ । तान् तथाविधान् शत्रून् अस्मै राज्ञे रन्धय वशीकुरु । कर्मकरान् कुरु इत्यर्थः । अहमपि मन्त्रसामर्थ्येन उत्तरेषु उत्कृष्टतरेषु इन्द्रादिलोकपालेषु मध्ये इमम् एकं करोमीत्यर्थः ॥

हे इन्द्र ! आप मेरे इस क्षत्रिय राजाको पुत्र पौत्र आदि तथा वस्तु वाहन आदिसे समृद्ध करिये । और वीर्यवान् पुरुषोंमें इस राजाको मुख्यसेक्ता करिये अर्थात् किसीकी सहायताकी अपेक्षा न रखने वाला शूर करिये । और इस राजाके सब शत्रुओंको प्रभावहीन करिये फिर उन राजाओंको इसके वशमें लाइये । और मैं भी मन्त्रकी शक्तिसे इस राजाको उत्कृष्ट इन्द्र आदि लोकपालोंमें एक बनाता हूँ ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वितीया ॥

एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै

आ। इमम्। भज। ग्रामे। अश्वेषु। गोषु। निः। तम्। भज। यः।
अमित्रः। अस्य।
वर्ष्म। क्षत्राणाम्। अयम्। अस्तु। राजा। इन्द्र। शत्रुम्। रन्धय।
सर्वम्। अस्मै ॥ २ ॥

हे इन्द्र इमं राजानं ग्रामे जनसमूहे अश्वेषु गोषु च विषये आ भज आभक्तम् आसमन्तात् संश्लिष्टं कुरु ॥ अस्य राज्ञो यः अमित्रः शत्रुरस्ति तं निर्भज ग्रामादिभ्यो निर्भक्तं वियुक्तं कुरु ॥ तथा क्षत्राणाम् अन्येषां क्षत्रियाणां वर्ष्मन् वर्ष्मणि देहे प्रशस्ते शरीरावयवे शिरसि अयम् अभिषिक्तो राजा वर्तमानोस्तु ॥ सर्वान् [शत्रून्] सर्वं च राष्ट्रं अस्मै अभिषिक्ताय राज्ञे रन्धय वशीकुरु। ❀ रध हिंसासंराद्धयोः। "रधिजभोरचि" इति नुमागमः। रन्धयतिर्वशगमने इति निरुक्तम् [नि० १०. ४०] ❀ ॥

हे इन्द्र ! इस राजाको जनसमूह घोड़े और गौओंमें हिला मिला रहने वाला करो और इस राजाका जो शत्रु है उसको घोड़े गौ और मनुष्योंसे अलग रक्खो तथा अन्य क्षत्रियोंके शिर पर यह राजा वर्तमान रहे। सब शत्रुओंको और सब राष्ट्रोंको इस अभिषिक्त राजाके वशमें करो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्वपतिरस्तु
राजा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य

अयम् । अस्तु । धनऽपतिः । धनानाम् । अयम् । विशाम् ।
विश्पतिः । अस्तु । राजा ।

अस्मिन् । इन्द्र । महि । वर्चांसि । धेहि । अवर्चसम् । कृणुहि ।
शत्रुम् । अस्य ॥ ३ ॥

अयं राजा धनानाम् सुवर्णरजतमणिमुक्ताप्रवालादीनां धनपतिः स्वामी [अस्तु] भवतु । धनानां पतिर्धनपतिरित्येव धनाढ्यत्वे सिद्धे पुनर्धनानाम् इति व्यस्तनिर्देशः ईशितव्यस्य धनस्य बहुत्वख्यापनार्थः । न हि राजपुरुष इत्युक्ते राज्ञो पुरुषः राज्ञां पुरुषः इति संख्याविशेषप्रतीतिरस्ति किं तु राजसंबन्धमात्रं प्रतीयते एवम् अत्रापि धनपतिरिति धनसंबन्धमात्रे अवगते तद्बहुत्वप्रतिपादनाय व्यस्तनिर्देश इति न पौनरुक्त्यम् । अतो वृत्त्यवृत्तिभ्यां स्वामित्वं बहुत्वं च प्रतिपाद्यते ॥ तथा अयं राजा विशाम् प्रजानां विश्पतिरस्तु स्वामी भवतु । विशां विश्पतिरिति पूर्ववद् व्याससमासयोरभिप्रायः ॥ हे इन्द्र अस्मिन् राजनि [महि] महान्ति वर्चांसि तेजांसि पराभिभवनसमर्थानि वीर्याणि धेहि स्थापय ॥ अस्य राज्ञः शत्रुम् अवर्चसं कृणुहि अतेजस्कं कुरु ॥

यह राजा सुवर्ण चाँदी मणि मोती मूँगे आदिका स्वामी हो, और यह राजा प्रजाओंका स्वामी हो, हे इन्द्र ! इस राजामें शत्रुओंको तिरस्कृत करने वाले तेजोंको स्थापित करो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् ॥ ४ ॥

अस्मै । द्यावापृथिवी इति । भूरि । वामम् । दुहाथाम् । घर्मदुघे इवेति घर्मदुघेऽइव । धेनू इति ।

अयम् । राजा । प्रियः । इन्द्रस्य । भूयात् । प्रियः । गवाम् । ओषधीनाम् । पशूनाम् ॥ ४ ॥

हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ अस्मै पुरोवर्तिने मदीयाय राज्ञे भूरि प्रभूतं वामम् वननीयं धनं दुहाथाम् प्रयच्छतम् । ❀ दुहेर्लोटि अदादित्वात् शपो लुक् ❀ । तत्र दृष्टान्तः । घर्मदुघे इवेति । घर्मः प्रवर्ग्यः । तदर्थं पयो या गौर्दोग्धि सा घर्मदुघा । ❀ "दुहः कब् घश्च" इति कब्घत्वे ❀ । यथा घर्मदुघे धेनू बहुलं क्षीरं दुहाते तद्वद् वात्सल्येन बहुलं धनं द्यावापृथिव्यौ प्रयच्छताम् इत्यर्थः ॥ एवं धनसमृद्धौ सत्यां यागाद्यनुष्ठानेन अयं राजा इन्द्रस्य यज्ञभाजो देवस्य प्रियः इष्टतरो भूयात् ॥ तत्प्रियत्वाद्व वृष्टौ सत्यां गवाम् ओषधीनाम् व्रीहियवादिसस्यानाम् अन्येषां पशूनाम् द्विपाच्चतुष्पाल्लक्षणानां प्राणिनाम् अयं राजा प्रियो भूयात् इति संबंधः ॥

हे द्यावापृथिवी ! इस सामने विद्यमान हमारे राजाके लिये आप बहुतसा धन दीजिये, जैसे प्रवर्ग्यके लिये दूध दुहने वाले को गौ बहुतसा दूध देती है इसी प्रकार हे द्यावापृथिवी ! आप इसको बहुतसा धन दीजिये । इस प्रकार धनकी वृद्धि होने पर यह राजा याग आदिका अनुष्ठान कर यज्ञभाक् इन्द्रदेवका प्रिय होजावे । और इन्द्रका प्रिय होनेसे वृष्टि होने पर गौओंका व्रीहि यव आदि औषधियोंका तथा दो पैर और चार पैर वाले अन्य पशुओंका भी यह राजा प्रिय होजाय ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पञ्चमी ॥

युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते
यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम्

युनज्मि । ते । उत्तरऽवन्तम् । इन्द्रम् । येन । जयन्ति । न । पराऽजयन्ते । यः । त्वा । करत् । एकऽवृषम् । जनानाम् । उत । राज्ञाम् । उतऽतमम् । मानवानाम् ॥ ५ ॥

हे राजन् ते तव उत्तरावन्तम् अतिशयितोत्कर्षवन्तम् इन्द्रं युनज्मि योजयामि सखित्वापादनेन समानकार्यं करोमि । येन इन्द्रेण प्रेरितास्त्वदीया भटाः शत्रुसेनां जयन्ति न पराजयन्ते पराजयं न प्राप्नुवन्ति । ❀ "विपराभ्यां जेः" इति आत्मनेपदम् ❀ । अपि च त्वा त्वां य इन्द्रः जनानाम् अन्येषां शूरजनानाम् एकवृषम् गोयूथे प्रधानभूतोयं वृष एकवृषः तद्वद् मुख्यं सर्वोत्कृष्टं करत् करोति । उतशब्दः अप्यर्थे । राज्ञाम् अन्येषामपि एकवृषम् एकवृषवद् अभिभवितारं करोति । मानवानाम् मनोरपत्यानां मनुष्यजातीयानाम् उत्तमम् उत्कृष्टं करोति । यद्वा मानवानाम् मनुवंश्यानाम् इलपुरूरवःप्रभृतीनां राज्ञां मध्ये उत्तमम् प्रजापरिपालनशौर्यादिगुणैरुत्कृष्टं करोति । तथाविधम् इन्द्रं युनज्मीति संबन्धः ॥

हे राजन् ! मैं परम उत्कर्ष वाले इन्द्रको तेरा मित्र बनाता हूँ, उस इन्द्रके प्रेरित तेरे मित्र शत्रुसेनाको जीतें. पराजय न पावें, जो इन्द्रदेव शूरोंमें तुझको वृषभकी समान बनाते हैं और राजाओं में भी वृषभकी समान मुख्य करते हैं तथा जो इन्द्र तुझको मनुके वंशमें उत्पन्न हुए इन पुरूरवा आदि राजाओंमें प्रजापालन तथा शूरता आदि गुणोंसे उत्कृष्ट करते हैं, ऐसे इन्द्रसे तेरी मित्रता कराता हूँ ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

षष्ठी ॥

उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामा भरा भोजनानि

उत्तरः । त्वम् । अधरे । ते । सऽपत्नाः । ये । के । च । राजन् ।

प्रतिऽशत्रवः । ते ।

एकऽवृषः । इन्द्रऽसखा । जिगीवान् । शत्रुऽयताम् । आ । भर ।

भोजनानि ॥ ६ ॥

हे राजन् त्वम् उत्तरः सर्वोत्कृष्टतरो भव । ते त्वदीयाः सपत्नाः अधरे निकृष्टा भवन्तु । तान् विशिनष्टि । ते । ❀ द्वितीयार्थे षष्ठी ❀। त्वां प्रति ये के च जनाः शत्रवः शत्रुभावेन प्रतिकूलम् आचरन्ति ते सर्वे अधरे भवन्तु इत्यर्थः ॥ अपि च एकवृषः प्रधानभूतः इन्द्रसखा इन्द्रेण सख्या युक्तः जिगीवान् शत्रून् जयन् शत्रूयताम् शत्रुत्वम् आत्मन इच्छतां शत्रुवद्द आचरतां वा भोजनानि भोगसाधनानि धनानि आ भर आहर । सर्वान् शत्रून् विजित्य तदीयं सर्वं धनम् अपहरेत्यर्थः । ❀ जिगीवान् इति । जि जये । अस्माच्छान्दसो वर्तमाने लिट् । तस्य च लिटः क्वसुरादेशः । "सन्लिटोर्जेः" इति अभ्यासाद् उत्तरस्य कुत्वम् । शत्रूयताम् इति । "सुप आत्मनः क्यच्" । "उपमानाद् आचारे" इति वा क्यच् । तदन्तात् लटः शत्रादेशे "शतुरनुमः०" इति विभक्त्युदात्तत्वम् ❀ ॥

हे राजन् ! आप सबसे श्रेष्ठ हूजिये, आपके शत्रु नीचे हों, जो आपसे प्रतिकूल भावसे वर्ताव करते हैं, वे शत्रु नीचे हों और इन्द्र की मित्रतासे आप वृषभकी समान प्रधान बनकर शत्रुकी समान आचरण करने वाले पुरुषोंसे भोगके साधन धनोंको लाइये ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सप्तमी ॥

सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीको बाधस्व शत्रून्।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामा खिदा भोजनानि

सिंहऽप्रतीकः। विशः। अद्धि। सर्वाः। व्याघ्रऽप्रतीकः। अव। बाधस्व। शत्रून्।

एकऽवृषः। इन्द्रऽसखा। जिगीवान्। शत्रूऽयताम्। आ। खिद। भोजनानि ॥ ७ ॥

सिंहप्रतीकः सिंहशरीरः सिंहतुल्यपराक्रमः सन् आज्ञामात्रेण सर्वा विशः स्वराष्ट्रस्थाः प्रजाः अद्धि भुङ्क्ष्व। ❀ अद भक्षणे। "हुझल्भ्यो हेर्धिः" इति धित्वम् ❀॥ व्याघ्रप्रतीकः व्याघ्रशरीरः व्याघ्रवद् आक्रम्य पर्यन्तस्थान् शत्रून् अप बाधस्व। अन्यद् व्याख्यातम्। एतावांस्तु विशेषः। शत्रुसंबन्धीनि धनानि आ खिद आच्छिन्धि। अपहरेत्यर्थः। ❀ आङ्पूर्वः खिदिः आच्छेदने वर्तते यथा "आक्खिदते च प्रक्खिदते च" [तै० सं० ४. ५. ६. २] इति ❀॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

सिंहकी समान पराक्रमी आप, अपनी आज्ञासे ही अपने राज्यमें स्थित प्रजाओंको भोगिये। व्याघ्रकी समान आक्रमण करके शत्रुओंको पीड़ा दीजिये। आप इन्द्रकी मित्रतासे बैलोंमें मुख्य वृषभकी समान बन कर शत्रुभावसे आचरण करने वालों के धनोंको नष्ट करिये ॥ ७ ॥

चतुर्थ काण्डके पञ्चम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (१२४)॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अग्नेर्मन्वे" इति सूक्तसप्तकस्य बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकादौ विनियोगः । तथा च कौशिकं सूत्रम् । "उत देवाः [४. १३] मृगारसूक्तानि [४. २१–३०] उत्तमं वर्जयित्वा" इति [कौ० १. ६] । अत्र उत्तमशब्देन आ गावः [२१] इमम् इन्द्र [२२] इति आदिमे द्वे अहं रुद्रेभिः [३०] इति अन्तिमं चेति सूक्तत्रयं विवक्षितम् ॥

तथा अंहोलिङ्गगणे अग्नेर्मन्वे [२३–२९] इत्यादीनां सप्तानां सूक्तानां पाठात् सर्वरोगभैषज्यादिषु विनियोगो द्रष्टव्यः । सूत्रितं हि । "ओषधिवनस्पतीनाम् अनुक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानाम् अंहोलिङ्गाभिः" इत्यादि [कौ० ४. ८] ॥

"अग्नेर्मन्वे" इति सामिधेन्यनुमन्त्रणं कुर्यात् । तद् उक्तं वैताने । "अग्नेर्मन्व इति सामिधेनीरनुमन्त्रयते" इति [वै० १. २] ॥

'अग्नेर्मन्वे' इन सात सूक्तोंका बृहद्गणमें पाठ है अतः शान्त्युदक आदिमें इनका विनियोग है । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–"उत देवाः (४ । १३) मृगार–सूक्तानि (४ । २१–३०) उत्तमं वर्जयित्वा ॥–उत देवाः इस चतुर्थकाण्डके इकीसवें सूक्तसे तीसवें सूक्त तक उत्तमको छोड़ कर मृगारसूक्त हैं ।" (कौशिकसूत्र १ । ९)॥ इनमें उत्तम शब्दसे 'आ गावः' यह इकीसवाँ, 'इमं इन्द्र' यह बाईसवाँ इस प्रकार आदिके दो और 'अहं रुद्रेभिः' यह तीसवाँ अन्तका सूक्त लिया गया है ।

तथा अंहोलिंगगणमें 'अग्नेर्मन्वे इस तेईसवें सूक्तसे उन्तीसवें सूक्त तक सात सूक्तोंका पाठ है अतः सर्व रोगोंकी चिकित्सामें इनका विनियोग होता है । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–'ओषधिवनस्पतीनां अनुक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानां अंहोलिंगाभिः" (कौशिकसूत्र ४ । ८)॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'अग्नेर्मन्वे' इस सूक्तसे सामिधेनीका अनुमन्त्रण करे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–अग्नेर्मन्व इति सामिधेनीरनुमन्त्रयते" (वैतानसूत्र १। २)॥

तत्र प्रथमा ॥

अ॒ग्नेर्म॑न्वे प्रथ॒मस्य॒ प्रचे॑तसः पाञ्च॑जन्यस्य बहु॒धा यमि॒न्धते॑ ।

विशो॑विशः प्रवि॑शि॒वांस॑मीमहे॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः १

अ॒ग्नेः । म॒न्वे । प्र॒थ॒मस्य॑ । प्रऽचे॑तसः । पाञ्च॑ऽजन्यस्य । ब॒हु॒ऽधा । यम् । इ॒न्धते॑ ।

विशः॑ऽविशः । प्र॒वि॒शि॒ऽवांस॑म् । ई॒म॒हे॒ । सः । नः॒ । मु॒ञ्च॒तु॒ । अंह॑सः १

प्रथमस्य मुख्यस्य प्रचेतसः प्रकृष्टज्ञानस्य पाञ्चयज्ञस्य। देवयज्ञः पितृयज्ञः भूतयज्ञः मनुष्ययज्ञः ब्रह्मयज्ञः इत्येते नित्यकर्तव्याः प्रसिद्धाः पञ्चयज्ञाः। तैराराधनीयः पाञ्चयज्ञः। यद्वा पञ्चधा यज्ञा विभक्ता अग्निष्टोमादयः पञ्चयज्ञाः। "धानाः करम्भः परिवापः पुरोडाशः पयस्या तेन पङ्क्तिराप्यते तद्द यज्ञस्य पाङ्क्तत्वम्" इति तैत्तिरीयश्रुतेः [तै० सं० ६. ५. ११. ४] "यो ह वै यज्ञं हविष्पङ्क्तिं वेद" [ऐ० ब्रा० २. २४] इत्याद्यैतरेयकश्रुतेश्च यज्ञस्य पञ्चात्मकता। तादृगग्निष्टोमादिनिर्वर्तकः पाञ्चयज्ञः। यद्वा यज्ञशब्देन तन्निष्पादका जना विवक्षिताः। ते च निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः। गन्धर्वाप्सरसो देवा असुरा रक्षांसीत्येके। तेषु भवः पाञ्चयज्ञः। तथा च तैत्तिरीयकम् "यं पाञ्चजन्यं बहवः समिन्धते" [तै० सं० ४. ७. १५. १] इति। तस्य एवंगुणविशिष्टस्य अग्नेर्माहात्म्यं मन्वे जानामि। ❀ मनु अवबोधने। तनादित्वाद् उप्रत्ययः ❀।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तदेव माहात्म्यं प्रतिपादयति बहुधा यम् इत्यादिना । बहुधा बहु-प्रकारं यम् अग्निम् इन्धते गार्हपत्यादिरूपेण संदीपयन्ति । विशो-विशः सर्वाः प्रजाः प्रविशिवांसम् जाठरादिरूपेण प्रविष्टवन्तं तम् अग्निम् ईमहे याचामहे । ❀ ईमहे यामि मन्महे इति याञ्चाकर्मसु पठितम् [निघ० ३. १६] ❀ । यद्वा । ❀ ईङ् गतौ । दैवा-दिकः ❀ । ईमहे ईयामहे स्तुतिनमस्कारादिना प्राप्नुमः । "विश्व-स्यां विशि प्रविविशिवांसम् ईमहे" इति तैत्तिरीयकम् [तै० सं० ४. ७. १५. १] । स तादृशोग्निः नः अस्मान् अंहसः सर्वानर्थ-निदानभूतात् पापात् मुञ्चतु मोचयतु । अस्मत्तः पापं विश्लेषयतु इत्यर्थः ॥

प्रधान, श्रेष्ठ ज्ञान वाले अग्नि जिनकी देवयज्ञ पितृयज्ञ भूतयज्ञ मनुष्ययज्ञ और ब्रह्मयज्ञ—इन नित्यकर्तृक यज्ञोंसे आराधना की जाती है और जिन अग्निकी तैत्तिरीयसंहिता†में प्रसिद्ध पाँच प्रकार से विभक्त अग्निष्टोम आदि यज्ञोंको पूर्ण करने वाले पाञ्चयज्ञसे उपासना कीजाती है और निषाद जिनमें पाँचवाँ है उन वर्णोंसे तथा गन्धर्व अप्सरा देवता असुर और राक्षस इन पाँचसे होने वाले यज्ञके द्वारा जिन अग्निकी उपासना कीजाती है उन अग्निके माहात्म्यको मैं जानता हूँ । इस प्रकार गार्हपत्य आदि

---

† तैत्तिरीयसंहिता ६ । ५ । ११ । ४ में कहा है, कि-"धाना करम्भः परिवापः पुरोडाशः पयस्या तेन पंक्तिराप्यते तद्व यज्ञस्य पांक्तत्वम् ॥—धाना अर्थात् भुने हुए जौ, करंभ अर्थात् दही मिले हुए सत्तू और परिवाप, पुरोडाश तथा पयस्या इनसे यज्ञकी पंक्ति होती है, यही यज्ञका पांक्तत्व है ।' और ऐतरेय ब्राह्मण २ । २४ में कहा है, कि—'यो ह वै यज्ञं हविष्पंक्तिं वेद ॥—जो हविष्पंक्ति वाले यज्ञको जानता है ।" इस प्रकार यज्ञकी पञ्चा-त्मकता प्रसिद्ध है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनेक रूपोंसे जिस अग्निको प्रदीप्त करते हैं और जो सब प्रजाओं में जठराग्निके रूपसे प्रविष्ट हैं उन अग्निसे हम प्रार्थना करते हैं‡ ऐसे अग्नि हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे बचावें ÷ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन् ।

एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः २

यथा । हव्यम् । वहसि । जातऽवेदः । यथा । यज्ञम् । कल्पयसि । प्रऽजानन् ।

एव । देवेभ्यः । सुऽमतिम् । नः । आ । वह । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ २ ॥

हे जातवेदः जातानां वेदितरग्ने यथा येन प्रकारेण हव्यम् चरुपुरोडाशादि होतव्यं हविः वहसि तत्तद्यष्टव्यदेवतां प्रापयसि यथा येन च प्रकारेण यज्ञं पाकयज्ञहविर्यज्ञसोमयागभेदेन एकाहाहीनसत्त्रात्मना च कल्पयसि विरचयसि प्रजानन् तत्तद्भिदां प्रकर्षेण अवगच्छन् । एव एवं देवेभ्यः देवानाम् अर्थे नः अस्माकं

‡ तैत्तिरीयसंहिता ४ । ७ । १५ । १ में कहा है, कि—यं पाञ्चजन्यं बहवः समिन्धते ॥ जिस पाँच जनोंसे सिद्ध होने वाले यज्ञ की बहुतसे उपासना करते हैं ॥

÷ तैत्तिरीयसंहिता ४ । ७ । १५ । १ में कहा है, कि—"विश्वस्यां दिशि प्रविविशिवांसं ईमहे ॥—सम्पूर्ण प्रजाओंमें प्रवेश करने वाले अग्निकी हम स्तुति नमस्कार आदिसे प्रार्थना करते हैं"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुमतिम् शोभनां बुद्धिम् आ वह प्रापय। यद्वा देवेभ्यः सकाशात् सुमतिम् अनुग्रहात्मिकां बुद्धिं नः अस्मान् प्रापय ॥ गतम् अन्यत् ॥

हे उत्पन्न हुओंको जानने वाले अग्ने! आप चरु पुरोडाश आदि हविको उससे पूजनीय देवताके पास जिस प्रकार पहुँचाते हैं और जिस प्रकार पाकयज्ञ हविर्यज्ञ सोमयाग एकाह और अहीनसत्रभेदसे उन यज्ञोंके भेदोंको जानते हुए रचते हो, इसी प्रकार देवताओंके पाससे हमको अनुग्रहरूपा शोभन बुद्धि प्राप्त कराइये और हे ऐसे अग्निदेव! आप हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ाइये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम्। अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ३ ॥

यामन्ऽयामन्। उपऽयुक्तम्। वहिष्ठम्। कर्मन्ऽकर्मन्। आऽभगम्। अग्निम्। ईडे।

रक्षःऽहनम्। यज्ञऽवृधम्। घृतऽआहुतम्। सः। नः। मुञ्चतु। अंहसः ॥ ३ ॥

यामन्यामन् यामनियामनि। ❀ सप्तम्या लुक् ❀। तत्तत्फलप्रापणे निमित्तभूते सति उपयुक्तम् तत्तद्धोमाधारत्वेन विनियुक्तं वहिष्ठम् वोढृतमम्। ❀ वोढृशब्दात् "तुश्छन्दसि" इति इष्ठन् प्रत्ययः "तुरिष्ठेमेयस्सु" इति तृलोपः ❀। कर्मन्कर्मन्। ❀ पूर्ववत् सप्तम्या लुक् ❀। तत्तत्फलसाधने सर्वस्मिन् कर्मणि आभगम् आभक्तव्यम् आसेव्यम् एवंगुणविशिष्टम् अग्निम् अहम् ईळे स्तौमि। पुनर्विशेष्यते। रक्षोहणम् रक्षसां हन्तारं यज्ञवृधम् यज्ञस्य अग्नि-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ष्टोमादेर्वर्धयितारं घृताहुतम् आज्येन आहुतम् आहुतिभिः संदीपितम् ॥ स न इत्यादि पूर्ववत् ॥

प्रत्येक यागमें होमके आधार होनेसे विनियुक्त हवि पहुँचाने वाले और अमुक २ फलके साधन सब कर्मोंमें सेवन करने योग्य अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ। वह अग्नि राक्षसोंका संहार करने वाले हैं, अग्निष्टोम आदि यज्ञोंको बढ़ाने वाले हैं और घृत की आहुतियोंसे उनको प्रदीप्त किया जाता है ऐसे अग्निदेव हमको पापसे मुक्त करें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् ।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ४ ॥

सुऽजातम् । जातऽवेदसम् । अग्निम् । वैश्वानरम् । विऽभुम् ।
हव्यऽवाहम् । हवामहे । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ ४ ॥

सुजातम् शोभनजन्मानम् । मन्त्रैर्निर्मथ्य आहितत्वात् । जातवेदसम् जातानां जनिमतां वेदितारम् । यद्वा । जातानि भूतजातानि एनं विदन्तीति जातवेदाः । अथ वा जातमात्र एव वेदः धनं पशुलक्षणम् अलभतेति जातवेदाः । "यत्तज्जातः पशून् अविन्दतेति तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वम् इति हि ब्राह्मणम्" [नि० ७. १९]। वैश्वानरम् विश्वनरात्मकं विश्वनरहितं वा अत एव विभुम् व्यापकं हव्यवाहम् हव्यस्य हविषा अस्माभिर्दत्तस्य वोढारम् एवंगुणविशिष्टम् अग्निं हवामहे आह्वयामः। ❀ "बहुलं छन्दसि" इति ह्वः संप्रसारणम् ❀ ॥ अन्यद्‌ गतम् ॥

मंत्रोंके निर्मथन होनेसे शोभन जन्म वाले, उत्पन्न होने वालों को जानने वाले, और उत्पन्न हुए प्राणिमात्र जिनको जानते हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अथवा जिन्होंने उत्पन्न होते ही पशुरूपी धनको प्राप्त किया है ‡ ऐसे जातवेदा और सम्पूर्ण मनुष्योंका हित करने वाले वैश्वानर व्यापक और हमारी दी हुई हविको पहुँचाने वाले अग्निदेवका हम आह्वान करते हैं, वह हमको सकल अनर्थोंकी मूल पापसे छुड़ावें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

येन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः ।

येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः ५

येन । ऋषयः । बलम् । अद्योतयन् । युजा । येन । असुराणाम् ।

अयुवन्त । मायाः ।

येन । अग्निना । पणीन् । इन्द्रः । जिगाय । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ।

ऋषयः अतीन्द्रियार्थदर्शिनः अङ्गिरःप्रभृतयः येन अग्निना युजा सख्या बलम् आत्मीयं सामर्थ्यम् उद्द्योतयन् उद्दीप्तं पराभिभवनक्षमम् अकुर्वन् येन अग्निना असुराणाम् सुरविरोधिनां मायाः व्यामोहकशक्तीः अयुवन्त देवाः पृथक् कृतवन्तः तथा येन अग्निना इन्द्रो देवाधिपतिः पणीन् एतत्संज्ञान् असुरान् जिगाय जितवान्। ❀ जि जये। अस्मात् लिटि "सन्लिटोर्जेः" इति अभ्यासादुत्तरस्य कुत्वम् ❀ ॥

‡ निरुक्तमें कहा है, कि-"यत्तज्जातः पशून् अविन्दतेति तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वम् ॥—उन्होंने उत्पन्न होते ही पशुओं को पाया यही अग्निका जातवेदस्त्व है"। (निरुक्त ७ । १९) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतीन्द्रिय पदार्थोंको देखने वाले अंगिरा आदि ऋषियोंने जिन अग्निके साथ मित्रता कर पराभिभवनरूप आत्मशक्तिको जगाया है और जिन अग्निदेवके प्रभावसे देवताओंने असुरोंकी मोहने वाली मायाओंको देवताओंसे अलग किया है और जिन अग्निदेवके द्वारा इन्द्रदेवने पणिनामक असुरोंको जीता है, वह अग्निदेव हमें सब अनर्थोंकी मूल पापसे छुड़ा देवें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

येन॑ दे॒वा अ॒मृत॑म॒न्ववि॑न्द॒न् येनौष॑धी॒र्मधु॑मती॒रकृ॑ण्वन्

येन॑ दे॒वाः स्व॑१राभ॑रन्त्स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ ५ ॥

येन॑ । दे॒वाः । अ॒मृत॑म् । अ॒नु॒ऽअ॒वि॑न्दन् । येन॑ ओष॑धीः ।

मधु॑ऽमतीः । अकृ॑ण्वन् ।

येन॑ । दे॒वाः । स्वः॑ । आ॒ऽअ॒भ॑रन् । सः । नः॒ । मु॒ञ्च॒तु । अंह॑सः ६

येन अग्निना सहायेन देवाः इन्द्रादयः अमृतम् अमरणसाधनं पीयूषम् अन्वविन्दन् अलभन्त येन अग्निना जगदनुप्रविष्टेन ओषधीः व्रीहियवाद्यास्तरुगुल्माद्याश्च मधुमतीः मधुररसयुक्ताः अकृण्वन् अकुर्वन् येन अग्निना यज्ञसाधनभूतेन देवाः देवत्वकामा यजमानाः स्तोतारो वा स्वः स्वर्गम् आभरन् आहरन् । अलभन्तेत्यर्थः ॥

जिन अग्निकी सहायतासे इन्द्र आदि देवताओंने अमरणके साधन अमृतको प्राप्त किया था, और जगत्के भीतर प्रविष्ट जिन अग्निके द्वारा देवताओंने व्रीहि यव तरु गुल्म आदि औषधियों को मधुर रस युक्त किया है और जिन यज्ञके साधनभूत अग्निके द्वारा देवत्व चाहने वाले यजमान वा स्तोता स्वर्गको प्राप्त करते हैं, वह अग्निदेव हमें पापसे मुक्त करें ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सप्तमी ॥

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ७

यस्य । इदम् । प्रऽदिशि । यत् । विऽरोचते । यत् । जातम् । जनितव्यम् । च । केवलम् ।

स्तौमि । अग्निम् । नाथितः । जोहवीमि । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ७

यस्य अग्नेः प्रदिशि प्रदेशने प्रशासने इदम् सर्वं जगद् वर्तते । इदम् इत्येतद् विशिनष्टि । यद् इदम् अन्तरिक्षे ग्रहनक्षत्रादिकं विरोचते विविधं दीप्यते यच्च प्राणिजातं पृथिव्यां [जातम्] उत्पन्नं जनितव्यम् जनयितव्यं जनिष्यमाणं कृत्स्नं कार्यं जगद् यद् अस्ति तत् सर्वं केवलम् अनन्यसाधारणं यस्य प्रदिशि वर्तते तथाविधम् अग्निम् अहं स्तौमि । नाथितः । ❀ नाथृ याच्ञायाम् । अस्मात् कर्तरि निष्ठा ❀ । नाथमानः फलं कामयमानः । यद्वा नाथः स्वामी संजातोस्य नाथितः । तेनाग्निना नाथवान् भविष्यामीति जोहवीमि पुनःपुनराह्वयामि । ❀ "अभ्यस्तस्य च" इति ह्वयतेः संप्रसारणम् । "गुणो यङ्लुकोः" इति अभ्यासस्य गुणः ❀ ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

जिन अग्निदेवके शासनमें यह सम्पूर्ण जगत् वर्तमान है । अन्तरिक्षमें जो ग्रह नक्षत्र आदि अनेक प्रकारसे दिपते हैं. पृथिवी में उत्पन्न प्राणिमात्र और आगेको उत्पन्न होने वाले प्राणी जिन अग्निदेवके वशीभूत हैं उन अग्निदेवकी मैं स्तुति करता हूँ, उनका वारंवार आह्वान करता हूँ ॥ ७ ॥

तीसरा सूक्त समाप्त (१२५) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अग्नयेंहोमुचेष्टाकपालः" [तै० सं० ७. ५. २१. १] इत्यादिना दशहविष्कामृगारेष्टिराध्वर्यवे विहिता । तत्र अग्नेरंहोमुचः स्तावकम् "अग्नेर्मन्वे" [२३] इति सूक्तं व्याख्यातम् । इन्द्रस्यांहोमुचः स्तावकम् "इन्द्रस्य मन्महे" इति सूक्तम् । तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

"अग्नयेंहोमुचेष्टाकपालः" इस तैत्तिरीयसंहिता ७ । ५ । २१ । १ के मन्त्रसे दशहविष्का मृगारेष्टिका अध्वर्युके लिये विधान किया गया है । तहाँके अग्निका स्तावक पापमोचन करने वाला "अग्नेर्मन्वे" यह तेईसवाँ सूक्त लिया गया है । और इन्द्रकी स्तुति करने वाला पापमोचक 'इन्द्रस्य मन्महे' सूक्त लिया गया है । इसका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ १ ॥

इन्द्रस्य । मन्महे । शश्वत् । इत् । अस्य । मन्महे । वृत्रऽघ्नः । स्तोमाः । उप । मा । इमे । आ । अगुः ।
यः । दाशुषः । सुऽकृतः । हवम् । एति । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ १ ॥

इन्द्रस्य परमैश्वर्ययुक्तस्य मन्महे महत्त्वं जानीमः । ❀ मनु अवबोधने । तनादित्वाद् उप्रत्ययः । "लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः" इति उकारलोपः ❀ । असाधारण्यं दर्शयितुम् आह शश्वदिति ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इदिति अवधारणे। शश्वत् पुनःपुनः अस्यैवेन्द्रस्य तद् माहात्म्यं मन्महे अवबुध्यामहे। नान्यस्य तादृङ्माहात्म्यं दृश्यत इत्यर्थः। वृत्रघ्नः वृत्रम् असुरं हतवतस्तस्य इन्द्रस्य इमे पुरतो वक्ष्यमाणाः स्तोमाः स्तोत्राणि मा माम् उपागुः उपयन्ति उपगच्छन्ति। इन्द्रमाहात्म्यविषयाणि स्तोत्राणि उपागत्य मां स्तोतारं कुर्वन्तीत्यर्थः॥ यः प्रसिद्ध इन्द्रो दाशुषः चरुपुरोडाशादिहवींषि दत्तवतः सुकृतः शोभनकर्मणो यजमानस्य हवम् आह्वानम् एति प्राप्नोति नोदास्ते। ❀ दाशुषः। दाशृ दाने। "दाश्वान् साह्वान् मीढ्वांश्च" इति क्वसौ निपात्यते। "वसोः संप्रसारणम्"। इति संप्रसारणम्। हवम् इति। "भावेनुपसर्गस्य" इति ह्वयतेरप् संप्रसारणं च ❀॥ स न इत्यादि गतम्॥

परमैश्वर्ययुक्त इन्द्रदेवके महत्वको हम जानते हैं (इन्द्रका असाधारणत्व दिखानेके लिये कहते हैं, कि-) हम वारम्वार इन इन्द्रदेवके ही माहात्म्यको जानते हैं अर्थात् ऐसा और किसीका माहात्म्य नहीं दीखता। वृत्रासुरका हनन करने वाले इन्द्रके आगे कहे जाने वाले स्तोत्र मुझको प्राप्त होरहे हैं अर्थात् इन्द्रके माहात्म्य विषयक स्तोत्र सामने आकर मुझे स्तुति करने वाला बना रहे हैं। जो प्रसिद्ध इन्द्रदेव शोभन कर्म वाले यजमानके आह्वानकी अपेक्षा नहीं करते हैं, वह इन्द्र हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ावें॥ १॥

द्वितीया॥

य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज।
येन जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः॥

यः। उग्रीणाम्। उग्रऽबाहुः। ययुः। यः। दानवानाम्। बलम्। आऽरुरोज।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

येन । जिताः। सिन्धवः। येन । गावः। सः। नः। मुञ्चतु । अंहसः २

य इन्द्रः उग्रबाहुः उद्गूर्णहस्तः उग्रीणाम् उद्गूर्णानां शत्रुसेनानां युयुः यावयिता पृथक्कर्ता । ❀ यौतेर्द्वे च इति डुप्रत्ययः❀। य इन्द्रो दानवानाम् दनोरपत्यानाम् असुराणां बलम् सामर्थ्यम् आरुरोज सर्वतो बभञ्ज । ❀ रुजो भङ्गे ❀ । येन इन्द्रेण सिंधवः स्यन्दनशीला मेघस्था आपः जिताः मेघं भित्त्वा जयेन प्राप्ताः। यद्वा सिन्धवो नद्यः समुद्रा वा वृत्रवधेन जिताः। श्रूयते हि । "वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम्" [ऋ० २. १५. ३] "अहन्नहिं परिशयानम् अर्णोवासृजो अपो अच्छा समुद्रम्" [ऋ० ६. ३०. ४] इत्यादि । येन इन्द्रेण पणिनामकासुरवधेन तदपहृता गावो जिता लब्धाः ॥ गतम् अन्यत् ॥

जो उग्र हाथवाले इन्द्रदेव प्रचण्ड शत्रुसेनाओंमें भेद करानेवाले हैं और जिन इन्द्रदेवने दनुकी सन्तान दानवोंकी शक्तिको तोड़ दिया है और जिन इन्द्रदेवने सरकने वाले जलोंको मेघोंको फाड़ कर जीता है अर्थात् प्राप्त किया है और जिन इन्द्रदेवने वृत्रको मार कर नदियोंको और समुद्रोंको जीता है † और जिन इन्द्रदेवने पणि नामक असुरोंको मार कर उनकी हरी हुई गौओंको जीता है, वह इन्द्रदेव सब अनर्थोंके मूल पापसे हमें मुक्त करें २

तृतीया ॥

यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् ।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३॥

† "वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ॥—इन्द्रने वज्रके द्वारा नदियों के आकाशोंको हिंसित किया" (ऋ० २ । १५ । ३)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यः । चर्षणिऽप्राः । वृषभः । स्वःऽवित् । यस्मै । ग्रावाणः । प्रऽव-
दन्ति । नृम्णम् ।

यस्य । अध्वरः । सप्तऽहोता । मदिष्ठः । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥

य इन्द्रः चर्षणिप्राः । चर्षणयो मनुष्याः तान् अभिलषितफलेन प्राति पूरयतीति चर्षणिप्राः । ❀ प्रा पूरणे । "आतोनुपसर्गे कः" इति [कः] ❀ । वृषभः वर्षिता । यद्वा वृषभवत् प्रसह्यकारी स्वर्वित् स्वर्गस्य लम्भयिता । यस्मा इन्द्राय ग्रावाणः अभिषवार्थाः पाषाणा नृम्णम् सोमरसलक्षणं धनं प्रवदन्ति अभिषवकालीनैः ध्वनिभिः प्रकथयन्ति । "देवा ग्रावाण इन्दुरिन्द्र इत्यवादिषुः" [तै० ब्रा० ३. ७. ९. २] "प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम" [ऋ० १०. ९४. १] इत्यादिमन्त्रवर्णाद् ग्राव्णां प्रवदितृत्वम् । यस्य इन्द्रस्य अध्वरः सोमयागः सप्तहोता सप्तभिर्होतृभिर्वषट्कर्तृभिर्युक्तः मदिष्ठः मादयितृतमो भवति । ❀ होता मैत्रावरुणः ब्राह्मणाच्छंसी पोता नेष्टा अच्छावाकः आग्नीध्रश्चेति सप्त होतारो वषट्कर्तारो यस्मिन्निति बहुव्रीहौ "नद्यृतश्च" इति प्राप्तस्य कपः "ऋतश्छन्दसि" इति प्रतिषेधः । मदिष्ठ इति । मदी हर्षे इत्यस्मात् तृच् । तदन्तात् "तुश्छन्दसि" इति इष्ठन् । "तुरिष्ठेमेयस्सु" इति तृलोपः ❀ ॥ गतम् अन्यत् ॥

जो इन्द्रदेव मनुष्योंको अभिलषित फल देकर उनकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं और जो इन्द्रदेव वृषभकी समान हठपूर्वक स्वर्गकी प्राप्ति कराने वाले हैं और जिन इन्द्रदेवके लिये अभिषवके कार्यके पाषाण अभिषवके समयकी ध्वनियोंसे सोमरसरूपी धनको कहते हैं † । और जिन इन्द्रदेवका सोमयाग सात

†देवा ग्रावाण इन्दुरिन्द्र इत्यवादिषुः ॥-दमकते हुए पाषाणोंने इन्दु इन्द्र कहा" (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३ । ७ । ९ । २ ।) और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वषट्कर्ता होताओंके द्वारा मद करने वाला होता है ‡ वह इन्द्र-देव हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ावें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यस्य॑ व॒शास॑ ऋ॒ष॒भास॑ उ॒क्षणो॒ यस्मै॑ मी॒यन्ते॒ स्वर॑वः स्व॒र्विदे॑ ।

यस्मै॑ शु॒क्रः पव॑ते॒ ब्रह्म॑शुम्भित॒: स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ४

यस्य॑ । व॒शास॑: । ऋ॒ष॒भास॑: । उ॒क्षण॑: । यस्मै॑ । मी॒यन्ते॑ । स्वर॑वः । स्वः॒ऽविदे॑ ।

यस्मै॑ । शु॒क्रः । पव॑ते । ब्रह्म॑ऽशुम्भितः । सः । न॒: । मु॒ञ्च॒तु । अंहसः ॥ ४ ॥

वशासः वशा वन्ध्या गावः ऋषभासः ऋषभाः उक्षणः उक्षाणः सेचनसमर्थाः । ❀ "वा षपूर्वस्य निगमे" इति उपधादीर्घाभावः ❀ । एवं वशादिरूपाः पशवः यस्य इन्द्रस्य यागार्थम् आलभ्यन्ते यस्मा इन्द्राय स्वर्विदे स्वर्गस्य लम्भयित्रे स्वरवः । यूपावतक्षणशकलः स्वरुः । तेन तद्वन्त उपलक्ष्यन्ते । स्वरवः स्वरुमन्तो यूपा मीयन्ते अवटेषु स्थाप्यन्ते । ❀ डुमिञ् प्रक्षेपणे ❀ । यस्मा इन्द्राय शुक्रः निर्मलो रसवान् सोमः ब्रह्मशुम्भितः ब्रह्मभिर्मन्त्रैः अभिषवसाधनैरलंकृतः सन् पवते दशापवित्रधारया स्रवति ॥ स न इत्यादि पूर्ववत् ॥

"प्रैते वदन्तु प्र वयं वदामः ॥–येकहें और हम कहते हैं" (ऋग्वेद १० । ९४ । १) इत्यादि मंत्रवर्णोंमें पाषाणोंका प्रवदितृत्व सिद्ध है

‡ होता, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता, नेष्टा, अच्छावाक और अग्नीध्र वे सात वषट्कर्ता होता हैं ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिन इन्द्रदेवके यागके लिये वंध्या गौ सेचनसमर्थ ऋषभका आलभन किया जाता है और जिन स्वर्गप्रापक इन्द्रदेवके लिये स्वरु वाले यूप अवटोंमें स्थापित किये जाते हैं और जिन इंद्रदेव के लिये निर्मल रस वाला सोम मन्त्रोंसे अलंकृत होता हुआ दशापवित्रकी धारासे टपकता है, वह इन्द्रदेव हमको सब अनर्थों के मूलपापसे छुड़ावें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ ।

यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुञ्चत्वंहसः ५

यस्य । जुष्टिम् । सोमिनः । कामयन्ते । यम् । हवन्ते । इषुऽमन्तम् । गोऽइष्टौ ।

यस्मिन् । अर्कः । शिश्रिये । यस्मिन् । ओजः । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ ५ ॥

यस्य इन्द्रस्य जुष्टिम् प्रीतिं सोमिनः सोमवन्तो यजमानाः कामयन्ते अभिलषन्ति । इषुमन्तम् बाणवन्तं प्रशस्तायुधसहितं यम् इन्द्रं गविष्टौ गवां पणिभिरपहृतानां पुनरन्वेषणे अभिगमने वा हवन्ते आह्वयन्ति । यस्मिन्निन्द्रे अर्कः अर्चनसाधनभूतो मन्त्रः स्तुतशस्त्रादिलक्षणः शिश्रिये आश्रितो भवति । तथा यस्मिन्निन्द्रे ओजः बलम् अनन्यसाधारणं दृश्यते ॥ स न इत्यादि पूर्ववत् ॥

सोम वाले यजमान जिन इन्द्रदेवकी प्रीतिको चाहते हैं और पणियोंके द्वारा गौओंका हरण होने पर जिन प्रशस्त आयुधवाले इन्द्रदेवको बुलाया जाता है और जिन इन्द्रदेवमें पूजाका साधन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंत्र आश्रय पाता है और जिन इन्द्रदेवमें असाधारण बल दीखता है, वह इन्द्रदेव हमको पापसे छुड़ावें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम्।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ६ ॥

यः । प्रथमः । कर्मऽकृत्याय । जज्ञे । यस्य । वीर्यम् । प्रथमस्य । अनुऽबुद्धम् ।
येन । उत्ऽयतः । वज्रः । अभिऽआयत । अहिम् । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ ६ ॥

य इन्द्रः प्रथमः मुख्यः कर्मकृत्याय कर्मणां ज्योतिष्टोमादीनां करणाय अनुष्ठानाय जज्ञे जातवान् । यस्य इन्द्रस्य प्रथमस्य मुख्यस्य वीर्यम् वीरकर्म वृत्रहननादिकम् अनुबद्धम् परस्परं संततम् । श्रूयते हि । "इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री । अहन्नहिम् अन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम्" इत्यादि [ऋ० १. ३२. १] । येन इन्द्रेण उद्यतः उद्धृतो वज्रः अहिम् वृत्रम् अभ्यायत अभितः सर्वतः अहिंसीत् । ❀ आङ्पूर्वाद् यमे- र्लुङि च्लेः सिच् । "यमो गन्धने" इति तस्य कित्त्वाद् "अनुदा- त्तोपदेश०" इत्यादिना अनुनासिकलोपः । "ह्रस्वाद् अङ्गात्" इति सिज्लोपः ❀ ॥ स न इत्यादिगतम् ॥

जो इन्द्रदेव ज्योतिष्टोम आदि कर्म करनेके लिये मुख्यरूपसे जाने जाते हैं और जिन इन्द्रदेवका वृत्रहनन आदि मुख्य कर्म परस्पर पुरा हुआ सुना जाता है ‡ और जिन इन्द्रदेवके उठाये

‡ "इंद्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुए वज्रने वृत्रासुरका सब ओरसे संहार कर डाला वह इन्द्रदेव हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे मुक्त करें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

य संग्रामान् नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति । द्वयानि ।

स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७॥

यः । सम्ऽग्रामान् । नयति । सम् । युधे । वशी । यः । पुष्टानि । सम्ऽसृजति । द्वयानि ।

स्तौमि । इन्द्रम् । नाथितः । जोहवीमि । सः । नः । मुञ्चतु । अंहसः ॥ ७ ॥

वशी स्वतन्त्रो य इन्द्रः युधे योधनाय संप्रहाराय संग्रामम् युद्धं सं नयति सम्यक् प्रापयति । यद्वा युधे योधनाय वशी स्वतन्त्रः । योधयितुं कुशल इत्यर्थः । तथा य इन्द्रः पुष्टानि समृद्धानि द्वयानि स्त्रीपुंसात्मकानि मिथुनानि संसृजति परस्परं संसृष्टानि प्रजननसमर्थानि करोति । तम् इन्द्रं स्तौमि । नाथितो जोहवीमि इत्यादि व्याख्यातम् ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

जो स्वतन्त्र इन्द्रदेव स्वतन्त्र प्रहार करनेके युद्धमें भली प्रकार

अहन्नहिं अन्वपस्ततर्द प्रवक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥- वज्रधारी इन्द्रने जिन मुख्य २ कर्मोंको किया है उन वीर्यमय कर्मोंको मैं कहता हूँ कि—इन्द्रदेवने वृत्रको मारा फिर जलोंको ताड़ित किया और पर्वतोंके वक्षणोंको तोड़ डाला" ० (ऋग्वेद १ । ३२ । १)॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पहुँचाते हैं और जो इंद्रदेव पुष्ट जोड़ोंको परस्पर संसृष्ट करते हैं उन इंद्रदेवकी मैं प्रार्थी स्तुति करता हूँ मैं उनको वारम्बार बुलाता हूँ, वह इंद्रदेव पापसे मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

चतुर्थकाण्डके पंचम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१२६) ॥

"वायोः सवितुः" इत्यस्य सूक्तस्य "अग्नेर्मन्वे" इत्यनेन सूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा "वायव्यां वातवात्यायाम्" [न० क० १७] इत्यादिविहितायां शान्तौ "वायोः सवितुः" इत्येतत् सूक्तम् आवपनीयम्। तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "वायोः सवितुरिति वायव्यायाम्" इति [न० क० १८] ॥

तत्र मृगारेष्टौ "वायो सावित्र आगोमुग्भ्यां चरुः" [तै० सं० ७. ५. २२. १] इति विहितस्य हविषो वायुसवितारौ देवता। तयोः स्तावकम् "वायोः सवितुः" इति सूक्तम् ॥

"वायोः सवितुः" इस सूक्तका "अग्नेर्मन्वे' सूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ॥

तथा "वायव्यां वातवात्यायाम्–आँधी चलने पर वायव्या शांतिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित शान्तिमें "वायोः सवितुः" यह सूक्त पढ़ना चाहिये। इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा कि–"वायोः सवितुरिति वायव्यायाम्" (नक्षत्रकल्प १८) ॥

तहाँ मृगारेष्टिमें "वायो सावित्र आगो मुग्भ्यां चरुः" (तैत्तिरीयसंहिता ७ । ५ । २२ । १) से विहित हविके वायु और सविता देवता हैं। उनकी स्तुति करनेवाला "वायो सवितु" यह सूक्त है ॥

तत्र प्रथमा ॥

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद् विशथो यौ च रक्षथः ।

१८-६-२६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥

वायोः । सवितुः । विदथानि । मन्महे । यौ । आत्मन्ऽवत् । विशथः । यौ । च । रक्षथः ।

यौ । विश्वस्य । परिभू इति परिऽभू । बभूवथुः । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ १ ॥

वायोः जगदाधारभूतस्य वातस्य सवितुः सर्वप्रेरकस्य च देवस्य विदथानि वेदनानि स्तुत्या गुणविषयज्ञानानि । यद्वा विदथ इति यज्ञनाम । विदथानि वेदितव्यानि श्रुतिविहितकर्माणि मन्महे जानीमहे । ❀ विद ज्ञाने इत्यस्माद् औणादिकः अथप्रत्ययः ❀ । हे वायुसवितारौ यौ युवाम् आत्मन्वत् सात्मकं स्थावरजङ्गमात्मकं जगद् विशथः प्रविशथः । वायोस्तावत् प्राणात्मना प्रवेशः श्रुतिसिद्धः । "वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्" [ऐ० आ० २. ४. २] इति । सविता च प्रेरकत्वेन अन्तर्यामितया सर्वं जगद् अनुप्रविष्टः । "यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरः" [बृ० आ० ३. ७. ७] । इत्याद्यन्तर्यामिब्राह्मणात् । ❀ आत्मन्वत् इति । आत्मन्शब्दाद् मतुप् । "मादुपधायाः०" इति वत्वम् । "अनो नुट्" इति नुडागमः ❀ । प्रवेशानन्तरं यौ च युवां रक्षथः तज्जगत् पालयथः । तथा यौ युवां विश्वस्य कृत्स्नस्य जगतः परिभू । परिपूर्वो भवतिः परिग्रहार्थे वर्तते । परिग्रहीतारौ बभूवथुः भवथः । ❀ परिपूर्वाद् भवतेः क्विप् प्रत्ययः । "सुपां सुलुक्" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । हे वायुसवितारौ तौ युवां नः अस्मान् अंहसः पापाद् मुञ्चतम् । ❀ मुच्लृ मोक्षणे ॥ "शे मुचादीनाम्" इति नुम् ❀ ॥

जगत्के आधारभूत वायुके और सर्वप्रेरक सूर्यदेवके श्रुति-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विहित कर्मोंको हम जानते हैं । हे वायु और सूर्य देवताओं! जो तुम आत्मा वाले स्थावर और जंगम प्राणियोंमें प्रवेश करते हो †। प्रवेशके अनन्तर जो तुम उस जगत्की रक्षा करते हो तथा जो तुम सब जगत्को धारण करने वाले हो, वह तुम हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे मुक्त करो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यु॒योः संख्या॑ता व॒रिमा॑ पार्थि॑वानि॒ याभ्यां॒ रजो॑ यु॒पि॒तम॒न्तरि॑क्षे ।

य॒योः प्रा॒यं नान्वा॑न॒शे कश्च॒न तौ नो॑ मुञ्च॒तमंह॑सः २

ययोः । सम्ऽख्याता । वरिमा । पार्थिवानि । याभ्याम् । रजः । युपितम् । अन्तरिक्षे ।

ययोः । प्रऽअयम् । न । अनुऽआनशे । कः । चन । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ २ ॥

ययोर्देवयोः पार्थिवानि पृथिव्यां भवानि वरिमा उरुत्वानि महत्त्वानि संख्याता संख्यातानि जनैः सम्यक् परिगणितानि प्रख्यातानि दृश्यन्ते । ❀ पार्थिवानि "पृथिव्या ञाञौ" इति प्राग्दीव्यतीयः अञ् प्रत्ययः । वरिमेति। उरुशब्दाद् इमनिचि "प्रियस्थिर०"

† वायुका प्राणरूपसे प्रवेश करना श्रुतिमें प्रसिद्ध है, कि "वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् ॥-वायुने प्राण होकर नासिकामें प्रवेश किया" (ऐतरेय आरण्यक २।४।२) और 'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरः' (बृहदारण्यक ३ । ७ । ७) आदि अन्तर्यामिब्राह्मणके अनुसार सर्वप्रेरक सविता सब जगत्के भीतर प्रविष्ट हैं ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इत्यादिना वर् आदेशः । "शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः ❀। याभ्यां वायुसवितृभ्याम् अन्तरिक्षे आकाशे रजः । उदकनामैतत्। ❀ उक्तं हि यास्केन । रजो रजतेः । ज्योती रज उच्यते । उदकं रज उच्यते इति [नि० ४. १९] ❀। तद्ध रजःशब्दवाच्यं वृष्टिकारणम् उदकं युपितम् मूर्छितं सत् धार्यते । सवितृकिरणैर्वायुना च खलु वर्षर्तौ विमोक्तुम् आकाशे बहलतरम् उदकं ध्रियत इति श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धिः । ❀ युपितम् इति । युपु विमोहने । अस्मात् कर्मणि निष्ठा ❀। कश्चन कोपि अन्यो देवः ययोर्वायुसवित्रोः प्रायम् प्रकृष्टगमनं नान्वानशे नानुप्राप्नोति । अनुगन्तुं समर्थो न भवतीत्यर्थः । ❀ अशू व्याप्तौ । छान्दसो लिट् । "अश्नोतेश्च" इति नुडागमः ❀। तौ नो मुञ्चतम् इत्यादि पूर्ववत् ॥

जिन वायु और सूर्य देवताओंके पृथिवी परके महत्वमय कर्म मनुष्योंमें भली प्रकार प्रसिद्ध हैं । और जिन वायु और सविता देवताओंके द्वारा आकाशमें मूर्छित रज † अर्थात् जल धारण किया जाता है और कोई देवता जिन वायु और सूर्यदेवके श्रेष्ठ गमनको नहीं कर सकता वे वायुदेव और सूर्यदेव हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे बचावें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

तव॑ व्र॒ते नि वि॑शन्ते॒ जना॑स॒स्त्वय्यु॒दि॑ते॒ प्रेर॑ते चित्रभानो

---

† निरुक्त ४ । १९ में कहा है, कि—'रजो रजतेः । ज्योती रज उच्यते । उदकं रज उच्यते ॥—रज धातुसे रजस् शब्द बना है । ज्योति रज कहलाता है और जल रज कहलाता है" ॥ और श्रुति तथा स्मृतियोंसे भी है, कि—वर्षा ऋतुमें बहुतसा जल वरसानेके लिये सूर्यकी किरणोंके द्वारा और वायुके द्वारा आकाश मेंजल धारण किया जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्च-
तमंहसः ॥ ३ ॥

तव । व्रते । नि । विशन्ते । जनासः । त्वयि । उत्ऽइते । प्र । ईरते । चित्रभानो इति चित्रऽभानो ।

युवम् । वायो इति । सविता । च । भुवनानि । रक्षथः । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ३ ॥

हे सवितः तव व्रते त्वत्संबन्धिनि कर्मणि परिचरणलक्षणे जनासः जनाः प्राणिनः नि विशन्ते नियमेन वर्तन्ते । ❀"नेर्विशः" इति आत्मनेपदम् ❀ । हे चित्रभानो विचित्रदीप्ते त्वयि उदिते उदयं प्राप्ते सति प्रेरते सर्वे जनाः स्वस्वकार्यकरणाय प्रवर्तन्ते । ❀ ईर गतौ । अदादित्वात् शपो लुक् ❀ । हे वायो त्वं सविता च युवम् युवां भुवनानि भूतजातानि रक्षतः पालयथः ॥ तौ नो मुञ्चतम् इत्यादि गतम् ॥

हे सूर्यदेव ! आपकी सेवारूप कर्म करनेके लिये मनुष्य नियमानुसार वर्ताव करते हैं और चित्रभानो ! आपका उदय होने पर सब मनुष्य अपने २ कामको करनेके लिये प्रवृत्त होते हैं । और हे वायुदेव तथा सूर्यदेव ! आप दोनों ही सब प्राणियोंकी रक्षा करते हैं ऐसे दोनों आप हमें पापसे छुड़ाइये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां
च सेधतम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सं ह्यू३र्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ४

अप । इतः । वायो इति । सविता । च । दुःऽकृतम् । अप । रक्षांसि । शिमिदाम् । च । सेधतम् ।

सम् । हि । ऊर्जया । सृजथः । सम् । बलेन । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ४ ॥

हे वायो त्वं च सविता च दुष्कृतम् अस्मदीयं पापम् अपेतः अपगमयथः ॥ तथा रक्षांसि उपद्रवकारिणो राक्षसान् समिधाम् संदीप्तां कृत्यां च अप सेधतम् अपगमयतम् ॥ अपि च ऊर्जया ऊर्जयति बलयतीति ऊर्जा अन्नरसजनिता पुष्टिः । ❀ ऊर्ज बलप्राणनयोः । अस्मात् पचाद्यच् ❀ । तया अस्मान् सं सृजथः बलेन तज्जनितेन संसृजथः ॥ गतम् अन्यत् ॥

हे वायो ! आप और सूर्यदेव हमारे पापको हमसे अलग करिये । तथा उपद्रवकारी राक्षसोंको और प्रदीप्त कृत्याको भी हमसे दूर करिये । और अन्नके रससे उत्पन्न हुई पुष्टिसे हमको युक्त करिये और हमको पापसे छुड़ाइये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ५ ॥

रयिम् । मे । पोषम् । सविता । उत । वायुः । तनू इति । दक्षम् । आ । सुवताम् । सुऽशेवम् ।

अयक्ष्मतातिम् । महः । इह । धत्तम् । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ५

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उतशब्दः चार्थे । सविता वायुश्च मे मह्यं रयिम् धनं पोषम् पुष्टिं समृद्धिं च आ सुवताम् प्रेरयताम् । प्रयच्छताम् इत्यर्थः । ❀ षू प्रेरणे । तुदादित्वात् शः ❀ । तथा तन्‌ तन्वाम् । ❀ "सुपां सुलुक्०" इति सप्तम्या लुक् । "ईदूतौ च सप्तम्यर्थे" इति प्रगृह्यसंज्ञा ❀ । तन्वाम् अस्मदीये शरीरे सुशेवम् सुसुखं दक्षम् बलम् आ सुवताम् आसमन्तात् प्रेरयताम् । तथा हे वायुसवितारौ । अयक्ष्मशब्दात् स्वार्थिकस्तातिल् प्रत्ययः ❀ । अयक्ष्मम् अरोगं महः तेजः इह अस्मिन् यजमाने धत्तम् धारयतम् ॥

सविता देवता और सूर्यदेवता मुझे धन समृद्धि दें तथा हमारे शरीरमें सुख और बल दें तथा हे वायु और सविता देवताओं ! आरोग्यता और बड़े भारी तेजको इस यजमानमें स्थापित करिये५

षष्ठी ॥

प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः।
अर्वाग् वामस्य प्रवतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ६

प्र । सुऽमतिम् । सवितः । वायो इति । ऊतये । महस्वन्तम् । मत्सरम् । मादयाथः ।

अर्वाक् । वामस्य । प्रऽवतः । नि । यच्छतम् । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ६ ॥

हे सवितः हे वायो ऊतये रक्षार्थं सुमतिम् शोभनाम् अनुग्रहात्मिकां बुद्धिं युवां प्र यच्छतम् । ❀ "ऊतियूति०" इत्यादिना अवतेः क्तिन्नन्त उदात्तो निपातितः ❀ । महस्वन्तम् दीप्तिमन्तं मत्सरम् मदकरं सोमं मादयाथः पीत्वा माद्यथः । ❀ मत्सरम् इति । मदेरौणादिकः सरप्रत्ययः ❀ । वामस्य वननीयस्य प्रवतः प्रकर्ष-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वतो धनस्य अर्वाक् अस्मदभिमुखं नि यच्छतम् नियमयतम्। ❀ वामस्येति। "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी। प्रवत इति। "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" इति वतिः ❀॥

हे सवितः! हे वायो! आप रक्षाके लिये मुझे सुमति दीजिये आप दीप्तिमान् मदकारी सोमको पीकर आनन्दित हूजिये सेवनीय बड़े भारी धनको हमको दीजिये और हमैं सब अनर्थोंके मूल पापसे बचाइये॥ ६॥

सप्तमी॥

उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन्।

स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः

उप। श्रेष्ठाः। नः। आऽशिषः। देवयोः। धामन्। अस्थिरन्।

स्तौमि। देवम्। सवितारम्। च। वायुम्। तौ। नः। मुञ्चतम्। अंहसः

देवयोः वायुसवित्रोः धामन् धामनि तेजसि स्थाने वा नः अस्माकं श्रेष्ठाः प्रशस्ता आशिषः फलप्रार्थना उपास्थिरन् उपस्थिता वर्तन्ते। ❀ अस्थिरन्निति। तिष्ठतेर्लुङि "अकर्मकाच्च" इति आत्मनेपदम्। "स्थाघ्वोरिच्च" इति इत्त्वकित्त्वे। व्यत्ययेन झस्य रन् आदेशः ❀। तथाविधं देवम् दानादिगुणयुक्तं सवितारं वायुं च स्तौमि प्रशंसामि। ❀ "उतो वृद्धिर्लुकि हलि" इति वृद्धिः ❀॥ अन्यद्व्याख्यातम्॥

पञ्चमं सूक्तम्॥

[इति] चतुर्थकाण्डे पञ्चमोनुवाकः॥

वायुदेव और सूर्यदेवके स्थानमें हमारी श्रेष्ठ फलप्रार्थनायें उपस्थित हैं उन दानादिगुण युक्त वायुदेवता और सविता देवता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की मैं स्तुति करता हूँ, वे दोनों मुझको सकल अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ावें ॥ ७ ॥

चतुर्थ काण्डके पञ्चम अनुवाकमें पंचम सूक्त समाप्त (१२७) ॥

पञ्चम अनुवाक समाप्त ॥

षष्ठेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "मन्वे वाम्" इति आद्यस्य सूक्तस्य पूर्ववद् विनियोगः ॥

तथा सोमयागे "मन्वे वाम्" इति औदुम्बर्या आज्यहोमस्य अनुमन्त्रणं कुर्यात् । उक्तं वैताने । "मन्वे वां द्यावापृथिवी इत्यौदुम्बर्या आज्यहोमम्" इति [वै० ३. ५] ॥

छठे अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें 'मन्वे वां' इस प्रथम सूक्त का पहिलेकी समान विनियोग है ॥

तथा सोमयागमें 'मन्वे वाम्' इस सूक्तसे औदुम्बर्याके घृतहोम का अनुमन्त्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"मन्वे वां द्यावापृथिवी इत्यौदुम्बर्या आज्यहोमम्" (वैतानसूत्र ३ । ५) ॥

तत्र प्रथमा ॥

मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाममिता योजनानि ।

प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥

मन्वे । वाम् । द्यावापृथिवी इति । सुऽभोजसौ । सऽचेतसौ । ये इति । अप्रथेथाम् । अमिता । योजनानि ।

प्रतिस्थे इति प्रतिऽस्थे । हि । अभवतम् । वसूनाम् । ते इति । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ १ ॥

हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ सुभोजसौ सुष्ठु भोजयित्र्यौ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

१६-६-२६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शोभनभोगे वा सचेतसौ समानचित्ते वाम् युवां मन्वे स्तौमि। यद्वा वां युवयोर्माहात्म्यं मन्वे अहं जानामि। किं पुनस्तद् इत्याह ये अप्रथेताम् इत्यादिना। ये द्यावापृथिव्यौ अमिता अमितानि अपरिमितानि योजनानि। [योजन]शब्दः अध्वपरिमाणवाची। अपरिमितान् अध्वनः अप्रथेताम् प्रथिते विस्तीर्णे अभवताम्। कृत्स्नदेशव्याप्त्या सर्वगते भवत इत्यर्थः। हि यस्माद् युवां वसूनाम् निवसतां देवमनुष्यादीनाम् निवासहेतूनां धनानां वा प्रतिष्ठे प्रकृष्टावस्थित्यधिकरणे अभवतम् भवथः। तस्मात् सर्वाधारत्वेन युवयोः सर्वगतत्वम्। ❀ प्रतिपूर्वात् तिष्ठतेः "आतश्चोपसर्गे" इति अधिकरणे अङ्। "उपसर्गात् सुनोति०" इति षत्वम् ❀। नः अस्मान् अंहसः पापाद् मुञ्चतम्॥

हे द्यावापृथिवी! सुन्दर भोग वाले और समान चित्त वाले तुम दोनोंकी मैं स्तुति करता हूँ, तुम दोनोंके माहात्म्यको मैं जानता हूँ कि—तुम दोनों अपरिमित मार्गोंमें विस्तृत हो अर्थात् सम्पूर्ण देशोंमें व्याप्त होनेसे सर्वगत हो। और तुम दोनों देवता और मनुष्य आदिकोंके धनोंके प्रकृष्टरूपसे स्थितिके कारण हो अतः सर्वाधार होनेसे सर्वगत हो, ऐसे तुम हमको पापसे छुड़ाओ ॥१॥

द्वितीया ॥

प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ५

प्रतिस्थे इति प्रतिऽस्थे। हि। अभवतम्। वसूनाम्। प्रवृद्धे इति प्रऽवृद्धे। देवी इति। सुभगे इति सुऽभगे। उरूची इति। द्यावापृथिवी। इति। भवतम्। मे। स्योने इति। ते इति। नः। मुञ्चतम्। अंहसः॥ २॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनाम् इति पूर्ववत् । यस्मात् सर्वप्राणिनाम् अधिष्ठानभूते द्यावापृथिव्यौ तस्मात् प्रविद्धे प्रकर्षेण मणिसूत्रन्यायेन सूत्रवत् सर्वजगदनुप्रविद्धे । अनुप्रविष्टे इत्यर्थः । देवी देव्यौ दानादिगुणयुक्ते सुभगे शोभनधने सौभाग्ययुक्ते वा । ❀ "आद्युदात्तं द्व्यच् छन्दसि" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ❀ । उरूची उरु बहुलम् अञ्चन्त्यौ व्याप्नुवत्यौ । ❀ उरुशब्दोपपदाद् अञ्चतेः "ऋत्विग्०" इत्यादिना क्विन् । "अनिदिताम्०" इति नलोपः । "अचः" इति अकारलोपे "चौ" इति दीर्घत्वम् । "अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्" इति ङीप् । "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ इत्थं महानुभावे युवां मे मम स्योने । सुखनामैतत् । सुखहेतू भवतम् । अन्यद् गतम् ॥

तुम धनोंकी प्रतिष्ठा हो । द्यावाथिवी सब प्राणियोंके अधिष्ठान हैं अतएव मणिसूत्रन्यायकी समान सब जगत्में प्रविष्ट हैं, और ये दानादिगुणयुक्त हैं, सौभाग्यसम्पन्न हैं और अधिकतासे व्याप्त हैं । ऐसे महानुभाव द्यावापृथिवी मेरे सुखके कारण हों और वे द्यावापृथिवी हमें सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ावें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

असंतापे सुतपसौ हुवेहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये । द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ३

असंतापे इत्यसम्ऽतापे । सुऽतपसौ । हुवे । अहम् । उर्वी इति । गम्भीरे इति । कविऽभिः । नमस्ये३ इति ।

द्यावापृथिवी इति । भवतम् । मे । स्योने इति । ते इति । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

असंतापे संतापरहिते सर्वप्राणिनां संतापस्य हर्त्र्यौ सुतपसौ उर्वी उर्व्यौ विस्तीर्णे गम्भीरे गाम्भीर्ययुक्ते इदम् ईदृग् इति परिच्छेदरहिते कविभिः क्रान्तदर्शिभिर्महर्षिभिः नमस्ये नमस्कार्ये इदृश्यौ युवाम् अहं हुवे रक्षणार्थम् आह्वयामि। ❀ "बहुलं छन्दसि" इति ह्वयतेः संप्रसारणम् ❀ ॥ उत्तरोर्धर्चो व्याख्यातः ॥

सब प्राणियोंके सन्तापको हरने वाले, स्वयं सन्तापरहित, विस्तृत और गम्भीरतायुक्त, परिच्छेदरहित तथा क्रान्तदर्शी महर्षियोंके द्वारा नमस्कार करने योग्य तुम दोनोंको मैं रक्षा करनेके लिये आह्वान करता हूँ, ऐसे महानुभाव द्यावापृथिवी मेरे लिये सुखके हेतु हों और वे दोनों हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे मुक्त करें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान् ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥

ये इति । अमृतम् । बिभृथः । ये इति । हवींषि । ये इति । स्रोत्याः । बिभृथः । ये इति । मनुष्यान् ।
द्यावापृथिवी इति । भवतम् । मे । स्योने इति । ते इति । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ४ ॥

[हे] द्यावापृथिव्यौ ये युवाम् अमृतम् अमरणं सर्वप्राणिनाम् अमृतत्वं बिभृथः धारयथः । ❀ "नञो जरमरमित्रमृताः" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् । बिभृथ इति । "भृञाम् इत्" इति अभ्यासस्य इत्वम् ❀ । ये च युवां हवींषि चरुपुरोडाशादीनि धारयथः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ये च स्रोत्याः स्रोतस्विनीर्नदीः बिभृथः धारयथः । ❀ "स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ" इति ड्यप्रत्ययः ❀ । ये च युवां मनुष्यान् धारयथः ॥ गतम् अन्यत् ॥

हे द्यावापृथिवी ! जो तुम दोनों सब प्राणियोंके अमृतत्व (अमरण) को धारण करते हो, और जो तुम चरु पुरोडाश आदि हवियोंको धारण करते हो और जो तुम सोतों वाली नदियोंको धारण करते हो और जो तुम मनुष्योंको धारण करते हो, ऐसे महानुभाव द्यावापृथिवी मेरे लिये सुखके हेतु हों और वे दोनों हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे मुक्त करें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥

ये इति । उस्रियाः । बिभृथः । ये इति । वनस्पतीन् । ययोः । वाम् । विश्वा । भुवनानि । अन्तः ।
द्यावापृथिवी इति । भवतम् । मे । स्योने इति । ते । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ५ ॥

हे द्यावापृथिव्यौ ये युवाम् उस्रियाः । गोनामैतत् । गाः सर्वा बिभृथः धारयथः । ये च युवां वनस्पतीन् वृक्षान् सर्वान् बिभृथः । ❀ वनस्पतिशब्दः पारस्करादिः । "उभे वनस्पत्यादिषु०" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । ययोर्वाम् युवयोः अन्तः मध्ये विश्वा विश्वानि उक्तानुक्तानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि ते युवां स्योने मे भवतम् इति संबन्धः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सप्तमी ॥

यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात्।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो
मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥

यत्। मा। इदम्। अभिऽशोचति। येनऽयेन। वा। कृतम्।
पौरुषेयात्। न। दैवात्।
स्तौमि। द्यावापृथिवी इति। नाथितः। जोहवीमि। ते इति। नः।
मुञ्चतम्। अंहसः ॥ ७ ॥

यद् इदम् पापं तत्फलं दुःखं वा मा माम् [अभिशोचति] अभितः सर्वतो दहति। येनयेन वा पापेन निमित्तभूतेन पुनरन्यत् पापं कृतम्। येनयेनेत्युक्तम् अर्थं विवृणोति पौरुषेयान्नेति। नशब्द उपमार्थः। पौरुषेयात् पुरुषप्रेरितात् पापादिव दैवात् देवकृतान्निमित्तात् यत् पापं दुःखं वा उत्पन्नं माम् अभिशोचतीति संबन्धः। ❀ पौरुषेयात् इति। "पुरुषाद् वधविकार०" इति ढञ् प्रत्ययः। दैवात् इति। "देवाद् यञञौ" इति अञ् ❀। तस्य सर्वस्य पापस्य तत्फलभूतदुःखस्य च अपनोदनार्थं द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ स्तौमि प्रशंसामि ॥ नाथित इत्यादि व्याख्यातम् ॥

[इति] प्रथमं सूक्तम् ॥

जो पुरुष प्रेरित वा दैवकृत पाप वा उसका फल दुःख मुझको चारों ओरसे झुलसा रहा है और जिस२ निमित्तभूत पापसे मैंने दूसरे पाप किये हैं। उन सब पापोंको और उनके फलरूप दुःख को दूर करनेके लिये मैं द्यावापृथिवीकी स्तुति करता हूँ, मैं प्रार्थी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे द्यावापृथिवी ! जो तुम सब गौओंको भरण करते हो और जो तुम सब वनस्पतियोंको भरण करते हो और जिन तुम्हारे मध्यमें कहे हुए और न कहे हुए सब प्राणी रहते हैं, वे तुम दोनों सुखके हेतु होओ और हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे मुक्त करो ५

षष्ठी ॥

ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति ।

द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥

ये इति । कीलालेन । तर्पयथः । ये इति । घृतेन । याभ्याम् । ऋते । न । किम् । चन । शक्नुवन्ति ।

द्यावापृथिवी इति । भवतम् । मे । स्योने इति । ते इति । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ६ ॥

हे द्यावापृथिव्यौ ये युवां कीलालेन अन्नेन तर्पयथः कृत्स्नं जगत् पोषयथः । ये च युवां घृतेन क्षरणशीलेन उदकेन तर्पयथः । याभ्यां द्यावापृथिवीभ्याम् ऋते विना किं चन किमपि कार्यं कर्तुं न शक्नुवन्ति सर्वे जनाः । अन्यत् पूर्ववत् । ❀ याभ्याम् ऋत इति । "अन्यारादितरर्ते०" इति पञ्चमी ❀ ॥

हे द्यावापृथिवी ! जो तुम अन्नसे सब जगत्का पोषण करते हो और जो तुम क्षरणशील जलसे तृप्त करते हो और जिन द्यावा-पृथिवीके विना मनुष्य किसी भी कार्यको करनेमें समर्थ नहीं हो सकते । वे द्यावापृथिवी सुखके हेतु हों और वे दोनों हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे अलग करें ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सप्तमी ॥

यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात्।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो
मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥

यत् । मा । इदम् । अभिऽशोचति । येनऽयेन । वा । कृतम् ।
पौरुषेयात् । न । दैवात् ।
स्तौमि । द्यावापृथिवी इति । नाथितः । जोहवीमि । ते इति । नः ।
मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ७ ॥

यद्ध इदम् पापं तत्फलं दुःखं वा मा माम् [अभिशोचति] अभितः सर्वतो दहति । येनयेन वा पापेन निमित्तभूतेन पुनरन्यत् पापं कृतम् । येनयेनेत्युक्तम् अर्थं विवृणोति पौरुषेयान्नेति । नशब्द उपमार्थः । पौरुषेयात् पुरुषप्रेरितात् पापादिव दैवात् देवकृतान्निमित्तात् यत् पापं दुःखं वा उत्पन्नं माम् अभिशोचतीति संबन्धः । ❀ पौरुषेयात् इति । "पुरुषाद्ध वधविकार०" इति ढञ् प्रत्ययः । दैवात् इति । "देवाद्य यञञौ" इति अञ् ❀ । तस्य सर्वस्य पापस्य तत्फलभूतदुःखस्य च अपनोदनार्थं द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ स्तौमि प्रशंसामि ॥ नाथित इत्यादि व्याख्यातम् ॥

[इति] प्रथमं सूक्तम् ॥

जो पुरुष प्रेरित वा दैवकृत पाप वा उसका फल दुःख मुझको चारों ओरसे झुलसा रहा है और जिस२ निमित्तभूत पापसे मैंने दूसरे पाप किये हैं । उन सब पापोंको और उनके फलरूप दुःख को दूर करनेके लिये मैं द्यावापृथिवीकी स्तुति करता हूँ, मैं प्रार्थी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उनके लिये आहुति देता हूँ वे मुझे सब अनर्थोंके मूल पापसे मुक्त करें ॥ ७ ॥

चतुर्थकाण्डके छठे अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१२८) ॥

"मरुतां मन्वे" इति सूक्तस्य पूर्ववद् गणप्रयुक्तो विनियोगः ॥

"मारुद्गणीं बलकामस्य" इति [न० क० १७] विहितायां शान्तौ "मरुताम्" इत्येतत् सूक्तम् आवपनीयम् । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "मरुतां मन्वे [४. २७] प्रजापते न त्वद् एतान्यन्यः [७. ८५. ३] इति मारुद्गण्याम्" इति [न० क० १८] ॥

अत्र "तिग्मम् अनीकम्" [७] इत्यनया साकमेधपर्वणि गृहमेधयागम् अनुमन्त्रयेत । उक्तं वैताने । "सायं गृहमेधिनां तिग्मम् अनीकम्" इति [वै० २. ५] ॥

'मरुतां मन्वे' इस सूक्तका पहिलेकी समान गणप्रयुक्त विनियोग है॥

'मारुद्गणीं बलकामस्य ॥–बलकी कामना वालेके लिये मारुद्गणी शांतिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित शान्तिमें 'मरुताम्' यह सूक्त कहना चाहिये । इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा, है, कि–'मरुतां मन्वे (४ । २७) प्रजापते न त्वद् एतान्यन्यः (७ । ८५ । ३)इति मारुद्गण्याम्" (नक्षत्रकल्प १८)

यहाँ 'तिग्मम् अनीकम्" इस सातवीं ऋचासे साकमेधपर्वमें गृहमेधयागका अनुमंत्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, है, कि–"सायं गृहमेधिनां तिग्मं अनीकम्" (वैतानसूत्र २ । ५) ॥

तत्र प्रथमा ॥

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १ ॥

मरुताम् । मन्वे । अधि । मे । ब्रुवन्तु । प्र । इमम् । वाजम् । वाजऽसाते । अवन्तु ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आशून्ऽइव । सुऽयमान् । अह्वे । ऊतये । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः

मरुताम् एकोनपंचाशत्संख्याकानां गणदेवानां मन्वे माहात्म्यं जानामि । ते मरुतो मे मह्यम् अधि ब्रुवन्तु अस्मदीयोयम् अनुग्राह्य इति पक्षपातेन वदन्तु ॥ तथा वाजसाते वाजस्य अन्नस्य साते लाभे निमित्तभूते सति इमं वाजम् अन्नं प्रावन्तु प्रकर्षेण अस्मदर्थं रक्षन्तु । यद्वा वाज इति बलनाम । वाजम् इमम् आत्मीयं बलं वाजसाते । वाजसातिरिति संग्रामनाम । "अयं वाजं जयतु वाजसातौ" इति हि निगमः [तै० सं० १. ३. ४. १, तै० ब्रा० २. ४. ६. १२] वाजसातशब्देनापि सोर्थोभिधीयते । वाजसाते संग्रामे प्रावन्तु प्ररक्षन्तु । अहम् अंशूनिव सुयमान् । अंशवः अश्वप्रग्रहा रज्जवः । तानिव सुयमान् सुष्ठु यन्तव्यान् सेव्यान् मरुतः अहम् ऊतये रक्षायै अह्वे आह्वयामि । यद्वा अंशुशब्देन तत्संबन्धिनः अश्वा विवक्षिताः । सुशिक्षितान् अश्वानिव सुयमान् । भक्तपराधीनतया वशवर्तिन इत्यर्थः । ❀ अह्व इति । ह्वि "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति लुङ् । "लिपिसिचिह्वश्च" इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ । ते मरुतो नः अस्मान् अंहसः पापाद् मुञ्चन्तु ॥

मैं उञ्चास मरुद्द देवताओंके माहात्म्यको जानता हूँ, वे मरुद्द देवता पक्षपातपूर्वक कहें, कि-यह तो हमारे हैं, और अन्नप्राप्ति का निमित्त होने पर इस अन्नकी हमारे लिये प्रकृष्टतासे रक्षा करें, बलको संग्राममें रक्षित रक्खें ‡ । लगामकी समान सेवनीय मरुत् देवताओंको मैं रक्षा करनेके लिये बुलाता हूँ, वे मरुद्द देवता हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे विलग करें ॥ १ ॥

‡ तैत्तिरीयसंहिता १ । ३ । ४ । १ और तैत्तिरीयब्राह्मण २ । ४ । ६ । १२ में कहा है, कि-'अयं वाजं जयतु वाजसातौ ॥- यह संग्राममें बलको जीते" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वितीया ॥

उत्सम॑क्षि॑तं॒ व्यच॑न्ति॒ ये स॒दा य आ॑सि॒ञ्चन्ति॒ रस॒मो- षधी॑षु ।

पु॒रो द॑धे म॒रुतः॒ पृश्नि॑मातॄं॒स्ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥२॥

उत्स॑म् । अक्षि॑तम् । वि॒ऽअ॒चन्ति । ये । स॒दा । ये । आ॒ऽसि॒ञ्चन्ति । रस॑म् । ओष॑धीषु ।

पु॒रः । द॒धे । म॒रुतः॑ । पृश्नि॑ऽमातॄन् । ते । नः॒ । मु॒ञ्च॒न्तु । अंह॑सः २

ये मरुतः सदा सर्वदा । ❀ "सर्वस्य सोन्यतरस्यां दि" इति सभावः ❀ । उत्सम् वर्षधारायुक्तं मेघम् अक्षितम् क्षयरहितम् । ❀ "०अण्यदर्थे" इति पर्युदस्तत्वात् क्षियो दीर्घाभावः ❀ । प्रवृद्धं व्यचन्ति अन्तरिक्षे विस्तारयन्ति । तदनन्तरं ये मरुतः ओषधीषु व्रीहियवाद्यासु तरुगुल्मादिषु च रसम् वृष्ट्युदकलक्षणम् आसिञ्चन्ति आ समन्तात् क्षारयन्ति । ❀ षिच क्षरणे । "शे मुचादीनाम्" इति नुम् ❀ । तान् मरुतः पृश्निमातॄन् । पृश्निर्माध्यमिका वाक् माता जननी येषां ते पृश्निमातरः । ❀ "ऋतश्छन्दसि" इति कपः प्रतिषेधः ❀ । "पृश्न्यै वै पयसो मरुतो जाताः" [तै० सं० २. २. ११. ४] इति हि तैत्तिरीयकम् । तथाविधान् मरुतः पुरो दधे पुरस्ताद् धारयामि । भजामीत्यर्थः ॥ गतम् अन्यत् ॥

जो मरुत्देवता वर्षाकी धारासे युक्त मेघको क्षयरहित अवस्था में अन्तरिक्षमें विस्तृत करते हैं, तदनन्तर जो मरुत्देवता व्रीहि यव और तरु गुल्म आदि औषधियोंमें वृष्टिजलरूपी रसको सींचते हैं । उन पृश्नि †अर्थात् मध्यमा वाणी जिनकी माता है उन पृश्नि-

† "पृश्न्यै वै पयसो मरुतो जाताः ॥ पृश्निके लिये जलके मरुत् उत्पन्न हुए हैं" (तैत्तिरीयसंहिता २ । २ । १४) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मातृक मरुद् देवताओंका मैं पहिले भजन करता हूँ, वे मुझको सब अनर्थोंके मूल पापसे बचावें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः

पयः । धेनूनाम् । रसम् । ओषधीनाम् । जवम् । अर्वताम् । कवयः ।

ये । इन्वथ ।

शग्माः । भवन्तु । मरुतः । नः । स्योनाः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ३

हे मरुतः यूयं ये कवयः क्रान्तदर्शनाः सन्तः धेनूनाम् गवां पयः क्षीरम् इन्वथ सर्वाङ्गेषु व्यापयथ । ❀ इवि व्याप्तौ । इदित्त्वान्नुम् ❀ । ओषधीनां रसम् द्रवं सर्वावयवेषु व्यापयथ । अर्वताम् अश्वानां जवम् वेगं [ये] व्यापयथ । शक्माः शक्तारः सर्वकार्यसमर्थास्ते मरुतः नः अस्माकं स्योनाः सुखकरा भवन्तु ॥

हे मरुत् देवताओं ! जो तुम दूरदर्शी होते हुए गौओंके क्षीर को सब अंगोंमें व्याप्त करते हो, औषधियोंके रसको सब अंगोंमें व्याप्त करते हो, घोड़ोंमें वेगको व्याप्त करते हो, ऐसे सब कार्यों को करनेमें समर्थ मरुत्देवता हमें सुख देने वाले होओ और सब अनर्थोंके मूल पापसे हमको मुक्त करो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अपः समुद्राद् दिवमुद् वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।

ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपः । समुद्रात् । दिवम् । उत् । वहन्ति । दिवः । पृथिवीम् ।
अभि । ये । सृजन्ति ।

ये । अत्ऽभिः । ईशानाः । मरुतः । चरन्ति । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः

ये मरुतः समुद्रात् उदधेः सकाशाद् अपः उदकानि दिवम् अन्तरिक्षं प्रति उद्वहन्ति मेघैः प्रापयन्ति । तदनन्तरं दिवः अन्तरिक्षात् पृथिवीम् अभिलक्ष्य ता अपः सृजन्ति विसृजन्ति । ताभिरद्भिः ईशानाः ईश्वराः सन्तो ये मरुतः इत्थं चरन्ति ॥ ते मरुत इत्यादि गतम् । ❀ अद्भिरिति । "अपो भि" इति पकारस्य तकारः ❀ ॥

जो मरुत् समुद्रमेंसे जलोंको अन्तरिक्षमें मेघोंको पहुँचाते हैं, तदनन्तर अन्तरिक्षसे पृथिवीको लक्ष्य कर जलोंको छोड़ते हैं, इस प्रकार जलोंके स्वामी बनते हुए जो मरुत् इस प्रकार विचरण करते हैं वे मरुत्-देवता सब अनर्थोंके मूल पापसे हमको मुक्त करें

पञ्चमी ॥

ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा
संसृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥५

ये । कीलालेन । तर्पयन्ति । ये । घृतेन । ये । वा । वयः । मेदसा ।
सम्ऽसृजन्ति ।

ये । अत्ऽभिः । ईशानाः । मरुतः । वर्षयन्ति । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः

ये मरुतः कीलालेन अन्नेन वृष्टिद्वारा जनांस्तर्पयन्ति ये च घृतेन उदकेन तर्पयन्ति । ये वा । वाशब्दः चार्थे । ये च मरुतः वयः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पक्षिजातं मेदसा तुरीयधातुना संसृजन्ति । मेदस्वि कुर्वन्तीत्यर्थः । यद्वा वयः शरीरपरिणामविशेषः । तत् मेदसा युक्तं कुर्वन्ति । क्षिति-पवनसलिलतेजःकारणकात् परिणामविशेषाद्धि पुरुषशरीरस्य मेद-स्वित्वं जायते । अतो मरुतां तद्धेतुत्वम् । ये च मरुतः अद्भिः उदकैः मेघस्थैः ईशानाः सन्तो वर्षयन्ति सर्वतो वृष्टिं कुर्वन्ति ॥ तेनेत्यादि पूर्ववत् ॥

जो मरुद्देवता वृष्टिके द्वारा अन्नसे मनुष्योंको तृप्त करते हैं और जो मरुद्गण पक्षियोंको मेदसे संसृष्ट करते हैं अथवा प्राणी की अवस्थाको पृथ्वी जल तेज और पवनरूपी कारणके परि-णामविशेषसे पुरुषशरीर मेद वाला बनता है अतः मरुतोंको उनका कारण माना है । और जो मरुतदेवता मेघोंमें स्थित जलोंसे स्वामी बनकर सब ओर वृष्टि करते हैं, वे हमको सब अनर्थोंके मूल पाप से छुड़ावें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार ।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ६

यदि । इत् । इदम् । मरुतः । मारुतेन । यदि । देवाः । दैव्येन । ईदृक् । आर ।

यूयम् । ईशिध्वे । वसवः । तस्य । निःऽकृतेः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ ६ ॥

इदम् अनुभूयमानं मदीयं दुःखं तद्धेतुभूतं पापं वा हे मरुतः मारुतेन । इच्छब्दः अवधारणे । मरुद्विषयेणैवापराधेन ईदृक् एवं-रूपं यदि आर प्राप । हे देवाः इन्द्रादयः दैव्येन देवसंबन्धिना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपराधेन [यदि] एवंरूपं दुःखम् अस्मान् प्राप । ❀ [आर]। ऋ गतौ । अस्मात् लिट् । ईदृक् इति । इदमिव पश्यति "त्यदादिषु दृशोनालोचने कञ् च" इति दृशेः क्विन् प्रत्ययः । "इदं किमोरीश् की" इति इदम ईश् आदेशः ❀ । तस्य दुःखस्य तद्धेतोः पाप्मनो वा निष्कृतेः निष्करणस्य परिहारस्य हे वसवः वासयितारो मरुतः यूयम् ईशध्वे ईश्वरा भवथ । ❀ ईशेर्लेटि अडागमः ❀ ॥ गतम् अन्यत् ॥

यह अनुभवमें आता हुआ मेरा दुःख वा उसका हेतु पाप मरुद्देवताओंका अपराध करनेसे मुझे इस प्रकार प्राप्त होरहा है अथवा हे इन्द्र आदि देवताओं ! देवसंबन्धी अपराधके कारण मुझे ऐसा दुःख प्राप्त होरहा है, उस दुःखको वा पापको हटानेके लिये हे वसाने वाले मरुद्द देवताओं ! आप समर्थ हैं ऐसा आप हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ाइये ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन्मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम्। स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः

तिग्मम् । अनीकम् । विदितम् । सहस्वत् । मारुतम् । शर्धः । पृतनासु । उग्रम् ।

स्तौमि । मरुतः नाथितः । जोहवीमि । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ७

तिग्मम् तीक्ष्णम् अनीकम् सप्तगणात्मना समूहीभूतं विदितम् प्रख्यातं सहस्वत् बलवत् अभिभवनयुक्तं वा मारुतम् मरुतां संबंधि शर्धः बलं पृतनासु संग्रामेषु उग्रम् उद्गूर्णं दुःसहं भवति । तान् मरुतः स्तौमि प्रशंसामि ॥ नाथितो जोहवीमीत्यादि व्याख्यातम् ॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तीक्ष्ण, सप्तगणरूपसे सेनारूप, प्रसिद्ध बलवान् मरुत्संबंधी बल संग्राममें दुःसह होता है, ऐसे मरुत् देवताओंकी मैं प्रशंसा करता हूँ मैं प्रार्थी मरुत् देवताओंका वारम्वार आह्वान करता हूँ वे हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ावें ॥ ७ ॥

चतुर्थकाण्डके छठे अनुवाकमें दूसरा सूक्त समाप्त (१२९) ॥

"भवाशर्वौ मन्वे वाम्" इति सूक्तस्य गणविनियोग उक्तः ॥

तथा सर्वव्याधिभैषज्यकर्मणि च उदकपूर्णान् सप्त काम्पीलपुटान् प्रत्यृचं संपात्य अभिमन्त्र्य व्याधितम् अवसिञ्चेत् । तद्ध उक्तं कौशिकेन । "भवाशर्वाविति सप्त काम्पीलपुटान् अपां पूर्णान् संपातवतः कृत्वा दक्षिणेन अवसिच्य पश्चाद्ध अपविध्यति" इति [४. ४] ॥

'भवाशर्वौ मन्वे वाम्' इस सूक्तका गणप्रयुक्त विनियोग कह दिया है ॥

तथा सर्वव्याधिभैषज्यकर्ममें भी जलसे भरे हुए कबीलेके सात दोनोको प्रत्येक ऋचासे सम्पातन और अभिमन्त्रण करके रोगी पर छिड़के । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–भवाशर्वाविति सप्त काम्पीलपुटान् अपां पूर्णान् सम्पातवतः कृत्वा दक्षिणेन अवसिच्य पश्चात् अपविध्यति" (कौशिकसूत्र ४ । ४) ॥

तत्र प्रथमा ॥

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद् विरोचते ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः १

भवाशर्वौ । मन्वे । वाम् । तस्य । वित्तम् । ययोः । वाम् । इदम् । प्रऽदिशि । यत् । विऽरोचते ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यौ । अस्य । ईशाथे इति । द्विऽपदः । यौ । चतुःऽपदः । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ १ ॥

भवति उत्पद्यते अस्मात् सर्वं जगद् इति भवः । शृणाति हिनस्ति सर्वम् अन्तकाले इति शर्वः । भवश्च शर्वश्च भवाशर्वौ अष्टमूर्तीनां मध्ये परमेश्वरस्य द्वे मूर्ती "भवाय देवाय स्वाहा शर्वाय देवाय स्वाहा" ॥इति श्रुत्यन्तरप्रसिद्धे ।❀ "देवताद्वन्द्वे च" इति आनङ् ❀। हे भवाशर्वौ वाम् युवयोर्महत्त्वम् अहं मन्वे जानामि ॥ तस्य वित्तम् । ❀ कर्मणि षष्ठी ❀ । तद् वक्ष्यमाणं जानीतम् । ययोर्वाम् युवयोः प्रदिशि प्रदेशने प्रशासने यद् इदं कृत्स्नं जगद् विरोचते प्रकाशते तद् वित्तम् इत्यन्वयः । ❀ रुच दीप्तौ ❀ । अस्य च द्विपदः पादद्वयोपेतस्य प्राणिजातस्य यौ युवाम् ईशाथे ईश्वरौ भवथः । ❀ ईश ऐश्वर्ये ❀ । यौ च युवां चतुष्पदः पादचतुष्टयोपेतस्य गवादेः ईशाथे । ❀ "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इति कर्मणि षष्ठी । द्वौ पादावस्य चत्वारः पादा अस्येति बहुव्रीहौ "संख्यासुपूर्वस्य" इति पादशब्दस्यान्त्यलोपः । "पादःपत्" इति पद्भावः❀ । तौ भवाशर्वौ न अस्मान् अंहसः पापाद् मुञ्चतम् ॥

हे भव और शर्व † । आपके महत्त्वको मैं जानता हूँ उनको आप समझिये कि-जिन आपकी आज्ञामें सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है और जो तुम दोनों ईश्वर दो पैर वाले प्राणियों के ईश्वर हो और जो तुम दोनों चार पैर वाले गौ आदि पशुओंके

† जिनसे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है, वह भव कहलाते हैं और अन्तकालमें जो सबका शृणन करते हैं अर्थात् मारते हैं वह शर्व कहलाते हैं । ये भव और शर्व परमेश्वरकी आठ मूर्तियोंमेंसे दो प्रसिद्ध मूर्ति हैं । अन्य श्रुतियोंमें भी इनका वर्णन मिलता है । यथा—'भवाय देवाय स्वाहा, शर्वाय देवाय स्वाहा' ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ईश्वर हो ऐसे हे भव और शर्व नामक शिवकी मूर्तियो ! तुम हमें सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ाओ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

ययो॑र॒भ्य॑ध्व उ॒त यद् दू॒रे चि॒द् यौ वि॑दि॒ताव्रि॑षु॒भृता॒मसि॑ष्ठौ ।
याव॒स्येशा॑थे द्वि॒पदो॒ यौ चतु॑ष्पद॒स्तौ नो॑ मुञ्चत॒मंह॑सः ॥ २ ॥

ययोः । अ॒भि॒ऽअ॒ध्वे । उ॒त । यत् । दू॒रे । चि॒त् । यौ । वि॒दि॒तौ । इ॒षु॒ऽभृता॑म् । असि॑ष्ठौ ।

यौ । अ॒स्य । ईशा॑थे॒ इति॑ । द्वि॒ऽपदः॑ । यौ । चतुः॑ऽपदः । तौ । नः॒ । मु॒ञ्च॒त॒म् । अंह॑सः ॥ २ ॥

ययोः भवाशर्वयोः अभ्यध्वे । ❀ अभि अध्वनः अभ्यध्वः । "उपसर्गाद् अध्वनः" इति अच् समासान्तः ❀ । समीपदेशे । उतशब्दः अप्यर्थे । दूरेपि च यत् किंचिद् अस्ति तयोः प्रशासनस्य तत् सर्वं विषय एवेत्यर्थः । यौ भवाशर्वौ विदितौ सर्वैः प्रज्ञातौ इषुभृतौ इषोर्बाणस्य धनुषि आरोपितस्य भर्तारौ । असिष्ठौ अस्तृतमौ क्षेप्तृतमौ । ❀ अस्तृशब्दात् "तुश्छन्दसि" इति इष्ठन् । "तुरिष्ठेमेयस्सु" इति तृलोपः ❀ । यावस्येशाथे इत्यादि पूर्ववत् ॥

जिन भव और शर्व देवताओंके समीपके देशमें और दूरके देशमें जो कुछ है वह सब उनके ही शासनमें है और जो भव तथा शर्व धनुष पर चढ़ाये हुए बाणोंको धारण करने वाले और फेंकने वाले प्रसिद्ध हैं और जो दो पैरवाले और चार पैरवाले प्राणियों के स्वामी हैं वे हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ावें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

स॒ह॒स्रा॒क्षौ वृ॑त्र॒हणा॑ हु॒वे॒हं दू॒रेग॑व्यूती स्तु॒वन्ने॑म्यु॒ग्रौ ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ३

सहस्रऽअक्षौ । वृत्रऽहना । हुवे । अहम् । दूरेगव्यूती इति दूरेऽगव्यूती । स्तुवन् । एमि । उग्रौ ।

यौ । अस्य । ईशाथे इति । द्विऽपदः । यौ । चतुःऽपदः । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ३ ॥

सहस्राक्षौ सहस्रसंख्याकानि अक्षीणि चक्षूंषि ययोः तौ सहस्राक्षौ सर्वतो दक्षदृष्टी । दूरसूक्ष्मादिविषयेष्वपि अप्रतिहतदर्शनावित्यर्थः । ❀"बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः०" इति षच् समासान्तः❀। वृत्रहणा वृत्रहणौ वृत्रम् असुरं हतवन्तौ दूरेगव्यूती । गावो यूयन्ते मिश्रीभवन्ति संचरन्त्यस्मिन्निति गव्यूतिः गोसंचारभूमिः । सा दूरे विप्रकृष्टे ययोस्तौ दूरेगव्यूती । गोसंचारदेशाद् दूरदेशे वर्तमानावित्यर्थः । ❀ "ऊतियूति०" इत्यादिना अधिकरणे क्तिन्नन्तो यूतिशब्दः । "गोर्यूतौ छन्दसि" इति अव् आदेशः ❀ । ईदृशौ भवाशर्वौ अहं हुवे आह्वयामि । कीदृशोहम् । उग्रौ उद्गूर्णौ तीक्ष्णौ तावेव स्तुवन् प्रशंसन् नेमी । ❀ त्वो नेम इत्यर्धस्य इति यास्कः [नि० ३. २०] ❀। नेमः अर्धं बलम् अस्यास्तीति नेमी । असंपूर्णबल इत्यर्थः । यद्वा स्तुवन्नेमीति समुदायस्तयोरेव विशेषणम् । नेमिशब्दो रथावयववाची । तेन च तद्वान् लक्ष्यते । ❀ स्तुवन्निति कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ❀ । प्रशस्तरथावित्यर्थः ॥ अन्यत् पूर्ववत् ॥

अर्ध बल वाला मैं सहस्र नेत्र वाले—सब ओर दृष्टि देने वाले अर्थात् दूर सूक्ष्म आदि सब विषयोंमें अप्रतिहत दर्शन वाले, वृत्रासुरके संहारक और जिनसे गोसंचारभूमि दूर रहती है, ऐसे तीक्ष्ण भव और शर्वका मैं आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चतुर्थी ॥

यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्र चेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ४

यौ । आरेभाथे इत्याऽरेभाथे । बहु । साकम् । अग्रे । प्र । च ।
इत् । अस्राष्ट्रम् । अभिऽभाम् । जनेषु ।
यौ । अस्य । ईशाथे इति । द्विऽपदः । यौ । चतुःऽपदः । तौ । नः ।
मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ४ ॥

हे भवाशर्वौ अग्रे सृष्टयादौ यौ युवां बहुसाकम् बहूनां प्राणिनां साकं सहभावो यस्मिन् तद् बहुसाकम् जनसंघम् आरेभाथे आरब्धवन्तौ निर्मितवन्तौ । तेषु उत्पन्नेषु जनेषु । इच्छब्दः अवधारणे। अभिभाम् अभिदीप्तिं शत्र्वादिलक्षणां तत्तत्पापानुसारेण युवामेव च प्रास्राष्टम् प्रकर्षेण सृष्टवन्तौ उत्पादितवन्तौ । "मा नो विदद् अभिभा मो अशस्तिः" [१. २०. १] इति परिहरणीयत्वश्रवणाद् अभिभाशब्दवाच्यस्य अनभिमतरूपतोक्ता । ❀ अस्राष्टम् इति । सृज विसर्गे । अस्मात् लुङि तसस्तम् । "सृजिदृशोर्झल्यम् अकिति" इति अम् आगमः । "वदव्रजहलन्तस्य०" इति वृद्धिः । सिज्लोपे "व्रश्च०" इत्यादिना षत्वे । ष्टुत्वम् ❀ ॥ यावस्येशाथे इत्यादि पूर्ववत् ॥

हे भव और शर्व ! जिन तुम दोनोंने सृष्टिकी आदिमें बहुतसे प्राणियोंको बनाया था और उन उत्पन्न मनुष्योंमें शत्रु आदि रूप अभिदीप्तिको तत्तत्पापानुसार तुम ही उत्पन्न करते हो और जो तुम दो पैर वाले प्राणियोंके और चार पैर वाले पशु आदिके स्वामी हो वे हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ाओ ४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पञ्चमी ॥

ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।

यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ५

ययोः । वधात् । न । अपऽपद्यते । कः । चन । अन्तः । देवेषु । उत ।

मानुषेषु ।

यौ । अस्य । ईशाथे इति । द्विऽपदः । यौ । चतुःऽपदः । तौ । नः ।

मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ५ ॥

ययोः भवाशर्वयोः वधात् । ❀ "हनश्च वधः" इति करणे अप् प्रत्ययो वधादेशश्च ❀ । हननसाधनाद् आयुधाद् देवेषु अन्तः मध्ये उत मानुषेषु मनुष्येषु च मध्ये कश्चन कोपि नापपद्यते अपवर्जनं न प्राप्नोति अपि तु तद्विषय एव भवति ॥ यावस्येशाथे इत्यादि गतम् ॥

जिन भव और शर्वके हननके साधन आयुधसे देवताओंमेंसे और मनुष्योंमेंसे कोई भी नहीं बचता है और जो दो पैर वाले मनुष्य आदि प्राणियोंके तथा चार पैर वाले पशु आदिके स्वामी हैं वे भव और शर्व देवता हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे मुक्त करें ५

षष्ठी ॥

यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ ।

यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यः । कृत्याऽकृत् । मूलऽकृत् । यातुऽधानः । नि । तस्मिन् । धत्तम् । वज्रम् । उग्रौ ।

यौ । अस्य । ईशाथे इति । द्विऽपदः । यौ । चतुःऽपदः । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ६ ॥

यः शत्रुः कृत्याकृत् कृत्यया क्रियानिर्वृत्तया पिशाच्या कृन्तति छिनत्तीति कृत्याकृत् । यश्च यातुधानः राक्षसः मूलकृत् वंशाभिवृद्धेर्मूलं निदानम् अपत्यं कृन्तति छिनत्तीति मूलकृत् । तस्मिन्नुभयविधे शत्रौ हे उग्रौ उद्गूर्णबलौ भवाशर्वौ वज्रम् वर्जकम् आयुधं नि धत्तम् निक्षिपतम् । विध्यतम् इत्यर्थः ॥ अन्यत् पूर्ववत् ॥

जो शत्रु कृत्याक्रियासे निर्मित पिशाचीके द्वारा काटता है और जो राक्षस हमारे वंशकी वृद्धिके मूल सन्तानको नष्ट करता है, इन दोनों प्रकारके शत्रुओंमें हे प्रचण्डबली शर्व और भव ! देवता वर्जक आयुधका प्रहार करें । जो भव और शर्व देवता दो पैर वाले प्राणियोंके और चार पैर वाले पशुओंके ऊपर शासन करते हैं वे हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे बचावें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥

अधि । नः । ब्रूतम् । पृतनासु । उग्रौ । सम् । वज्रेण । सृजतम् । यः । किमीदी ।

स्तौमि । भवाशर्वौ । नाथितः । जोहवीमि । तौ । न । मुञ्चतम् । अंहसः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे उग्रौ अग्र्यगुणयुक्तौ दुष्पधर्षौ भवाशर्वौ नः अस्मभ्यम् अधि ब्रूतम् श्रेयोविषये पक्षपातेन वदतम् । पृतनासु संग्रामेषु वज्रेण आयुधेन अस्मदीयान् शत्रून् सं सृजतम् संयोजयतम् । यश्च किमीदी किम् इदानीम् उत्पन्नं किम् इदानीम् उत्पन्नम् इति रन्ध्रान्वेषी हिंसको राक्षसादिः तमपि आयुधेन संयोजयतम् । एवंमहानुभावौ भवाशर्वौ अहं स्तौमि ॥ गतम् अन्यत् ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

हे दुष्पधर्ष भव और शर्व देवताओं ! तुम हमारे श्रेयकी बातमें पक्षपातपूर्वक कहो, संग्राममें हमारे शत्रुओंको आयुधसे मिलाओ, और इस समय क्या होरहा है, इस समय क्या होरहा है, इस प्रकार छिद्र ढूँढ़ते हुए घूमने वाले हिंसक राक्षस आदिको भी आयुधसे युक्त करो, ऐसे महानुभाव भव और शर्व देवताकी मैं स्तुति करता हूँ, मैं प्रार्थी वारम्बार उनका आह्वान करता हूँ, वे मुझको सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ावें ॥ ७ ॥

चतुर्थ काण्डके छठे अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (१३०) ॥

"मन्वे वां मित्रावरुणौ" इति सूक्तस्य उक्तो विनियोगः । "मित्रावरुणाभ्याम् आगोमुग्भ्यां पयस्या" इति [तै० सं० ७.५. २२. १] विहितस्य मृगारहविषो मित्रावरुणौ देवते । तयोः स्तावकम् एतत् सूक्तम् ॥

"मन्वे वां मित्रावरुणौ" इस सूक्तका विनियोग कह दिया है तैत्तिरीयसंहिता ७ । ५ । २२ । १ के मन्त्र "मित्रावरुणाभ्याम् आगोमुग्भ्यां पयस्या" से विहित मृगारहविके मित्र और वरुण देवता हैं । यह सूक्त उनकी स्तुतिसे भरा हुआ है ।

तत्र प्रथमा ॥

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मन्वे । वाम् । मित्रावरुणौ । ऋतऽवृधौ । सऽचेतसौ । द्रुह्वणः । यौ । नुदेथे इति ।

प्र । सत्यऽवानम् । अवथः । भरेषु । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥१

हे ऋतावृधा ऋतस्य सत्यस्य उदकस्य यज्ञस्य वा वर्धयितारौ सचेतसौ समानज्ञानौ ईदृशौ हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ। ❀मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ । "आनङ् ऋतो द्वन्द्वे" [देवताद्वन्द्वे च] इति पूर्वपदस्य आनङ् । "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णदीर्घः❀। वाम् युवयोर्महत्त्वं मन्वे स्तौमि । यौ युवां द्रुह्वणः द्रोग्धॄन् नुदेथे प्रेरयेथे स्थानात् प्रच्यावयथः। ❀ नुद प्रेरणे ❀ । अपि च सत्यावानम् सत्ययुक्तम् । ❀ "छन्दसीवनिपौ" इति मत्वर्थीयो वनिप् ❀। सत्यप्रतिज्ञं पुरुषं भरेषु संग्रामेषु प्रावथः प्रकर्षेण रक्षथः। तौ युवां नः अस्मान् अंहसः पापाद् मुञ्चतम् ॥

हे सत्य जल और यज्ञको बढ़ाने वाले समान ज्ञानी मित्र और वरुण देवताओ ! मैं तुम्हारे महत्त्वकी स्तुति करता हूँ कि-तुम द्रोह करने वालोंको उनके स्थानसे च्युत कर देते हो और सत्य प्रतिज्ञा वाले पुरुषकी संग्राममें विशेषरूपसे रक्षा करते हो, वे तुम दोनों हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ाओ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२

सऽचेतसौ । द्रुह्वणः । यौ । नुदेथे इति । प्र । सत्यऽवानम् । अवथः । भरेषु । यौ । गच्छथः । नृऽचक्षसौ । बभ्रुणा । सुतम् । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सचेतसौ समानज्ञानौ एकार्थकारिणौ हे मित्रावरुणौ यौ युवां द्रुह्वणः द्रोग्धॄन् नुदेथे सत्यवन्तं च भरेषु संग्रामेषु प्रावथः प्ररक्षथः। नृचक्षसौ नृणां संचष्टारौ सम्यग् द्रष्टारौ। अहोरात्राभिमानिनौ हि मित्रावरुणौ तत्र क्रियमाणस्य मानुषव्यापारस्य सर्वस्यापि साक्षिणावित्यर्थः। ईदृशौ यौ मित्रावरुणौ बभ्रुणा बभ्रुवर्णेन पीतवर्णेन रथादियानेन सुतम् अभिषुतं सोमं गच्छतः प्राप्नुतः। ❀नृचक्षसाविति। चक्षेरसुनि "असनयोश्च" इति ख्याञादेशाभावः❀॥ तौ न इत्यादि गतम्॥

हे समान ज्ञान वाले होनेसे एक ही प्रयोजनके कामको करने वाले मित्र और वरुण देवताओं ! जो तुम द्रोह करने वालोंको उनके स्थानसे भ्रष्ट करते हो और सत्यप्रतिज्ञ पुरुषकी संग्राममें विशेषरूपसे रक्षा करते हो, दिन और रात्रिके अभिमानी देवता होनेसे, उनमें किये जाने वाले मनुष्योंके सब कर्मोंके साक्षी ऐसे जो मित्रावरुण हैं वे पीत वर्ण वाले रथ आदिक यानसे अभिषुत सोमको प्राप्त होते हैं वे मित्र और वरुण देवता हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे मुक्त करें॥ २॥

तृतीया॥

यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्त्रिं
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः ३

यौ। अङ्गिरसम्। अवथः। यौ। अगस्तिम्। मित्रावरुणा। जमत्ऽअग्निम्। अत्रिम्।
यौ। कश्यपम्। अवथः। यौ। वसिष्ठम्। तौ। नः। मुञ्चतम्। अंहसः।

अंगारेभ्यो जातो महर्षिरङ्गिराः। "येऽङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभवन्" इति हि ब्राह्मणम् [ऐ० ब्रा० ३. ३४]। एतत्संज्ञं महर्षिं हे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मित्रावरुणौ यौ युवाम् अवथः रक्षथः। यौ च युवाम् अगस्त्यम् कुम्भसंभवम् आत्मीयं पुत्रं रक्षथः। उक्तं हि। "मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरुर्वशीम् अप्सरसं दृष्ट्वा वासतीवरे कुम्भे रेतोपतत्। ततोगस्त्यवसिष्ठावजायेताम्" [स० अ० १२] इति। तथा जमदग्निम् जमन्तः ज्वलन्तः अग्नयो यस्य स तथोक्तः। एतत्संज्ञं महर्षिम्। मातृपित्रात्मसंबन्धिनस्त्रिविधा दोषा न अस्मिन्निति सन्ति अत्रिः। तस्माद् अत्रिर्न त्रय इति हि निरुक्तम् [नि० ३. १७]। एतत्संज्ञं महर्षिम्। अवथः। यौ च युवां कश्यपम् दूरसूक्ष्मादिभेदभिन्नस्यापि कृत्स्नस्य जगतो द्रष्टारम्। "कश्यपः पश्यको भवति। यत् सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्" इति हि तैत्तिरीयकम् [तै० आ० १. ८. ८]। कश्यपाख्यं महर्षिम् अवथः रक्षथः। यौ च वसिष्ठम् वसुमत्तमम्। ❀ वसुमच्छब्दाद् इष्ठनि "विन्मतोर्लुक्"। "टे०" इति टिलोपः। ❀ सर्वश्रेष्ठं वसिष्ठाख्यं महर्षिं रक्षथः॥ तौ न इत्यादि गतम्॥

अङ्गारोंसे उत्पन्न हुए अंगिरा नामक महर्षि † की हे मित्र और वरुणदेवता! जो आप रक्षा करते हो और कुम्भसे उत्पन्न हुए महर्षि ‡ अगस्त्यकी हे मित्र और वरुण देवताओं! तुम जो रक्षा करते हो और माता पिता तथा अपने इस प्रकार तीनों

---

† ऐतरेय ब्राह्मण ३। ३४ में कहा है, कि—"येंगारा आसन् तेऽङ्गिरसोऽभवन्॥—जो अंगार थे वे अंगिरस् हुए"॥

‡ स० अ० १२ में कहा है, कि—"मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरुर्वशीं अप्सरसं दृष्ट्वा वासतीवरे कुम्भे रेतोऽपतत्। ततोगस्त्यवसिष्ठावजायेताम्॥—दीक्षित मित्र और वरुणने जब उर्वशी अप्सराको देखा तो उनका वीर्य वसतीवर कुम्भमें गिर पड़ा तब वसिष्ठ और अगस्त्य उत्पन्न हुए"॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के दोषोंसे रहित अत्रि+की जो तुम रक्षा करते हो और दूर सूक्ष्म आदि भेदसे भिन्न सब जगत्के द्रष्टा कश्यप× नामक मुनिकी जो तुम रक्षा करते हो और जो तुम सर्वश्रेष्ठ वसिष्ठ नाम वाले महर्षिकी रक्षा करते हो, वह तुम हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ाइये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमात्रिम् ।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥

यौ । श्यावऽअश्वम् । अवथः । वध्रिऽअश्वम । मित्रावरुणा । पुरुऽमीढम् । अत्रिम् ।
यौ । विऽमदम् । अवथः । सप्तऽवध्रिम् । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ४

श्यावाः कपिशा अश्वा यस्य श्यावाश्वः । एतत्संज्ञम् ऋषिम् हे [मित्रावरुणा] मित्रावरुणौ यौ युवाम् अवथः रक्षथः । वध्र्यश्वम् । वध्र्यः पण्डा अश्वा यस्य स वध्र्यश्वः । तं च रक्षथः । तथा पुरुमीढम् । मीढम् इति धननाम । पुरूणि मीढानि धनानि यस्य स तथोक्तः एतत्संज्ञं महर्षिं रक्षथः । अत्रिम् इति पुनर्वचनम्

+ निरुक्त ३, १७ में कहा है, कि-"तस्माद् अत्रिर्न त्रय इति निरुक्तम्" ॥

× तैत्तिरीय आरण्यक १ । ८ । ८ में कहा है, कि-"कश्यपः पश्यको भवति । यत् सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात् ॥—कश्यप पश्यक (देखने वालेके) अर्थको रखता है । वह सूक्ष्मताके कारण सबको देखते हैं ॥"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आदरार्थम् । यद्वा उक्तनिरुक्त्या पुरुमीढस्यैव विशेषणम् । अथ वा त्रिविधा ह्यात्रेयाः । यद् आह आपस्तम्बः । "आत्रेयाय अग्रगाय हिरण्यं ददाति । द्वितीयाय तृतीयाय वा" [आप० १३, ६, १२] इति । तद्वेदाभिप्रायम् एतत् पुनरभिधानम् । यौ युवां विमदम् एतत्संज्ञम् ऋषिं सप्तवध्रिम् । सप्त वध्रयः अश्वा अस्येति सप्तवध्रिः । एतत्संज्ञं च अवथः रक्षथः ॥ तौ न इत्यादि गतम् ॥

हे मित्र और वरुण देवताओं ! तुम श्यावाश्व नाम वाले ऋषि की रक्षा करते हो और वध्र्यश्व नाम वाले ऋषिकी रक्षा करते हो, पुरुमीढ नाम वाले ऋषिकी रक्षा करते हो, अत्रि ÷ ऋषि की रक्षा करते हो और हे मित्र और वरुण देवताओं ! जो तुम विमद और सप्तऋषिकी रक्षा करते हो, वे तुम दोनों हमको सब अनर्थोंके मूल पापसे मुक्त करो ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् ।

यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ५

यौ । भरत्ऽवाजम् । अवथः । यौ । गविष्ठिरम् । विश्वामित्रम् । वरुण । मित्र । कुत्सम् ।

यौ । कक्षीवन्तम् । अवथः । प्र । उत । कण्वम् । तौ । नः । मुञ्चतम् । अंहसः ॥ ५ ॥

हे मित्र हे वरुण यौ युवां भरद्वाजम् । भरत् पोषकं वाजो हविर्लक्षणम् अन्नं यस्य स भरद्वाजो महर्षिः । तम् अवथः रक्षथः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यौ युवां गविष्ठिरम् गवि वाचि वेदात्मिकायां स्थिरो गविष्ठिरः। ❀ "गवियुधिभ्यां स्थिरः" इति षत्वम्। "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इति अलुक् ❀। एतत्संज्ञं महर्षिं रक्षथः। विश्वामित्रम् विश्वं कृत्स्नं जगत् मित्रं यस्य स तथोक्तः। ❀ "मित्रे चर्षौ" इति पूर्वपदस्य दीर्घः। "बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम्" इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम् ❀। तथा कुत्सं महर्षिं च रक्षथः। कक्षीवन्तम्। अश्वस्य कक्षयोर्भवा रज्जुः कक्ष्या। ❀ "शरीरावयवाच्च" इति यत्। कक्ष्या रज्जुरश्वस्य इति हि यास्कः [नि० २. २] ❀। सास्मिन्नस्तीति कक्षीवान् नाम उशिजः पुत्र ऋषिः। ❀ "आसन्दीवद् अष्ठीवत् कक्षीवद्०" इति निपात्यते ❀। "कक्षीवन्तं य औशिजः" [ऋ० १. १८. १] इति हि निगमान्तरम्। एतत्संज्ञं महर्षिं कण्वाख्यं च प्रावथः परक्षथः॥ गतम् अन्यत्॥

हे मित्र और वरुण देवताओं! आप हविरूप अन्नका पोषण करने वाले भरद्वाज नामक ऋषिकी रक्षा करते हैं और जो आप वेदात्मिका वाणीमें स्थिर रहनेवाले गविष्ठिर नाम वाले ऋषिकी रक्षा करते हैं और जो सम्पूर्ण जगत्के मित्र विश्वामित्र नामक ऋषिकी रक्षा करते हैं तथा जो आप कुत्स, कक्षीवान् और कण्व नामवाले ऋषिकी रक्षा करते हैं वे दोनों आप हमको सब अनर्थों के मूल पापसे छुड़ाइये॥ ५॥

षष्ठी॥

यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ।

यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ६

यौ। मेधऽअतिथिम्। अवथः। यौ। त्रिऽशोकम्। मित्रावरुणौ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उशनाम् । काव्यम् । यौ ।

यौ । गोतमम् । अवथः । प्र । उत । मुद्गलम् । तौ । नः । मुञ्चतम् ।

अंहसः ॥ ६ ॥

हे मित्रावरुणौ यौ युवां मेधातिथिम् । मेधातिथिर्मेध्यातिथिः इति निरुक्तम् मेध्या यज्ञार्हा अतिथयो यस्मिन् तं मेधातिथिसंज्ञम् ऋषिम् अवथः रक्षथः । यौ च युवां [त्रिशोकम्] त्रिशोकाख्यम् ऋषिं रक्षथः । काव्यम् कवेः पुत्रम् उशनाम् उशनसम् । ❀ छान्दसम् आत्वम् ❀ । एतत्संज्ञं महर्षिं यौ मित्रावरुणौ रक्षथः । तथा गोतमम् ऋषिम् उत मुद्गलम् मुद्गलाख्यं च प्रावथः प्ररक्षथः ॥ तौ न इत्यादि गतम् ॥

हे मित्र और वरुण नाम वाले देवताओं ! जो तुम मेधातिथि नाम वाले ऋषिकी, त्रिशोक नामक ऋषिकी और कविके पुत्र उशना नामवाले ऋषिकी रक्षा करते हो तथा गोतम और मुद्गल नामवाले ऋषिकी रक्षा करते हो वे तुम दोनों हमको सब अनर्थों मूल पापसे बचाओ ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् ।

स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥

ययोः । रथः । सत्यऽवर्त्मा । ऋजुऽरश्मिः । मिथुया । चरन्तम् । अभिऽयाति । दूषयन् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्तौमि । मित्रावरुणौ । नाथितः । जोहवीमि । तौ । नः । मुञ्चतम् ।

अंहसः ॥ ७ ॥

ययोः मित्रावरुणयोः स्वभूतो रथः सत्यवर्त्मा सत्यम् अवितथं वर्त्म मार्गो यस्य स सत्यवर्त्मा ऋजुरश्मिः ऋजवः अकुटिला रश्मयः प्रग्रहा यस्य स ऋजुरश्मिः । एवंगुणविशिष्टो रथः मिथुया मिथ्या चरन्तम् अविहितमार्गेण वर्तमानं पुरुषं दूषयन् बाधमानः । ❀ दुष वैकृत्ये । अस्मात् णयन्तात् हेतौ शतृप्रत्ययः । "दोषो णौ" इति ऊत्त्वम् ❀ । दूषणाद्धेतोः अभियाति अभिमुखं गच्छति । तौ मित्रावरुणौ स्तौमि प्रशंसामि । ❀ मित्रावरुणाविति । "देवताद्वन्द्वे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥ नाथित इत्यादि व्याख्यातम्

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

जिन मित्रावरुणका सत्य मार्ग वाला और सरल रश्मियों वाला रथ मिथ्यामार्गमें विचरण करने वाले पुरुषोंको बाधा देनेके लिये उनके सामने आता है, उन मित्र और वरुणदेवताकी मैं स्तुति करता हूँ, मैं प्रार्थी उनका वारम्बार आह्वान करता हूँ, वे दोनों मुझको सब अनर्थोंके मूल पापसे मुक्त करें ॥ ७ ॥

चतुर्थकाण्डके छठे अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१३१) ॥

"अहं रुद्रेभिः" इति सूक्तेन जातकर्मणि शङ्खपुष्पिकागन्धपुष्पिके पिष्ट्वा अभिमन्त्र्य हिरण्यशकलेन प्राशयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन सूक्तेन शंखनाभिं पिप्पलीं च पिष्ट्वा अभिमन्त्र्य हिरण्यशकलेन प्राशयेत् ॥

तथा मेधाजननार्थं प्रथमं वाग्व्यवहारं कुर्वतः शिशोर्मातुरुत्संगे विहितस्य अनेन सूक्तेन आज्यं हुत्वा तालुनि संपातान् आनयेत् ॥

तथा दधिमधुनी एकत्र कृत्वा अनेन संपात्य अभिमन्त्र्य शिशुं प्राशयेत् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा उपनयनकर्मणि दण्डप्रदानान्तरम् एतत् सूक्तं माणवकं वाचयेत् ॥

तथा आयुष्कामोपि शङ्खपुष्पगन्धपुष्पप्राशनादीन्युक्तानि पञ्च कर्माणि कुर्यात् ॥

तथा च कौशिकं सूत्रम् । "अहं रुद्रेभिरिति शुक्लपुष्पहरितपुष्पे किंस्त्यनाभिपिप्पल्यौ जातरूपशकलेन प्राक् स्तनग्रहात् प्राशयति । प्रथमप्रवदस्य मातुरुपस्थे तालुनि संपातान् आनयति । दधिमध्वाशयति । उपनीतं वाचयति । वार्षशतिकं कर्म" इति [कौ० २. १] ॥

तथा उपनयने अनेन सूक्तेन आज्यहोमं कुर्यात् । सूत्रितं हि । "उपनयनम्" [कौ० ७. ६] प्रक्रम्य "मेधाजननायुष्यैर्जुहुयात्" इति [कौ० ७. ८] ॥

तथा अध्यायोत्सर्जनकर्मणि अनेन सूक्तेन आज्यं हुत्वा रसेषु संपातान् आनयेत् । तथा च कौशिकः । "उत्सर्जनम्" प्रक्रम्य "विश्वेदेवाः [१. ३०] अहं रुद्रेभिः [४. ३०] सिंहे व्याघ्रे [६. ३८] यशो हविः [६. ३९]" इत्यादि [कौ० १३. ३] ॥

'अहं रुद्रेभिः' इस सूक्तसे जातकर्ममें शङ्खपुष्पिका (कौड़्याला बूँटी) और गंधपुष्पिका (केवड़े) को पीसकर और अभिमंत्रण करके सुवर्णके टुकड़ेसे चटावे ॥

तथा इसी कर्ममें इस सूक्तसे शङ्खनाभि और पीपलको पीस और अभिमन्त्रण करके सुवर्णके टुकड़ेसे चटावे ॥

तथा मेधाजननके लिये प्रथम वाणीका व्यवहार करने वाले अर्थात् प्रथम बोलते हुए शिशुके माताकी गोदीमें बैठने पर इस सूक्तसे घृतकी आहुति देकर तालुमें सम्पात लगावे ॥

तथा दही और मधुको एकत्रित कर इस सूक्तसे सम्पातन और अभिमन्त्रण करके बालकको चटा देवे ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा उपनयनकर्ममें दंडप्रदानके अनंतर इस सूक्तको बालकसे कहावे ॥

तथा आयु चाहने वाला भी शङ्खपुष्पी और गन्धपुष्पीका प्राशन आदि पूर्वोक्त पाँच कर्मोंको करे ॥

इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि-"अहं रुद्रेभिरिति शुक्लहरितपुष्पे क्लिस्त्यनाभिपिप्पल्यौ जातरूपशकलेन प्राक् स्तनग्रहात् प्राशयति । प्रथमप्रवदस्य मातुरुपस्थे तालुनि संपातान् आनयति । दधिमध्वाशयति । उपनीतं वाचयति । वार्षशतिकं कर्म" (कौशिकसूत्र २ । १) ॥

तथा उपनयनमें इस सूक्तसे घृतका होम करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"उपनयनम्" (कौशिकसूत्र ७ । ६) प्रक्रम्य "मेधाजननायुष्यैर्जुहुयात्" इति कौशिकसूत्र ७ । ८) ॥

तथा अध्यायोत्सर्जनकर्ममें इस सूक्तसे घृतकी आहुति देकर रसोंमें सम्पातोंको लावे ॥ इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि-"उत्सर्जनम्" प्रक्रम्य "विश्वे देवाः (१ । ३०) अहं रुद्रेभिः (४ । ३०) सिंहे व्याघ्रे (६ । ३८) यशो हविः (६ । ३६) इत्यादि (कौशिकसूत्र (१४ । ३) ॥

तत्र प्रथमा ॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा

अहम् । रुद्रेभिः । वसुऽभिः । चरामि । अहम् । आदित्यैः । उत । विश्वऽदेवैः ।

अहम् । मित्रावरुणा । उभा । बिभर्मि । अहम् । इन्द्राग्नी इति । अहम् । अश्विना । उभा ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सर्वजगत्कल्पनास्पदं सच्चित्सुखात्मकं परं ब्रह्म स्वात्मत्वेन विदुषी अम्भृणाख्यस्य महर्षेर्दुहिता वाङ्नाम्नी ब्रह्मवादिनी स्वात्मानं सर्वात्मभावेन तुष्टाव। तद् उक्तं दाशतय्यनुक्रमणिकायाम्। "अहम् अष्टौ। वाग् आम्भृणी तुष्टावात्मानम्" [स० अ० ६३] इति। विशुद्धसत्त्वपरिणामरूपस्य अन्तःकरणस्य वृत्तिविशेषः अभिमानात्मकोऽहंकारः। तदुपलक्षितानवच्छिन्नात्मिका अहं रुद्रेभिः रुद्रैः एकादशभि। अष्टभिर्वसुभिः: ❀ इत्थंभावे तृतीया ❀। तत्तद् देवात्मना चरामि। एवम् अहम् आदित्यैः इत्यादावपि योज्यम्॥ आदित्या द्वादशसंख्याका धात्रादयः। वसुरुद्रादित्यव्यतिरिक्ता गणशो वर्तमानाः विश्वदेवाख्याः। एकस्यैव हि ब्रह्मणः तत्तदुपाध्यवच्छेदेन वस्वादिदेवतारूपेण भेदावभासात्। वस्तुतस्तु ऐक्यमेवेति तदनुसंधाना ब्रह्मवादिनी एवं ब्रूते॥ तथा मित्रावरुणा। ❀ "सुपां सुलुक्" इति द्वितीयाया आकारः ❀। मित्रावरुणौ देवौ उभा उभौ अहमेव परब्रह्मात्मिका बिभर्मि धारयामि। इन्द्राग्नी अपि अहमेव धारयामि। उभा उभौ अश्विनावपि अहमेव धारयामि। मत्स्वरूपे अद्वितीये ब्रह्मणि सर्वं जगत् शुक्तौ रजतमिव अध्यस्तं सत् दृश्यते। माया च जगदाकारेण विवर्तते। तदाधारत्वेन असङ्गस्यापि ब्रह्मणः उक्तस्य सर्वस्योपपत्तिः॥

(सर्वजगत्की कल्पनाका आश्रय सत्‌चित्‌-सुखात्मक परब्रह्म को स्वात्मरूपसे जानने वाली अम्भृण नाम वाले महर्षिकी वाङ् नाम वाली ब्रह्मवादिनी पुत्रीने अपने आत्माकी सर्वात्मभावसे स्तुतिकी है, उसी बातका इस सूक्तमें वर्णन है ‡) अभिमानात्मक अहंकार विशुद्धसत्त्वपरिणामरूप अन्तःकरणकी एक वृत्ति

‡ इसी बातको दाशतय्यनुक्रमणिकामें कहा है, कि—"अहम् अष्टौ। वाग् आम्भृणी तुष्टावात्मानम्॥—अंभृण ऋषिकी पुत्री मुझ वाक्‌ने आठ वसुरूप अपने आत्माकी स्तुतिकी" (स-अ-६३)॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE २३. ६.२६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, तदुपलक्षित अनवच्छिन्नात्मिका मैं ग्यारह रुद्र आठ वसुरूपसे विचरण करती हूँ। इसी प्रकार मैं धाता आदि बारह आदित्य, तथा वसु रुद्र आदित्योंसे अतिरिक्त गणोंमें वर्तमान विश्वेदेवारूप से भी विचरण करती हूँ (एक ही ब्रह्म भिन्न उपाधिके अवच्छेदसे वसु आदि अनेक देवताओंके रूपमें अवभासित होता है, वास्तवमें तो ऐक्य ही है, इस बातका अनुसन्धान कर चुकी हुई ब्रह्मवादिनी इस प्रकार कहती है) तथा ब्रह्मवादिनी परब्रह्मात्मिका मैं मित्र और वरुण दोनों देवताओंका भी भरण करती हूँ, इन्द्र और अग्निदेवताको भी मैं धारण करती हूँ और दोनों अश्विनीकुमारोंको भी मैं धारण करती हूँ (तात्पर्य यह है, कि-मेरे स्वरूप अद्वितीय ब्रह्ममें सब जगत् सीपीमें अध्यस्त चाँदीकी समान दीखता है, माया भी जगत्के आकारसे विवर्तित होजाती है, उसका आधार होनेसे असंग ब्रह्ममें भी पहिले कहे हुए सब की उपपत्ति होजाती है) ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अहं राष्ट्रीं संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्

ता मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः

अहम् । राष्ट्री । सम्ऽगमनी । वसूनाम् । चिकितुषी । प्रथमा । यज्ञियानाम् ।

ताम् । मा । देवाः । वि । अदधुः । पुरुऽत्रा । भूरिस्थात्राम् । भूरि । आऽवेशयन्तः ॥ २ ॥

अद्वितीयब्रह्मात्मिका अहं राष्ट्री । ईश्वरनामैतत् । कृत्स्नस्य दृश्यप्रपञ्चस्य राज्ञी नियन्त्री । अत एव वसूनाम् धनानां संगमनी संग-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मयित्री उपासकानां फलस्य प्रापयित्री। चिकितुषी यत् साक्षात्-कर्तव्यं परं ब्रह्म तत् ज्ञातवती स्वात्मतया साक्षात्कृतवती। ❀ कित ज्ञाने इत्यस्मात् लिटः क्वसुः। तदन्तात् "उगितश्च" इति ङीप् ❀। अत एव यज्ञियानाम् यज्ञार्हाणां देवानां प्रथमा मुख्या। ❀"यज्ञ-र्त्विग्भ्यां घखञौ" इति अर्हार्थे घप्रत्ययः ❀। ताम् तादृशीं मा मां भूरिस्थात्राम् बहुभावेन प्रपञ्चात्मना कृतावस्थानां भूरि बहुलं फलम् आवेशयन्तः उपासकान् प्रापयन्तो देवाः पुरुत्रा बहुषु स्थानेषु व्यदधुः विदधति कुर्वन्ति। ❀ "देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यः०" इति सप्तम्यर्थे त्राप्रत्ययः ❀। उक्तप्रकारेण वैश्वरूप्येण अवस्था-नाद्ध यद्यत् कुर्वन्ति देवास्तत् सर्वं मामेव कुर्वन्तीत्यर्थः॥

अद्वितीय ब्रह्मात्मिका मैं सम्पूर्ण दृश्यप्रपञ्चकी रानी हूँ अत एव उपासकोंको धनरूप फलोंको प्राप्त कराने वाली हूँ और जो साक्षात्कर्तव्य परब्रह्म है, उसका मैंने परब्रह्मरूपसे साक्षात् किया है, अत एव यज्ञके योग्य देवताओंमें मुख्य हूँ। ऐसी प्रपञ्चरूपसे अवस्थान करने वाली मुझको, उपासकोंको फल देने वाले देवता अनेक स्थानोंमें स्थापित करते हैं। इसप्रकार वैश्वरूप्यसे अवस्थान के कारण देवता जो कुछ करते हैं वह सब मुझको ही करते हैं२

तृतीया॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।

अहम्। एव। स्वयम्। इदम्। वदामि। जुष्टम्। देवानाम्।
उत। मानुषाणाम्।
यम्। कामये। तम्ऽतम्। उग्रम्। कृणोमि। तम्। ब्रह्माणम्।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तम् । ऋषिम् । तम् । सुऽमेधाम् ॥ ३ ॥

अहं स्वयमेव आत्मनैव । [एवकारः] नान्योस्ति ममोपदेष्टेति अवधारणार्थः । इदम् आपरोक्ष्येण अनुभूयमानं ब्रह्मात्मकं वस्तु वदामि लोकहितार्थम् उपदिशामि । तद्द विशेष्यते । देवानाम् इन्द्रादीनां जुष्टम् प्रियम् उत मानुषाणाम् मनुष्याणामपि प्रियं परानन्दरूपत्वात् । "एतस्यैवानन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति" इति श्रुतेः [बृ० आ० ४. १. ३१] । यद्वा देवमनुष्यादिभिः सेवितम् इदं वक्ष्यमाणं मदीयं माहात्म्यम् अहमेव स्वयं वदामि । प्रकटयामीत्यर्थः । किं पुनस्तद् इत्याह । यम् इति । यं कामये । तं तम् इति प्रतिनिर्देश्यस्य वीप्सितत्वाद् अत्रापि वीप्सा द्रष्टव्या । यंयं पुरुषं रक्षितुम् अहं वाञ्छामि तंतं कृत्स्नं पुरुषम् उग्रं कृणोमि । सर्वेभ्योधिकं दुष्प्रधर्षं करोमि । यद्वा उग्रः ईश्वरः जगन्निर्माणसमर्थम् ईश्वरं करोमि । तमेव ब्रह्माणम् स्रष्टारं करोमि । तथा तम् ऋषिम् अतीन्द्रियार्थदर्शिनं करोमि । तमेव सुमेधाम् शोभनप्रज्ञं च करोमि । एवं सर्वजगन्नियन्तृब्रह्मात्मकत्वं स्वात्मनि आविष्कृतम् ॥

मैं स्वयं आत्मस्वरूपसे हूँ, अर्थात् मेरा उपदेष्टा और कोई नहीं है । मैं इस अपरोक्षरूपसे अनुभूयमान ब्रह्मात्मक वस्तुका लोकहितके लिये उपदेश देती हूँ । यह इन्द्र आदि देवताओंको भी प्रिय है और परानन्दरूप होनेसे मनुष्योंको भी प्रिय है † अथवा मैं देवता और मनुष्योंसे सेवित इस माहात्म्यको स्वयं ही कहती हूँ प्रकट करती हूँ, कि–मैं जिस २ पुरुषकी रक्षा करना चाहती हूँ

† बृहदारण्यक उपनिषत् ४ । १ । ३१ में कहा है, कि–"एतस्यैवानन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्रां उपजीवन्ति ॥–इसी आनन्दकी मात्रासे और प्राणी उपजीवन करते हैं" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस २ पुरुषको मैं सबसे अधिक दुष्प्रधर्ष करती हूँ अथवा उसको सब जगत्का निर्माण करनेमें समर्थ ईश्वर करती हूँ, उसीको स्रष्टा ब्रह्मा करती हूँ तथा अतीन्द्रियार्थदर्शी ऋषि करती हूँ और उस को शोभन बुद्धि वाला भी करती हूँ (इसप्रकार मैंने सब जगत् का नियन्ता अध्यात्मभाव अपनेमें आविष्कृत कर लिया है) ॥३॥

चतुर्थी ॥

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥ ४ ॥

मया । सः । अन्नम् । अत्ति । यः । विऽपश्यति । यः । प्राणिति । यः । ईम् । शृणोति । उक्तम् ।
अमन्तवः । माम् । ते । उप । क्षियन्ति । श्रुधि । श्रुत । श्रत्ऽधेयम् । ते । वदामि ॥ ४ ॥

यो भोक्तृजनः अन्नम् अत्ति स भोक्तृशक्तिरूपया मयैव अन्नम् अत्ति । यश्च जनो विपश्यति विविधं जगत् चक्षुषा साक्षात्करोति । यश्च प्राणिति श्वासोच्छ्वासादिव्यापारं करोति । ❀ अन प्राणने । अदादित्वात् शपो लुक् । "रुदादिभ्यः सार्वधातुके" इति इडागमः । "अनितेः" इति णत्वम् ❀ । ईम् इदम् उक्तम् स्वरूपं यश्च पुरुषः शृणोति श्रोत्रेन्द्रियेण गृह्णाति ते सर्वेपि तत्तच्छक्त्यात्मना अवस्थितया मयैव तत्तद्व्यापारं कुर्वन्तीत्यर्थः । ❀ शृणोतीति । श्रु श्रवणे । "श्रुवः शृ च" इति श्नुप्रत्ययः धातोः शृभावश्च ❀ ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ये ईदृशीम् अन्तर्यामिरूपेण स्थितां मां न जानन्ति ते माम् अमन्तवः अमन्यमानाः अजानानाः मद्विषयज्ञानरहिताः उप क्षियन्ति उपक्षीणाः संसारेण निहीना भवन्ति। ❀ मनेरौणादिकस्तुप्रत्ययः। नञ्समासेन अन्तोदात्तत्वम्॥ यद्वा भावे तुप्रत्ययः। ततो बहुव्रीहौ "नञ्सुभ्याम्" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् ❀। हे श्रुत विश्रुत हे सखे श्रुधि मया उक्तं शृणु। ❀ छान्दसो विकरणस्य लुक्। "श्रुशृणुपृकृवृभ्यः०" इति हेर्धिभावः ❀। अहं ते तुभ्यं श्रद्धेयम् श्रद्धातव्यम्। श्रद्धा भक्तिः। तया प्राप्यं परतत्त्वस्वरूपं वदामि उपदिशामि। ❀ श्रद्धेयम् इति। "अचो यत्" इति धातो यत् प्रत्ययः। "ईद्यति" इति ईकारः ❀॥

जो भोक्ता अन्नका भक्षण करता है, वह भोक्तृशक्तिरूप मेरे द्वारा ही भक्षण करता है, जो पुरुष जगत्का अनेक प्रकारसे साक्षात् करता है और जो श्वास उच्छ्वास आदि व्यापारको करता है, इसी प्रकार जो श्रोत्रेन्द्रियसे ग्रहण करता है ये सब तत्तच्छक्तिरूपसे स्थित मेरे द्वारा ही उस व्यापारको करते हैं। जो इस प्रकार अन्तर्यामीरूपसे स्थित मुझको नहीं जानते हैं, वे मुझको न जानने वाले उपक्षीण होजाते हैं अर्थात् संसारसे हीन नहीं होते हैं, हे प्रसिद्ध मित्र ! मेरे कहे हुए वचनको सुन, मैंने तुझसे यह भक्ति करने योग्य वचन कहा है॥ ४॥

पञ्चमी॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ५.

अहम्। रुद्राय। धनुः। आ। तनोमि। ब्रह्मऽद्विषे। शरवे। हन्तवै। ऊं इति।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अहम् । जनाय । सऽमदम् । कृणोमि । अहम् । द्यावापृथिवी इति ।
आ । विवेश ॥ ५ ॥

पुरा त्रिपुरविजयसमये रुद्राय । षष्ठयर्थे चतुर्थी ❀ । रुद्रस्य महादेवस्य धनुः अहम् आ तनोमि आततज्यं करोमि । किमर्थम् । ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणानां द्वेष्ट्रे शरवे । ❀ शृ हिंसायाम् शृस्वृस्निहीत्यादिना [उ० १. १०] उप्रत्ययः ❀ । हिंसकाय । ❀ उभयत्र "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वात् चतुर्थी ❀ । ब्रह्मद्विषं शरुं त्रिपुरनिवासिनम् असुरगणं हन्तवै हन्तुं हिंसितुम् । ❀ हन्ते "तुमर्थे सेसेन्०" इति तवैप्रत्ययः । "अन्तश्च तवै युगपत्" इति आद्यन्तयोर्युगपद् उदात्तत्वम् ❀ । उशब्दः पूरणः । अहमेव जनाय स्तोतृजनार्थं समदम् । समानं माद्यन्त्यस्मिन्निति समत् संग्रामः । तं कृणोमि करोमि । तथा द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ अहम् आ विवेश अन्तर्यामित्वेन प्रविष्टवती ॥

मैं त्रिपुरविजयके समय ब्रह्मद्वेषी त्रिपुरनिवासी असुरोंको मारनेके लिये महादेवजीके धनुषको तानती हूँ और मैं ही स्तोताओंके लिये संग्रामको करती हूँ और अन्तर्यामी होनेसे मैं स्वर्ग और आकाशमें व्याप्त हूँ ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या३ यजमानाय सुन्वते ॥ ६ ॥

अहम् । सोमम् । आहनसम् । बिभर्मि । अहम् । त्वष्टारम् । उत ।
पूषणम् । भगम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अहम् । दधामि । द्रविणा । हविष्मते । सुप्रऽअव्या । यजमानाय । सुन्वते ॥ ६ ॥

आहनसम् आहन्तव्यम् अभिषोतव्यं सोमम् यद्वा शत्रूणाम् आहन्तारं दिवि वर्तमानं देवतात्मानं सोमम् अहमेव बिभर्मि धारयामि पोषयामि वा । तथा त्वष्टारम् उत अपि च पूषणं भगं च एतत्संज्ञान् देवान् अहमेव बिभर्मि ॥ तथा हविष्मते हविर्भिर्युक्ताय सुप्राव्ये शोभनहविर्भिर्देवानां प्रावित्रे तर्पयित्रे । ❀ अवतेस्तर्पणार्थात् "अवितृस्तृतन्त्रिभ्य ईः०" [उ० ३.१५८] इति ईकारप्रत्ययः । चतुर्थ्येकवचने यणि "उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य" इति अनुदात्तस्य सुपः स्वरितत्वम् ❀ । सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते । ❀ "शतुरनुमः०" इति विभक्त्युदात्तत्वम् ❀ । ईदृशाय यजमानाय द्रविणम् धनं यागफलरूपम् अहमेव दधामि प्रयच्छामि । "फलम् अत उपपत्तेः" [बा० ३. २. ३८] इति न्यायेन परब्रह्मणः फलदातृत्वस्य निर्णीतत्वात् ॥

शत्रुओंके संहारक स्वर्गमें विराजमान देवतात्मक सोमका मैं ही पोषण करती हूँ, त्वष्टा पूषा और भगदेवताका भी मैं ही पोषण करती हूँ और हविसे युक्त तथा शोभन हवियोंसे देवताओं को तृप्त करने वाले यजमानको यागफलरूप धन भी मैं ही देती हूँ ‡

सप्तमी ॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे । ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥ ७ ॥

‡ 'फलमत उपपत्तेः' इस बादरायणसूत्र ३ । २ । ३८ के अनुसार परब्रह्मके फलदातृत्वका निर्णय होता है ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अहम् । सुवे । पितरम् । अस्य । मूर्धन् । मम । योनिः । अप्ऽसु । अन्तः । समुद्रे ।

ततः । वि । तिष्ठे । भुवनानि । विश्वा । उत । अमूम् । द्याम् । वर्ष्मणा । उप । स्पृशामि ॥ ७ ॥

अस्य दृश्यमानस्य प्रपञ्चस्य मूर्धन् मूर्धनि उपरिभागे सत्यलोके पितरम् प्रपञ्चस्य जनकं विधातारम् अहं सुवे जनयामि । ❀ षूङ् प्राणिगर्भविमोचने । अदादित्वात् शपो लुक् ❀ । स्रष्टृसहितस्य जगतः कारणभूताया मम योनिः कारणं समुद्रे । समुद्द्रवन्ति अस्माद् भूतजातानीति समुद्रः परमात्मा । "समुद्र एवास्य बन्धुः समुद्रो योनिः" इति वाजसनेयकश्रुत्या समुद्रशब्दवाच्यत्वं परमात्मनो दर्शितम् । तस्मिन् परमात्मनि अप्सु व्यापनशीलासु धीवृत्तिषु अन्तः मध्ये यद् ब्रह्मचैतन्यं तत् मम कारणम् इत्यर्थः । यद्वा समुद्रे जलधौ अप्सु उदकेषु अन्तः मध्ये वाडववैद्युतरूपेण यत् तेजो वर्तते तदेव माध्यमिकवाग्रूपाया मम योनिः कारणम् ॥ ततः तेजःकारणकत्वाद्धेतोः विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि [वि] चष्टे प्रकाशयामि ॥ उत अपि च अमूं द्याम् विप्रकृष्टां दिवम् । उपलक्षणम् एतत् । एतदुपलक्षितं कृत्स्नं ब्रह्मणि अध्यस्तं विकारजातं वर्ष्मणा देहेन कारणभूतमायात्मकेन उप स्पृशामि ॥ यद्वा अस्य भूलोकस्य मूर्धन् मूर्धनि उपरि पितरम् आकाशम् । "द्यौः पिता पृथिवी माता" [तै० ब्रा० ३, ७, ५, ५] इति श्रुतेः । सुवे प्रेरयामि । तथा समुद्रे अन्तरिक्षे अप्सु अब्विकारेषु देवशरीरेषु मम कारणभूतं ब्रह्म व्याप्य वर्तत इत्यर्थः । शेषं पूर्ववत् ॥

इस दृश्यमान प्रपञ्चके मूर्धारूप सत्यलोकमें रहने वाले इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE २३-६-२६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रपञ्चके जनक विधाताको मैं उत्पन्न करती हूँ, स्रष्टासहित जगत् की कारणभूत मेरा कारण समुद्रोपनामक परमात्मा + की जल अर्थात् व्यापनशील धीवृत्तियोंके मध्यमें जो ब्रह्मचैतन्य है वह मेरा कारण है, अथवा समुद्रके जलमें जो वड़वानलके और विजली के संबंध वाला तेज है वही माध्यमिक वाग्रूपा मेरा कारण है, इस कारण तेजःकारणक होनेसे सब प्राणियोंको मैं प्रकाशित करती हूँ और इस दूरके स्वर्ग और ब्रह्ममें अध्यस्त सम्पूर्ण विकारों को मैं कारणभूत मायात्मक देहसे छूती हूँ और इस भूलोकके ऊपरके पितारूप आकाशको ‡ मैं प्रेरित करती हूँ तथा अन्तरिक्ष में जलके विकार देवशरीरोंमें मेरा कारणभूत जो ब्रह्म व्याप्त होकर रहता है उसके द्वारा मैं सबका स्पर्श करती हूँ ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अहमेव वातं इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ८

अहम् । एव । वातःऽइव । प्र । वामि । आऽरभमाणा । भुवनानि । विश्वा ।

+ समुद्द्रवन्ति अस्माद् भूतजातानि इति समुद्रः परमात्मा ॥— जिससे भूतसमूह प्रकट होते हैं वह परमात्मा समुद्र कहलाते हैं ॥ वाजसनेयक श्रुतिमें कहा है, कि—'समुद्र एवास्य बंधुः समुद्रो योनिः ॥—समुद्र ही इस जगत्का बंधु है और समुद्र ही इस जगत् की योनि है ॥'

‡ तैत्तिरीय ब्राह्मण ३ । ७ । ५ । ५ में कहा है, कि—"द्यौः पिता पृथिवी माता ॥—द्यौ पिता है, पृथिवी माता है ॥"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परः । दिवा । परः । एना । पृथिव्या । एतावती । महिम्ना । सम् । बभूव ॥ ८ ॥

विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि कार्याणि आरभमाणा कार्यरूपेण उत्पादयन्ती अहमेव अनन्यसहाया प्र वामि प्रवर्ते । ❀ वा गतिगन्धनयोः । अदादित्वात् शपो लुक् ❀ । तत्र दृष्टान्तः वात इव । यथा वायुः परेण अप्रेरितः स्वेच्छयैव प्रवाति तद्वद् इत्यर्थः ॥ उक्तं सार्वात्म्यं निगमयति उत्तरार्धेन । परो दिवा । ❀ परस् इति सकारान्तं परस्तात् इत्यर्थे वर्तते । यथा अध इति अधस्तादर्थे । तद्योगे च तृतीया सर्वत्र दृश्यते ❀ । दिवा आकाशस्य परस्तात् एना पृथिव्या । ❀ "द्वितीयाटौस्स्वेनः" इति इदम एनादेशः । "सुपां सुलुक्०" इति तृतीयाया आच् आदेशः ❀ । अस्याः पृथिव्याः परः परस्तात् । द्यावापृथिव्योरुपादानम् उपलक्षणम् । एतदुपलक्षितात् सर्वस्माद् विकारजातात् परस्ताद् वर्तमाना असङ्गोदासीनकूटस्थब्रह्मचैतन्यरूपा अहं महिम्ना माहात्म्येन एतावती सं बभूव । एतत्परिमाणा उदीरितसकलजगदात्मना संभूतास्मि । ❀ एतच्छब्दात् "यत्तदेतेभ्यः०" इति वतुप् । "आ सर्वनाम्नः" इति आत्वम् ❀ ॥

[इति] पञ्चमं सूक्तम् । षष्ठोऽनुवाकः ॥

सब प्राणियोंको कार्यरूपसे उत्पन्न करती हुई मैं ही किसी दूसरेकी सहायता न लेती हुई वायुकी समान स्वयं ही प्रवृत्त होती हूँ अर्थात् वायु जिस प्रकार किसीकी प्रेरणासे नहीं, किंतु अपनी इच्छासे ही प्रवृत्त होता है, इसी प्रकार मैं भी अपनी इच्छासे ही प्रवृत्त होती हूँ (उक्त सर्वात्मभावका उत्तरार्धके द्वारा समर्थन करते हैं, कि—) आकाश पृथ्वी और समस्त विकारोंसे पर वर्तमान असंग उदासीन कूटस्थ ब्रह्मचैतन्यरूपा मैं माहात्म्यवश इतने (पूर्वोक्त) परिमाण वाली होगई हूँ ॥ ८ ॥

पञ्चम सूक्त समाप्त (१३२) ॥ छठा अनुवाक समाप्त ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सप्तमेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "त्वया मन्यो" "यस्ते मन्यो" इति सूक्तद्वयं स्वपरसेनयोर्मध्ये स्थित्वा सेने निरीक्षमाणो जपेत् ॥

तथा आभ्यां सूक्ताभ्यां भाङ्गपाशान् मौञ्जपाशान् आमपात्राणि वा संपात्य अभिमन्त्र्य परसेनासंचारस्थलेषु प्रक्षिपेत् ॥

तथा जयपराजयविज्ञानकर्मणि शरतृणानि सेनयोर्मध्ये निधाय आभ्याम् अभिमन्त्र्य आङ्गिरसाग्निना दहेत् । यां सेनां धूमो व्याप्नोति तस्याः पराजयो भवतीति विजानीयात् ॥

सूत्रितं हि । "त्वया मन्यो यस्ते मन्यो इति संरम्भणानि सेने समीक्षमाणो जपति" इत्यादि "यां धूमोवतनोति तां जयन्ति" इत्यन्तम् [कौ० २. ५] ॥

ग्रहयज्ञे "त्वया मन्यो" "यस्ते मन्यो" इत्याभ्याम् अङ्गारकस्य हविराज्ययोर्होमं समिदाधानम् उपस्थानं च कुर्यात् । तद्ध उक्तं शान्तिकल्पे । "त्वया मन्यो यस्ते मन्यो इत्यङ्गारकाय" इति [शा० क० १५] ॥

सातवें अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें 'त्वया मन्यो' और 'यस्ते मन्यो' इन दोनों सूक्तोंको अपनी और दूसरेकी सेनाके मध्यमें खड़ा होकर सेनाको देखता हुआ जपे ॥

तथा इन दोनों सूक्तोंसे भांगके पाश, मूँजके पाश वा कच्चे पात्रोंका अभिमंत्रण करके तथा सम्पातन करके शत्रुकी सेनाके घूमनेके स्थान पर फेंके ॥

तथा जय पराजयको जाननेके कर्ममें शरतृणोंको सेनाओंके मध्यमें रखकर इन दोनों सूक्तोंसे अभिमंत्रित कर आंगिरस अग्नि से जलावे । तब जिस सेनाकी ओर धुआँ जावे उस सेनाका पराजय होगा-यह समझे ॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"त्वया मन्यो यस्ते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मन्यो इति संरंभणानि सेने समीक्षमाणो जपति" इत्यादि "यां धूमोऽवतनोति तां जयन्ति" इत्यन्तं (कौशिकसूत्र २ । ५) ॥

ग्रहयज्ञमें 'त्वया मन्यो' और 'यस्ते मन्यो' इन दोनों सूक्तोंसे अंगारककी हवि और घृतका, समिदाधान और उपस्थान करे ॥ इसी बातको शान्तिकल्पमें कहा है, कि–"त्वया मन्यो यस्ते मन्यो इत्यङ्गारकाय" (शान्तिकल्प १५) ॥

तत्र प्रथमा ॥

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा हृषितासो मरुत्वन् तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥ १ ॥

त्वया । मन्यो इति । सऽरथम् । आऽरुजन्तः । हर्षमाणाः । हृषितासः । मरुत्वन् ।

तिग्मऽइषवः । आयुधा । सम्ऽशिशानाः । उप । प्र । यन्तु । नरः । अग्निऽरूपाः ॥ १ ॥

मन्युः क्रोधाभिमानी देवः । ❀ मन्युर्मन्यतेः कान्तिकर्मणः इति निरुक्तम् [नि० १०, २९] ❀ । हे मन्यो त्वया साधनेन सरथम् रथसहितं शत्रुम् आरुजन्तः आभञ्जन्तः । पीडयन्तः । ❀ यास्कस्त्वाह । सरथं समानं रथम् आरुह्य रुजन्त इति [नि० १०.३०] । रुजो भङ्गे । तुदादित्वात् शः ❀ । हर्षमाणाः हृष्टाः रुषितासः रुषिताः संजातरोषाः तिग्मेषवः तीक्ष्णशराः आयुधा आयुधानि खड्गादीनि संशिशानाः संश्यन्तस्तीक्ष्णीकुर्वन्तः । ❀ शो तनूकरणे इत्यस्मात् छान्दसस्य लिटः कानच् ❀ । एवंभूता अस्मदीया नरः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नराः हे मरुत्वन् मरुद्भिर्गणैर्युक्त त्वत्प्रसादात् अग्निरूपाः अग्निवद् दुष्प्रधर्षा उप प्र यन्तु शत्रून् उपगच्छन्तु। अग्निवद् उपप्राप्य दहन्तु इत्यर्थः ॥

हे क्रोधाभिमानी मन्युदेव ! आपसे साधनसे रथसहित शत्रुको पीड़ित करते हुए हर्षमें और क्रोधमें भरे हुए और आयुधोंको तीक्ष्ण करते हुए हमारे योधा हे मरुत्की समान वेगवान् मन्यो ! आपके प्रसादसे अग्निकी समान दुर्धर्ष होकर शत्रुके पास पहुँचें ॥१॥

द्वितीया ॥

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि।

हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥ २ ॥

अग्निःऽइव। मन्यो इति। त्विषितः। सहस्व। सेनाऽनीः। नः। सहुरे। हूतः। एधि।

हत्वाय। शत्रून्। वि। भजस्व। वेदः। ओजः। मिमानः। वि। मृधः। नुदस्व ॥ २ ॥

हे मन्यो अग्निरिव त्विषितः प्रदीप्तः सन् सहस्व शत्रून् अभिभव। हे सहुरे सहनशील। ❀सहेः औणादिक उरिन् प्रत्ययः❀। नः अस्माकं सेनानीः सेनाया नेता सेनाधिपतिः सन् हूत एधि संग्रामे सहायार्थम् आहूतो भव। ❀ अस्तेर्लोटि "घ्वसोरेद्धौ०" इति एत्वम्। तस्य च "असिद्धवद् अत्राभात्" इति असिद्धत्वात् झलन्तलक्षणो धिभावः ❀। अस्मदीयान् शत्रून् [हत्वाय] हत्वा तदीयं वेदः धनं वि भजस्व अस्मभ्यं विभज्य प्रयच्छ। पुन-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रपि ओजः बलं मिमानः कुर्वन् मृधः संग्रामकारिणः शत्रून् विनुदस्व । विजहि ॥

हे मन्यो ! आप अग्निकी समान प्रदीप्त होकर शत्रुओंको दबाइये हे सहनशील ! हमारी सेनाके सेनापति माने जाकर आप संग्राम में बुलाये जावें । आप हमारे शत्रुओंको मार कर उनका धन हमें बाँट कर दीजिये और फिर भी बल देकर संग्राम करनेवाले शत्रुओंको नष्ट करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मै रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।

उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयसा एकज त्वम् ॥

सहस्व । मन्यो इति । अभिऽमातिम् । अस्मै । रुजन् । मृणन् । प्रऽमृणन् । प्र । इहि । शत्रून् ।

उग्रम् । ते । पाजः । ननु । आ । रुरुध्रे । वशी । वशम् । नयासै । एकऽज । त्वम् ॥ ३ ॥

हे मन्यो अस्मै अस्य राज्ञः अभिमातिम् अभिमन्तारं शत्रुं सहस्व अभिभव । किं कुर्वन् । रुजन् हस्त्यश्वादिकं तदीयं बलं रुजन् भञ्जन् आमर्दयन् । मृणन् हिंसन् । प्रमृणन् प्रकर्षेण हिंसन् नाशयन् । ❀ मृण हिंसायाम् ❀ । एवं कुर्वन् शत्रून् अस्मदीयान् प्रेहि प्रगच्छ हन्तुं प्राप्नुहि । कस्माद् एवम् उच्यसे इति तत्राह उग्रम् इति । उग्रम् उद्गूर्णं तीक्ष्णम् हे मन्यो ते त्वदीयं पाजः बलं ननु आ रुरुध्रे केचिदपि नैव आरुद्धम् आवृतं कुर्वन्ति । ❀ आङ्पूर्वाद् रुधेश्छान्दसे लिटि "इरयो रे" इति रेभावः ❀ । अपि तु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे एकज असहायोत्पन्न वशी सर्वस्य वशयिता स्वतन्त्रस्त्वं वशं नयासै कृत्स्नं जनं स्वाधीनतां प्रापयसि ॥

हे मन्यो ! आप इस राजाके शत्रुके हाथी घोड़े आदिका संहार करते हुए, उसके सैनिकोंका तिरस्कार करते हुए और उनको घोररूपसे नष्ट करते हुए उसका तिरस्कार करिये । ऐसा करके हमारे शत्रुओंको मारनेके लिये जाइये (ऐसा कहनेका कारण यह है, कि-) आपका बल किसीके अटकानेसे रुकता नहीं है किन्तु हे असहायोत्पन्न ! सबको वशमें करने वाले सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र आप सम्पूर्ण मनुष्योंको अपने वशमें कर लेते हैं ॥३॥

चतुर्थी ॥

एकों बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय सं शिंशाधि ।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि

एकः । बहूनाम् । असि । मन्यो इति । ईडिता । विशम्ऽविशम् । युद्धाय । सम् । शिशाधि ।
अकृत्तऽरुक् । त्वया । युजा । वयम् । द्युऽमन्तम् । घोषम् । विऽजयाय । कृण्मसि ॥ ४ ॥

हे मन्यो ईलितः अस्माभिः स्तुतस्त्वम् एक एव बहूनां शत्रूणां निरसने पर्याप्तः असि भवसि । विशंविशम् सर्वाः प्रजा आविश्य युद्धाय आयोधनाय सं शिशाधि संशासय । ❀ शासु अनुशिष्टौ इत्यस्मात् लोटो हिः । "शा हौ" इति शासः शाभावः । छान्दसो विकरणस्य श्लुः । "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति शाभावस्य असिद्धवद्भावात् "हुझल्भ्यो हेर्धिः" इति झल्लक्षणं धित्वं भवति ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"बहुलं छन्दसि" इति अभ्यासस्य इत्त्वम् ❀ । यद्वा शिशाधि शिशाम् अस्मदीयां सेनां सं शिशाधि संशितां तीक्ष्णीभूतां कुरु । ❀ शो तनूकरणे इत्यस्मात् कृतात्त्वात् पूर्ववद् विकरणस्य श्लुः । "वा छन्दसि" इति हेरपित्त्वस्य विकल्पनात् ङित्त्वाभावात् "अङितश्च" इति धित्वम् । "बहुलं छन्दसि" इति अभ्यासस्य इत्त्वम् ❀ । हे अकृत्तरुक् अच्छिन्नदीप्ते मन्यो त्वया युजा सहायेन वयं द्युमन्तम् दीप्तिमन्तं घोषम् सिंहनादात्मकं विजयाय विजयार्थं कृण्मसि कृण्मः कुर्मः । ❀ "इदन्तो मसिः" ❀ ॥

हे मन्यो ! हमारे स्तुति करने पर आप एक होने पर भी बहुत से शत्रुओंको दबानेमें समर्थ होजाते हैं हमारी प्रत्येक प्रजामें प्रवेश करके आप उसको लड़नेके लिये तीक्ष्ण करिये । हे अच्छिन्न कान्ति वाले मन्यो ! आपकी सहायतासे हम दीप्तिमय सिंहनाद-रूपी घोषको विजयके लिये करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

विजेषकृदिन्द्रं इवानवब्रवो३स्माकं मन्यो अधिपा भवेह
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥ ५ ॥

विजेषऽकृत् । इन्द्रःऽइव । अनवऽब्रवः । अस्माकम् । मन्यो इति । अधिऽपाः । भव । इह ।

प्रियम् । ते । नाम । सहुरे । गृणीमसि । विद्म । तम् । उत्सम् । यतः । आऽबभूथ ॥ ५ ॥

हे मन्यो त्वं विजेषकृत् विजयस्य कर्ता इन्द्र इव अनवब्रवः अन-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE २४. ६.२६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चानां पुरातनानां जयोपायानां वक्ता इह अस्मिन् संग्रामे अस्माकम् अधिपाः अधिकं पालको भव। हे सहुरे सहनशील ते तव प्रियम् आह्लादकं नाम गृणीमसि गृणीमः स्तुमः। ❀ गृ शब्दे। "प्वादीनां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् ❀। यतः यस्मात् स्थानात् त्वम्। आबभूथ आभवसि आजायसे तम् उत्सम् अमृतधारायुक्तं स्थानं विद्म जानीमः॥

हे मन्यो! आप विजय करने वाले इन्द्रकी समान विजयके प्राचीन उपायोंके कहने वाले हैं (अतः) इस संग्राममें हमारा पालन करने वाले हूजिये। हे सहुरे! तुम्हारे प्रिय नामकी हम स्तुति करते हैं, जिस स्थानसे आप प्रकट होते हैं उस अमृतधारायुक्त स्थानको हम जानते हैं॥ ५॥

षष्ठी॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम्।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि॥

आऽभूत्या। सहऽजाः। वज्र। सायक। सहः। बिभर्षि। सहऽभूते। उत्ऽतरम्।
क्रत्वा। नः। मन्यो इति। सह। मेदी। एधि। महाऽधनस्य। पुरुऽहूत। सम्ऽसृजि॥ ६॥

आभूतिः अभिभवः। तया सह जायते प्रादुर्भवतीति सहजाः हे वज्र वज्रवद् अकुण्ठितशक्ते हे सायक शत्रूणाम् अन्तकर। ❀ षो अन्तकर्मणि इत्यस्मात् घञि सायः। तस्मिन्नुपपदे "डोन्यत्रापि दृश्यते" इति करोतेर्डप्रत्ययः ❀। एवंभूत मन्यो सहः बलं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बिभर्षि धारयसि । ❀ "भृञाम् इत्" इति अभ्यासस्य इत्वम् ❀ । कीदृशं सहः । उत्तरम् उद्गततरम् ।। हे सहभूते आत्मना सह भूतिः उत्पत्तिर्यस्य सः । आत्माविनाभूतो मन्युरित्यर्थः । ईदृश हे मन्यो क्रत्वा क्रतुना कर्मणा सह नः अस्माकं मेदी स्निग्धः एधि भव । ❀ ञिमिदा स्नेहने इत्यस्मात्................ ❀ । कस्मिन् विषये इत्याह। हे पुरुहूत बहुभिर्यजमानैराहूत महाधनस्य महान्ति धनानि अस्मिन् प्राप्यन्ते इति महाधनः संग्रामः । तस्य संसृजि संसर्गे । संयोजने । विषये इत्यर्थः ।।

पराभवके साथ प्रकट होने वाले बज्रकी समान अकुण्ठित शक्ति वाले शत्रुओंका अन्त करने वाले हे मन्यो ! आप प्रचण्ड बलको धारण करते हैं। हे आत्माके साथ उत्पन्न होने वाले तथा अनेक यजमानोंसे बुलाये जाने वाले पुरुहूत मन्यो ! आप जिसमें बड़े २ धन मिलते हैं उस संग्रामके डटने पर कर्मरूपमें हमारे साथ मिलिये ।। ६ ।।

सप्तमी ।।

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्युः । भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ।। ७ ।।

सम्ऽसृष्टम् । धनम् । उभयम् । सम्ऽआकृतम् । अस्मभ्यम् । धत्ताम् । वरुणः । च । मन्युः ।
भियः । दधानाः । हृदयेषु । शत्रवः । पराऽजितासः । अप । नि । लयन्ताम् ।। ७ ।।

वरुणो मन्युश्च उभौ उभयम् उभयविधम् आत्मीयं धनं संसृष्टम्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मिश्रितं कृत्वा समाकृतम् समानीतम् अस्मभ्यं दत्ताम् प्रयच्छताम्। मदीयाः शत्रवः हृदयेषु मनःसु भियः भीतिं दधानाः पराजितासः पराजिताः पराजयं प्राप्ताः अप निलयन्ताम् स्वस्थानाद् अपक्रम्य प्रच्छन्नं वर्तन्ताम्। ❀ अय पय गतौ। "उपसर्गस्यायतौ" इति लत्वम् ❀ ॥

इति प्रथमं सूक्तम्।

वरुण और मन्युदेव दोनों ही अपने लाये हुए धनको मिला कर हमको दें, हमारे शत्रु मनोंमें डरते हुए पराजयको प्राप्त हो अपने स्थानसे भाग कर दुबकते हुए फिरें ॥ ७ ॥

प्रथम सूक्त समाप्त (१३३) ॥

"यस्ते मन्यो" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः॥

'यस्ते मन्यो' इस सूक्तका पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ॥

तत्र प्रथमा ॥

यस्ते॑ मन्यो॒ऽवि॑धद् वज्र॒ साय॑क॒ सह॒ ओज॑ः पुष्य॑ति॒
विश्व॑मानु॒षक् ।
साह्याम॒ दास॒मार्यं॒ त्वया॑ यु॒जा व॒यं सह॑स्कृतेन॒ सह॑सा॒
सह॑स्वता ॥ १ ॥

यः। ते। म॒न्यो इति॑। अवि॑धत्। व॒ज्र॒। साय॑क॒। सह॑ः।
ओज॑ः। पुष्य॑ति। विश्व॑म्। आ॒नु॒षक्।
स॒ह्याम। दास॑म्। आर्य॑म्। त्वया॑। यु॒जा। व॒यम्। सह॑ःऽकृतेन।
सह॑सा। सह॑स्वता ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे मन्यो यः पुरुषः ते त्वाम् अविधत्। विधतिः परिचरणकर्मा। परिचरति। ❀ विध विधाने। त्वदादित्वाच्छान्दसो लङ् ❀। हे वज्र वज्रवद् अकुण्ठितशक्ते हे सायक शत्रूणाम् अन्तकर हे मन्यो स पुरुषः सहः शत्रूणाम् अभिभवनम् ओजः बलं च विश्वम् सर्वम् अन्यत् शत्रुजयादिलक्षणं कार्यजातम् आनुषक् अनुषक्तं संततं पुष्यति वर्धयति। ❀ पुष पुष्टौ ❀। त्वया युजा सहायेन दासम् उपक्षपयितारम् असुरम् आर्यम् तद्व्यतिरिक्तम् असुरशत्रुं वयं सह्याम अभिभवेम। कीदृशेन त्वया। सहस्कृतेन सहसा बलेनोत्पादितेन। सहसा सहमानेन अभिभवित्रा। सहस्वता बलवता॥

हे मन्यो! जो पुरुष आपकी सेवा करता है, हे वज्रकी समान अकुण्ठित शक्ति वाले और शत्रुओंका अन्त करने वाले मन्यो! वह पुरुष शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले बलको तथा शत्रुजयके अन्य सब कार्योंको अनवरत पुष्ट ही करता जाता है। बलके द्वारा उत्पन्न किये हुए, दबाने वाले बली आपकी सहायतासे हम क्षीण करने वाले असुर वा आर्य शत्रुको भी दबाते हैं॥१॥

द्वितीया॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः। मन्युर्विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः॥ २॥

मन्युः। इन्द्रः। मन्युः। एव। आस। देवः। मन्युः। होता। वरुणः। जातऽवेदाः।

मन्युः। विशः। ईडते। मानुषीः। याः। पाहि। नः। मन्यो इति। तपसा। सऽजोषाः॥ २॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यद् इन्द्रादीनाम् इन्द्रत्वं तत् पराभिभवनिमित्ताद् मन्युप्रसादादेवेति सार्वात्म्येन स्तौति। मन्युरेव इन्द्रः। मन्युरेव सर्वः अन्यो देवः आस भवति। ❀ अस्तेर्लिटि छान्दसो भूभावाभावः ❀। होता देवानाम् आह्वाता अग्निरपि मन्युरेव। जातवेदाः जातप्रज्ञो वरुणोपि मन्युरेव। मानुषीः मनोरपत्यभूता या विशः प्रजाः सन्ति ता अपि मन्युमेव ईडते स्तुवन्ति नेन्द्रादीन्। तस्यैव इन्द्रादिरूपेण अवस्थानात्। हे मन्यो स त्वं नः अस्मान् तपसा संतापेन सजोषाः संगतः सन् [पाहि] रक्ष पालय ॥

(इन्द्र आदि देवताओंका जो इन्द्रत्व है वह पराभव करनेके निमित्त कारण मन्यु देवताके प्रसादसे ही हुआ है अतः सर्वात्मभावसे मन्यु (क्रोध) की ही स्तुतिकी जाती है, कि-) मन्यु ही इन्द्र है, और सब देवता भी मन्यु ही हैं, देवताओंका आह्वान करने वाले अग्निदेव भी मन्यु ही हैं, बुद्धिमान् वरुणदेव भी मन्यु ही हैं, और मनुकी सन्तान प्रजायें भी मन्युकी ही स्तुति करती हैं, इन्द्र आदिकी स्तुति नहीं करती हैं, क्योंकि-वही इन्द्र आदि के रूपमें स्थित है। हे मन्यो ! यह आप हमारे सन्तापके साथ मिल कर हमारा पालन करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥ ३ ॥

अभि। इहि। मन्यो इति। तवसः। तवीयान्। तपसा। युजा। वि। जहि। शत्रून्।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अमित्रऽहा । वृत्रऽहा । दस्युऽहा । च । विश्वा । वसूनि । आ ।
भर । त्वम् । नः ॥ ३ ॥

हे मन्यो अभीहि अभिमुखं गच्छ ॥ तवसस्तवीयान् । तव इति महन्नाम । प्रवृद्धादपि प्रवृद्धतरः स त्वं तपसा संतापेन त्वज्जन्मकारणेन युजा सहायेन अस्मदीयान् शत्रून् वि जहि विनाशय ॥ अमित्रहा अमित्रः स्नेहरहितः तस्य हन्ता । वृत्रहा [वृत्र] आवेष्टकः शत्रुः तस्य हन्ता । दस्युहा दस्युः उपक्षपयिता शत्रुः तस्य हन्ता । एवम् अमित्रादीन् हत्वा विश्वा विश्वानि सर्वाणि वसूनि नः अस्मभ्यं त्वम् आभर आहर ॥

हे मन्यो ! आप हमारे सन्मुख आइये, बड़ेसे बड़े आप अपने जन्मके कारण सन्तापकी सहायतासे हमारे शत्रुओंको नष्ट करिये । आप स्नेहरहित अमित्रोंको मारने वाले हैं, घेरने वाले शत्रुको मारने वाले हैं और क्षीण करने वाले शत्रुको मारने वाले हैं । अतः आप अमित्र आदि सबको मार कर सब धन हमारे पास लाइये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहीयानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥ ४ ॥

त्वम् । हि । मन्यो इति । अभिभूतिऽओजाः । स्वयम्ऽभूः । भामः ।
अभिमातिऽसाहः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विश्वऽचर्षणिः । सहुरिः । सहीयान् । अस्मासु । ओजः । पृतनासु । धेहि ॥ ४ ॥

हे मन्यो त्वं हि त्वं खलु अभिभूत्योजाः अभिभूतिः अभिभावुकम् ओजो बलं यस्य स तथोक्तः । स्वयंभूः स्वयमेव आत्मनि उत्पद्यमानः । भामः क्रुद्धः । अभिमातिषाहः अभिमातीनां शत्रूणां सोढा । विश्वचर्षणिः विश्वस्य सर्वस्य द्रष्टा । यद्वा विश्वे चर्षणयो मनुष्या यस्य वशे वर्तन्ते स तथोक्तः । सहुरिः सहनशीलः । सहीयान् सोढृतमः । एवंगुणविशिष्टः त्वं पृतनासु संग्रामेषु ओजः बलम् अस्मासु धेहि स्थापय ॥

हे मन्यो ! आपका बल अभिभूति (तिरस्कार) है आप अपने आप ही आत्मामें उदित होते हैं, क्रुद्ध हैं, शत्रुओंको दवाने वाले हैं । सबके द्रष्टा हैं, सब मनुष्य आपके वशमें रहते हैं, सहनशील हैं, दवाने वाले हैं, ऐसे गुण वाले आप संग्रामोंके अवसर पर हममें बल स्थापित करिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि ॥ ५ ॥

अभागः । सन् । अप । पराऽइतः । अस्मि । तव । क्रत्वा । तविषस्य । प्रऽचेतः ।

तम् । त्वा । मन्यो इति । अक्रतुः । जिहीड । अहम् । स्वा । तनूः । बलऽदावा । नः । आ । इहि ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे प्रचेतः प्रकृष्टज्ञान हे मन्यो तविषस्य महतः तव क्रत्वा कर्मणा अभागः भागरहितः सन्। त्वाम् अयजमान इत्यर्थः। एवंभूतः सन् युद्धाद् अप परेतो अस्मि अपक्रम्य परागतो भवामि। हे मन्यो तं तादृशं [त्वा] त्वाम् अक्रतुः त्वत्तोपकरकर्मवर्जितः अहं जिहीळ क्रोधितवान्। ❀ हेडति क्रुध्यतिकर्मा ❀॥ अथ इदानीं मम स्वा तनूः स्वकीयशरीरभूतस्त्वं नः अस्माकं बलदावा बलस्य दाता सन् एहि आगच्छ। यद्वा। ❀ स्वा तनूः इत्युभयत्र "सुपां सुलुक्०" इति सप्तम्या लुक् ❀। स्वायां तन्वाम् अस्माकं स्वभूते शरीरे बलस्य दाता सन् आगच्छेति। ❀ बलदावेति। डुदाञ् दाने। "आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च" इति वनिप् ❀॥

हे श्रेष्ठ ज्ञान वाले मन्युदेव! महनीय आपकी पूजा न करने से मैं युद्धसे हट जाता हूँ हे मन्यो! ऐसे आपको सन्तुष्ट करने वाले कर्मको न करनेसे मैंने आपको क्रुद्ध कर दिया है, इस समय मेरे शरीररूप बने हुए आप हमको बल प्रदान करते हुए आइये ५

षष्ठी॥

अ॒यं ते॑ अ॒स्म्युप॑ न॒ एह्य॒र्वाङ् प्र॑तीची॒नः स॑हुरे विश्व-
दावन्।
मन्यो॑ वज्रिन्न॒भि न॒ आ व॑वृत्स्व॒ हना॑व॒ दस्यूँ॑रु॒त
बो॑ध्या॒पेः॥ ६॥

अ॒यम्। ते॒। अ॒स्मि॒। उप॑। न॒ः। आ। इ॒हि॒। अ॒र्वाङ्। प्र॒ती॒चीनः। स॒हु॒रे॒। वि॒श्व॒ऽदा॒व॒न्।
मन्यो॒ इति॑। व॒ज्रि॒न्। अ॒भि। न॒ः। आ। व॒वृ॒त्स्व॒। ह॒नाव॑। दस्यू॑न्। उ॒त। बो॒धि॒। आ॒पेः॥ ६॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE २५. ९.२६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे मन्यो ते तव स्वभूतः अयं कर्मकरः अहम् अस्मि भवामि। नः अस्मान् उपेहि उपागच्छ। अर्वाङ् अस्मदभिमुखः सन् प्रतीचीनः शत्रून् प्रत्यञ्चन् गच्छन् हे सहुरे सहनशील हे विश्वदावन् विश्वस्य सर्वस्य फलस्य दातः हे वज्रिन्। वज्रं वर्जकम् आयुधं बलं वा। तद्वन् हे मन्यो नः अस्मान् अभ्या ववृत्स्व अभिमुखम् आवर्तस्व। ❀ छान्दसः शपः श्लुः ❀। आवाम् अस्मदीयान् दस्यून् उपक्षपयितन् हनाव हिंनसाव। ❀ "आडुत्तमस्य पिच्च" इति आडागमः ❀। उत अपि च आपेः आपिम् आप्तं बन्धुभूतं मां बोधि रक्षणीयोयम् इति बुध्यस्व॥

हे मन्यो! मैं यह आपका कर्म करने वाला होता हूँ आप हमारे पास आइये, आप हमारे अभिमुख होते हुए शत्रुओंकी ओर जाइये। हे सहनशील! हे सम्पूर्ण फलोंके दाता, हे बल-सम्पन्न! हम दोनों उपक्षय करने वाले शत्रुओंको मारें और आप वंधभूत मुझको रक्षणीय समझिये॥ ६॥

सप्तमी॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोधां वृत्राणि जंघनाव भूरि।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभावुपांशु प्रथमा पिबाव७

अभि। प्र। इहि। दक्षिणतः। भव। नः। अधः। वृत्राणि। जङ्घनाव। भूरि।

जुहोमि। ते। धरुणम्। मध्वः। अग्रम्। उभौ। उपऽअंशु। प्रथमा। पिबाव॥ ७॥

हे मन्यो अस्मदभिमुखं प्रेहि प्रगच्छ॥ नः अस्माकं दक्षिणतः दक्षिणभागे भव साचिव्यं कर्तुम् अवतिष्ठस्व। ❀ "द्व्यचोत-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्तिङः" इति दीर्घत्वम् ❀ ॥ अथ अनन्तरं भूरि भूरीणि बहूनि वृत्राणि शत्रून् जङ्घनाव अत्यर्थं हनाव । ❀ हन्तेर्यङ्लुगन्तात् लोटि "आडुत्तमस्य०" इति आडागमः ❀ । हे मन्यो ते तुभ्यं धरुणम् धारकं मध्वः मधुररसस्य सोमस्य अग्रम् अग्रचं सारभूतं रसं जुहोमि प्रयच्छामि । उभौ आवां प्रथमा प्रथमौ सर्वेभ्यः पूर्वभाविनौ सन्तौ उपांशु अप्रकाशं यथा अन्यैर्न ज्ञायते तथा पिबाव सोमपानं करवाव ॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे मन्यो ! आप हमारे अभिमुख आइये । आप हमारे दक्षिणभागमें हमारा मंत्रित्व करनेके लिये स्थिर हूजिये । तदनन्तर हम अनेक शत्रुओंको अधिकतासे पीटें । हे मन्यो ! मैं तुमको धारक मधुर रस सोमके सारभूत रसकी आहुति देता हूँ हम दोनों सब से प्रथम, जिस प्रकार दूसरोंको प्रतीत न हो तिस प्रकार सोमपान कर लें ॥ ७ ॥

द्वितीयसूक्त समाप्त (१३४) ॥

"अप नः शोशुचद् अघम्" इत्यस्य सूक्तस्य "अप नः शोशुचद् अघम् [४. ३३] पुनन्तु मा [६. १६] सस्रुषीः [६.२३]" इति [कौ० १. ८] बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकादौ विनियोगः ॥

तथा स्त्रीणां पुरुषविषयाभिरतिनिवृत्तये पुरुषाणां च स्त्रीविषयाभिरतिनिवृत्तये च अनेन सूक्तेन असंख्याताः शर्करा अभिमन्त्र्य काम्यमानपरगृहं स्त्रीगृहं वा प्रकिरन् व्रजेत् । हस्ते धारयन् वा जपेत् । सूत्रितं हि "कामं विनेष्यमाणोऽपाघेनासंख्याताः शर्कराः परिकिरन् व्रजति" इत्यादि [कौ० ४. १२] ॥

तथा दुःशकुनदर्शने काकमैथुनादिविरुद्धदर्शने अद्भुतदर्शने च एतत् सूक्तं जपेत् । सूत्रं च । "अपनोदनापाघाभ्याम् [१. २६, ४. ३३] अन्वीक्षं प्रतिजपति" इति [कौ० ५. ६] ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा चरमसंस्कारे शवदहनानन्तरम् अनवेक्ष्यमाणः सबान्धवो गच्छन् कर्ता जपेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि स्नानसमये ब्रह्मा एतत् सूक्तं जपेत् । स्नानानन्तरं गृहम् आगत्य अनेन सूक्तेन कर्ता श्यामाकीः समिध आदध्यात् ॥

'अप नः शोशुचदघम्' इस सूक्तका "अप नः शोशुचदघम् (४ । ३३) पुनन्तु मा (६ । १९) सस्रुषीः (६ । २३)" (कौशिकसूत्र ९ । ६) इस प्रकार बृहद्गणमें पाठ होनेसे शान्त्युदक आदिमें विनियोग होता है ॥

तथा स्त्रियोंकी पुरुषविषयक प्रेमकी निवृत्तिके और लिये पुरुषों की स्त्रीविषयक रतिनिवृत्तिके लिए भी इस सूक्तसे अनगिनती रेतेके कणोंको अभिमंत्रित करके काम्यमान परगृहमें वा स्त्रीके घरमें बखेरता हुआ चले । वा इन रेतेके कणोंको हाथमें धारण करता हुआ जप करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-'अपनोदनापाघाभ्याम् (१ । २६, ४ । ३३) अन्वीक्षं प्रतिजपति' (कौशिकसूत्र ५ । ६) ॥

तथा अन्तिम संस्कारमें शवको भस्म करनेके अनन्तर शवको न देखता हुआ कर्ता बांधवों सहित इस सूक्तका जप करे ॥

तथा इसी कर्ममें ब्रह्मा स्नानके समय इस सूक्तका जप करे ॥ स्नानके अनन्तर घरमें आकर कर्ता इस सूक्तसे श्यामाकी समिधाओंको रक्खे ॥

तत्र प्रथमा ॥

अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घमग्ने॑ शुशु॒ग्ध्या र॒यिम् ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अप । नः । शोशुचत् । अघम् । अग्ने । शुशुग्धि । आ । रयिम् ।

अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ १ ॥

हे अग्ने त्वत्प्रसादात् नः अस्माकम् अघम् पापम् अप शोशुचत् अत्यर्थम् अपगतशोकं भवतु । ❀ नश्यतु इत्यर्थः शुचेर्यङ्लुगन्तात् लेटि अडागमः ❀ । त्वं च रयिम् धनम् अस्माकम् आ शुशुग्धि समन्तात् प्रज्वलितं समृद्धं कुरु । ❀ शुशुग्धीति । छान्दसः शपः श्लुः ❀ । आदरार्थम् उक्त एवार्थः पुनरनूद्यते ॥

हे अग्ने ! आपके प्रसादसे हमारा पाप नष्ट होजावे । और आप भी चारों ओरसे धनको हममें दीप्त करें । हमारा पाप आपके प्रसादसे शोक करने योग्य न रहे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।

अप नः शोशुचदघम् ॥ २ ॥

सुऽक्षेत्रिया । सुऽगातुया । वसुऽया । च । यजामहे ।

अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ २ ॥

सुक्षेत्रिया शोभनं क्षेत्रं सुक्षेत्रम् । ❀ "इयाडियाजीकाराणाम् उपसंख्यानम्" इति तृतीयैकवचनस्य डियाजादेशः । तथा सुगातुयेत्यत्रापि तृतीयाया याजादेशः । उभयत्रापि हेतौ तृतीया ❀ । सुक्षेत्रेण शोभनमार्गेण च हेतुना । तद् उभयं यथा स्याद् इत्यर्थः । यद्वा शोभनक्षेत्रेच्छया सुक्षेत्रिया । ❀ क्यचि छान्दसं ह्रस्वत्वम् । "अ प्रत्ययात्" इति अकारप्रत्ययः । तृतीयाया लुक् ❀ । शोभनक्षेत्रलाभेच्छया । ❀ सुगातुया । सुगातुशब्दात् पूर्ववत् क्यच् । "न च्छन्दस्यपुत्रस्य" इति दीर्घप्रतिषेधः । पूर्ववत् तृतीयाया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लुक् ❀ । शोभनमार्गेच्छया वस्वूया धनेच्छया च हे अग्ने त्वां यजामहे हविर्भिस्तोषयामः । त्वत्प्रसादाद् अस्मदीयम् अघं नश्यतु ॥

हे अग्ने ! हम शोभनक्षेत्र पानेकी इच्छासे और शोभन मार्ग मिलनेकी इच्छासे और धन पानेकी इच्छासे हवियोंके द्वारा आप कोसन्तुष्ट करते हैं, आपके प्रसादसे हमारा पाप नष्ट होजावे २

तृतीया ॥

प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।

अप नः शोशुचदघम् ॥ ३ ॥

प्र । यत् । भन्दिष्ठः । एषाम् । प्र । अस्माकासः । च । सूरयः ।

अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ३ ॥

एषाम् स्तोतॄणां मध्ये अहं प्र प्रकर्षेण यत् यस्माद् भन्दिष्ठः स्तोतृतमः । ❀ भदि कल्याणे सुखे च । भन्दना भन्दतेः स्तुतिकर्मण इति यास्कः [नि० ५. २] । भन्दितृशब्दात् "तुश्छन्दसि" इति इष्ठन् । "तुरिष्ठेमेयस्सु" इति तृलोपः ❀ । अस्माकासः अस्माकाः । ❀ "तस्येदम्" इत्यर्थे अणि "तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ" इति अस्माकादेशः । छान्दस आदिवृद्ध्यभावः । "आज्जसेरसुक्" ❀ । अस्मत्संबन्धिनः सूरयः अभिज्ञाः पुत्रादयश्च [प्र] प्रकर्षेण स्तोतृतमाः । तस्मात् हे अग्ने त्वत्प्रसादाद् अस्माकं पापं नश्यतु इति संबंधः ॥

हे अग्ने ! मैं इन स्तोताओंमें अधिक स्तुति करने वाला स्तोता हूँ और मेरे संबंधी पुत्र आदि भी आपके परम स्तोता हैं, इस कारण हे अग्ने आपके प्रसादसे हमारा पाप नष्ट होजावे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ४ ॥

प्र । यत् । ते॒ । अ॒ग्ने॒ । सू॒रयः॑ । जाये॑महि । प्र । ते॒ । व॒यम् ।

अप॑ । नः॒ । शोशु॑चत् । अ॒घम् ॥ ४ ॥

हे अग्ने ते तव स्तोतारो यत् यस्मात् त्वदनुग्रहेण प्रजायन्ते तस्मात् सूरयः विद्वांसो वयमपि ते तव स्तुत्या प्र जायेमहि पुत्र-पौत्रादिभिः समृद्धा भवेम ॥ अन्यत् पूर्ववत् ॥

हे अग्ने ! आपकी स्तुति करने वाले आपके अनुग्रहसे पुत्र पौत्र आदि प्रजासे सम्पन्न होते हैं, इसी प्रकार आपके प्रभावको जानने वाले हम भी पुत्र पौत्र आदिसे समृद्ध होवें। हे अग्ने ! आपके प्रसादमें हमारा पाप नष्ट हो जावे ॥ ४ ॥।

पञ्चमी ॥

प्र यद॒ग्नेः सह॑स्वतो वि॒श्वतो॒ यन्ति॑ भा॒नवः॑ ।

अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ५ ॥

प्र । यत् । अ॒ग्नेः । सह॑स्वतः । वि॒श्वतः॑ । यन्ति॑ । भा॒नवः॑ ।

अप॑ । नः॒ । शोशु॑चत् । अ॒घम् ॥ ५ ॥

सहस्वतः सहनवतः अभिभवनवतो बलवतो वा अग्नेः भानवः दीप्तयो विश्वतः सर्वतः यत् यस्मात् प्र यन्ति अस्मद्धितार्थं प्रवर्तन्ते तस्माद् आग्नेयेन तेजसा अस्मदीयम् [अघम्] पापं नश्यतु इत्यर्थः ॥

बलवान् अग्निकी दीप्तियें हमारा कल्याण करनेके लिये चारों ओरसे प्रवृत्त होती हैं, इस कारण आग्नेय तेजसे हमारा पाप नष्ट होजावे ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

षष्ठी ॥

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥

त्वम् । हि । विश्वतःऽमुख । विश्वतः । परिऽभूः । असि ।
अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ६ ॥

हे विश्वतोमुख सर्वतोमुख अग्ने त्वं हि त्वं खलु विश्वतः सर्वतः परिभूः परिग्रहीता व्यापकः असि भवसि । सर्वम् इदं जगत् त्वद्वशे वर्तते । अतस्त्वदाज्ञया अस्मदीयं पापं नश्यत्विति ॥

हे सर्वतोमुख अग्ने ! आप चारों ओरसे ग्रहण करने वाले हैं अर्थात् व्यापक हैं सब जगत् आपके वशमें है, अतः आपकी आज्ञासे हमारा पाप नष्ट होजावे ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ७ ॥

द्विषः । नः । विश्वतःऽमुख । अति । नावाऽइव । पारय ।
अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ७ ॥

हे विश्वतोमुख सर्वतोमुख अग्ने द्विषः द्वेष्टॄन् शत्रून् नावा समुद्रमिव नः अस्मान् अति पारय अतिक्रामय । त्वत्प्रसादाद्ध भयकारणम् अस्मदीयं पापं नश्यत्विति ॥

हे सर्वतोमुख अग्ने ! जैसे नौकासे समुद्रको तरते हैं, इस प्रकार तुम शत्रुओंसे हमको पार लगाओ । आपके प्रसादसे भयका कारण हमारा पाप नष्ट होजावे ॥ ७ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अष्टमी ॥

स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये ।

अप नः शोशुचदघम् ॥ ८ ॥

सः । नः । सिन्धुम्ऽइव । नावा । अति । पर्ष । स्वस्तये ।

अप । नः । शोशुचत् । अघम् ॥ ८ ॥

हे अग्ने सः उक्तगुणस्त्वं नावा सिन्धुम् समुद्रमिव स्वस्तये क्षेमाय [नः अस्मान्] अति पर्ष दुरितस्य पारं प्रापय । ❀ पॄ पालनपूरणयोः । अस्मात् लेटि अडागमः । "सिब्बहुलम्०" इति सिप् ❀ ॥ गतम् अन्यत् ॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे अग्ने ! जैसे नौकासे समुद्रको तरते हैं, इसी प्रकार आप क्षेमके लिये पापके पार हमको पहुँचा दीजिये । आपके प्रसादसे हमारा पाप नष्ट होजावे ॥ ८ ॥

द्वितीय सूक्त समाप्त (१३५) ॥

"ब्रह्मास्य शीर्षम्" इति सूक्तं ब्रह्मास्योदनसवे निरुप्तहविरभिमर्शनादिकर्मणि विनियुक्तम् ॥

तत्रैवानेन सूक्तेन चतसृषु दिक्षु ह्रदकरणम् कुल्याकरणम् तासां रसैः पूरणम् ह्रदेषु आण्डीकादिमन्त्रोक्तद्रव्यविधानं च कुर्यात् । सूत्रितं हि । "ब्रह्मास्येत्योदने ह्रदान् प्रतिदिशं करोति" इत्यादि [कौ० ८. ७] ॥

'ब्रह्मास्य शीर्षम्' यह सूक्त ब्रह्मास्योदनसवके निरुप्त हविके अभिमर्शन आदि कर्ममें विनियुक्त होता है ।

तहाँ ही इस सूक्तसे ह्रद और कुल्या बनावे और उनके रसों से पूर्ण करे और ह्रदोंमें आण्डीक आदि मंत्रमें कहे हुए द्रव्यका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विधान भी करे इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—'ब्रह्मास्येत्योदने ह्रदान् प्रतिदिशं करोति०' (कौशिकसूत्र ८ । ७) ॥

तत्र प्रथमा ॥

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य । छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोधि यज्ञः ॥ १ ॥

ब्रह्म । अस्य । शीर्षम् । बृहत् । अस्य । पृष्ठम् । वामऽदेव्यम् । उदरम् । ओदनस्य ।

छन्दांसि । पक्षौ । मुखम् । अस्य । सत्यम् । विष्टारी । जातः । तपसः । अधि । यज्ञः ॥ १ ॥

अस्यौदनस्य दीयमानस्य शिरःप्रभृत्यवयवकल्पनया स्तुतिः क्रियते । ब्राह्मणजात्या सह प्रजापतिमुखाद् उत्पन्नत्वाद् ब्रह्मशब्देनात्र रथंतरं साम विवक्षितम् । अत एव तस्य ब्रह्मवर्चसरूपता समाम्नाता । "रथंतरं साम भवति ब्रह्मवर्चसं वै रथंतरम्" इति । तद् ब्रह्मशब्दवाच्यं रथंतरं साम अस्य ओदनस्य शीर्षम् शिरः । तथा बृहत् साम अस्यौदनस्य पृष्ठम् पृष्ठभागः उपरिभागः । तथा वामदेव्यम् वामदेवेन दृष्टं साम उदरम् । ❀ "वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ" इति ड्यप्रत्ययः ❀ । छन्दांसि गायत्र्यादीनि पक्षौ । तथा सत्यम् सत्याख्यं साम परं ब्रह्म वा अस्यौदनस्य मुखम् । एवं विष्टारी विस्तीर्यमाणावयवः । ❀ विपूर्वात् स्तृणातेः कर्मणि णिनिप्रत्ययः । अथवा "प्रथने वावशब्दे" इति घञ् । ततो मत्वर्थीय इनिः ❀ । तादृशोयं सवयज्ञः तपसः तप्यमानाद् ब्रह्मणः अधि उपरि जातः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्पन्नः। यज्ञदानादिलक्षणाद् अन्यस्मात् तपसो वा आधिक्येनोत्पन्न इत्यर्थः ॥

(इस दिये जाते हुए ओदनकी शिर आदि अवयवोंकी कल्पना के द्वारा स्तुतिकी जाती है। ब्राह्मण जातिके साथ प्रजापतिके मुखसे उत्पन्न होनेके कारण ब्रह्म शब्दसे यहाँ रथन्तर सामका ग्रहण किया गया है, इसी लिये उसकी ब्रह्मवर्चसरूपता कही है, कि—"रथन्तरं साम भवति ब्रह्मवर्चसं वै रथन्तरम्") यह ब्रह्मशब्दवाच्य रथन्तर साम इस ओदनका शिर है और बृहत्साम इस ओदनका पृष्ठभाग है अर्थात् ऊपरका भाग है और वामदेव ऋषिका देखा हुआ भाग इस सामका उदर है, गायत्री आदि छन्द इसके पक्ष हैं, और सत्य नाम वाला इस ओदनका मुख है। इस प्रकार विस्तीर्ण अवयवों वाला सवयज्ञ तप करते हुए ब्रह्मसे ऊपर उत्पन्न हुआ है अर्थात् यज्ञ दान आदि अन्य तपसे अधिक प्रभाव रखने वाला हुआ है ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।

नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥ २ ॥

अनस्थाः। पूताः। पवनेन। शुद्धाः। शुचयः। शुचिम्। अपि। यन्ति। लोकम्।

न। एषाम्। शिश्नम्। प्र। दहति। जातऽवेदाः। स्वःऽगे। लोके। बहु। स्त्रैणम्। एषाम् ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनस्थाः। न विद्यते अस्थ्युपलक्षितं षाट्कौशिकं शरीरम् एषाम् इति अनस्थाः। ❀ "छन्दस्यपि दृश्यते" इति अस्थिशब्दस्य अनङ् आदेशः ❀। अमृतमयशरीरा इत्यर्थः। अत एव पवनेन पवनसाधनेन पूताः। यद्वा पवनेन अन्तरिक्षसंचारिणा वायुना पवित्रीकृताः शुद्धाः निर्मलाः शुचयः दीप्यमानाः एवंभूताः सवयज्ञस्य कर्तारः शुचिम् दीप्यमानं ज्योतिर्मयं लोकम् अपि यन्ति अपिगच्छन्ति देहावसाने प्राप्नुवन्ति॥ अपि च एषाम् स्वर्गे लोके अवस्थितानां शिश्नम् भोगसाधनम् इन्द्रियं जातवेदाः जातानां वेदिता अग्निः न प्र दहति न निर्वीर्यं करोति। प्रदाहप्रसक्तिम् आह बहु स्त्रैणम् इति। तत्र हि सुकृतफलोपभोगस्थाने एषां सुकृतिनां [बहु] बहुलं स्त्रैणम् स्त्रीणां समूहो भोगार्थं विद्यते। एवं स्त्रीसमूहं भुञ्जानानामपि न निर्वीर्यत्वशङ्केत्यर्थः। ❀ स्त्रैणम् इति। "स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्" इति समूहेर्थे नञ् प्रत्ययः ❀॥

जिनमें अस्थिसे उपलक्षित षट् कोश वाला शरीर नहीं है अर्थात् जो अमृतमय शरीर वाले हैं वे सवयज्ञके करने वाले देहावसान में अन्तरिक्षचारी वायुके द्वारा पवित्र होकर ज्योतिर्मय लोकको प्राप्त होते हैं और स्वर्गमें स्थित इनकी भोगसाधन शिश्नेन्द्रियको अग्निदेव जलाते नहीं हैं अर्थात् निर्वीर्य नहीं करते हैं। तहाँ पुण्यों का फल भोगनेके स्थानमें भोगनेके लिये बहुतसी स्त्रियोंका समूह इनके पास रहता है तात्पर्य यह है, कि—इस प्रकार स्त्रियोंको भोगने पर भी निर्वीर्यत्वकी शंका नहीं रहती॥ २॥

तृतीया॥

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदा चन।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः॥ ३॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विष्टारिणम् । ओदनम् । ये । पचन्ति । न । एनान् । अवर्तिः । सचते । कदा । चन ।

आस्ते । यमे । उप । याति । देवान् । सम् । गन्धर्वैः । मदते । सोम्येभिः ॥ ३ ॥

विष्टारिणम् उदीरितरीत्या विस्तीर्यमाणावयवम् ओदनं ये यजमानाः पचन्ति । पक्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्तीत्यर्थः । एनान् यजमानान् वर्तिः वृत्तिः वृत्तिर्जीवनम् तदभावः अवर्तिः दारिद्र्यं कदा चन कदाचिदपि न सचते न समवैति । ❀ षच समवाये ❀ । बहुवद् उक्तम् एकवद् आह । यः [पचति] स च सवयज्ञानुष्ठाता देहविश्लेषानन्तरं यमे पितॄणाम् अधिपतौ पूजितः सन् आस्ते सुखेन वसति । तेन अनुज्ञातः सन् देवान् उप याति उपगच्छति । तथा सोम्येभिः सोम्यैः सोमार्हैः गन्धर्वैः विश्वावसुप्रभृतिभिः सोमपालैः सह मदते अमृतमयसोमपानेन माद्यति ॥

पूर्वोक्त रीतिसे विस्तीर्यमाण अवयव वाले ओदनको जो यजमान पका कर ब्राह्मणोंको देते हैं, उन यजमानोंको दरिद्रता कभी प्राप्त नहीं होती । जो पकाता है वह सवयज्ञका अनुष्ठान करने वाला देहत्यागके अनन्तर पितरोंके अधिपति यमके राज्य में सुखपूर्वक वसता है और उनके अनुज्ञा करने पर देवताओंके समीप जाता है तथा सोमके योग्य विश्वावसु आदि गंधर्वोंके साथ अमृतमय सोमका पान करके हर्षमें भर जाता है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥ ४ ॥

विष्टारिणम् । ओदनम् । ये । पचन्ति । न । एनान् । यमः । परि । मुष्णाति । रेतः ।

रथी । ह । भूत्वा । रथऽयाने । ईयते । पक्षी । ह । भूत्वा । अति । दिवः । सम् । एति ॥ ४ ॥

नैनानित्यन्तं पूर्ववत् । यमः नियन्ता जीवनापहारी एनान् सवयज्ञानुष्ठातॄन् रेतः परि [न] मुष्णाति नापहरति । रेतोहीनान् न करोतीत्यर्थः । स च सवयज्ञानुष्ठाता रथयाने रथेन यातव्ये भूलोके यावज्जीवं रथी [ह भूत्वा] रथाधिरूढ एव ईयते संचरति । ❀ ईङ् गतौ । दिवादिः ❀ । अन्तरिक्षमार्गे च पक्षी पक्षवान् भूत्वा दिवः अन्तरिक्षप्रभृतीन् उपरितनान् लोकान् अतिक्रम्य समेति तत्तद्भोगस्थानेषु भोगैः संगच्छते ॥

पूर्वोक्तरीतिसे विस्तृत अवयवों वाले ओदनको बना कर जो ब्राह्मणोंको देते हैं उन सवयज्ञका अनुष्ठान करने वालोंके वीर्यको जीवनका अपहरण करनेवाले यम नहीं हरते हैं अर्थात् उनको वीर्यहीन नहीं करते हैं और वह सवयज्ञका अनुष्ठान करनेवाला भूलोकमें अपने जीवन पर्यन्त रथ पर चढ़ा हुआ ही घूमता है और अन्तरिक्षमें भी पर वाला हो कर अन्तरिक्ष आदि ऊपरके लोकोंको अतिक्रमण करता हुआ भोगोंसे संयुक्त होता है॥४॥

पञ्चमी ॥

एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा-विवेश ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ५

एषः । यज्ञानाम् । विऽततः । वहिष्ठः । विष्टारिणम् । पक्त्वा । दिवम् । आ । विवेश ।
आण्डीकम् । कुमुदम् । सम् । तनोति । बिसम् । शालूकम् । शफकः । मुलाली ।
एताः । त्वा । धाराः । उप । यन्तु । सर्वाः । स्वःऽगे । लोके । मधुऽमत् ।
पिन्वमानाः । उप । त्वा । तिष्ठन्तु । पुष्करिणीः । सम्ऽअन्ताः ५

एष विततः विस्तृतः सर्वयज्ञः यज्ञानां मध्ये वहिष्ठः वोढृतमः ॥ विष्टारिणम् शिरःपृष्ठाद्यवयवकल्पनया उदीरितविस्तारोपेतम् ओदनं पक्त्वा यजमानस्तत्फलभूतं दिवम् स्वर्गम् आ विवेश प्राप्नोति ॥ आण्डीकम् अण्डाकृतेः कन्दाद् उत्पन्नं कुमुदम् कैरवं दिव्येषु ह्रदेषु सं तनोति संयोजयति ॥ तथा बिसम् पद्मकन्दम् । शालूकम् उत्पलकन्दम् । शफकः शफाकृतिः जलोत्पन्नः । मुलालीति मृणाली विवक्षिता । एतानि सर्वाणि परितो ह्रदेषु स्थापनीयानि । एवम् इदानीम् अनुष्ठितत्वात् एतत्फलभोगस्थाने स्वर्गे कुमुदोत्पलकमलोपेतानि मधुरोदकानि नित्यपूर्णानि क्रीडासरांसि एनं परितः सेवन्त इत्यर्थः । एतदेवोत्तरत्र विशदीक्रियते "उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः" इति ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह विस्तृत सर्वयज्ञ यज्ञोंमें अधिक वोढ़ा है (पहुँचाने वाला है) शिर पृष्ठ आदि अवयवोंकी कल्पनासे पूर्वोक्त विस्तारसम्पन्न ओदनको बना कर यजमान इसके फलरूप स्वर्गमें प्रवेश करता है। अण्डकी समान आकार वाले कन्दसे उत्पन्न श्वेत कमलको सरोवरोंमें स्थापित करे। तथा पद्मकन्दको, उत्पलकन्दको और खुरकी समान आकृति वाले जलमें उत्पन्न पदार्थको और कमलिनीको सरोवरमें स्थापित करे (इस प्रकार अनुष्ठान करनेसे इनके भोगके स्थान स्वर्गमें कुमुद उत्पल और कमलोंसे सुशोभित तथा मधुर जलोंसे सर्वदा पूर्ण रहनेवाले क्रीड़ासरोवर सर्वदा अनुष्ठाताओंके लिये तयार रहते हैं इस बातको अगले उत्तरार्धसे स्पष्ट करते हैं, कि-) दधि मधु घृत आदिकी कुल्याओंमें भरे हुए रसकी ये सब धारायें फलभूत स्वर्गमें मधुरभावको पुष्ट करती हुई तेरे समीप आवें, तथा अन्त तक जलसे पूर्ण रहने वाली पुष्करिणियें तेरे पास आवें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्
पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ६

घृतऽह्रदाः। मधुऽकूलाः। सुराऽउदकाः। क्षीरेण। पूर्णाः। उदकेन। दध्ना।

एताः। त्वा। धाराः। उप। यन्तु। सर्वाः। स्वःऽगे। लोके। मधुऽमत्।

पिन्वमानाः। उप। त्वा। तिष्ठन्तु। पुष्करिणीः। सम्ऽअन्ताः ६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दधिमधुघृतादिलक्षणस्य दिश्यासु कुल्यासु पूर्यमाणस्य रसस्य एताः सर्वा धाराः प्रवाहाः फलभूते स्वर्गे लोके मधुमत् मधुयुक्तं माधुर्यवद् वा पिन्वमानाः सिञ्चन्त्यः त्वा त्वाम् उप यन्तु उपगच्छन्तु ॥ तथा समन्ताः पर्यन्तवर्तिन्यः पुष्करिणी पुष्करिण्यः सरस्यः हे सवयज्ञानुष्ठातः त्वा त्वाम् उप तिष्ठन्तु उपस्थिताः संगता भवन्तु । कीदृश्यस्ताः । घृतह्रदाः घृतपूर्णह्रदयुक्ताः । मधुकूलाः मधुना माक्षिकेण युक्तानि कूलानि यासां ताः । सुरोदकाः सुरा मद्यमेव उदकं यासां ताः । तथा क्षीरेण उदकेन दध्ना च पूर्णाः॥ एतेषु घृतादिद्रव्येषु यद्यत् कामयसे तेन तेन पूर्णा बहुविधाः पुष्करिण्यः त्वां सेवन्ताम् इत्यर्थः । ❀ दध्नेति । "अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् अनङ् उदात्तः" इति अनङ् आदेश उदात्तश्च । अल्लोपे उदात्तनिवृत्तिस्वरेण विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀ ॥

हे सवयज्ञका अनुष्ठान करनेवाले ! घृतसे पूर्ण सरोवरसे युक्त शहदसे भरे हुए किनारे वालीं, सुरारूपी जल वालीं तथा क्षीर जल और दहीसे पूर्ण धारायें स्वर्गमें मधुरतापूर्ण पदार्थोंको पुष्ट करती हुई तुझको प्राप्त हों जलपूर्ण बावड़ियें तुझको प्राप्त हों ६

सप्तमी ॥

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णाँ उदकेन दध्ना ।

एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥७॥

चतुरः । कुम्भान् । चतुःऽधा । ददामि । क्षीरेण । पूर्णान् । उदकेन । दध्ना ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE २७. ६.२६

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एताः । त्वा । धाराः । उप । यन्तु । सर्वाः । स्वःऽगे । लोके । मधुऽमत् । पिन्वमानाः । उप । त्वा । तिष्ठन्तु । पुष्करिणीः । समऽअन्ताः ॥ ७ ॥

क्षीरादिद्रव्येण पूर्णान् चतुरः कुम्भान् चतुर्धा प्रागादिदिग्भेदेन चतुष्प्रकारं दधामि दिक्षु निदधामि । एताः क्षीरादिधाराः त्वाम् उप यन्तु इत्यादि योज्यम् ॥

क्षीर आदि द्रव्योंसे पूर्ण चार कुम्भोंको मैं पूर्व आदि चार दिशाओंमें चार स्थान पर स्थापित करता हूँ, पुण्यके फलरूप स्वर्गलोकमें ये क्षीर आदिकी धारायें मधुरताको पुष्ट करती हुई तुझको प्राप्त हों और अन्त तक पूर्ण पुष्करिणियें तुझको प्राप्त हों ७

अष्टमी ॥

इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् ।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ॥ ८ ॥

इमम् । ओदनम् । नि । दधे । ब्राह्मणेषु । विष्टारिणम् । लोकऽजितम् । स्वःऽगम् ।
सः । मे । मा । क्षेष्ट । स्वधया । पिन्वमानः । विश्वऽरूपा । धेनुः । कामऽदुघा । मे । अस्तु ॥ ८ ॥

इमम् पक्वम् ओदनं ब्राह्मणेषु अग्रजन्मसु भोक्तृषु नि दधे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निक्षिपामि । कीदृशम् । विष्टारिणम् प्रागुक्तविस्तारोपेतं लोकजितम् लोक्यत इति लोकः कर्मफलं तज्जयसाधनम् अत एव स्वर्ग्यम् स्वर्गशब्दाभिधेयदुःखासंभिन्ननिरतिशयसुखस्य साधनम्॥ स ओदनः तस्मिन् स्वर्गे लोके स्वधया क्षीरादिरसेन पिन्वमानः वर्धमानः मा क्षेष्ट क्षयं मा प्राप्नोतु । ❀ क्षि क्षये । माङि लुङ् । पिन्वमान इति । पिवि मिवि णिवि सेचने । इदित्त्वान्नुम् ❀ । अपि च ओदनः विश्वरूपा नानाविधफलप्रदरूपा धेनुः सती मे मम कामदुघा अभिलषितफलस्य दोग्ध्री अस्तु भवतु । ❀ कामान् दुग्धे इति कामदुघा । "दुहः कब्घश्च" इति कब्घत्वे ❀ ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

इस राँधे हुए ओदनको अग्रय (श्रेष्ठ) जन्म वाले भोक्ता ब्राह्मणोंमें स्थापित करता हूँ, यह ओदन पूर्वोक्त विस्तारसे संपन्न है, स्वर्ग आदि लोकोंको जीतने वाला है, यह ओदन स्वर्गलोक में स्वधासे क्षीर आदि रसके द्वारा बढ़नेके कारण क्षीण न हो और यह ओदन अनेक प्रकारका फल देनेवाली अभिलषित फल को देने वाली धेनुके रूपमें परिणत होजावे ॥ ८ ॥

चतुर्थकाण्डके सप्तम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१३६) ॥

"यम् ओदनम्" इति सूक्तम् अतिमृत्युसवे निरुप्तहविरभिमर्शनादिषु विनियुक्तम् । सूत्रितं हि । "यम् ओदनम् इत्यतिमृत्युम्" इति [कौ० ८. ७] ॥

तथा गोर्यमलजननलक्षणाद्भुतशान्तौ अनेन सूक्तेन गोरभ्युक्षणं होमं च कुर्यात् । सूत्रितं हि । "अथ यत्रैतद् यमसूः यमोदनम् इति तां शान्त्युदकेन अभ्युक्ष्य [दोहयित्वा] तस्या एव गोर्दुग्धे स्थालीपाकं श्रपयित्वा" इत्यादि [कौ० १३. १७] ॥

"यम् ओदनम्" यह सूक्त अतिमृत्युसवके निरुप्त (न होमी हुई) हविके स्पर्श करनेमें विनियुक्त होता है इस विषयमें सूत्रका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रमाण भी है, कि-'यम् ओदनम् इत्यतिमृत्युम्' (कौशिकसूत्र ७।८)

तथा गौके दो संतान एक साथ उत्पन्न करनेकी शान्ति अद्भुत शान्तिमें इस सूक्तसे गौका अभ्युक्षण करे और होम करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"अथ यत्रैतद् यमसूः यमोदनम् इति तां शान्त्युदकेन अभ्युक्ष्य दोहयित्वा तस्या एव गोर्दुग्धे स्थालीपाकं श्रपयित्वा इत्यादि ॥-जहाँ गौ जुड़वाँ सन्तानोंको उत्पन्न करे, तहाँ यमोदनम् इस सूक्तसे उस गौका शान्तिजलसे अभ्युक्षण करे और उस गौको दुहाकर उसी गौके दुग्धमें स्थालीपाकको बना कर०" (कौशिकसूत्र १३ । १७) ॥

तत्र प्रथमा ॥

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेपचत्
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि
मृत्युम् ॥ १ ॥

यम् । ओदनम् । प्रथमऽजाः । ऋतस्य । प्रजाऽपतिः । तपसा । ब्रह्मणे । अपचत् ॥

यः । लोकानाम् । विऽधृतिः । न । अभिऽरेषात् । तेन । ओदनेन । अति । तराणि । मृत्युम् ॥ १ ॥

ऋतस्य परब्रह्मणः प्रथमजाः तत्सकाशात् प्रथमम् उत्पन्नो हिरण्यगर्भाख्यः प्रजापतिः तपसा दीक्षादिनियमेन यम् ओदनं ब्रह्मणे स्वकारणभूताय देवाय अपचत् । यश्च ओदनो लोकानाम् पृथिव्यादीनां विधृतिः विधारयिता एका मुख्या नाभिः शरीरस्य नाभिरिव लोकानां बन्धकः । ❀ नहो भश्च [उ० ४. १२५]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इति इङ् प्रत्ययः ॥ तेनौदनेन दीयमानेन मृत्युम् मरणं तद्धेतुभूतं वा देवम् अति तराणि अतिक्रमामि ॥

परब्रह्मके द्वारा पहिले उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ नामक प्रजापतिने दीक्षा आदिके नियमरूप तपसे जिस ओदनको अपने कारण ब्रह्मदेवके लिये बनाया था और नाभि जैसे प्राणियोंको मुख्यरूपसे धारण करने वाली है इसी प्रकार जो ओदन पृथिवी आदि लोकोंका बन्धक है—धारण करने वाला है, उस दिये जाते हुए ओदनके द्वारा मैं मरणको अथवा उसके कारण देवताको लाँघता हूँ १

द्वितीया ॥

येनातरन् भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्

येन । अतरन् । भूतऽकृतः । अति । मृत्युम् । यम् । अनुऽअविन्दन् । तपसा । श्रमेण ।

यम् । पपाच । ब्रह्मणे । ब्रह्म । पूर्वम् । तेन । ओदनेन । अति। तराणि । मृत्युम् ॥ २ ॥

भूतकृतः भूतानां प्राणिनां कर्तारो देवाः येन ओदनेन मृत्युम् अत्यतरन् अतिक्रान्तवन्तः । यम् ओदनं तपसा उपवासादिनियमेन श्रमेण शरीरक्लेशेन च अन्वविन्दन् अन्वलभन्त । तथा पूर्वम् प्रथमोत्पन्नं हिरण्यगर्भाख्यं ब्रह्म ब्रह्मणे स्वकारणभूताय यम् ओदनं पपाच । तद्देवत्यं पक्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रादाद् इत्यर्थः । तेनौदनेनेत्यादि गतम् ॥

भूतोंको रचने वाले देवता जिस ओदनके द्वारा मृत्युको लाँघ गए हैं । और जिस ओदनको उपवास आदिके नियमरूप तपसे और शरीरक्लेशरूप श्रमसे देवताओंने पाया है तथा पहिले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ नाम वाले ब्रह्माने अपने कारण ब्रह्माके लिये जिस ओदनको बनाया था अर्थात् ब्रह्मदेवता वाले जिस ओदनको बनाकर ब्राह्मणोंको दिया था, उस ओदनके द्वारा मैं मरणको अथवा उसके हेतुभूत देवताको लाँघता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन ।

यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ३ ॥

यः । दाधार । पृथिवीम् । विश्वऽभोजसम् । यः । अन्तरिक्षम् । आऽअपृणात् । रसेन ।

यः । अस्तभ्नात् । दिवम् । ऊर्ध्वः । महिम्ना । तेन । ओदनेन । अति । तराणि । मृत्युम् ॥ ३ ॥

य ओदनो विश्वभोजसम् विश्वस्य कृत्स्नस्य प्राणिजातस्य भोग्यभूतां पृथिवीम् भूमिं दाधार धृतवान् । ❀ विश्वं भुनक्ति पालयतीति विश्वभोजाः । भुज पालनाभ्यवहारयोः । अस्माद् असुन् प्रत्ययः ❀ । तथा य ओदनः आहुत्यात्मना परिणतेन स्वकीयेन रसेन अन्तरिक्षम् दिवम् आपृणात् आपूरयति । ❀ पृ पालनपूरणयोः । प्वादित्वात् ह्रस्वः ❀ । तथा य ओदनः महिम्ना महत्त्वेन दिवम् द्युलोकम् ऊर्ध्वः अस्तभ्नात् । यथाऽधो न पतति तथा ऊर्ध्वः सन् धृतवान् इत्यर्थः । एवं विराडात्मना तस्य स्तुतिः॥ तेनेदनेनेत्यादि गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो ओदन सम्पूर्ण प्राणियोंकी भोग्यरूपा पृथिवीको धारण कर चुका है तथा जो ओदन आहुतिरूपसे परिणत अपने रससे अन्तरिक्षको पूर्ण करता है तथा जो ओदन अपनी महिमासे द्युलोकको स्तंभित रखता है अर्थात् नीचे न गिरे इस प्रकार ऊपर ही धारण किये रहता है उस ओदनकेद्वारा मैं मृत्युको तरता हूँ ३

चतुर्थी ॥

यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।

अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ४ ॥

यस्मात् । मासाः । निःऽमिताः । त्रिंशत्ऽअराः । सम्ऽवत्सरः ।

यस्मात् । निःऽमितः । द्वादशऽअरः ।

अहोरात्राः । यम् । परिऽयन्तः । न । आपुः । तेन । ओदनेन ।

अति । तराणि । मृत्युम् ॥ ४ ॥

यस्मात् ब्रह्मात्मकाद् ओदनाद् मासा द्वादश निर्मिता उत्पन्नाः त्रिंशदराः । रथचक्रावयवाः कीलका अराः चक्रवद् आवर्तमानत्वाद् मासास्तथा अनेन रूप्यन्ते । त्रिंशत्संख्याकानि दिनानि अरा येषां ते तथोक्ताः । अपि च द्वादशारः द्वादशमासात्मकः संवत्सरो यस्मात् ब्रह्मात्मकाद् ओदनाद् निर्मितः उत्पादितः । अहानि च रात्रयश्च अहोरात्राः । ❀ "अहः सर्वैकदेश०" इति समासान्तः अच् प्रत्ययः ❀ । ते च पर्यन्तः पर्यावर्तमानाः यं ब्रह्मात्मकम् ओदनं [नापुः] न प्रापुः । तेनौदनेन इत्योदनस्य माससंवत्सराहोरात्रातिवर्तित्वेन स्तुतिः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिस ब्रह्मात्मक ओदनसे बारह मास उत्पन्न हुए हैं और रथ चक्रके अवयवरूप तीस अरे (दिन) उत्पन्न हुए हैं (मास दिन आदि चक्रकी समान घूमते हैं, अतः रथचक्रकी उपमा दी गई है) और द्वादश मास वाला सम्वत्सर जिस ब्रह्मात्मक ओदन से उत्पन्न किया गया है तथा दिन और रात्रि आवर्तन करते हुए भी जिस ब्रह्मात्मक ओदनको प्राप्त नहीं हुए उस ओदनके द्वारा मैं मृत्युका उल्लंघन करता हूँ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ५ ॥

यः । प्राणदः । प्राणदऽवान् । बभूव । यस्मै । लोकाः । घृतऽवन्तः । क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मतीः । प्रऽदिशः । यस्य । सर्वाः । तेन । ओदनेन । अति । तराणि मृत्युम् ॥ ५ ॥

यः ओदनः प्राणदवाम् प्राणैर्जिगमिषुभिर्दूयन्ते परिताप्यन्ते इति प्राणद्वः मुमूर्षवः । तेषां प्राणदः प्राणप्रदो बभूव भवति । ❀ प्राणदवाम् इति । दूङ् परितापे । अस्मात् प्राणशब्दोपपदात् क्विप् । अकारोपजनश्छान्दसः ❀ । यस्मै ब्रह्मात्मकाय ओदनाय सर्वे लोकाः घृतवन्तः घृतधारायुक्ताः क्षरन्ति स्रवन्ति । यस्य ओदनस्य तेजसा सर्वाः प्रदिशः प्रकृष्टाः प्राच्याद्या ज्योतिष्मतीः प्रशस्ततेजस्का भवन्ति ॥ तेनौदनेनेत्यादि गतम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो ओदन मुमूर्षुओंको प्राण देने वाला होता है और जिस ब्रह्मात्मक ओदनके लिये सब लोक घृतधाराओंको टपकाते हैं और जिस ओदनके तेजसे पूर्व आदि सब दिशायें प्रशस्त तेज वाली होती हैं उस ओदनसे मैं मृत्युको लाँघता हूँ ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

यस्मा॑त्प॒क्वाद॒मृतं॑ संब॒भूव॒ यो गा॑य॒त्र्या अधि॑पति॒र्बभूव॑ यस्मि॑न्वे॒दा निहि॑ता वि॒श्वरू॑पास्तेनौ॑द॒नेनाति॑ तरा॒णि मृ॒त्युम् ॥ ६ ॥

यस्मा॑त् । प॒क्वात् । अ॒मृत॑म् । स॒म्ऽब॒भूव॑ । यः । गा॒य॒त्र्याः । अधि॑ऽपतिः । ब॒भूव॑ ।

यस्मि॑न् । वे॒दाः । निऽहि॑ताः । वि॒श्वऽरू॑पाः । तेन॑ । ओ॒द॒नेन॑ । अति॑ । त॒रा॒णि॒ । मृ॒त्युम् ॥ ६ ॥

पक्वात् पाकोत्पन्नाद् यस्माद् ओदनाद् अमृतम् द्युलोकस्थं संबभूव उत्पन्नम् । यश्च गायत्र्याः छन्दसाम् अग्रिमाया अधिपतिः अधिदेवता बभूव भवति । यस्मिन् ओदने वेदाः ऋग्यजुःसामाद्याः विश्वरूपाः शाखाभेदेन आसादितवैश्वरूप्या निहिताः निक्षिप्ताः । अन्तरवस्थिता इत्यर्थः । ❀ पक्वात् इति । "पचो वः" इति निष्ठातकारस्य वत्वम् ❀ ॥

पाकसे सम्पन्न हुए जिस ओदनसे द्युलोकमें स्थित अमृत उत्पन्न हुआ है और जो छन्दोंमें अग्रस्थानीया गायत्रीका अधिपति देवता होता है और जिस ओदनमें ऋक् यजु साम आदि शाखाभेदसे अनेक रूपोंको प्राप्त वेद निक्षिप्त हैं भीतर स्थित हैं हैं उस ओदनसे मैं मृत्युका उल्लंघन करता हूँ ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सप्तमी ॥

अवं बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेप ते भवन्तु ।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य
देवाः ॥ ७ ॥

अव । बाधे । द्विषन्तम् । देवऽपीयुम् । सऽपत्नाः । ये । मे । अप ।
ते । भवन्तु ।

ब्रह्मऽओदनम् । विश्वऽजितम् । पचामि । शृण्वन्तु । मे ।
श्रत्ऽदधानस्य । देवाः ॥ ७ ॥

द्विषन्तम् हिंसन्तं शत्रुम् अहम् अव बाधे अपहन्मि । तथा देवपीयून् । ❀ पीयतिर्वधकर्मा । "पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति" [ऋ० १. १४७. २] इति हि निगमः ❀ । देवानां हिंसकान् अप अपहन्मि । अतो मे मम ये सपत्नाः शत्रवः ते अपहता भवन्तु । तदर्थम् अहं विश्वजितम् सर्वस्य जेतारं ब्रह्मौदनम् । ब्राह्मणेभ्यो देय ओदनो ब्रह्मौदनः । तं पचामि संस्करोमि । श्रद्दधानस्य श्रद्धायुक्तस्य मे मम वाक्यं देवा यष्टव्याः शृण्वन्तु आकर्णयन्तु ॥

[इति] पञ्चमं सूक्तम् ॥ सप्तमोनुवाकः ॥

द्वेष करने वाले शत्रुको मैं बाधा देता हूँ तथा देवताओंके हिंसकोंको मैं बाधा देता हूँ, अतः जो मेरे शत्रु हैं वे नष्ट होजावें, इसी लिये मैं सबका विजय करने वाले (ब्राह्मणोंके लिये दिये जाने वाले) ब्रह्मौदनको संस्कृत करता हूँ, मुझ श्रद्धालुके वाक्यको पूजनीय देवता सुनें ॥ ७ ॥

अथर्ववेदसंहिताके चतुर्थकाण्डके सप्तम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (१३७) ॥

सप्तम अनुवाक समाप्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अष्टमेनुवाके पञ्च सूक्तानि। तत्र "तान्त्सत्यौजाः" [४. ३६] "त्वया पूर्वम्" [४. ३७] इति द्वयोः सूक्तयोश्चातनगणे पाठात् "चातनानाम् अपनोदनेन व्याख्यातम्" [कौ० ४. १] इति विहितेषु भूतग्रहाद्युच्चाटनकर्मसु विनियोगः ॥

आठवें अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं। इनमें "तान्त्सत्यौजाः" (४।३६) और "त्वया पूर्वम्" (४।३७) इन दोनों सूक्तों का चातनगणमें पाठ है। अत एव "चातनानां अपनोदनेन व्याख्यातम्" इस कौशिकसूत्र ४।१ से विहित भूतग्रह आदिके उच्चाटन कर्मोंमें इनका विनियोग होता है ॥

तत्र प्रथमा ॥

तान्त्स॒त्यौजाः॒ प्र द॑हत्व॒ग्निर्वै॑श्वान॒रो वृषा॑ ।
यो नो॑ दुर॒स्याद् दिप्सा॒च्चाथो॒ यो नो॑ अरा॒तियात् ॥ १

तान् । स॒त्यऽओ॑जाः । प्र । द॒ह॒तु॒ । अ॒ग्निः । वै॒श्वा॒न॒रः । वृषा॑ । यः । न॒ः । दु॒र॒स्यात् । दिप्सा॑त् । च॒ । अथो॒ इति॑ । यः । न॒ः । अ॒रा॒ति॒ऽयात् ॥ १ ॥

सत्यौजाः सत्यम् अवितथम् ओजो बलं यस्य तादृशो वैश्वानरः विश्वनरहितः वृषा सेचनसमर्थः पुंस्त्वोपेतः अग्निः तान् शत्रून् प्र दहतु प्रकर्षेण भस्मीकरोतु। तच्छब्दनिर्दिष्टानेव दर्शयति उत्तरार्धेन। यः शत्रुः नः अस्मान् दुरस्यात् दुष्टानिव आचरेत्। अस्मासु अविद्यमानं दोषम् उद्भावयेद् इत्यर्थः। ❀ दुष्टशब्दात् "उपमानाद् आचारे" इति क्यच् "दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति" इति निपातनात् क्यचि दुष्टशब्दस्य दुरस्भावः। तदन्तात् लेटि आडागमः ❀। तथा यश्च शत्रुः अस्मान् दिप्सात् धिप्सेत् हिंसितुम् इच्छेत्। ❀ दन्भु दम्भे। "सनीवन्तर्ध०" इति इटो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विकल्पनाद् अभावः । "दम्भ इच्च" इति इत्त्वम् । भष्भावाभावश्छान्दसः । पूर्ववत् लेटि आडागमः ❀ । अथो अपि च यः शत्रुः [नः] अस्मान् [अरातियात्] अरातिवद् आचरेत् अस्मद्विषये शत्रुभावम् अनुतिष्ठति । तान् सर्वान् प्र दहतु इति संबन्धः ॥

जो शत्रु हममें अविद्यमान दोषका आरोप करते हैं, और जो शत्रु हमको मारना चाहते हैं और जो शत्रु हमसे शत्रुभावका वर्ताव करता है सत्यरूपी बल वाले, सम्पूर्ण मनुष्योंका हित करनेमें परायण सेचनसमर्थ अग्नि उन शत्रुओंको प्रबलतासे भस्म करें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥ २ ॥

यः । नः । दिप्सत् । अदिप्सतः । दिप्सतः । यः । च । दिप्सति ।
वैश्वानरस्य । दंष्ट्रयोः । अग्नेः । अपि । दधामि । तम् ॥ २ ॥

यः शत्रुः अदिप्सतः दम्भितुं हिंसितुम् अनिच्छतः नः अस्मान् दिप्सात् हिंसितुम् इच्छेत् । ❀ पूर्ववद् दन्भेः सन्नन्तात् लेटि आडागमः ❀ । तथा दिप्सतः हिंसितुम् इच्छतः अस्मान् यः शत्रुः दिप्सति दम्भितुम् इच्छति । जिहिंसिषतीत्यर्थः । वैश्वानरस्य विश्वनरहितस्य अग्नेः दंष्ट्रयोः खादनसाधनयोर्दन्तविशेषयोः आस्यमध्यस्थयोः तम् उभयविधं शत्रुम् अपि दधामि प्रक्षिपामि । ताभ्यां पीडितो विनश्यतु इत्यर्थः ॥

जो शत्रु हिंसा करना न चाहते हुए हमको मारनेकी इच्छा करे और जो शत्रु मारना चाहने वाले हमको मारना चाहता है, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितकारी अग्निदेवकी डाढ़ोंमें हम उन दोनों प्रकारके शत्रुओंको डालते हैं ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तृतीया ॥

य आ॒गरे॑ मृ॒गय॑न्ते प्रतिक्रो॒शे॑ऽमावा॒स्ये॑ ।

क्र॒व्यादो॑ अ॒न्यान् दिप्स॑तः सर्वां॒स्तान्त्सह॑सा सहे ३

ये । आ॒ऽग॒रे । मृ॒गय॑न्ते । प्र॒ति॒ऽक्रो॒शे । अ॒मा॒ऽवा॒स्ये॑ ।

क्र॒व्य॒ऽअदः॑ । अ॒न्यान् । दिप्स॑तः । सर्वा॑न् । तान् । सह॑सा । स॒हे॒ ३

आगीर्यते समन्ताद् भज्यते मांसशोणितादिकम् अत्रेति आगरो युद्धरङ्गः । ❀ गॄ निगरणे । "ॠदोरप्" इति अधिकरणे । अप् ❀ । तत्र [ये] क्रव्यादः मांसभक्षकाः पिशाचादयः मृगयन्ते अस्मान् हिंसितुम् अन्विच्छन्ति । ❀ मृग अन्वेषणे । चुरादिरदन्तः ❀ । तथा प्रतिक्रोशे प्रतिकूलैः शत्रुभिः कृते आक्रोशे अमावास्ये । अमा सूर्येण सह चन्द्रमा वसत्यस्यां तिथौ इति अमावास्या । ❀ अधिकरणे ण्यत् ❀ । तत्र जातः उत्पन्नः अर्धरात्रकालः अमावास्यः । ❀ "अमावास्याया वा" "अ च" इति अकारप्रत्ययः ❀ । तादृशे अमावास्यासंबन्धिनि अर्धरात्रकाले क्रव्यादः पिशाचाः अन्यान् दिप्सन्ति हिंसितुम् इच्छन्ति । नष्टचन्द्रायास्तस्या अर्धरात्रे हि रक्षसां संचरकालः । तथा च तैत्तिरीयकम् । "निशितायां हि रक्षांसि प्रेरते संप्रेर्णान्येवैनानि हन्ति" [तै० सं० २, २. २. ३] इति । एतच्च आपस्तम्बेन स्पष्टीकृतम् । "अग्नये रक्षोघ्ने पुरोडाशम् अष्टाकपालम् अमावास्यायां निशाया निर्वपेत्" इति । तान् सर्वान् पिशाचादीन् सहसा बलेन मन्त्रप्रभावजनितेन सहे अभिभवामि ॥

मांसशोणित आदिको जिसमें समीपतासे नष्ट किया जाता है उस संग्राममें जो मांसभक्षक पिशाच आदि हमको मारनेके लिये अवसर देखते रहते हैं, तथा शत्रुओंके प्रतिकूल आचरण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने पर अमावास्याके अर्धरात्रिके समय जो पिशाच औरोंको मारना चाहते हैं † उन सब पिशाच आदिको हम मंत्रप्रभावसे उत्पन्न हुए बलसे तिरस्कृत करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

सहे॑ पि॒शा॒चान्त्सह॑सै॒षां द्रवि॑णं दद॒े ।

सर्वा॑न् दुरस्य॒तो ह॑न्मि॒ सं म॒ आकू॑तिर्ऋध्यताम् ॥४॥

सहे॑ । पि॒शा॒चान् । सह॑सा । ए॒षाम् । द्रवि॑णम् । द॒दे॒ ।

सर्वा॑न् । दु॒र॒स्य॒तः । ह॒न्मि॒ । सम् । मे॒ । आऽकू॑तिः । ऋ॒ध्य॒ता॒म् ४

सहसा बलेन पिशाचान् पिशिताशिनो राक्षसान् सहे अभिभवामि । एषाम् रक्षसां द्रविणम् बलम् आ ददे स्वीकरोमि । नष्टवीर्यान् करोमीत्यर्थः। दुरस्यतः अस्मद्विषयं दुष्टत्वम् इच्छतः सर्वान् शत्रून् हन्मि हिनस्मि नाशयामि । नः अस्माकम् आकूतिः इष्टफलविषयः संकल्पः शम् सुखं यथा भवति तथा [ऋध्यताम्] समृध्यताम् । समृद्धफला भवतु इत्यर्थः। ❀ ऋधु वृद्धौ ❀ ॥

मैं मांसभक्षी राक्षसोंको मंत्रबलसे तिरस्कृत करता हूँ, इन राक्षसोंके बलको स्वीकार करता हूँ, अर्थात् इनके बलको नष्ट

† नष्टचन्द्रा अर्धरात्रि ही राक्षसोंके विचरनेका समय है । इसी बातको तैत्तिरीयसंहितामें लिखा है, कि-'निशितायां हि रक्षांसि प्रेरते सम्प्रेर्णान्येवैनानि हन्ति ॥" (तैत्तिरीयसंहिता २।२।२।३)॥ इसी बातको आपस्तम्बमुनिने स्पष्ट किया है कि-'अग्नये रक्षोघ्ने पुरोडाशं अष्टाकपालं अमावास्यायां निशायां निर्वपेत् ॥-राक्षसों का संहार करने वाले अग्निदेवके निमित्त अष्टाकपाल पुरोडाश को अमावास्याकी रात्रिमें देवे" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करता हूँ, तथा मुझसे दुष्टताका व्यवहार करना चाहने वाले शत्रुओंको मैं नष्ट करता हूँ। हमारा इष्टफलविषयक संकल्प सुखदायक रीतिसे समृद्ध हो ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् ।
नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ॥ ५ ॥

ये । देवाः । तेन । हासन्ते । सूर्येण । मिमते । जवम् ।

नदीषु । पर्वतेषु । ये । सम् । तैः । पशुऽभिः । विदे ॥ ५ ॥

देवाः दीव्यन्तो ये पिशाचाद्याः तेन प्रसिद्धेन विकारेण हासन्ते आविष्टं पुरुषं हासयन्ति । ❀ हसे हसने । अस्माद् ण्यन्तात् लटि "णिचश्च" इति आत्मनेपदम् । "छन्दस्युभयथा" इति शप आर्धधातुकत्वात् "णेरनिटि" इति णिलोपः ❀ । तथा सूर्येण समानं जवम् वेगं मिमते कुर्वन्ति । सूर्यप्रभावत् शीघ्रं व्याप्नुवन्तीत्यर्थः । तथा नदीषु पर्वतेषु च विजनस्थाने ये संचरन्ति तैः सर्वैर्वियुक्तोहं तत्कृतप्रतिबन्धविरहात् पशुभिः गोमहिषाद्यैः सं विदे संजाने । तान् प्राप्नोमीत्यर्थः । ❀ "समो गम्यृच्छि०" इति आत्मनेपदम् ❀ ॥ यद्वा हे देवा अग्न्यादयः ये पशवः तेन रक्षःपिशाचादिना हासन्ते जिहास्यन्ते । ❀ ओहाक् त्यागे इत्यस्मात् सन् । "छन्दसि वेति वक्तव्यम्" इति वचनाद् द्विर्वचनाभावः । कर्मणि कर्तृप्रत्ययश्छान्दसः ❀ । परित्यज्य पलायमानाश्च [ये] पशवः सूर्येण साकं वेगं कुर्वन्ति । शीघ्रं धावन्ति । ये च पशवो नदीषु पर्वतेषु च संचरन्ति युष्मत्प्रसादात् तन्निरोधकान् राक्षसादीन् अपहत्य तैः सर्वैः पशुभिरहं सं विदे इति सामानाधिकरण्येन संबन्धः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दमकते हुए पिशाच जिस प्रसिद्ध विकारसे आविष्ट पुरुषको हँसाते हैं और सूर्यकी समान वेगको करते हैं अर्थात् सूर्यकी प्रभाकी समान शीघ्र ही व्याप्त होजाते हैं तथा जो पर्वत और नदी आदि निर्जन स्थानोंमें विचरण करते हैं, उन सबसे अलग रहता हुआ मैं उनके किये हुए प्रतिबन्धोंसे रहित होनेके कारण गौ भैंस आदि पशुओंसे सम्पन्न होऊँ ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ॥ ६ ॥

तपनः । अस्मि । पिशाचानाम् । व्याघ्रः । गोमताम्ऽइव ।
श्वानः । सिंहम्ऽइव । दृष्ट्वा । ते । न । विन्दन्ते । निऽअञ्चनम् ६

पिशाचानाम् रक्षसाम् अहं तपनः मन्त्रसामर्थ्येन तापकोस्मि गोमताम् गोस्वामिनां व्याघ्र इव । यथा व्याघ्रो गवां हिंसकत्वेन तत्स्वामिनां तापको भवति तथेत्यर्थः । यथा सिंहं दृष्ट्वा श्वानो भीत्या निलीयन्ते तथा ते पिशाचाः अस्मन्मन्त्रप्रभावं दृष्ट्वा न्यञ्चनम् न्यग्भवनम् अधोगतिम् अनु विन्दन्ते अनुलक्ष्य लभन्ते ॥

जैसे गोस्वामियोंको व्याघ्र सन्ताप देता रहता है, इसी प्रकार मैं मन्त्रकी शक्तिसे राक्षसोंको सन्तप्त करने वाला बनूँ । जैसे सिंहको देख कर कुत्ते डरके कारण छुप जाते हैं, इसी प्रकार ये पिशाच हमारे मन्त्रप्रभावको देख कर अधोगतिको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥७॥

न । पिशाचैः । सम् । शक्नोमि । न । स्तेनैः । न । वनर्गुऽभिः ।

पिशाचाः । तस्मात् । नश्यन्ति । यम् । अहम् । ग्रामम् । आऽविशे

नाहं पिशाचैः सं शक्नोमि संशक्तः अनुप्रविष्टो न भवामि। तथा स्तेनैश्चोरैः प्रच्छन्नवृत्तिभिर्ग्रामगतैः न सं शक्नोमि न संगतो भवामि। न वनर्गुभिः। वनर्गुभिशब्दश्चोरनाम। ❀ वनर्गू वनगामिनौ इति यास्कः [नि० ३. १४] ❀। वनगामिभिश्चोररपि न संशक्तोस्मि। तथा पिशाचा राक्षसाः तस्माद् ग्रामान्निर्गत्य नश्यन्तु नष्टा भवन्तु। यं ग्रामम् अहम् आविशे अनुविश्य वसामि। तस्माद् मदधिष्ठिताद् देशात् पलायन्ताम् इत्यर्थः॥

मैं पिशाचोंसे अनुप्रविष्ट नहीं होता हूँ अर्थात् पिशाच मुझमें प्रवेश नहीं कर सकते और मैं चोरोंसे नहीं मिलता हूँ तथा वनचारी डाँकुओंसे नहीं मिलता हूँ, मैं जिस ग्राममें प्रवेश करता हूँ, उस ग्रामसे पिशाच नष्ट होजाते हैं॥ ७॥

अष्टमी॥

यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम।

पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ॥८॥

यम्। ग्रामम्। आऽविशते। इदम्। उग्रम्। सहः। मम।

पिशाचाः। तस्मात्। नश्यन्ति। न। पापम्। उप। जानते ॥८॥

मम मदीयम् इदम् उग्रम् तीक्ष्णं मन्त्रप्रभावजनितं सहः बलं यं ग्रामम् आविशते अनुप्रविश्य वर्तते तस्माद् ग्रामात् पिशाचा नश्यन्ति तत्र न प्रविशन्ति। यदि प्रविविक्षन्ति नश्यन्त्येवेत्यर्थः।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतो न तद्विषयं पापम् हिंसारूपम् उप जानते तत्रत्या जनाः । रक्षःपिशाचादिकृतम् उपद्रवं नावबुध्यन्त इत्यर्थः ॥

मेरा यह मंत्रप्रभावसे उत्पन्न बल जिस ग्राममें प्रवेश करके रहता है, उस ग्रामसे पिशाच नष्ट होजाते हैं अर्थात् उसमें प्रवेश नहीं करते हैं और यदि प्रवेश करते हैं तो नष्ट ही होजाते हैं इस कारण उनके हिंसामय पापको तहाँ रहने वाले मनुष्य जानते ही नहीं अर्थात् राक्षस पिशाच आदिके उपद्रवको वे जानते ही नहीं ॥८

नवमी ॥

ये मां क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव ।
तानहं मन्ये दुर्हितान् जने अल्पशयूनिव ॥ ९ ॥

ये । मा । क्रोधयन्ति । लपिताः । हस्तिनम् । मशकाःऽइव ।
तान् । अहम् । मन्ये । दुःऽहितान् । जने । अल्पशयून्ऽइव ॥९॥

ये पिशाचाद्या लिपिताः उपदिग्धाः संक्रान्ताः मा मां क्रोधयन्ति । मशकाः दंशकाः क्षुद्रजन्तवो हस्तिशरीरम् आश्रिता हस्तिनम् गजमिव । तान् सर्वान् दुर्हतान् दुष्टहननेन विषयीकृतान् अहं मन्ये जानामि । तत्र निदर्शनम् आह जन इति । जने जनसंघे तत्संचारस्थले अत्रस्थितान् अल्पशयून् परिमाणतः अल्पकायाः शयनस्वभावाः संचाराक्षमाः कीटा अल्पशयवः । ते यथा प्राणिसंचारेण हन्यन्ते तद्वद् अहम् अनायासेन अपुनरुद्भवं हन्मीत्यर्थः ॥

जैसे जनसमूहके फिरनेके स्थानमें स्थित अल्प शरीर वाले और शयन करनेके स्वभाव वाले संचरणमें असमर्थ कीट, प्राणियों के घूमनेसे मारे जाते हैं, इसी प्रकार हाथीके शरीरमें लगे हुए हाथीको क्रुद्ध करने वाले मच्छरोंकी समान अपने शरीरमें लगे हुए सब पिशाचोंको मैं नष्ट किया हुआ ही समझता हूँ ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दशमी ॥

अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या ।

मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते १०

अभि । तम् । निःऽऋतिः । धत्ताम् । अश्वम्ऽइव । अश्वऽअभिधान्या ।

मल्वः । यः । मह्यम् । क्रुध्यति । सः । ऊं इति । पाशात् । न । मुच्यते

तं शत्रुं निर्ऋतिः पापदेवता अभि धत्ताम् स्वकीयैः पाशैर्बध्नातु । तत्र दृष्टान्तः अश्वमिवेति । अश्वम् अभिदधाति बध्नात्यनया इति अश्वाभिधानी रज्जुः । ❀ करणे ल्युट् । टित्त्वाद् ङीप् ❀ । तया यथा दुष्टम् अश्वं बध्नन्ति तद्वद् इत्यर्थः । तथा यो मल्वः शत्रुः मह्यं क्रुध्यति मद्विषयं कोपं करोति । ❀ "क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम्०" इति मह्यम् इति चतुर्थी ❀ । स उ स एव शत्रुः पाशात् निर्ऋतिसंबन्धिनः न मुच्यसे मुक्तो न भवतु । बद्ध एव वर्तताम् इत्यर्थः ॥

[इति] अष्टमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

जैसे घोड़े बाँधनेकी रस्सीसे दुष्ट घोड़ेको बाँधते हैं इसीप्रकार पापदेवता निर्ऋति उस शत्रुको अपने पाशोंसे बाँध लेवें तथा जो शत्रु मुझ पर कोप करता है वह शत्रु निर्ऋतिके पाशोंसे मुक्त न हो, बँधा हुआ ही रहे ॥ १० ॥

अष्टम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१३८) ॥

"त्वया पूर्वम्" इति सूक्तस्य गणप्रयुक्तो विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

तथा सर्वभूतग्रहभैषज्यार्थं शमीपर्णचूर्णं शमीफलमध्ये कृत्वा अनेन सूक्तेन अभिमन्त्र्य आविष्टग्रहं पुरुषं भोजयेत् । अलंकारेण सह धारयेत् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा व्याधितगृहं परिकिरेत् ॥

सूत्रितं हि । "त्वया पूर्वम् इति कोशेन शमीचूर्णानि भक्ते-लंकारे शालां परितनोति" इति [कौ० ४. ४] ॥

"गान्धर्वीम् अश्वक्षये" इति [न० क० १७] विहितायां गान्धर्व्याख्यायां महाशान्तौ गणप्रयुक्तेनानेन सूक्तेन गुल्गुल्वादि-द्रव्यहोमोभिहितः । यथा ।

शिग्रुं हुत्वा जलं चैव गल्गुलुं विषमेव च ।
पिप्पलीं कृष्णलीं चैव जुहुयाच्चातनेन तु ॥
ओषधीं सहमानां तु पृश्निपर्णीं तथापराम् ।
अजशृङ्गीं समस्यैताम् अमन्त्रं जुहुयात् सकृत् ॥

इति [न० क० २१] ॥

'त्वया पूर्वम्' इस सूक्तका गणप्रयुक्त विनियोग पहिले सूक्तके साथ कह दिया है ॥

तथा सकल भूतग्रहोंकी चिकित्साके लिये जंडके पत्तोंके चूर्ण को जण्डके फलके मध्यमें डाल कर इस सूक्तसे अभिमंत्रण करके ग्रहसे आविष्ट पुरुषको भोजन करावे और अलंकारके साथ धारण करावे ॥

तथा रोगीके घरमें बखेरे ॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"त्वया पूर्वं इति कोशेन शमीचूर्णानि भक्तेऽलङ्कारे शालां परितनोति" (कौशिकसूत्र ४।४)

"गान्धर्वी अश्वक्षये ॥–अश्वक्षयमें गांधर्वी महाशांतिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित गांधर्व्या नाम वाली महाशांतिमें गणप्रयुक्त इस सूक्तसे गूगल आदि द्रव्यका होम कहा है । यथा– "शिग्रं हुत्वा जलं चैव गुल्गुलुं विषमेव च । पिप्पलीं कृष्णालीं चैव जुहुयाच्चातनेन तु ॥ ओषधीं सहमानां तु पृश्निपर्णीं तथा-पराम् । अजशृङ्गीं समस्यैतां अमंत्रं जुहुयात् सकृत् ॥–सैंजनेको

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होम कर जल, गूगल, मृणाल, पीपल और कृष्णलीको चातनगणसे होमे। फिर सहमाना, पिठवन, बाँझ खेखसा और ककरासिंगीको भली प्रकार अमंत्रक होमे" ॥ (नक्षत्रकल्प २१)॥

तत्र प्रथमा ॥

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे।
त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः ॥१॥

त्वया। पूर्वम्। अथर्वाणः। जघ्नुः। रक्षांसि। ओषधे।
त्वया। जघान। कश्यपः। त्वया। कण्वः। अगस्त्यः ॥ १ ॥

अत्र सहमानादीनां विनियोगोक्तानाम् अन्यतमा संबोध्यते। हे ओषधे त्वया साधनेन पूर्वम् पुरा अथर्वाणः महर्षयः रक्षांसि जघ्नुः हतवन्तः। ❀ हन्तेर्लिटि उसि "गमहन०" इति उपधालोपः। तस्य स्थानिवत्त्वाद् द्विर्वचनम् ❀। तथा कश्यपः महर्षिः त्वयैव साधने तदनन्तरं रक्षांसि जघान कण्वो अगस्त्यश्च। अतः अहमपि त्वद्धारणहोमादिना रक्षांसि हन्मीत्यर्थः ॥

हे ओषधे! अथर्वा आदि महर्षियोंने पहिले तुझको साधन बना कर राक्षसोंको मारा था और कश्यप नामक महर्षिने तथा कण्व और अगस्त्य नामक महर्षिने तेरे साधनसे राक्षसोंका संहार किया था (इसी प्रकार मैं भी तुझको धारण करना और होम आदि करनेसे राक्षसोंको मारता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे।
अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥ २ ॥

त्वया। वयम्। अप्सरसः। गन्धर्वान्। चातयामहे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अजऽशृङ्गि । अज । रक्षः । सर्वान् । गन्धेन । नाशय ॥ २ ॥

अजशृङ्गि विषाणी स्यात् इत्यभिधानकोशप्रसिद्धा अजशृङ्गी । सात्र संबोध्या। अजशृङ्गाकृतिफलयुक्तत्वाद् अजशृङ्गीत्युच्यते । हे तादृशि ओषधे त्वया साधनेन वयम् अप्सरसो गन्धर्वांश्च अस्मदुपद्रवकारिणः चातयामहे नाशयामः । ❀ चातयतिर्नाशने इति यास्कः [नि० ६, ३०] ❀ । हे अजशृङ्गि त्वं रक्षः राक्षसजातिम् अज अस्मात् स्थानात् क्षिप प्रच्यावय । ❀ अज गतिक्षेपणयोः ❀ ॥ किं बहुना । सर्वान् रक्षः पिशाचादीन् त्वदीयेन उग्रेण गन्धेन नाशय अदर्शनं प्रापय ॥

हे अजशृंगी ओषधे ! हमसे उपद्रव करने वाले अप्सरा और गंधर्वोंको तेरे साधनसे हम नष्ट करते हैं, हे अजशृंगि ! तू राक्षसजातिको इस स्थानसे च्युत कर अधिक क्या राक्षस पिशाच आदि सबको अपनी उग्र गंधसे दूर कर ॥ २ ॥

नदीं यन्त्वप्सरसोपां तारमवश्वसम् ।
गुल्गुलूः पीला नलद्यौ३क्षगंन्धिः प्रमन्दनी ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ३ ॥

नदीम् । यन्तु । अप्सरसः । अपाम् । तारम् । अवऽश्वसम् ।
गुल्गुलूः । पीला । नलदी । औक्षऽगन्धिः । प्रऽमन्दनी ।
तत् । परा । इत । अप्सरसः । प्रतिऽबुद्धाः । अभूतन ॥ ३ ॥

यत्राश्वत्था न्यग्रोधाः महावृक्षाः शिखण्डिनः ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यत्र । अश्वत्थाः । न्यग्रोधाः । महाऽवृक्षाः । शिखण्डिनः ।

तत् । परा । इत । अप्सरसः । प्रतिऽबुद्धाः । अभूतन ॥ ४ ॥

यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति ।

तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥

यत्र । वः । प्रऽईङ्खाः । हरिताः । अर्जुनाः । उत । यत्र ।

आघाटाः । कर्कर्यः । सम्ऽवदन्ति ।

तत् । परा । इत । अप्सरसः । प्रतिऽबुद्धाः । अभूतन ॥ ५ ॥

तृतीया ॥ अप्सरसः गन्धर्वाणां स्त्रियः अस्मदीयात् स्थानात् प्रच्याविताः नदीम् नद्युपलक्षितं स्वावासस्थानं यन्तु गच्छन्तु । तत् [दृष्टान्तः] । नादेयीनाम् अपां तारम् तारयितारम् स्वसम् [इव] सुष्ठु नौप्रेरणकुशलं यथा तितीर्षवो जना उपगच्छन्ति । एतत् केन साधनेन इति चेत् तत्राह गुल्गुलूरिति । गुल्गुल्वादीनि पञ्च होमद्रव्याणि विनियोगशास्त्रप्रसिद्धानि । तेषां हवनेच भीता भवन्त्य इत्यर्थः ॥

चतुर्थी ॥ हे अप्सरसः तत् प्रसिद्धं स्वावासस्थानं परेत परागच्छत पराङ्मुख्यः अस्मान् अनवेक्षमाणाः प्राप्नुत । गत्वा च तत्रैव प्रतिबद्धाः निरुद्धगतयः अभूतन भवत । ❀ छान्दसो भवतेर्लुङ् । तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तनादेशः ❀ । स्थानं विशेष्यते । यत्र यस्मिन् स्थाने अश्वत्था न्यग्रोधा अन्ये च सक्षादयो महावृक्षाः शिखण्डिनः मयूराश्च सन्ति । शिखण्डिसद्भावेन विजनत्वं सूचितम् । तत् स्थानं गच्छतेति संबन्धः । अश्वत्थादीनां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तदावासस्थानता तैत्तिरीये समाम्नाता । "नैयग्रोध औदुम्बर आश्वत्थः प्लाक्ष इतीध्मो भवत्येते वै गन्धर्वाप्सरसां गृहाः" इति [तै० सं० ३.४.८.४]। ❀ महावृक्षाः इति । महान्तश्च ते वृक्षा महावृक्षाः । "आन्महतः०" इति आत्वम् ❀ ॥

पञ्चमी ॥ हे अप्सरसः वः युष्माकं क्रीडनाय प्रेङ्खा दोला यत्र यस्मिन् स्थाने निबद्धा वर्तन्ते । हरिताः हरिद्वर्णा अर्जुनाः धवलाश्चेति प्रेङ्खानां विशेषणम् । यद्वा हरिद्वर्णाः श्यामला वृक्षाः अर्जुनाख्याश्च यस्मिन् देशे सन्ति । तथा यत्र यस्मिन् देशे अघाटाः । ❀ आङ्पूर्वात् हन्तेः कर्मणि घञ् । छान्दसं टत्वम् ❀ । आहन्यमाना वाद्यमानाः कर्कर्यः वाद्यविशेषाः संवदन्ति युष्मन्नृत्तानुगुण्येन समानं ध्वनन्ति तत् स्थानं परेतेत्यादि पूर्ववद् योज्यम् ॥

नदीके जलके पार उतारने वाले नौका चलानेमें कुशल पुरुष के पास जैसे पार जाना चाहने वाले पुरुष जाते हैं तिस प्रकार गूगल, पीला, औक्षगंधि, नलद्यौ और प्रमंदनी इन पाँच होमद्रव्यों के हवनसे भयभीत हुई गंधर्वोंकी स्त्री अप्सरायें पराङ्मुख होकर नदी आदि अपने निवासस्थानोंको चली जावें और तहाँ पर निरुद्धगति होकर पड़ी रहें ॥ ३ ॥

हे अप्सराओं ! तुम अपने उस निवासस्थानमें पराङ्मुख हो कर जाओ, और तहाँ ही गतिरहित पड़ी रहो, कि जहाँ पर पीपल, वड़ और पिलखन आदि हैं और जहाँ मयूर हैं ‡ ॥४॥

‡ अश्वत्थ आदि अप्सरा और गंधर्वोंका स्थान हैं, इस बात का तैत्तिरीयसंहितामें वर्णन है, कि-'नैयग्रोध औदुम्बर आश्वत्थः प्लाक्ष इतीध्मो भवन्त्येते वे गंधर्वाप्सरसां गृहाः ॥-वड़ गूलड़ पीपल और पिलखन इनमें गंधर्व और अप्सराओंका घर होता है ॥" (तैत्तिरीयसंहिता ३ । ४ । ८ । ४) ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे अप्सराओं ! तुम्हारी क्रीड़ाके लिये जहाँ पर झूले पड़े हुए हैं जहाँ श्यामलवृक्ष और अर्जुन वृक्ष हैं और जहाँ पर तुम्हारे नाचनेके अनुसार कर्करी नामके बाजे बज रहे हैं, उस स्थानमें तुम हमसे पराङ्मुख होकर जाओ, और गतिहीन होकर पड़ी रहो ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती ।
अजशृङ्ग्यराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु ॥ ६ ॥

आ । इयम् । अगन् । ओषधीनाम् । वीरुधाम् । वीर्यऽवती ।
अजऽशृङ्गी । अराटकी । तीक्ष्णऽशृङ्गी । वि । ऋषतु ॥ ६ ॥

ओषधीनाम् । ओषः पाकः आसु धीयत इति ओषधयः । तासाम् ओषधीनां वीरुधाम् विरोहणस्वभावानाम् अन्यासां च लतानां मध्ये वीर्यावती अतिशयितसामर्थ्ययुक्ता इयम् अजशृङ्गी ओषधिः आगन् आगमत् । अस्मदुपद्रवं नाशयितुम् आगता । ❀ गमेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "हल्ङ्या०" इत्यादिलोपे "मो नो धातोः" इति नत्वम् ❀ । सा च अजशृङ्गी अराटकी । अरा अदातारो हिंसकाः तान् अस्मात् स्थानात् आटयति उच्चाटयतीति अराटकी । तीक्ष्णशृङ्गी तीक्ष्णे उग्रगन्धे शृङ्गाकृती फले यस्याः एवंगुणविशिष्टा सा रक्षःपिशाचादीन् व्यृषतु हिनस्तु ॥

विरोहण स्वभाव वाली लताओंमें यह परम सामर्थ्यमयी अजशृंगी औषधि अदाताओंको और हिंसकोंको इस स्थानसे उच्चाटन करनेवाली है, उग्र गन्ध और सींगकी समान आकारके फल वाली यह अजशृंगी राक्षस और पिशाच आदिको नष्ट करे ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सप्तमी ॥

आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः ।

भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥ ७ ॥

आऽनृत्यतः । शिखण्डिनः । गन्धर्वस्य । अप्सराऽपतेः ।

भिनद्मि । मुष्कौ । अपि । यामि । शेपः ॥ ७ ॥

आनृत्यतः समन्ताद् नर्तनं कुर्वतः शिखण्डिनः शिखण्डाश्चूडाः तद्वतः । यद्वा शिखण्डी मयूरः । लुप्तोपमम् एतत् । तद्वद् आनृत्यतः । गन्धर्वस्य । गीतिरूपा वाचो गाः धारयतीति गन्धर्वः । ❀ "गवि गन् धृञो वः" इति धृञो वप्रत्ययो गोशब्दस्य गन्भावश्च ❀ । ईदृशस्य अप्सरापतेः । अप्सरस्शब्द आकारान्तो वेदे प्रसिद्धः । अप्सरसाम् अधिपतेः अस्मान् जिघांसतो गन्धर्वराजस्य मुष्कौ आण्डौ भिनद्मि विदारयामि संचूर्णयामि । तन्मध्यवर्ति शेपः पुंस्प्रजननं च अपि यामि अपिगतं निरुद्धं करोमि । रिरंसवो हि गन्धर्वाः । तत्साधनत्रिकभेदनेन भीता अस्मात् स्थानात् पलायन्ताम् इत्यर्थः ॥

नृत्य करनेवाले मयूरकी समान नृत्य करते हुए, अप्सरापति हमको मारना चाहनेवाले गीतिरूप वाणियोंको धारण करनेवाले गन्धर्वके अण्डकोशोंको मैं चूर्णित करता हूँ और उसके पुंस्प्रजननको भी मैं निरुद्ध करता हूँ । तात्पर्य यह है, कि-गंधर्व रमण करनेके स्वभाव वाले होते हैं अत एव रमणके तीनों साधनोंके तोड़नेसे भयभीत होकर इस स्थानसे भाग जावें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषितु ॥ ८ ॥

भीमाः । इन्द्रस्य । हेतयः । शतम् । ऋष्टीः । अयस्मयीः ।

ताभिः । हविःऽअदान् । गन्धर्वान् । अवकाऽअदान् । वि । ऋषतु ८

भीमा बिभ्यत्येत्य इति भीमाः । ❀ भियः षुग्वा [उ० १. १४५] इति औणादिको मक्प्रत्ययः "भीमादयोपादाने" इति अपादानेर्थे भवति ❀ । शतपृष्टीः शतस्पर्शनाः शतधाराः अयस्मयीः अयस्मय्यः अयोविकारा एवंभूताः इन्द्रस्य या हेतयः हननसाधनानि आयुधानि सन्ति ताभिर्हेतिभिः [अभि]हदान् अभिगताह्लादान् प्राप्तजलाशयान् वा अवकादान् । अवका जलोपरिस्थाः शैवालविशेषाः तान् अदन्ति भक्षयन्तीति अवकादाः । तान् गन्धर्वान् व्यृषतु इन्द्रो हिनस्तु ॥

जिनसे प्राणी डरते हैं और जिनमें सैंकड़ों धारें हैं ऐसे लोहे के बनेहुए अपने आयुधोंसे इन्द्र जलाशयों पर आये हुए सिवार को खाने वाले गंधर्वोंको मारें ॥ ८ ॥

नवमी ॥

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः ।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥ ९ ॥

भीमाः । इन्द्रस्य । हेतयः । शतम् । ऋष्टीः । हिरण्ययीः ।

ताभिः । हविःऽअदान् । गन्धर्वान् । अवकाऽअदान् । वि । ऋषतु ९

हिरण्ययीः हिरण्मय्यः हिरण्यस्य विकाराः स्वर्णनिर्मिताः । इत्येतावानेन विशेषः । अन्यत् पूर्ववद् व्याख्येयम् ॥

जिनसे प्राणी डरते हैं और जिनमें सैंकड़ों धारे हैं ऐसे सुवर्ण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के बनेहुए अपने आयुधोंसे इन्द्रदेव, सिवारका भक्षण करनेवाले जलाशय पर आये हुए गंधर्वोंको मारें ॥ ६ ॥

दशमी ॥

अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान् ।
पिशाचान् सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च ॥१०॥

अवकाऽअदान् । अभिऽशोचान् । अप्ऽसु । ज्योतय । मामकान् ।
पिशाचान् । सर्वान् । ओषधे । प्र । मृणीहि । सहस्व । च ॥१०॥

अवकादान् अवकाभक्षकान् अभिशोचान् अभितः शोचमानान् दीप्यमानान् शोकस्य प्रापकान् वा मामकान् मत्संबन्धिनो गन्धर्वान् अप्सु उदकेषु द्योतय प्रकाशय । हे ओषधे अजशृङ्गि उपद्रवकारिणः पिशाचान् सर्वान् प्र मृणीहि प्रजहि सहस्व अभिभव च ॥

सिवारका भक्षण करने वाले, चारों ओरसे दमकते हुए, शोक को देने वाले मेरे गंधर्वोंको जलोंमें प्रकाशित करे । हे अजशृंगि ओषधे ! उपद्रवी पिशाचोंको चारों ओरसे मार और दबा १०

एकादशी ॥

श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः ।
प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियस्-
तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ ११ ॥

श्वाऽइव । एकः । कपिःऽइव । एकः । कुमारः । सर्वऽकेशकः ।
प्रियः । दृशोऽइव । भूत्वा । गन्धर्वः । सचते । स्त्रियः ।
तम् । इतः । नाशयामसि । ब्रह्मणा । वीर्यऽवता ॥ ११ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एकः गन्धर्वः मायावितया श्वेव श्वाकृतिरिव भवति । एकः अपरो गन्धर्वः कपिरिव मर्कटाकृतिर्भवति । अन्यस्तु गन्धर्वः सर्वकेशकः सर्वतः उत्पन्नाः केशा यस्य तादृशः सन् [कुमारः] कुमारावस्थ इव भवति । एवं मायावशात् विचित्राकृतिः सन् दृशे द्रष्टुम् दर्शनाय वा प्रिय इव भूत्वा [गन्धर्वः] ।गन्धर्वरूपो ग्रहः स्त्रियः सचते समवैति । तं गन्धर्वम् इतः अस्मात् स्त्रीसकाशात् नाशयामसि नाशयामः । ❀ "इदन्तोमसिः" ❀ । केन साधनेन इति चेत् उच्यते । वीर्यावता अतिशयितवीर्ययुक्तेन ब्रह्मणा मंत्रेण ॥

एक गंधर्व मायावी होनेसे कुत्तेकी समान आकृति वाला हो जाता है, दूसरा गंधर्व बन्दरकीसी आकृति वाला बन जाता है और दूसरा गंधर्व चारों ओर केशों वाले बालककी समान बन जाता है । (इस प्रकार मायाके प्रभावसे विचित्र आकारोंको बना कर) दर्शन करनेमें प्रियसा होकर गंधर्वरूप ग्रह स्त्रियोंको प्राप्त होता है, हम इस स्त्रीके पाससे वीर्यवान् मंत्रके प्रभाववश उस गंधर्वको दूर करते हैं ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम् ।
अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् ॥ १२ ॥

जायाः । इत् । वः । अप्सरसः । गन्धर्वाः । पतयः । यूयम् ।
अप । धावत । अमर्त्याः । मर्त्यान् । मा । सचध्वम् ॥ १२ ॥

हे गन्धर्वाः वः युष्माकम् अप्सरसः जाया इत् जाया एव उपभोग्याः स्त्रिय एव खलु । यूयं च तासां पतयः भर्तारः । अतः संघीभूय [अप धावत] । अमर्त्याः अमरणधर्माणः देवजातीया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यूयं मर्त्यान् मरणधर्मणो मनुष्यान् भिन्नजातीयान् मा सचध्वम् समवेत । संगता मा भूत ॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे गंधर्वो ! तुम्हारी अप्सरायें ही उपभोगके योग्य स्त्रियें हैं और तुम भी उनके पति हो अतः मिलकर यहाँसे भाग जाओ । अमरण धर्म वाले देवजातीय तुम मरणधर्म वाले अन्यजातिके व्यक्तियोंसे न मिलो ॥ १२ ॥

दूसरा सूक्त समाप्त (१३९) ॥

"उद्भिन्दतीं संजयन्तीम्" इति सूक्तेन द्यूतजयकर्मणि अक्षान् अभिमन्त्र्य देवनं कुर्यात् । सूत्रितं हि । "पूर्वास्वषाढासु गर्तं खनति" इति प्रक्रम्य "उद्भिन्दतीं संजयन्तीम् [४. ३८] यथा वृक्षम् अशनिः [७. ५२] इदम् उग्राय [७. ११४] इति वासितान् अक्षान् निवपति" इति [कौ० ५. ५] ॥

तथा "सूर्यस्य रश्मीन्" इत्यादिभिः "कर्कीन् वत्सान् इह रक्ष वाजिन्" इत्येवमन्ताभिस्तिसृभिर्ऋग्भिर्गोपुष्टिकर्मणि द्वादशदाम्नीं रज्जुं संपाताज्येन संस्कुर्यात् । "अयं घासः" इति पादेन गोभ्यो घासं प्रयच्छेत् । "इह वत्सान्" इति पादेन तस्यां द्वादशदाम्न्यां रज्ज्वां वत्सान् बध्नीयात् । सूत्रितं हि । "कर्कीप्रवादानां द्वादशदाम्न्यां संपातवत्याम् अयं घास इह वत्सान् इति मन्त्रोक्तम्" इति [कौ० ३. ४] ॥

तथा "सूर्यस्य रश्मीन्" इति तिसृभिः कर्कीसवं दद्यात् । सूत्रितं हि । "सूर्यस्य रश्मीन् इति कर्कीं सानूबन्ध्यां ददाति" इति [कौ० ८. ७] ॥

उद्भिन्दतीं संजयन्तीम्' इस सूक्तसे द्यूतजयकर्ममें पाशोंको अभिमन्त्रित करके जुआ खेले । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"पूर्वास्वषाढ़ासु गर्तं खनति" का आरंभ करके कहा है, कि-"उद्भिन्दतीं सञ्जयन्तीम् (इस चतुर्थकाण्डके ३८ वें सूक्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से और) यथा वृक्षं अशनिः (इस सप्तम काण्डके बावनवें सूक्त से तथा) इदं उग्राय (इस सप्तमकाण्डके एकसौ चौदहवें सूक्त से) वासित पाशोंको फेंके" (कौशिकसूत्र ५ । ५) ॥

तथा "सूर्यस्य रश्मीन्" से "कर्कीन् वत्सान् इह रक्ष वाजिन्" तककी तीन ऋचाओंसे गोपुष्टिकर्ममें बारह लड़ वाली रज्जुको होमके घृतसे संस्कृत करे। 'अयं घासः' इस पादसे गौओंको घास देवे और 'इह वत्सान्' इस पादसे उस बारह लड़ वाली रस्सीमें बछड़ोंको बाँधे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"कर्की-प्रवादां द्वादशदाम्न्यां सम्पातवत्याम् अयं घास इह वत्सान् इति मन्त्रोक्तम्" (कौशिकसूत्र ३ । ४) ॥

तथा 'सूर्यस्य रश्मीन्' इन तीन ऋचाओंसे कर्कीसत्व देवे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—'सूर्यस्य रश्मीन इति कर्की' सान् बंध्यां ददाति' (कौशिकसूत्र ८ । ७) ॥

तत्र प्रथमा ॥

उद्भिन्दतीं संजयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे ॥१॥

उत्ऽभिन्दतीम् । सम्ऽजयन्तीम् । अप्सराम् । साधुऽदेविनीम् ।
ग्लहे । कृतानि । कृण्वानाम् । अप्सराम् । ताम् । इह । हुवे १

उद्भिन्दतीम् पणबन्धेन धनस्य उद्भेदनं कुर्वतीं संजयन्तीम् सम्यक् जयं प्राप्नुवतीं साधुदेविनीम् जयोपायपरिज्ञानेन अक्ष-शलाकादिभिः शोभनं क्रीडन्तीम् एवंगुणविशिष्टाम् अप्सराम् द्यूत-क्रियाधिदेवताम् अप्सरोजातीयाम् । अहं स्तौमीति शेषः । अपि च ग्लहे । गृह्यते पणबन्धेन कल्प्यत इति द्यूतक्रियाजेयोऽर्थो ग्लहः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

❀ "ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च" इति कर्मणि अप् । "अक्षेषु ग्लहः" इति अक्षविषये निपातनात् लत्वम् ❀ । तस्मिन् ग्लहे निमित्ते कृतानि द्यूतजयचिह्नानि कृतत्रेतादिशब्दवाच्यानि अयसंज्ञकानि कृण्वानाम् कुर्वाणाम् । कृतायलाभो हि महान् द्यूतजयः । तद् उक्तं द्यूतक्रियाम् अधिकृत्य आपस्तम्बेन । "कृतं यजमानो विजनाति" इति [आप० ५. २०. १]। एवंभूतां ताम् अप्सराम् इह अस्मिन् द्यूतजयकर्मणि अहं हुवे आह्वयामि ।आगत्य सा मम जयं करोतु इत्यर्थः

पणबंधसे धनका उद्भेदन करती हुई भली प्रकार विजय कराती हुई, जयका उपाय जाननेसे अक्षशलाका आदिसे शोभनतापूर्वक क्रीड़ा करने वाली द्यूतक्रियाकी अधिदेवता द्यूतजयके चिन्ह कृत त्रेता आदिको करती हुई अप्सराको मैं इस द्यूतजयकर्ममें आह्वान करता हूँ (वह आकर मुझे विजयी करे)॥ १ ॥

द्वितीया ॥

विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥ २ ॥

विऽचिन्वतीम् । आऽकिरन्तीम् । अप्सराम् । साधुऽदेविनीम् ।
ग्लहे । कृतानि । गृह्णानाम् । अप्सराम् । ताम् । इह । हुवे ॥२॥

विचिन्वतीम् एकत्र निर्बाधे कोष्ठे त्रिचतुरान् अक्षान् विशेषेण समुच्चिन्वतीं संघीकुर्वतीम् । पुनस्तानेव जयार्थं बहुषु कोष्ठेषु आकिरन्तीम् समन्ताद् विक्षिपन्तीम् । ❀ कॄ विक्षेपे । तुदादित्वात् शः "ॠत इद्धातोः" इति इत्वम् ❀ । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

एक स्थानके निर्बाध कोष्ठमें तीन चार आदि पाशोंको एकत्रित करती हुई फिर उन्हींको विजयके लिये बहुतसे कोठोंमें डालती हुई जयका उपाय जाननेसे अक्षशलाका आदिसे शोभ-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नतापूर्वक क्रीड़ा करने वाली द्यूतक्रियाकी अधिदेवता द्यूतजयके चिन्ह कृत त्रेता आदिको करती हुई अप्सराको मैं इस द्यूतजयकर्ममें आह्वान करता हूँ (वह आकर मुझे विजयी करे) ॥२॥

यायैः परिनृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात् ।

सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया ।

सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम् ॥ ३ ॥

या । अयैः । परिऽनृत्यति । आऽददाना । कृतम् । ग्लहात् ।

सा । नः । कृतानि । सीषती । प्रऽहाम् । आप्नोतु । मायया ।

सा । नः । पयस्वती । आ । एतु । मा । नः । जैषुः । इदम् । धनम्

या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती ।

आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ॥ ४ ॥

याः । अक्षेषु । प्रऽमोदन्ते । शुचम् । क्रोधम् । च । बिभ्रती ।

आऽनन्दिनीम् । प्रऽमोदिनीम् । अप्सराम् । ताम् । इह । हुवे ४

सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति ।

यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वान् लोकान् पर्यैति रक्षन् ।

स न ऐतु होममिमं जुषाणोऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE.

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूर्यस्य । रश्मीन् । अनु । याः । सम्ऽचरन्ति । मरीचीः । वा । याः । अनुऽसंचरन्ति ।

यासाम् । ऋषभः दूरतः । वाजिनीऽवान् । सद्यः । सर्वान् । लोकान् । परिऽएति । रक्षन् ।

सः । नः । आ । एतु । होमम् । इमम् । जुषाणः । अन्तरिक्षेण । सह । वाजिनीऽवान् ॥ ५ ॥

तृतीया ॥ या गन्धर्वस्त्री अयैः अक्षगतसंख्याविशेषैः कृतादिशब्दवाच्यैः परिनृत्यति अभिमतजयप्राप्त्या परितुष्टा नर्तनं करोति । कीदृशी ग्लहात् गृह्यमाणात् पणबन्धात् कृतम् एतत्संज्ञम् अयम् आदधानः आदधाना कुर्वाणा । कृतग्लहत्वं तस्या असाधारणो गुणः । सा तादृशी न अस्माकं कृतानि कृतशब्दवाच्यान् चतुःसंख्यायुक्तान् अयान् शेषन्ती अवशेषयन्ती महान् महन्तव्यान् अक्षान् मायया व्यामोहकशक्त्या आप्नोतु अधितिष्ठतु । एकादयः पञ्चसंख्यान्ता अक्षविशेषा अयाः । तत्र चतुर्णां कृतम् इति संज्ञा । तथा च तैत्तिरीयकम् । "ये वै चत्वारः स्तोमाः कृतं तत् । अथ ये पञ्च कलिः सः" इति [तै० ब्रा० १. ५. ११. १]। तस्य च कृतस्य लाभाद् द्यूतजयो भवति । अत एव दाशतय्यां लब्धकृतायात् कितवाद् भीतिराम्नाता । "चतुरश्चिद् ददमानाद् बिभीयाद् आ निधातोः" इति [ऋ० १. ४१. ९]। तत्र च निरुक्तम् । चतुरोऽक्षान् धारयत इति तद् यथा कितवाद् बिभीयात् इति [नि० ३. १६]॥

चतुर्थी ॥ सा द्यूताधिदेवता पयस्वती द्यूतजितेन पयउपलक्षितेन गवादिधनेन तद्वती नः अस्मान् ऐतु आगच्छतु । नः अस्माकम् इदम् पणितव्यत्वेन कल्पितं धनम् अन्ये कितवा मा जैषुः मापहार्षुः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

❀ जयतेर्माङि लुङि "सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु" इति वृद्धिः ❀ ।
या गन्धर्वस्त्री द्यूतक्रियासु उक्ता अक्षेषु द्यूतसाधनेषु प्रमोदते प्रहृष्यति
❀ मुद हर्षे ❀ । किं कुर्वती । शुचम् इष्टजयवियोगात् शोकं पुन-
र्जिगीषया क्रोधम् कोपं च बिभ्रती धारयन्ती । ❀ डुभृञ् धारण-
पोषणयोः । लटः शत्रादेशः । शपः श्लौ "भृञाम् इत्" इति
अभ्यासस्य इत्वम् । "अभ्यस्तानाम् आदिः" इति आद्युदात्तत्वम् ❀ ।

पञ्चमी ॥ आनन्दिनीम् द्यूतजनितहर्षयुक्तां प्रमोदिनीम् द्यूतास-
क्तान् अन्यानपि प्रमोदयन्तीम् । यद्वा आनन्दिनीम् सुखवतीं प्रमो-
दिनीम् प्रहर्षवतीम् ईदृशीं ताम् प्रागुक्ताम् अप्सरसम् इह द्यूतकर्मणि
जयार्थम् अहं हुवे आह्वयामि । या अप्सरसः सूर्यस्य रश्मीन् किर-
णान् अनु । ❀ लक्षणे अनोः कर्मप्रवचनीयत्वम् ❀ । रश्मयो
यत्र निर्गच्छन्ति तस्मिन् प्रदेशे संचरन्ति वर्तन्ते । मरीचीर्वा मरी-
चिशब्देन प्रभा विवक्षिता । सूर्यकिरणसंबन्धिनीः मरीचीः प्रभा
अनुलक्ष्य या अप्सरसः संचरन्ति । यासाम् ऋषभ इत्युत्तरम-
न्त्रेण संबन्धः । "तस्य मरीचयोप्सरसः" [तै० सं० ३.४.७.१]
इत्यादि तैत्तिरीयकम् अनुसंधेयम् ॥

यासाम् अप्सरसाम् ऋषभः वृषभः सेचनसमर्थः पतिः दूरे
दूरे विप्रकृष्टे अन्तरिक्षदेशे संचरन् वाजिनीवान् वाजः अन्नम्
अस्याम् अस्तीति व्युत्पत्त्या वाजिनी उषाः । ❀ ततो नित्ययोगे
मतुप् ❀ । सर्वदा उषसा संबद्ध इत्यर्थः । स च सद्यः शीघ्रं
सर्वान् लोकान् रक्षन् पालयन् । ❀ हेतौ शतृप्रत्ययः ❀ । पाल-
नाद्धेतोः पर्येति प्रतिदिवसं पर्यावर्तते स वाजिनीवान् सूर्यः अन्त-
रिक्षेण । उपलक्षणम् एतत् । अन्तरिक्षगताभिस्ताभिरप्सरोभिः
सह इमम् अस्मदीयं होमम् हूयमानं हविः जुषाणः सेवमानः नः
अस्मान् एतु आगच्छतु ॥

जो गन्धर्वस्त्री कृत आदि शब्दोंसे कहे जानेवाले अक्ष संख्यात्मक

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अयोंसे विजय मिलनेके कारण सन्तुष्ट होकर नृत्य करती है। वह ग्रहण किये जाने वाले फाँसोंमें हमारे कृत नामक चार संख्या वाले अयोंको बचाती हुई फेंकने योग्य फाँसों पर व्यामोहकशक्तिसे अधिष्ठित रहे ‡ और वह द्यूतकी अधिष्ठात्री देवता द्यूतमें जीते हुए दूध गौ आदि धनके साथ हमको प्राप्त हो, हमारे इस दाँवके लिये रखे हुए धनको दूसरे जुआरी न जीत सकें ३

जो गंधर्वस्त्री अप्सरा अभिलषित जयके न होनेसे शोक कराती है और फिर जीतनेकी इच्छासे क्रोध कराती है। वह द्यूतक्रिया में कही हुई अप्सरा द्यूतके साधन अक्षोंसे प्रसन्न होती है, उस आनन्दिनी प्रमोदिनी अप्सराको मैं यहाँ बुलाता हूँ ॥ ४ ॥

जो अप्सरायें सूर्यकी किरणोंके और प्रभाके विचरनेके स्थान में घूमती हैं जिन अप्सराओंका सेचनसमर्थपति दूरके अन्तरिक्षदेशमें घूमता रहता है और उषा वाला है और सब लोकों

‡ एकसे लेकर पाँच तकके फाँसे अय कहलाते हैं। उनमें चारका नाम कृत है। इसी बातको तैत्तिरीयब्राह्मण १।५।११।१ में कहा है, कि–"ये वै चत्वारः स्तोमा कृतं तत् ॥ अथ ये पञ्च कलिः स ॥–ये चार स्तोम (फाँसे) कृत हैं और पाँच कलि हैं" इस कृतकी प्राप्ति होनेसे द्यूतमें विजय होती है। इसी लिये ऋग्वेदसंहितामें कृतका अय पानेवाले कितव (जुआरी) से डरना कहा है, कि–"चतुरश्चिद् ददमानाद् बिभीयाद् आ निधातोः" ॥ (ऋग्वेद १।४१।९) और निरुक्त ३।१६ में भी कहा है, कि–"चतुरोऽक्षान् धारयत इति तद् यथा कितवाद् बिभीयात् । एवमेव दुरुक्ताद् बिभीयान्न दुरुक्ताय स्पृहयेत् कदाचित् ॥–जो जुआरी फाँसोंको पकड़ रहा है उससे जैसे डरते हैं इसी प्रकार दो प्रकारकी (दुटप्पी) बातें करनेवालेसे डरे उसके साथ कभी स्पर्धा न करे" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की रक्षा करता हुआ प्रत्येक दिशाओंमें घूमता है। वह सूर्यदेव अन्तरिक्षकी अप्सराओं सहित हमारी इस होमी हुई हविका सेवन करते हुए हमारे पास आवें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङियं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षेण । सह । वाजिनीऽवन् । कर्कीम् । वत्साम् । इह । रक्ष । वाजिन् ।
इमे । ते । स्तोकाः बहुलाः । आ । इहि । अर्वाङ् । इयम् । ते । कर्की । इह । ते । मनः । अस्तु ॥ ६ ॥

हे वाजिन । वाजः अन्नं बलं वा । तद्वन् अन्तरिक्षेण अन्तरिक्षदेशोपलक्षिताप्सरोगणेन सह वाजिनीवान् [उषसा तद्वान्]। हविर्लक्षणं वा अन्नं वाजिनी तद्वान् । इह अस्मिन् स्थाने कर्कीन् कर्कवर्णान् शुभ्रान वत्सान् रक्ष पालय समृद्धान् कुरु ॥ ते त्वदीया इमे स्तोकाः क्षीराज्यादिबिन्दवो धाराः बहुलाः समृद्धा अस्माकं भवन्तु । त्वं च अर्वाङ् अस्मदभिमुखः सन् एहि आगच्छ । कर्की कर्कवर्णा शुभ्रा इयं गौः ते तव स्वभूता इह अस्मिन् गोष्ठे वर्तते । ते तुभ्यं नमः । अस्माभिः कृतो नमस्कारः अस्तु भवतु ॥

हे अप्सराओं सहित उषा वाले सूर्यदेव ! आप इस स्थानके शुक्ल वर्ण वाले बछड़ोंकी रक्षा करिये उनको पाल कर बड़ा करिये । आपकी यह क्षीर घृत आदिकी बिन्दुएँ समृद्ध होकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हमारी हों, आप भी हमारे अभिमुख होकर आइये। आपकी यह शुभ्र वर्ण वाली गौ इस गोष्ठमें है, आपको हमारा किया हुआ नमस्कार प्राप्त हो ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः ।
यथानामः व ईश्महे स्वाहा ॥ ७ ॥

अन्तरिक्षेण । सह । वाजिनीऽवन् । कर्कीम् । वत्साम् । इह । रक्ष । वाजिन् ।
अयम् । घासः । अयम् । व्रजः । इह । वत्साम् । निः । बध्नीमः ।
यथाऽनाम । वः । ईश्महे । स्वाहा ॥ ७ ॥

पूर्वोऽर्धर्चः पूर्ववद् योज्यः । अयं प्रदीयमानो घासः अदनीयस्तृणसंघातः पुष्टिकरो भवतु। ❀ अदेः कर्मणि घञ् । "घञपोश्च" इति घस्लृ आदेशः ❀ । अयम् अस्मदीयो व्रजः गोष्ठः गोपुष्टिकरो भवतु ॥ इह अस्मिन् व्रजे द्वादशदाम्न्या तन्त्या वत्सान् नि बध्नीमः नितरां बद्धान् कुर्मः । [वः युष्माकं] यथानाम येन प्रकारेण खलु ईश्महे स्वामिनो भवामः तथा नि बध्नीमः । ❀ईश ऐश्वर्ये । अदादित्वात् शपो लुक् ❀ । स्वाहा इदं हविः स्वाहुतम् अस्तु ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

हे अप्सराओं सहित उषा वाले सूर्यदेव ! आप यहाँके शुक्ल वर्ण वाले बछड़ोंकी रक्षा करिये, उनको पाल कर बड़ा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करिये, यह दी हुई घास पुष्टिकर हो, यह हमारा गोठ गौओंकी पुष्टि करने वाला हो, हम इस गोठमें बारह लड़ वाली रस्सीसे बछड़ोंको बाँधते हैं तुम यथानामोंको हम जिस प्रकार तुम्हारे ईश रहें तिस प्रकार बाँधें। यह हवि स्वाहुत हो ॥ ७ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (१४०)॥

"पृथिव्याम् अग्नये" इति सूक्तेन सर्वसंपत्कामः मान्त्रवर्णिकीः पृथिव्याद्या देवता यजत उपतिष्ठते वा। सूत्रितं हि। काम्यकर्माणि प्रक्रम्य "समास्त्वाग्ने [२. ६] अभ्यर्चत [७. ८७] इत्यग्निं संपत्कामः । पृथिव्याम् इति [४. ३९] मन्त्रोक्तम्" इति [कौ० ७. १०] ॥

तथा पाकयज्ञतन्त्रेषु "पृथिव्याम् अग्नये" इत्यष्टाभिः प्रधान-होमोत्तरकालं संनतिहोमान् जुहुयात् । सूत्रितं हि । "पृथिव्याम् अग्ने समनमन्निति संनतिभिश्च" इति [कौ० १. ५] ॥

तत्रैव कर्मणि "अग्नावग्निः" इति द्वाभ्यां पुरस्ताद्धोमौ कुर्यात् । सूत्रितं हि । "अग्नावग्निः [९] हृदा पूतम् [१०] पुरस्ताद् युक्तः [५. २९. १] यज्ञस्य चक्षुः [२. ३५. ५] इति जुहोति पश्चाद् अग्नेर्मध्यदेशे समान् अत्र पुरस्ताद्धोमान्" इति [कौ० १. ३]॥

तथा चातुर्मास्ये वैश्वदेवपर्वणि "अग्नावग्निः" इति मन्थ्याभि-होमम् अनुमन्त्रयते । तद् उक्तं वैताने । "वैश्वदेवे निर्मथ्यं प्रहृतं भवतं नः समनसौ [वा० सं० ५. ३] इत्यनुमन्त्रयते । अग्नावग्निः [९] इति होमम्" इति [वै० २. ४] ॥

सब सम्पत्तियोंको चाहने वाला 'पृथिव्यां अग्नये' इस सूक्तसे मंत्रोंसे जाननेमें आने वाले पृथिवी आदि देवताओंका पूजन वा उपस्थान करे ॥

तथा पाकयज्ञतन्त्रोंमें 'पृथिव्यां अग्नये' इन आठ ऋचाओंसे प्रधान होमके अनन्तर ही सन्नतिहोमोंकी आहुति देय। इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"पृथिव्यां अग्नये समनमन्निति संनतिभिश्च" (कौशिकसूत्र १ । ५) ॥

इसी कर्ममें 'अग्नावग्निः' इन दो ऋचाओंसे पुरस्ताद्धोमोंको करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"अग्नावग्निः" और "हृदापूतम्" (६ । १०) और "पुरस्ताद् युक्तः" इस पाँचवें काण्डके उन्तीसवें सूक्तकी पहिली ऋचासे और "यज्ञस्य चक्षुः" इस दूसरे काण्डके पैंतीसवें सूक्तकी पाँचवी ऋचासे आहुति देय, पीछेसे अग्निके मध्यदेशमें पुरस्ताद्धोमोंको करे"। (कौशिक सूत्र १ । ३) ॥

तथा चातुर्मास्यके वैश्वदेवपर्वमें "अग्नावग्निः" इस ऋचासे मंथ्याभिहोमका अनुमन्त्रण करे ॥ इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"वैश्वदेवे निर्मथ्यं प्रहृतं भवतं नः समनसौ (वा० स० ५ । ३)इत्यनुमन्त्रयते । अग्नावग्निः (६) इति होमम्" (वैतानसूत्र २ । ४) ॥

तत्र प्रथमा ॥

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा पृथिव्यामग्नये समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥ १ ॥

पृथिव्याम् । अग्नये । सम् । अनमन् । सः । आर्ध्नोत् ।
यथा । पृथिव्याम् । अग्नये । सम्ऽअनमन् । एव । मह्यम् । सम्ऽनमः । सम् । नमन्तु ॥ १ ॥

प्रथनात् पृथिवी भूमिः । तस्याम् अधिदेवतात्वेन अवस्थिताय अग्नये समनमन् सर्वाणि भूतानि संनतानि उपसन्नानि भवन्ति ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स च अग्निः आध्नोत् संनतैर्भूतजातैः समृद्धो भवति। यथा खलु पृथिव्याम् अग्नये भूतानि समनमन् एव एवं संनमः। ❀ संपूर्वान्नमेर्भावे क्विप् ❀। अभिलषितफलस्य संनतयः संप्राप्तयः मह्यं सं नमन्तु संप्राप्नुवन्तु ॥

भूमिमें अधिदेवतारूपसे स्थित अग्निके लिये सब प्राणी प्राप्त होते हैं, वह अग्निदेव भी संनत हुए भूतोंसे समृद्ध होते हैं, इसी प्रकार अभिलषित फलकी प्राप्ति मुझे प्राप्त हों ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः।
सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ २ ॥

पृथिवी। धेनुः। तस्याः। अग्निः। वत्सः।
सा। मे। अग्निना। वत्सेन। इषम्। ऊर्जम्। कामम्। दुहाम्।
आयुः। प्रथमम्। प्रऽजाम्। पोषम्। रयिम्। स्वाहा ॥ २ ॥

पृथिवी धेनुः दोग्ध्री गौः। तस्या धेन्वा अग्निर्वत्सः पयसः प्रदापयिता। सा पृथिवी अग्निना वत्सेन वत्सस्थानीयेन अग्निना इषम् अन्नम् ऊर्जम् बलकरम् अन्नरसं कामम् काम्यमानम् अन्यत् सर्वं फलं मे मह्यं दुहाम् दुग्धाम्। प्रयच्छतु इत्यर्थः। कामशब्देन सामान्योक्तं फलं विशिनष्टि। प्रथमम् पुत्रपश्वादीनां फलानाम् आदिमं प्रथितं विस्तीर्णं वा शतसंवत्सरम् अपरिमितम् आयुः जीवनं दुग्धाम्। प्रजाम् प्रजायते उत्पद्यत इति प्रजा पुत्रादिरूपा। ❀ "उपसर्गे च संज्ञायाम्" इति डप्रत्ययः ❀। [ताम्] पोषम् पुष्टिम् अविशेषात् सर्वस्य फलस्य अभिवृद्धिं रयिम् गवा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"पृथिव्यां अग्नये समनमन्निति संनतिभिश्च" (कौशिकसूत्र १ । ५) ॥

इसी कर्ममें 'अग्नाविग्निः' इन दो ऋचाओंसे पुरस्ताद्धोमोंको करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"अग्नाविग्निः" और "हृदापूतम्" (६ । १०) और "पुरस्ताद् युक्तः" इस पाँचवें काण्डके उन्तीसवें सूक्तकी पहिली ऋचासे और "यज्ञस्य चक्षुः" इस दूसरे काण्डके पैंतीसवें सूक्तकी पाँचवी ऋचासे आहुति देय, पीछेसे अग्निके मध्यदेशमें पुरस्ताद्धोमोंको करे"। (कौशिक सूत्र १ । ३) ॥

तथा चातुर्मास्यके वैश्वदेवपर्वमें "अग्नावग्निः" इस ऋचासे मंथ्याभिहोमका अनुमन्त्रण करे ॥ इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"वैश्वदेवे निर्मथ्यं प्रहृतं भवतं नः समनसौ (वा० स० ५ । ३)इत्यनुमन्त्रयते। अग्नावग्निः (६) इति होमम्" (वैतानसूत्र २ । ४) ॥

तत्र प्रथमा ॥

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा पृथिव्यामग्नये समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥ १ ॥

पृथिव्याम् । अग्नये । सम् । अनमन् । सः । आर्ध्नोत् ।
यथा । पृथिव्याम् । अग्नये । सम्ऽअनमन् । एव । मह्यम् । सम्ऽनमः । सम् । नमन्तु ॥ १ ॥

प्रथनात् पृथिवी भूमिः । तस्याम् अधिदेवतात्वेन अवस्थिताय अग्नये समनमन् सर्वाणि भूतानि संनतानि उपसन्नानि भवन्ति ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स च अग्निः आर्ध्नोत् संनतैर्भूतजातैः समृद्धो भवति। यथा खलु पृथिव्याम् अग्नये भूतानि समनमन् एव एवं संनमः। ❀ संपूर्वान्नमेर्भावे क्विप् ❀। अभिलषितफलस्य संनतयः संप्राप्तयः मह्यं सं नमन्तु संप्राप्नुवन्तु ॥

भूमिमें अधिदेवतारूपसे स्थित अग्निके लिये सब प्राणी प्राप्त होते हैं, वह अग्निदेव भी संनत हुए भूतोंसे समृद्ध होते हैं, इसी प्रकार अभिलषित फलकी प्राप्ति मुझे प्राप्त हों ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः।
सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ २ ॥

पृथिवी। धेनुः। तस्याः। अग्निः। वत्सः।
सा। मे। अग्निना। वत्सेन। इषम्। ऊर्जम्। कामम्। दुहाम्।
आयुः। प्रथमम्। प्रऽजाम्। पोषम्। रयिम्। स्वाहा ॥ २ ॥

पृथिवी धेनुः दोग्ध्री गौः। तस्या धेन्वा अग्निर्वत्सः पयसः प्रदापयिता। सा पृथिवी अग्निना वत्सेन वत्सस्थानीयेन अग्निना इषम् अन्नम् ऊर्जम् बलकरम् अन्नरसं कामम् काम्यमानम् अन्यत् सर्वं फलं मे मह्यं दुहाम् दुग्धाम्। प्रयच्छतु इत्यर्थः। कामशब्देन सामान्योक्तं फलं विशिनष्टि। प्रथमम् पुत्रपश्वादीनां फलानाम् आदिमं प्रथितं विस्तीर्णं वा शतसंवत्सरम् अपरिमितम् आयुः जीवनं दुग्धाम्। प्रजाम् प्रजायते उत्पद्यत इति प्रजा पुत्रादिरूपा। ❀ "उपसर्गे च संज्ञायाम्" इति डप्रत्ययः ❀। [ताम्] पोषम् पुष्टिम् अविशेषात् सर्वस्य फलस्य अभिवृद्धिं रयिम् गवा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिलक्षणं धनं च प्रयच्छतु । स्वाहा इदं हविः स्वाहुतम् अस्तु ॥

पृथिवी धेनु है अर्थात् दुहाने वाली है, उस धेनुके अग्नि वत्स हैं अर्थात् फलरूप दुग्धको दिलानेवाले हैं, वह पृथिवीदेवी अग्नि रूप वत्सके द्वारा अन्नको और बलप्रद अन्नरसको तथा पुत्र पशु आदि फलोंमें प्रथमप्रसिद्ध शत संवत्सरवाली अपरिमित आयु, प्रजा, सबकी पुष्टि और गौ आदि धन-इन इच्छित वस्तुओंको दें, यह हवि स्वाहुत हो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।

यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥ ३ ॥

अन्तरिक्षे । वायवे । सम् । अनमन् । सः । आर्ध्नोत् ।

यथा । अन्तरिक्षे । वायवे । सम्ऽअनमन् । एव । मह्यम् । सम्ऽनमः । सम् । नमन्तु ॥ ३ ॥

[अन्तरिक्षे] अन्तरिक्षलोके तदधिपत्वेन अवस्थिताय वायवे तत्रत्यानि भूतजातानि यक्षगन्धर्वादीनि समनमन् सम्यक् प्रह्वीभवन्ति । स आर्ध्नोत् इत्यादि पूर्ववद् योज्यम् ॥

अन्तरिक्षमें अधिपतिरूपसे रहने वाले वायुदेवके पास जैसे तहाँ रहने वाले यक्ष गन्धर्व आदि एकत्रित होकर रहते हैं और उनसे प्रसन्न रहते हैं, और वायुदेव उनसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं, जैसे अन्तरिक्षमें वायुदेवके पास यक्ष गंधर्व आदि प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार अभिलषित फल मुझको प्राप्त हों ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ ४ ॥

अन्तरिक्षम् । धेनुः । तस्याः । वायुः । वत्सः ।

सा । मे । वायुना । वत्सेन । इषम् । ऊर्जम् । कामम् । दुहाम् । आयुः । प्रथमम् । प्रऽजाम् । पोषम् । रयिम् । स्वाहा ॥ ४ ॥

अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षलोक एव इष्टफलप्रदत्वाद् धेनुः दोग्ध्री गौः । तस्य धेनुत्वेन रूपितस्य अन्तरिक्षस्य तदविनाभूतस्तत्र संचरन् वायुर्वत्सः । सा अन्तरिक्षरूपा धेनुः वायुना वाय्वात्मना स्वकीयेन वत्सेन इषम् ऊर्जम् इत्यादि पूर्ववद् योज्यम् ॥

अन्तरिक्षलोक ही इष्टफलका देने वाला होनेसे दूध देनेवाली गौ है और उस धेनुका वायु वत्स है । वह अन्तरिक्षरूप धेनु वायुरूप अपने वत्सके द्वारा अन्नको और बलप्रद अन्नरसको तथा पुत्र पशु आदिमें प्रथम प्रसिद्ध सौ वर्षवाली अपरिमित आयु प्रजा, सब पदार्थोंकी पुष्टि और गौ आदि धन-इन अभिलषित वस्तुओंको दें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

दिव्यादित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिव्यादित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥ ५ ॥

दिवि । आदित्याय । सम् । अनमन् । सः । आर्ध्नोत् ।

यथा । दिवि । आदित्याय । सम्ऽअनमन् । एव । मह्यम् । सम्ऽ-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिलक्षणं धनं च प्रयच्छतु । स्वाहा इदं हविः स्वाहुतम् अस्तु ॥

पृथिवी धेनु है अर्थात् दुहाने वाली है, उस धेनुके अग्नि वत्स हैं अर्थात् फलरूप दुग्धको दिलानेवाले हैं, वह पृथिवीदेवी अग्नि रूप वत्सके द्वारा अन्नको और बलप्रद अन्नरसको तथा पुत्र पशु आदि फलोंमें प्रथमप्रसिद्ध शत संवत्सरवाली अपरिमित आयु, प्रजा, सबकी पुष्टि और गौ आदि धन-इन इच्छित वस्तुओंको दें, यह हवि स्वाहुत हो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।

यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥ ३ ॥

अन्तरिक्षे । वायवे । सम् । अनमन् । सः । आर्ध्नोत् ।

यथा । अन्तरिक्षे । वायवे । सम्ऽअनमन् । एव । मह्यम् । सम्ऽनमः । सम् । नमन्तु ॥ ३ ॥

[अन्तरिक्षे] अन्तरिक्षलोके तदधिपत्वेन अवस्थिताय वायवे तत्रत्यानि भूतजातानि यक्षगन्धर्वादीनि समनमन् सम्यक् प्रह्वीभवन्ति । स आर्ध्नोत् इत्यादि पूर्ववद् योज्यम् ॥

अन्तरिक्षमें अधिपतिरूपसे रहने वाले वायुदेवके पास जैसे तहाँ रहने वाले यक्ष गन्धर्व आदि एकत्रित होकर रहते हैं और उनसे प्रसन्न रहते हैं, और वायुदेव उनसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं, जैसे अन्तरिक्षमें वायुदेवके पास यक्ष गंधर्व आदि प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार अभिलषित फल मुझको प्राप्त हों ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ ४ ॥

अन्तरिक्षम् । धेनुः । तस्याः । वायुः । वत्सः ।
सा । मे । वायुना । वत्सेन । इषम् । ऊर्जम् । कामम् । दुहाम् ।
आयुः । प्रथमम् । प्रऽजाम् । पोषम् । रयिम् । स्वाहा ॥ ४ ॥

अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षलोक एव इष्टफलप्रदत्वाद् धेनुः दोग्ध्री गौः । तस्य धेनुत्वेन रूपितस्य अन्तरिक्षस्य तदविनाभूतस्तत्र संचरन् वायुर्वत्सः । सा अन्तरिक्षरूपा धेनुः वायुना वाय्वात्मना स्वकीयेन वत्सेन इषम् ऊर्जम् इत्यादि पूर्ववद् योज्यम् ॥

अन्तरिक्षलोक ही इष्टफलका देने वाला होनेसे दूध देनेवाली गौ है और उस धेनुका वायु वत्स है । वह अन्तरिक्षरूप धेनु वायुरूप अपने वत्सके द्वारा अन्नको और बलप्रद अन्नरसको तथा पुत्र पशु आदिमें प्रथम प्रसिद्ध सौ वर्षवाली अपरिमित आयु प्रजा, सब पदार्थोंकी पुष्टि और गौ आदि धन-इन अभिलषित वस्तुओंको दें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

दिव्या॑दित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिव्या॑दित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥ ५ ॥

दिवि । आदित्याय । सम् । अनमन् । सः । आर्ध्नोत् ।
यथा । दिवि । आदित्याय । सम्ऽअनमन् । एव । मह्यम् । सम्ऽ-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नमः । सम् । नमन्तु ॥ ५ ॥

दिवि द्युलोके अवस्थिताय तदधिपतये आदित्याय अदितेः पुत्राय सूर्याय द्युलोकवासिनो जनाः सन्नमन् सम्यक् प्रह्वीभवन्ति । तं सेवन्त इत्यर्थः । स च द्युलोकस्थ आदित्यः आर्ध्नोत् इत्यादि पूर्ववद् योज्यम् ॥

द्युलोकमें अधिपतिरूपसे रहने वाले अदितिके पुत्र सूर्यदेवके पास जैसे द्युलोकवासी नम्र होकर रहते हैं और वह सूर्यदेव उन द्युलोकवासियोंसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार अभिलषित फलकी प्राप्ति मेरी ओर झुकें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः ।
सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ ६ ॥

द्यौः । धेनुः । तस्याः । आदित्यः । वत्सः ।
सा । मे । आदित्येन । वत्सेन । इषम् । ऊर्जम् । कामम् । दुहाम् ।
आयुः । प्रथमम् । प्रऽजाम् । पोषम् । रयिम् । स्वाहा ॥ ६ ॥

द्युलोक एव अभिमतफलप्रदानेन दोग्ध्री धेनुः । तत्र संचरन्नादित्य एव तस्या वत्सः । सा म इत्यादि पूर्ववद् योज्यम् ॥

द्युलोक ही अभिलषित फल देनेके कारण धेनु है और तहाँ विचरने वाले आदित्य ही उसके वत्स हैं वह द्युलोकरूप धेनु आदित्यरूप अपने वत्सके द्वारा अन्नको और बलप्रद अन्नरस को तथा पुत्र पशु आदिमें प्रथम प्रसिद्ध शतसंवत्सर वाली आय-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रिमित आयु, प्रजा, सब पदार्थोंकी पुष्टि और गोधन आदि-इन अभिलषित वस्तुओंको दें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।

यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु

दिक्षु । चन्द्राय । सम् । अनमन् । सः । आर्ध्नोत् ।

यथा । दिक्षु । चन्द्राय । सम्ऽअनमन् । एव । मह्यम् । सम्ऽनमः । सम् । नमन्तु ॥ ७ ॥

दिक्षु प्राच्यादिषु तदधिदेवतात्वेन अवस्थिताय चन्द्राय चन्द्रमसे तत्रत्याः सर्वे जनाः समनमन् प्रह्वीभवन्ति । स आर्ध्नोत् इत्यादि पूर्ववत् ॥

पूर्व आदि दिशाओंमें अधिपतिरूपसे स्थित चन्द्रमासे सब प्रजायें प्रसन्न होती हैं चन्द्रदेव उन दिशाओंमें रहनेवाले प्राणियों से वृद्धिको प्राप्त होते हैं, जैसे दिशाओंमें प्रजायें चन्द्रमासे प्रसन्न हो उनके पास जाती हैं, इसी प्रकार फलोंकी प्राप्तियें मुझको प्राप्त हों ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः ।

ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥ ८ ॥

दिशः । धेनवः । तासाम् । चन्द्रः । वत्सः ।

ताः । मे । चन्द्रेण । वत्सेन । इषम् । ऊर्जम् । कामम् । दुहाम् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आयुः । प्रथमम् । प्रऽजाम् । पोषम् । रयिम् । स्वाहा ॥ ८ ॥

दिशः प्राच्याद्या अभिमतफलप्रदानाद् धेनवः दोग्ध्र्यो गावः । तासाम् अधिपतित्वेन संनिहितः चन्द्र एव वत्सः । ता मे चन्द्रेण वत्सेनेत्यादि पूर्ववद् योज्यम् ॥

दिशायें धेनु हैं, चन्द्रमा उनका बछड़ा है, वे दिशारूप धेनुएँ चन्द्रमारूपी बछड़ेके द्वारा बलप्रद अन्नरसको तथा पुत्र पशु आदि में प्रथम प्रार्थनीय आयुको, सब पदार्थोंकी पुष्टिको और गौ आदि धनको दें, यह हवि स्वाहुत हो ॥ ८ ॥

नवमी ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उं नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् ॥ ९ ॥

अग्नौ । अग्निः । चरति । प्रऽविष्टः । ऋषीणाम् । पुत्रः । अभिशस्तिऽपाः । ऊं इति ।
नमःऽकारेण । नमसा । ते । जुहोमि । मा । देवानाम् । मिथुया । कर्म । भागम् ॥ ९ ॥

अग्नौ लौकिके अङ्गारात्मके देवतारूपः अग्निः मन्त्रसामर्थ्येन प्रविष्टः सन् चरति वर्तते । यद्वा मथितः अग्निः आहवनीये अग्नौ प्रविष्टश्चरति । स विशेष्यते। ऋषीणाम् द्रष्टृणां चक्षुरादीनां पुत्रः। तद्व्यापारेण मथनात्मना जातत्वात् । "प्राणा वा ऋषयः" [बृ० आ० २. २. ५] इति वाजसनेयकम् । यद्वा ऋषीणाम् मन्त्राणाम् अग्निमन्थिनां पुत्रः । अथवा अथर्वाङ्गिरःप्रभृतीनाम् ऋषीणां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुत्रः। "त्वाम् अग्ने पुष्कराद् अध्यथर्वा निरमन्थत" इति हि निगमः [ऋ० ६. १६. १३]। अभिशस्तिपाः अभिशस्तेः अभिशस्यमानाद् आरोपितात् पापात् पालयिता । उशब्दः पूरणः । ईदृशाय ते तुभ्यं नमस्कारेण त्रिविधा करणानां प्रह्वीकरणेन त्वद्विषयसमर्पणेन नमसा । अन्ननामैतत् । हविर्लक्षणेन अन्नेन जुहोमि । ❀ "तृतीया च होश्छन्दसि" इति कर्मणि तृतीया ❀। नमस्कारसहितं हविर्जुहोमीत्यर्थः। तथा च देवानां भागम् हविर्भागं मिथुया मिथ्या मा कर्म मा कार्ष्म । ❀ कृञो माङि लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् ❀ ॥

लौकिक अंगारात्मक अग्निमें देवतारूप अग्नि मन्त्रसामर्थ्यसे प्रविष्ट होकर रहते हैं व चक्षु आदि ऋषियोंके पुत्र हैं ‡ अग्निमन्थनके मन्त्रोंके पुत्र और अथर्वा अंगिरा आदि ऋषियोंके पुत्र है † और आरोपित अपवादसे बचाने वाले हैं ऐसे आपको हम नमस्कारयुक्त हवि देते हैं देवताओंका हविर्भागको हम मिथ्या नहीं करते हैं ॥ ९ ॥

दशमी ॥

हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम्

‡ बृहदारण्यक २। २। ५ में लिखा है, कि–"प्राणा वा ऋषयः ॥–चक्षु आदि प्राण ही ऋषि हैं" ॥

† ऋग्वेदसंहिता ६। १६। १३ में कहा है, कि–"त्वां अग्ने पुष्कराद् अध्यथर्वा निरमन्थत ॥–हे अग्ने! आपको अथर्वाने पुष्करसे मथा है" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आयुः । प्रथमम् । प्रऽजाम् । पोषम् । रयिम् । स्वाहा ॥ ८ ॥

दिशः प्राच्याद्या अभिमतफलप्रदानाद् धेनवः दोग्ध्र्यो गावः । तासाम् अधिपतित्वेन संनिहितः चन्द्र एव वत्सः । ता मे चन्द्रेण वत्सेनेत्यादि पूर्ववद् योज्यम् ॥

दिशायें धेनु हैं, चन्द्रमा उनका बछड़ा है, वे दिशारूप धेनुएँ चन्द्रमारूपी बछड़ेके द्वारा बलप्रद अन्नरसको तथा पुत्र पशु आदि में प्रथम प्रार्थनीय आयुको, सब पदार्थोंकी पुष्टिको और गौ आदि धनको दें, यह हवि स्वाहुत हो ॥ ८ ॥

नवमी ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ ।
नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् ॥ ९ ॥

अग्नौ । अग्निः । चरति । प्रऽविष्टः । ऋषीणाम् । पुत्रः । अभिशस्तिऽपाः । ऊं इति ।
नमःऽकारेण । नमसा । ते । जुहोमि । मा । देवानाम् । मिथुया । कर्म । भागम् ॥ ९ ॥

अग्नौ लौकिके अङ्गारात्मके देवतारूपः अग्निः मन्त्रसामर्थ्येन प्रविष्टः सन् चरति वर्तते । यद्वा मथितः अग्निः आहवनीये अग्नौ प्रविष्टश्चरति । स विशेष्यते । ऋषीणाम् द्रष्टॄणां चक्षुरादीनां पुत्रः । तद्व्यापारेण मथनात्मना जातत्वात् । "प्राणा वा ऋषयः" [बृ० आ० २. २. ५] इति वाजसनेयकम् । यद्वा ऋषीणाम् मन्त्राणाम् अग्निमन्थिनां पुत्रः । अथवा अथर्वाङ्गिरःप्रभृतीनाम् ऋषीणां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुत्रः। "त्वाम् अग्ने पुष्कराद् अध्यथर्वा निरमन्थत" इति हि निगमः [ऋ० ६. १६. १३]। अभिशस्तिपाः अभिशस्तेः अभिशस्यमानाद् आरोपितात् पापात् पालयिता। उशब्दः पूरणः। ईदृशाय ते तुभ्यं नमस्कारेण त्रिविधा करणानां प्रह्वीकरणेन त्वद्विषयसमर्पणेन नमसा। अन्ननामैतत्। हविर्लक्षणेन अन्नेन जुहोमि। ❀ "तृतीया च होश्छन्दसि" इति कर्मणि तृतीया ❀। नमस्कारसहितं हविर्जुहोमीत्यर्थः। तथा च देवानां भागम् हविर्भागं मिथुया मिथ्या मा कर्म मा कार्ष्म। ❀ कृञो माङि लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् ❀ ॥

लौकिक अंगारात्मक अग्निमें देवतारूप अग्नि मन्त्रसामर्थ्यसे प्रविष्ट होकर रहते हैं व चक्षु आदि ऋषियोंके पुत्र हैं ‡ अग्निमन्थनके मन्त्रोंके पुत्र और अथर्वा अंगिरा आदि ऋषियोंके पुत्र है † और आरोपित अपवादसे बचाने वाले हैं ऐसे आपको हम नमस्कारयुक्त हवि देते हैं देवताओंका हविर्भागको हम मिथ्या नहीं करते हैं ॥ ९ ॥

दशमी ॥

हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम्

‡ बृहदारण्यक २। २। ५ में लिखा है, कि—"प्राणा वा ऋषयः ॥—चक्षु आदि प्राण ही ऋषि हैं" ॥

† ऋग्वेदसंहिता ६। १६। १३ में कहा है, कि—"त्वां अग्ने पुष्कराद् अध्यथर्वा निरमन्थत ॥—हे अग्ने! आपको अथर्वाने पुष्करसे मथा है" ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हृदा । पूतम् । मनसा । जातऽवेदः । विश्वानि । देव । वयुनानि । विद्वान् ।

सप्त । आस्यानि । तव । जातऽवेदः । तेभ्यः । जुहोमि । सः । जुषस्व । हव्यम् ॥ १० ॥

हृदा हृदयेन मनसा तदन्तर्वर्तिज्ञानकरणेन पूतम् शुद्धं हविस्तुभ्यं जुहोमि । हे जातवेदः जातानां वेदितः हे देव दानादिगुणयुक्त अग्ने विश्वानि सर्वाणि वयुनानि । वयुनम् इति ज्ञाननाम । इह तु ज्ञातव्ये वर्तते । ❀ वयुनं वेतेः इति यास्कः [नि० ५.१४] ❀ । सर्वाणि ज्ञातव्यानि विद्वान् जानन् भवसि । हे जातवेदः तव सप्त आस्यानि सप्तसंख्याका जिह्वाः । ताश्च उत्तरत्र उपनिषदि आम्नायंते । काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा । स्फुलिङ्गिनी विश्वरुचीति चैता लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥ इति [मु० १. २. ४.] । तेभ्य आस्येभ्यः । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । तेषाम् उद्घाटनाय आज्यं जुहोमि । प्रक्षिपामीत्यर्थः । स त्वं हव्यम् होतव्यम् अस्मदीयं हविः जुषस्व सेवस्व ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे प्रत्येक उत्पन्न हुओंको जानने वाले दानादिगुणसंपन्न अग्निदेव ! आप सब ज्ञातव्य बातोंको जान लेते हैं, हे जातवेदा अग्ने ! आपकी मुख रूप सात जिह्वायें हैं+ मैं उन सातों मुखों

+ मुण्डकोपनिषत् १ । २ । ४ में कहा है, कि—"काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा । स्फुलिंगिनी विश्वरुचीति चैता लेलायमाना इति सप्तजिह्वाः ॥—अर्थात् अग्निदेवकी काली कराली, मनके समान वेग वाली मनोजवा, परम लाल सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरुचि नाम वाली हविके लिये लपलपाती रहने वालीं सात जिह्वायें हैं" ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को खोलनेके लिये हृदयसे और उसके भीतर रहने वाले ज्ञानकरणमनसे पवित्र घृतकी आहुति देता हूँ ॥ १० ॥

चतुर्थ सूक्त समाप्त (१४१) ॥

"ये पुरस्तात्" इति सूक्तस्य "दूष्या दूषिरसि [२. ११] ये पुरस्तात् [४. ४०] ईशानां त्वा [४. १७]" इत्यादिकृत्याप्रतिहरणगणे [कौ० ५. ३] पाठात् कृत्यानिर्हरणकर्मणि शान्त्युदकादौ विनियोगः ॥

'ये पुरस्तात्' इस सूक्तका कौशिकसूत्र ५ । ३ में कहे हुए "दूष्या-दूषिरसि (२ । ११) ये पुरस्तात् (४ । ४०) ईशानां त्वा (४ । १७) इत्यादि" कृत्याप्रतिहरणगणमें पाठ होनेसे कृत्यानिर्हरणकर्मके शान्त्युदक आदिमें विनियोग होता है ।

तत्र प्रथमा ॥

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ १ ॥

ये । पुरस्तात् । जुह्वति । जातऽवेदः । प्राच्याः । दिशः । अभिऽदासन्ति । अस्मान् ।
अग्निम् । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् । प्रतिऽसरेण । हन्मि ॥ १ ॥

हे जातवेदः जातानाम् उत्पन्नानां वेदितरग्ने ये शत्रवः पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि । यद्वा पूर्वस्या दिशः सकाशात् । ❀ "पूर्वा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हृदा । पूतम् । मनसा । जातऽवेदः । विश्वानि । देव । वयुनानि । विद्वान् ।

सप्त । आस्यानि । तव । जातऽवेदः । तेभ्यः । जुहोमि । सः । जुषस्व । हव्यम् ॥ १० ॥

हृदा हृदयेन मनसा तदन्तर्वर्तिज्ञानकरणेन पूतम् शुद्धं हविस्तुभ्यं जुहोमि । हे जातवेदः जातानां वेदितः हे देव दानादिगुणयुक्त अग्ने विश्वानि सर्वाणि वयुनानि । वयुनम् इति ज्ञाननाम । इह तु ज्ञातव्ये वर्तते । ❀ वयुनं वेतेः इति यास्कः [नि० ५, १४] ❀ । सर्वाणि ज्ञातव्यानि विद्वान् जानन् भवसि । हे जातवेदः तव सप्त आस्यानि सप्तसंख्याका जिह्वाः । ताश्च उत्तरत्र उपनिषदि आम्नायंते । काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा । स्फुलिङ्गिनी विश्वरुचीति चैता लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥ इति [मु० १. २. ४.] । तेभ्य आस्येभ्यः । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । तेषाम् उद्घाटनाय आज्यं जुहोमि । प्रक्षिपामीत्यर्थः । स त्वं हव्यम् होतव्यम् अस्मदीयं हविः जुषस्व सेवस्व ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे प्रत्येक उत्पन्न हुओंको जानने वाले दानादिगुणसंपन्न अग्निदेव ! आप सब ज्ञातव्य बातोंको जान लेते हैं, हे जातवेदा अग्ने ! आपकी मुख रूप सात जिह्वायें हैं+ मैं उन सातों मुखों

+ मुण्डकोपनिषत् १ । २ । ४ में कहा है, कि—“काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा । स्फुलिंगिनी विश्वरुचीति चैता लेलायमाना इति सप्तजिह्वाः ॥—अर्थात् अग्निदेवकी काली कराली, मनके समान वेग वाली मनोजवा, परम लाल सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरुचि नाम वाली हविके लिये लपलपाती रहने वाली सात जिह्वायें हैं” ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को खोलनेके लिये हृदयसे और उसके भीतर रहने वाले ज्ञान-करणमनसे पवित्र घृतकी आहुति देता हूँ ॥ १० ॥

चतुर्थ सूक्त समाप्त (१४१) ॥

"ये पुरस्तात्" इति सूक्तस्य "दूष्या दूषिरसि [२. ११] ये पुरस्तात् [४. ४०] ईशानां त्वा [४. १७]" इत्यादिकृत्याप्रतिहरणगणे [कौ० ५. ३] पाठात् कृत्यानिर्हरणकर्मणि शान्त्युदकादौ विनियोगः ॥

'ये पुरस्तात्' इस सूक्तका कौशिकसूत्र ५ । ३ में कहे हुए "दूष्या-दूषिरसि (२ । ११) ये पुरस्तात् (४ । ४०) ईशानां त्वा (४ । १७) इत्यादि" कृत्याप्रतिहरणगणमें पाठ होनेसे कृत्या-निर्हरणकर्मके शान्त्युदक आदिमें विनियोग होता है ।

तत्र प्रथमा ॥

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्य-
स्मान् ।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण
हन्मि ॥ १ ॥

ये । पुरस्तात् । जुह्वति । जातऽवेदः । प्राच्याः । दिशः । अभिऽदासन्ति । अस्मान् ।
अग्निम् । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् । प्रतिऽसरेण । हन्मि ॥ १ ॥

हे जातवेदः जातानाम् उत्पन्नानां वेदितरग्ने ये शत्रवः पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि । यद्वा पूर्वस्या दिशः सकाशात् । ❀ "पूर्वा-

५.१०.२६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धरावराणाम्०" इति अधिकृत्य पञ्चम्यर्थे सप्तम्यर्थे वा "अस्ताति च" इति अस्तातिप्रत्ययः ❀ । जुह्वति होमेन अस्मान् अभिचरन्ति तस्मात् होमात् प्राच्या दिशः सकाशाद्व अस्मान् अभिदासन्ति उपत्तपयन्ति हिंसन्ति । ❀ दसु उपत्तये । अस्मात् एयन्तात् परस्य शपः "छन्दस्युभयथा" इति आर्धधातुकत्वात् "णेरनिटि" इति णिलोपः ❀ । ते शत्रवः तस्या दिशः अधिपतिम् अग्निम् ऋत्वा गत्वा अग्नौ निपतिताः पराञ्चः पराङ्मुखाः अस्मदनभिमुखाः सन्तो व्यथन्ताम् व्यथिताः संतप्ताः प्रदग्धा भवन्तु । ❀ व्यथ भयचलनयोः ❀ । एनान् अभिचरितॄन् शत्रून् प्रतिसरेण । प्रतिसरति प्रतिमुखं निवर्तते आभिचारिकं कर्म अनेनेति प्रतिसरः । [प्रतिसर] शब्देन एतद्व रक्षाकर्म विवक्षितम् । तेन प्रत्यक् प्रतिमुखं निवृत्तेन तदीयेनैव अभिचारकर्मणा तान् हन्मि हिनस्मि । यद्वा अभिचारकर्मणा उत्पादिताम् एनां कृत्याम् अनेन प्रतिसरेण रक्षाकरणेन प्रतीचीनं निवर्त्य नाशयामीत्यर्थः ॥

हे उत्पन्न हुओंको जानने वाले जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु पूर्वदिशामें होम कर उस अभिचारहोमके द्वारा हमको पूर्व दिशासे नष्ट करना चाह रहे हैं, वे शत्रु उस दिशाके अधिपति अग्निके पास जाकर अर्थात् अग्निमें गिर कर अत एव हमसे पराङ्मुख होकर व्यथित हो–भस्म होजावें । इन अभिचार कर्म करने वाले शत्रुओं को मैं इस प्रतिसर (उलट कर कर्ताको ही लगाने वाले अतः अपनी रक्षा करने वाले) कर्मसे नष्ट करता हूँ अथवा अभिचार कर्मसे उत्पन्न की हुई इस कृत्याको इस प्रतिसर कर्मके द्वारा उलटा कर मरता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यमसृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ २ ॥

ये । दक्षिणतः । जुह्वति । जातऽवेदः । दक्षिणायाः । दिशः । अभिऽदासन्ति । अस्मान् ।

यमम् । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् । प्रतिऽसरेण । हन्मि ॥ २ ॥

ये शत्रवो दक्षिणतः अस्मदावासस्थानाद् दक्षिणस्यां दिशि दक्षिणस्या दिशो वा अवस्थिता जुह्वति होमेन अस्मान् अभिचरन्ति । ❀ "दक्षिणोत्तराभ्याम् अतसुच्" । "चितः" इति अन्तोदात्तत्वम् । जुह्वतीति । "अभ्यस्तानाम् आदिः" इति आद्युदात्तः । यद्वृत्तयोगाद् अनिघातः ❀ । दक्षिणाया दिश इत्यादि पूर्ववद् योज्यम् । अग्निम् इत्यस्य स्थाने दक्षिणदिशः अधिपतिं यमम् इत्येतावानेव विशेषः ॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु हमारे निवासस्थानकी दक्षिण दिशामें स्थित होकर होम करके उस अभिचार होमके द्वारा हमको दक्षिण दिशासे क्षीण करना चाह रहे हैं, वे शत्रु उस दिशाके अधिपति यमके पास जाकर व्यथित होवें, अभिचारकर्म करने वाले इन शत्रुओंको मैं प्रतिसरकर्मसे नष्ट करता हूँ वा अभिचारोत्पन्न कृत्याको मैं प्रतिसरकर्मसे नष्ट करता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ ३ ॥

ये । पश्चात् । जुह्वति । जातऽवेदः । प्रतीच्याः । दिशः । अभिऽदासन्ति । अस्मान् ।

वरुणम् । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् । प्रतिऽसरेण । हन्मि ॥ ३ ॥

पश्चात् प्रतीच्यां दिशि ये शत्रुजना अस्मदभिचारार्थं जुह्वति । ❀ "उपर्युपरिष्टात्" "पश्चात्" इति सप्तम्यर्थे निपात्यते ❀ । अन्यत् पूर्ववद् योज्यम् । प्रत्यग्दिशोधिपतिं वरुणम् ऋत्वा इति तु विशेषः ॥

हे उत्पन्न हुओंको जानने वाले जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु पश्चिम दिशामें स्थित होकर अभिचारहोम करके हमको पश्चिम दिशासे नष्ट करना चाहते हैं, वे शत्रु पश्चिमदिशाके अधिपति वरुणके पास जाकर व्यथित हों अत एव हमसे पराङ्मुख हो जावें, इन अभिचारकर्म करनेवाले शत्रुओंको मैं रक्षाकर प्रतिसर कर्मसे नष्ट करता हूँ, अभिचारोत्पन्न कृत्याको प्रतिसर कर्मसे नष्ट करता हूँ ३

चतुर्थी ॥

य उत्तरतो जुह्वति जातवेद उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।

सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ये । उत्तरतः । जुह्वति । जातऽवेदः । उदीच्याः । दिशः ।
अभिऽदासन्ति । अस्मान् ।
सोमम् । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् ।
प्रतिऽसरेण । हन्मि ॥ ४ ॥

ये शत्रवः उत्तरतः उत्तरस्यां दिशि । ❀ पूर्ववद् अतसुच् ❀ । अन्यद् व्याख्यातप्रायम् । सोमम् तद्दिशोधिपतिम् ऋत्वा इति अत्र विशेषः ॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु उत्तर दिशामें होम कर उस अभिचारहोमके द्वारा हमको उत्तर दिशासे नष्ट करना चाहते हैं, वे शत्रु उस दिशाके अधिपति सोमके पास पहुँच कर व्यथित हों, और हमसे पराङ्मुख होवें, इन शत्रुओंको मैं रक्षा कर प्रतिसरकर्मसे नष्ट करता हूँ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

ये३धस्ताज्जुह्वति जातवेदो ध्रुवाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
भूमिमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ ५ ॥

ये । अधस्तात् । जुह्वति । जातऽवेदः । ध्रुवायाः । दिशः । अभिऽदासन्ति । अस्मान् ।
भूमिम् । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् ।
प्रतिऽसरेण । हन्मि ॥ ५ ॥

ये शत्रवः अधस्तात् अधरायां दिशि । ❀ पूर्ववद् अधरशब्दाद् अस्तातिप्रत्ययः ❀ । अन्यत् पूर्ववद् व्याख्येयम् । सैव अधरा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिक् पृथिव्यात्मना स्थिरत्वाद् ध्रुवेत्युच्यते । अधराया दिश इत्यर्थः । तस्या दिशो भूमिरेवाधिदेवतेति तां प्राप्य व्यथिता भवंत्वित्यादि पूर्ववद् योज्यम् ॥

हे उत्पन्न हुओंको जानने वाले जातवेदा अग्ने ! नीचेकी ध्रुव दिशामें स्थित होकर जो शत्रु अभिचारहोम कर उस होमके द्वारा नीचेकी ध्रुव दिशासे हमको नष्ट करना चाहते हैं, वे शत्रु उस नीचे की ध्रुव दिशाके अधिपति भूमिको प्राप्त हो व्यथित होते हुए हम से पराङ्मुख होजावें, उन शत्रुओंको मैं प्रतिसर कर्मके द्वारा क्षीण करता हूँ ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

ये३ऽन्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ ६ ॥

ये । अन्तरिक्षात् । जुह्वति । जातऽवेदः । विऽअध्वायाः । दिशः । अभिऽदासन्ति । अस्मान् ।
वायुम् । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् । प्रतिऽसरेण । हन्मि ॥ ६ ॥

अन्तरा द्यावापृथिव्यावीक्षितम् अन्तरा क्षान्तं वा यक्षगन्धर्वादिगणसेवितम् अवकाशात्मकम् अन्तरिक्षम् । ❀ सप्तम्यर्थे पञ्चमी ❀ । अन्तरिक्षलोके ये शत्रवो जुह्वतीत्यादि पूर्ववद् योज्यम् । ❀ व्यध्वाया दिश इति । विगता अध्वानो यस्याम् इति व्यध्वा । "उपसर्गाद् अध्वनः" इति अच् समासान्तः ❀ । तत्र संचरन् वायुस्तस्याधिदेवतेति वायुम् ऋत्वा इत्युक्तम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे जातवेदा अग्ने ! द्यावापृथिवीके मध्यमें अवकाशरूपसे स्थित अंतरिक्षलोकमें अभिचाराहुति दे जो शत्रु उस अभिचारकर्मसे हम को उस विगतमार्ग अंतरिक्ष दिशासे नष्ट करना चाहते हैं, वे शत्रु उस दिशाके अधिपति वायुके समीप पहुँचकर व्यथित होकर हमसे पराङ्मुख होजावें, उन शत्रुओंको मैं प्रतिसर कर्मसे नष्ट करता हूँ६

सप्तमी ॥

य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।

सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ ७ ॥

ये । उपरिष्टात् । जुह्वति । जातऽवेदः । ऊर्ध्वायाः । दिशः । अभिऽदासन्ति । अस्मान् ।

सूर्यम् । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् । प्रतिऽसरेण । हन्मि ॥ ७ ॥

ये शत्रवः उपरिष्टात् ऊर्ध्वायां दिशि द्युलोकवर्तिन्यां जुह्वति अस्मान् अभिचरन्तीत्यादि पूर्ववत् । द्युलोकस्थोर्ध्वदिगधिपतिं सूर्यम् ऋत्वा इत्येतावानेव विशेषः ॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु द्युलोकमें व्याप्त ऊपरकी दिशामें अभिचाराहुति देकर हमको ऊपरकी दिशासे नष्ट करना चाहते हैं, वे शत्रु द्युलोकमें स्थित ऊपरकी दिशाके अधिपति सूर्यमें पड़ कर व्यथित हों अत एव हमसे विमुख होजावें, उन शत्रुओंको मैं प्रतिसर कर्मके द्वारा नष्ट करता हूँ ॥ ७ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अष्टमी ॥

ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः सर्वाभ्यो दिग्भ्योऽभिदासन्त्यस्मान् ।
ब्रह्मर्त्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि

ये । दिशाम् । अन्तःऽदेशेभ्यः । जुह्वति । जातऽवेदः । सर्वाभ्यः । दिक्ऽभ्यः । अभिऽदासन्ति । अस्मान् ।
ब्रह्म । ऋत्वा । ते । पराञ्चः । व्यथन्ताम् । प्रत्यक् । एनान् । प्रतिऽसरेण । हन्मि ॥ ८ ॥

हे जातवेदः ये शत्रवः दिशाम् प्राच्यादीनाम् उक्तानाम् अन्तर्देशेभ्यः अन्तरालदेशेभ्यः सकाशाद् अस्मदभिचारार्थं जुह्वति ये च ताभ्यः सर्वाभ्यो दिग्भ्यः अस्मान् अभिदासन्ति उपक्षपयन्ति ते सर्वे पराञ्चः पराङ्मुखाः कुण्ठितशक्तयः सन्तः ब्रह्म सर्वगतं भूतभौतिकप्रपञ्चकल्पनास्पदम् "महद्भ भयं वज्रम् उद्यतम्" [क० व० ६. २] "भीषास्माद् वातः पवते" [तै० आ० ८. ८. १] इत्यादिश्रुत्यन्तप्रसिद्धनियमनशक्तियुक्तं परं ब्रह्म ऋत्वा प्राप्य व्यथन्ताम् व्यथिताः संतप्ता भवन्तु । एनान् शत्रून् प्रतिसरेण अनेन रक्षाकर्मणा प्रत्यक् प्रतीचीनं हन्मि ॥

[इति] पञ्चमं सूक्तम् ॥ अष्टमोनुवाकः ॥

श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-श्रीवीरहरिहरमहाराजसाम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये चतुर्थकाण्डे अष्टमोनुवाकः ॥

समाप्तश्चतुर्थः काण्डः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु पूर्वोक्त पूर्व आदि दिशाओंके कोणोंसे हमारे ऊपर अभिचार करनेके लिये होम करते रहते हैं और उन दिक्कोणोंसे हमको क्षीण करते हैं, वे सब शत्रु कुण्ठित शक्ति वाले हों अत एव हमसे पराङ्मुख होकर सर्वगत भूत-भौतिक प्रपञ्चकी कल्पनाके स्थान 'भीषास्माद् वातः पवते—इस ब्रह्मके भयसे वायु चलता है' (तैत्तिरीय आरण्यक ८।८।१) तथा महद् भयं वज्रमुद्यतम्—बड़ा वज्ररूप भय उत्पन्न हुआ है (कठवल्ली ६।२) इत्यादि त्रयीके अन्तमें प्रसिद्ध सबको वश में रखनेकी शक्ति वाले परब्रह्मको प्राप्त होकर व्यथित होवें। इन शत्रुओंको मैं इस रक्षाकर प्रतिसर कर्मसे उलटा मारता हूँ ॥८॥

अथर्ववेदसंहिताके चतुर्थकाण्डके अष्टम अनुवाकमें

पञ्चम सूक्त समाप्त (१४२)॥

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका चतुर्थकाण्ड मु० कु०

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

सम्पादक मु० कु० प० रामचन्द्र

शर्मा कृत सायणभाष्यानुकूल

भाषानुवाद सहित

समाप्त।

॥ चतुर्थः काण्डः समाप्तः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

❀ सामवेदसंहिता ❀

स्वरसहित मूल, सायणाचार्यकृत संस्कृत भाष्य और भाषानुवाद सहित मूल्य ५)

श्रीकृष्ण भगवान्ने गीतामें कहा है 'वेदानां सामवेदोऽस्मि" सब वेदोंमें सामवेद मेरी मुख्य विभूति है, क्योंकि सामवेदके गान में सब वेदोंकी अपेक्षा अधिक आकर्षण शक्ति है, जिस समय मुनिकुमार आश्रमोंके वृक्षोंके नीचे अपनी कुटियोंमें बैठे प्रातःकाल के समय प्रेममें भरकर सामगानसे भगवान्की स्तुति किया करते थे और सायंकाल होते ही सूर्यदेवको विदा करते समय शीतल मन्द सुगन्धित मलय मारुतका सेवन करते हुए सामवेदकी मनोमोहनी ऋचाओंका गान करते थे, उस समय मालूम होता था, कि-इस पापताप-पूर्ण वसुन्धरा पर स्वर्गधामकी अपूर्व लहरी क्रीड़ा कर रही है शांति और पवित्रता मानो मूर्तिमती होकर भारतवासी द्विजोंके घरोंमें विचर रही है, सामवेदमें ऐसी मोहनी शक्ति है यज्ञोंमें भाग लेनेके लिये देवताओंको सामवेदके गानसे ही बुलाया जाता था, आज वेदोंका पठन पाठन उठ जानेसे ही हमारे घरोंमें अशांति और दरिद्रता आविराजी है, आओ प्यारे द्विजो! फिर वेदका अभ्यास कर अपने घरोंको स्वर्गधाम बना डालो, इन वेद-मन्त्रोंमें वह कल्याणमयी किरणें गुथीं हुई हैं जो द्विजोंकी साधनासे उदित होकर संसारका दुःखांधकार दूर कर देती हैं इस कारण ही यह सामवेदसंहिता सायणाचार्यका प्राचीन संस्कृत भाष्य और उसके अनुसार प्रत्येक पदका अलग २ अर्थ तथा भाषा भावार्थ सहित सुन्दर मोटे कागज पर छापी है। अन्यत्र केवल साधारण भाष्य ही पचीससे दश रुपये तकको मिलता है सनातनधर्मी भाषाटीका तो और कहीं-छपा ही नहीं मैंने संस्कृत-भाष्य और भाषाटीकासहितका मूल्य ५) रक्खा है। डाकव्यय ॥≈) अलग लगेगा।

पता--सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वेदान्तका उत्तम ग्रन्थ

❀ सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-सार-संग्रह ❀

अन्वय पदार्थ और भावार्थ--सहित

यह ग्रन्थ बम्बई काशी आदिमें कहीं मूलमात्र भी नहीं छपा था, हमने मदरासमे मूलग्रन्थ मँगा कर इसको अन्वय पदार्थ और भाषाटीकाके साथ बड़े सुवाच्य अक्षरोंमें छापा है। ग्रन्थमें वेदान्तके प्रायः सब ही सिद्धान्तोंको सरलताके साथ लिख दिया है, इस ग्रन्थकी रचनाकी परिपाटी और लेखनशैली पञ्चदशीकी समान बड़ी चमत्कारमयी है। श्लोक सहज और काव्य की समान बड़े मधुर हैं इस सुन्दर ग्रन्थका अभ्यास कर लेनेसे वेदान्तकी प्रायः सब ही बातोंका अभ्यास होजायगा, जो लोग कठिन ग्रन्थोंको नहीं समझते उन तत्त्वजिज्ञासुओंके लिए यह ग्रन्थ बड़ा ही उपयोगी है। चरित्रगठनका आरम्भ करके इस ग्रन्थकी सहायतासे साधक साधनमार्गमें उन्नति कर सकता है, मुमुक्षुओं पर उपकार करनेके लिये ही शङ्कराचार्यने यह ग्रन्थ रचा है, जिल्ददार ग्रन्थका मूल्य २) डाकव्यय ।।-)

❀ मनुस्मृति ❀

मूल और भाषा-टीका-सहित

स्वर्गीय ऋ० कु० प० रामस्वरूपशर्मा कृत भाषानुवाद और टिप्पणियों सहित। शास्त्रके संदिग्ध विषयों पर जैसा इसकी टिप्पणियोंमें समाधान किया गया है वैसा समाधान अन्य प्रेसों की छपी हुई मनुस्मृति में मिलना दुर्लभ है। प्रस्तावना और प्रत्येक श्लोककी विषयसूची साथमें है। मनुस्मृतिका कौन कौन विषय वेदके किस २ अध्याय आदिसे लिया गया है, इत्यादि का विवरण प्रस्तावनामें दिया है। ५४० पृष्ठकी कपड़ेकी जिल्द बँधी पुस्तका मूल्य १।।।) डाकव्यय ।।-) अलग।

पता-सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मिलने का पता—

सनातनधर्म-यंत्रालय

मुरादाबाद.

SPS
891.214 S 16 A
19119

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

This b... from the library
... A fine of one
...ch day the

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

891.214 SIGA 19119

...ok borrowed ...
...ned within one ...
its issue. It may
... for fifteen days,
... requisitioned by
... ember. Members
residing outside Srinagar
may return books within
forty days of their issue.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust